रांगेय राघव की सम्पूर्ण कहानियां
1

डॉ० रांगेय राघव

17 जनवरी, 1923 को जन्म, आगरा में। मूल नाम, टी० एन० वी० आचार्य (तिरुनल्लै नम्बाकम वीरराघव आचार्य)। मां का नाम कनकवल्ली, पिता का रंगाचार्य। तीन भाइयों में सबसे छोटे। घर का नाम पप्पू। कुल से दाक्षिणात्य लेकिन ढाई शतकों से पूर्वज वर (भरतपुर, राजस्थान) के निवासी। शिक्षा आगरा में। सेंट जॉन्स कॉलेज से 1944 में स्नातकोत्तर और 1949 में आगरा विश्वविद्यालय से गुरुगोरखनाथ पर पी-एच० डी०। संस्कृत, ब्रज और अंग्रेजी पर असाधारण अधिकार।

किशोरावस्था से लेखनारंभ। 19-20 वर्ष की अवस्था में अकालग्रस्त बंगाल की यात्रा। लौटकर हिन्दी के प्रारंभिक पर अविस्मरणीय रिपोर्ताजों—'तूफानों के बीच'—का सृजन। 23-24 वर्ष की आयु से ही हिन्दी जगत में अभूतपूर्व चर्चा के विषय। मई, 1947 में प्रथम कहानी-संग्रह 'साम्राज्य का वैभव' का प्रकाशन। 'मेरी प्रिय कहानियां' चयन सहित कुल ग्यारह कहानी संग्रह। अनेक कहानियां भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनूदित।

साहित्य के अतिरिक्त चित्रकला, संगीत और इतिहास-पुरातत्त्व में विशेष रुचि। साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में सिद्धहस्त। मात्र 39 वर्ष की आयु में कविता, कहानी उपन्यास, नाटक, रिपोर्ताज के अतिरिक्त आलोचना, सभ्यता व संस्कृति पर शोध और व्याख्या के क्षेत्रों को 150 से भी अधिक मौलिक और अनूदित पुस्तकों से समृद्ध किया। दो फिल्मों की पटकथाएं भी लिखीं जिनमें से एक 'लंकादहन' पर फिल्म भी बनी। अपनी अद्भुत प्रतिभा, असाधारण ज्ञान और लेखन-क्षमता के लिए सर्वमान्य अद्वितीय लेखक।

संस्कृत रचनाओं का हिन्दी और अंग्रेजी में अनुवाद। विदेशी साहित्य का अंग्रेजी के माध्यम से हिन्दी में अनुवाद।

लम्बे समय तक अविवाहित रहने के बाद 7 मई, 1956 को सुलोचना आयंगार से विवाह। 8 फरवरी, 1960 को पुत्री सीमंतिनी का जन्म। अधिकांश जीवन आगरा, वैर और जयपुर में व्यतीत। आजीवन स्वतंत्र लेखन और कठिन संघर्ष।

हिन्दुस्तानी अकादमी, डालमिया, उत्तर प्रदेश सरकार, राजस्थान साहित्य अकादमी तथा महात्मा गांधी पुरस्कार (मरणोपरांत) से सम्मानित। विभिन्न कृतियां अन्य भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनूदित। लंबी बीमारी के बाद 12 सितम्बर, 1962 को बंबई में देहांत।

रांगेय राघव की सम्पूर्ण कहानियां
1
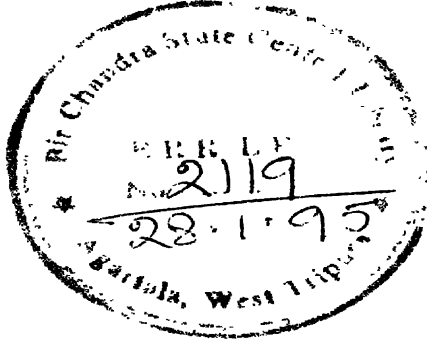
सम्पादक
अशोक शास्त्री

अलीक प्रकाशन, जयपुर

एकमात्र वितरक :
पंचशील प्रकाशन
फिल्म कालोनी, जयपुर-302003

रांगेय राघव की सम्पूर्ण कहानियां, पहला भाग (COLLECTED SHORT STORIES OF RANGEYA RAGHAVA)/प्रथम संस्करण 1960 / सर्वाधिकार : डॉ० सुलोचना रांगेय राघव/मुद्रक : सोहन प्रिंटर्स, शाहदरा दिल्ली-110032 प्रकाशक : अलीक प्रकाशन, 'भूमिका' 2 घ 26, जवाहर नगर, जयपुर 302024/ मूल्य : प्रतिभाग, एक सौ पच्चीस रुपये (125.00), दोनों भाग, दो सौ पचास रुपये मात्र (250.00)।

सम्पादकीय

यों तो किसी भी लेखक की सम्पूर्ण कहानियां एक जगह एकत्र हो जाना पाठक और अध्येता दोनों के लिए अनिवार्यतः लाभकर होता है, किंतु **रांगेय राघव** की सम्पूर्ण कहानियों की यह प्रस्तुति इसलिए अतिरिक्त संतोष का कारण है कि दशकों से दो-तीन को छोड़कर उनका कोई कहानी-संग्रह उपलब्ध नहीं था; एकाध के तो प्रकाशनगृह भी कब के [illegible] चुके हैं।

अन्य विधाओं में रांगेय राघव के विपुल सृजन को देखते हुए कहा जा सकता है कि उन्होंने बहुत कहानियां नहीं लिखीं। उन्होंने स्वयं एक जगह लिखा है, "बहुत कहानियां नहीं लिखी हैं—शायद सन 1936 से 1958 ई० तक यानी 22 साल में लिखी हैं अस्सी या पचासी।" 1936 में रांगेय राघव की आयु कुल 13 वर्ष थी; इस कच्ची उम्र में उन्होंने कौन-सी कहानियां लिखीं, हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते। संभव है उनमें से कुछ नष्ट हो गयी हों अथवा बाद के वर्षों में छपाते समय उन्हें फिर से लिखा गया हो। हमें चूंकि उनकी 1944 से पूर्व प्रकाशित कोई कहानी नहीं मिली, अतः निश्चित जानकारी के अभाव में दिसम्बर 1944 में प्रकाशित—**अभिमान**—से यहां कहानियों का क्रमारंभ किया है।

रांगेय राघव के जीवन और उनकी रचना-यात्रा में 1944 के आसपास का काल-खंड अत्यंत महत्त्व का है। यह वह दौर है जब युवा रांगेय राघव अकाल के निर्दय पंजों के बीच छटपटाती बंगाल की धरती पर भूख और जिन्दगी के बीच चल रही भयावह रस्साकशी से रू-ब-रू करके लौटे थे, और लौटा हुआ यह युवा अब वह नहीं रह गया था जो वह आगरा से अकालपीड़ितों की सहायतार्थ बंगाल गये डाक्टरी जत्थे के साथ रवाना होते हुए था। उनके अंतरंग **मित्र घनश्याम अस्थाना** के शब्दों में, "असलियत के विस्फोट ने स्वप्नभंग नहीं किया, बल्कि सारी चेतना को लहूलुहान करके उस पर अपने बारूदी हस्ताक्षर अंकित कर दिये। रांगेय राघव को **बंगाल के अकाल** ने जो दिया वह ताजिन्दगी एक अदृष्ट काली छाया की तरह उनका पीछा करता रहा।" बंगाल से लौटकर उन्होंने हंस और **विशाल भारत** में जो रिपोर्ताज लिखे वे आज भी पाठक को सिहरा देते हैं; हिन्दी को पहले-पहल एक सर्वथा नयी विधा का स्वाद चखाने वाले तो वे हैं ही।

रांगेय राघव की सम्पूर्ण कहानियां का प्रकाशन **रांगेय राघव ग्रंथावली** ('83)

के माथ या तुरन्त बाद हो गया होता, किन्तु सम्पादक ने जैसे ही काम शुरू किया उसे महसूस हुआ कि यह काम उतना सरल नहीं था जितना वह और प्रकाशन-जगत से जुड़े कुछ बंधु माने रहे थे। क्योंकि कम-से-कम सम्पादक तो कहानियों को सिर्फ एक ढेर के रूप में मुद्रक को संभला देने को ही अपने दायित्व की इतिश्री मानकर संतुष्ट नहीं हो सकता था। वह चाहता था कि सभी कहानियों का निश्चित रचनाकाल दिया जाए तथा उसी क्रम में उन्हें संयोजित किया जाए। लेकिन, जब वह इसे कार्यरूप देने बैठा तो उसकी निराशा की कोई सीमा नहीं रही। कारण कि दो-चार को छोड़कर रांगेय राघव की कहानियों की निश्चित रचनातिथि जानना प्राय: असम्भव कार्य था, क्योंकि उन्होंने न तो कहीं अपने कागजों में यह ब्योरा छोड़ा है और न ही किसी कहानी की पांडुलिपि प्राप्य है। ऐसे में रचनातिथि जानने का उपाय क्या हो सकता था ? मित्रों और सुलोचना जी को भी कुछ कहानियों का रचनाकाल ही मोटे तौर पर याद था।

फलत: हमने निश्चित किया कि कहानियों को उनके प्रकाशनकाल के क्रम से संयोजित किया जाए। यह संयोजन इसलिए भी उचित लगा कि रांगेय राघव की कहानियों के रचना-काल और प्रकाशन-काल में बहुत बड़ा अन्तर नहीं है। उनके मित्रों, परिजनों ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि वे कहानी लिखते ही किसी पत्र-पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेज देते थे; स्पष्ट ही इसका एकमात्र कारण यह था कि पैसे की कमी सदा बनी रहती थी। कुछ पत्रिकाएं तो ऐसी थीं जिनके हर अंक में वर्षों तक रांगेय राघव की कोई न कोई रचना प्रकाशित होती थी—कभी कहानी, कभी कविता, कभी लेख तो कभी रिपोर्ताज।

पांडुलिपियों की तरह पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं की एक भी कतरन या सूचना लेखक के कागजों में मौजूद नहीं थी। कुछ तो उनकी बीमारी के दौरान गुम हो गयीं, कुछ को उन्होंने कहानी-संग्रह तैयार करते समय प्रकाशकों को सौंप दिया था। जाहिर है कि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं की फाइलों की अंधाधुंध पन्नेपलटाई से ही यह कार्य सम्भव हो सकता था; "अंधाधुंध" इसलिए कि एकाध पत्रिका को छोड़कर इस जानकारी का भी अभाव था कि अमुक कहानी या कहानियां अमुक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इस दिशा में बढ़ने पर पहली बार इस बात का प्रत्यक्ष और तिक्त अनुभव हुआ कि हमारे अधिकतर पुस्तकालय किस प्रकार पत्र-पत्रिकाओं और किताबों के कब्रगाह बन गये हैं; कहीं आर्थिक विपन्नता इसका कारण है तो कहीं किताबों के प्रति उदासीन कर्मचारी। पुरानी महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं की सिलसिलेवार फाइलें शायद ही कहीं आद्योपांत मौजूद हों। ऐसे में आश्चर्य नहीं कि हमें मुश्किल से आधी कहानियों के ही प्रथम प्रकाशन का विवरण मिल पाया।

अत: यहां हमें जिन कहानियों की प्रकाशन तिथियां प्राप्त हुईं, उन्हें उसी क्रम से प्रस्तुत किया है तथा जिन कहानियों का निश्चित प्रथम प्रकाशन-काल प्राप्त नहीं हुआ उन्हें कहानी संग्रहों के प्रकाशनकालानुक्रम से, क्योंकि यह तो तय है कि जिस संकलन में जो कहानियां जिस वर्ष संग्रहीत होकर प्रकाशित हुई हैं उनका प्रथम प्रकाशन-

काल (और जाहिर है कि रचनाकाल भी) उक्त वर्ष से पूर्व ही होगा। कहना न होगा कि अध्येता के लिए यह जानकारी भी निश्चित रूप से काम की सिद्ध होगी कि अमुक कहानी कम-से-कम अमुक सन के बाद तो लिखी ही नहीं गयी है।

मेरी प्रिय कहानियां चयन सहित 1947 से 1963 के अन्तराल में रांगेय राघव की कहानियों के कुल ग्यारह संग्रह प्रकाशित हुए हैं। मई' 47 में उनका पहला संग्रह **साम्राज्य का वैभव** प्रकाशित हुआ; इसी वर्ष उनके दो और संग्रह **समुद्र के फेन** तथा **देवदासी** आये। इन संग्रहों में उनकी क्रमशः पांच, चौदह और छः कहानियां संग्रहीत हैं। इन संग्रहों में उनकी सभी प्रारंभिक कहानियां एकत्र हैं। दो वर्ष बाद याने 1949 में उनके दो और संग्रह प्रकाशित हुए—**जीवन के दाने** व **अधूरी मूरत** जिनमें उनकी क्रमशः छः व पांच कहानियां संकलित हैं। फिर '51 में **अंगारे न बुझे** (बीस कहानियां) आया। '53 में छपा **ऐयाश मुर्दे**, लेकिन सत्रह कहानियों के इस संग्रह को नया संग्रह नही मानना चाहिए क्योंकि यह 'देवदासी', 'जीवन के दाने' और 'अधूरी मूरत' की सभी कहानियों को एकत्र कर देने से बना है। तीन साल बाद '57 में **इंसान पैदा हुआ** का प्रकाशन हुआ जिसमें' 51 से पूर्व लिखित-प्रकाशित सोलह कहानियां तथा पांच रिपोर्ताज संकलित हैं।

1960 में **पांच गधे** का प्रकाशन हुआ, जिसमें नौ कहानियां/फीचर/रिपोर्ताज/रेखाचित्र/रेडियो-कथा आदि संकलित हैं। हमने 'पांच गधे' की तीन कहानियों को यथास्थान प्रस्तुत किया है किंतु अन्य विधाओं में किये गए कथा-प्रयोगों को दूसरे भाग में परिशिष्ट के अन्तर्गत रखा है। अन्यत्र प्रकाशित शुद्ध-रिपोर्ताजों को हमने यहां संकलित नहीं किया है, शायद वह उचित भी नहीं होता; उन्हें अलग संकलन के रूप में शीघ्र प्रकाशित करने की योजना है। कहा जा सकता है कि तब **पांच रिपोर्ताज** रचना को यहां परिशिष्ट के अन्तर्गत क्यों रखा गया है। इसकी सफाई यह है कि जैसे **सिंहावलोकन: फीचर** प्रचलित अखबारी अर्थों में शुद्ध-फीचर न होकर एक कथा प्रयोग है उसी तरह 'पांच रिपोर्ताज' **तूफानों के बीच** के रिपोर्ताजों अथवा लेखक के एक अन्य प्रसिद्ध रिपोर्ताज **यह ग्वालियर है** की तरह मात्र रिपोर्ताज न होकर रिपोर्ताज शैली में एक कथा प्रयोग है और इसलिए उसकी सही जगह यात्राओं, घटनाओं से संबंधित शुद्ध रिपोर्ताजों के बीच (जिनमें लेखक को एक रिपोर्टर की मर्यादाओं का भी पालन करना होता है) न होकर लेखक के कथा प्रयोगों के बीच है; विशेषकर 'इंसान पैदा हुआ' से हमने जिन रिपोर्ताजों को सम्पूर्ण कहानियों में संकलित नहीं किया है वे यहां की तो बात दूर की है, उक्त कहानी-संग्रह में भी काफी अटपटे मालूम पड़ते हैं। अतः हमें उन रिपोर्ताजों तथा कहानियों की खोजबीन के दौरान प्राप्त कुछ अन्य असंकलित रिपोर्ताजों को भविष्य में अलग से प्रकाशित करना ही सुसंगत लगा।

'पांच गधे' के बाद रांगेय राघव के मात्र दो संग्रह प्रकाशित हुए। बल्कि एक कहना ही उचित होगा, क्योंकि उनमें से एक ('मेरी प्रिय कहानियां') तो उनकी कहानियों का एक चयन भर है; इसमें सिर्फ एक सर्वथा असंकलित कहानी है—**गबल**—उनकी

श्रेष्ठतम कहानियों में से एक। दूसरा संग्रह है एक छोड़ एक। और इसमें भी सभी कहानियां ऐसी नहीं हैं जो यहां पहली बार संकलित हो रही हों; कुल बारह कहानियों में से पांच पूर्व प्रकाशित संग्रहों से ली गई हैं। दुर्भाग्यवश यह संकलन मेधावी लेखक के जीवन-काल में प्रकाशित नहीं हो पाया, 1963 में इसका प्रकाशन हुआ।

यद्यपि रांगेय राघव के मसिजीवी लेखक होने के कारण इस बात की संभावना अत्यन्त क्षीण थी कि उनकी ऐसी कहानियां बड़ी संख्या में होंगी जो संकलित न हुई हों, फिर भी हमने यथासंभव पत्र-पत्रिकाओं की फ़ाइलें इस दृष्टि से भी देखीं। हमें ऐसी कहानियां भले ही सिर्फ दो मिलीं पर हम इसको बड़ी उपलब्धि मानते हैं। ये कहानियां हैं आदमी (विशाल भारत, जनवरी '46) तथा नया समाज (नया समाज, जुलाई '48)। इन कहानियों के प्राप्त होने से इस संभावना से इंकार करना संभव नहीं रहा कि भविष्य में कुछ और असंकलित कहानियां मिलें। हालांकि वे अधिक होंगी इसमें हमें संदेह है। इसके विपरीत कविताएं बड़ी संख्या में असंकलित हैं, कुछ लेख तथा विविध गद्य भी जिसे क्रमशः पुस्तकाकार प्रकाशित करने की योजना है।

पाठक लक्ष्य करेंगे कि रांगेय राघव ने अपनी अधिकांश कहानियां '51 से पूर्व लिखी हैं, याने उनके कहानी लेखन का मुख्य दौर (किशोरावस्था में लिखित रचनाओं को छोड़कर) सन 42-43 से 50-51 तक रहा है। इस दौर में उन्होंने कोई 71 कहानियां लिखीं। '50-51 के बाद के 11-12 वर्षों में लिखी कहानियों की संख्या कुल 18 हैं, यों हमें इन कहानियों में से भी कुछ पूर्व लिखित लगती हैं तथापि निश्चित जानकारी के अभाव में फिलहाल हमने उन्हें बाद की कहानियों के साथ ही प्रस्तुत किया है।

'42-43 से लेकर 50-51 तक के बीच के भारत में एक साथ इतनी घटनाएं और परिवर्तन हुए जो किसी भी समाज को हिलाकर उसका नक्शा बदलकर रख सकते हैं: विश्वयुद्ध की छाया, बंगाल का अकाल, भारत छोड़ो, भारत-पाक विभाजन, हिंदु-मुस्लिम दंगे, स्वतंत्रता प्राप्ति, साम्यवादी दलों पर पाबंदी, महात्मा गांधी की हत्या, नेहरू युग की शुरूआत···और यही वह दौर है जब युवक रांगेय राघव कहानी के मैदान में अपनी कलम लेकर उतरे थे। आज हम जैसे ही रांगेय राघव की कहानियों के पन्ने खोलते हैं मानो इतिहास के उस कालखंड का तिलिस्मी दरवाजा खुल जाता है; तत्कालीन शायद ही कोई बड़ी घटना हो जिसकी अनुगूंजे रांगेय राघव की कहानियों में सुनाई न दें।

रांगेय राघव के उपन्यासों की तरह उनकी कहानियों और उनके पात्रों में जबर-दस्त वैविध्य है। उनकी कहानियों के पात्रों की बस्ती पर जब हम नजर दौड़ाते हैं तो जान पड़ता है वह एक लघु-भारत है। किस वर्ग और वर्ण का व्यक्ति वहां नहीं है? इससे भी महत्वपूर्ण यह कि प्रायः हर पात्र का अपना व्यक्तित्व है, वे अपने वर्ग या वर्ण के आर्किटाइप कठपुतले मात्र नहीं हैं। रांगेय राघव की कहानियों का विश्लेषण करना यहां हमारा इष्ट नहीं है किंतु उनकी कथा-यात्रा की इस विशेषता को रेखांकित करना

अप्रासंगिक नहीं होगा कि उन्होंने अपने समय में कहानी-विधा की परिपाटी को जितना झिंझोड़ा और बदला वह दुर्लभ है। और यह काम उन्होंने दो स्तरों पर किया। एक स्तर पर उन्होंने ऐसी कथा-स्थितियों को अपनी कहानी की रोशनी के दायरे में लिया जो अब तक धुंधलके या अंधेरे में थीं, दूसरे उन्होंने कहानी के इतिवृत्तात्मक आदि बने-बनाये चौखटों को तरह-तरह से तोड़ा। उनकी यह अकेली विशिष्टता भी उन्हें **प्रेमचंद** के बाद के सर्वाधिक महत्व के लेखकों की पांत में रखे जाने के लिए पर्याप्त है, वैसे उनकी कहानियों की विशिष्टताएं और भी हैं लेकिन जैसा कि हमने कहा हम यहां उनके विश्लेषण में नहीं जाएंगे।

आशा है कि रांगेय राघव की सम्पूर्ण कहानियों के इस प्रकाशन के बाद 'गदल' पर अड़ी हुई हिन्दी आलोचना जब लेखक के पुनर्मूल्यांकन की ओर आकृष्ट होगी, और हम विश्वास करना चाहते हैं कि वैसा होगा तो संदेह नहीं कि कहानीकार के तौर पर रांगेय राघव के महत्त्व को बढ़ाने वाले अनेकानेक निष्कर्ष निकलेंगे। हमारी यह आशा और विश्वास थोड़ा भी फलीभूत होता है तो हम उसे अपने कार्य की अतिरिक्त सार्थकता समझेंगे।

इस कार्य में **सीमंतिनी राघव** और रांगेय राघव के परममित्र **श्रीकृष्ण चन्द्र खन्ना** (जिन्हें 'समुद्र के फेन' संग्रह समर्पित है) से जो सहयोग मिला उसके लिए सम्पादक कृतज्ञ है। किंतु उन्हें धन्यवाद देते हुए उसे इसलिए संकोच होता है कि उन्होंने जो किया वह अपना काम समझकर किया···

—अशोक शास्त्री

क्रम

अभिमान

कालिज मे जो सड़क पूरब की ओर इठलाकर, पश्चिम की तरफ बिजकती हुई, घरो की आड़ मे निकल, लम्बे-लम्बे पेड़ों की छाया में एकदम अपना आंचल खोल देती है, वही कुछ दूर चलने पर स्टेशन की ओर मुंह किये छोटी सी कब्र के सामने एक बस्ती है। छोटे-छोटे झोंपड़े सड़क की ओर अपने छोटे-छोटे दरवाजो मे से भीतर का अंधेरा और घिचर-पिचर संसार लिए हुए उदासी दिखलाते रहते हैं। आदमी उनमें सीधा नही घ . . . . : घरो की बनावट फूस की छाजन मे एक गन्दे शरीर पर अनेक फोड़ों-सी मालूम देती है। सामने ही बाग-बगीचे से घिरी एक दुमंजिली इमारत है, जिसमें कोई डॉक्टर वर्षो से अपनी डॉक्टरी की गाड़ी एकबारगी ढकेलकर चला देने के प्रयत्न मे सुबह-शाम शायद अपनी झप वॉयलिन बजाकर बहा देने मे लगा रहता है। बगल मे सड़क एकदम ऊंची होती चली गई है, और उसके किनारे एक ताल है जो गर्मियों में बिलकुल सूख जाता है। जमीन चटख जाती है। बरसात में जब उसमें लबालब पानी भरकर झोंपड़ियों के दरवाजों तक कीचड़ कर देता है, संध्या का डूबता सूरज उसकी काली चिकनाहट पर कुछ झेंपता-झेंपता सा झिलमिलाकर सड़क की दूसरी तरफ डूब जाता है और झोंपड़ियों में रहनेवाले आदत पड़ जाने के बावजूद फिसलने से बाज नहीं आते।

धुआं सरेशाम झोंपड़ियों से उठता, बिलमाता, हवा में कांप उठता है। दूर से देखने पर लगता है जैसे बहुत से मलबे के ढेर मे आग लग गई हो और उसका धुआं रह-रहकर बाहर आ रहा हो। और उसके बाद अंधेरा छाने पर किसी के घर में दीया नहीं जलता, किसी के झोंपड़े में रोशनी का तकल्लुफ नहीं होता, सब चुपचाप जागते-सोते पड़े रहते हैं और एक अजीब सन्नाटा, एक सनसनाती नीरवता दूर-दूर तक अंधेरे से टकराती रहती है। कभी-कभी किसी बेसुरे रोनेवाले बच्चे की दहशतभरी आवाज उस खामोशी से लड़ती है, मगर स्टेशन से आती रेलों की सीटियां गूंजकर उसे डुबा ही नहीं देती, बल्कि फिर से उस भयानक चुप्पी को उघाड़ देती हैं जैसे महतर नालियों की काली कीचड़ की भयंकर सड़ान फेंककर गाड़ियों में चले जाते हैं।

दिन और रात, सुबह और शाम, रेल के खाली डिब्बों से वे आदमी, जो सदा इन्तजार करते हैं कि किसी तरह भर जायं, किसी तरह उनका भी तो कोई मोल लगे,

अपना जीवन बिताये जा रहे हैं। बिजली के लट्ठों पर अनेक तार आकर मिलते हैं, उन पर अनेक पक्षी बैठते हैं, मगर इधर चुंगी ने कोई बिजली का लट्टू नहीं लगवाया है, शायद यह सोचकर कि यहां के रहनेवालों की आंखें उस तीव्र प्रकाश को सह ही न पाएंगी। जब कभी आसमान में चांद निकलता है, चांदनी ताल के कालेपन पर पारे की तरह लहराती है, झोंपड़ों पर मटमैली झिलमिलाहट कांपा करती है; किन्तु भिखमंगे कभी उधर दृष्टि नहीं डालते, या स्पष्ट शब्दों में वे उसका सौन्दर्य समझ नहीं पाते।

और धूल के गुबार उठते ही रहते है, दांतों में किरकिराते है, क्योंकि सड़क पक्की नहीं है, वह भिखमंगों की बस्ती जो है।

आनन्दी ने कांछ खोंसकर जल्दी से कत्थई-सी साड़ी का पल्ला ओढ़ लिया और रोते हुए बच्चे पर बरसने लगी। बच्चा क्योंकि बच्चा था, रोता रहा। आनन्दी चिल्लाती रही और दोनों का हंगामा झोंपड़ी में घुटने लगा।

संध्या का नीरव उबा देनेवाला वातावरण आकाश में तड़प रहा था। चिड़ियां घर लौट रही थीं। बूढ़ी चम्पा ताल के किनारे बैठी हुकिया गुड़गुड़ा रही थी। वह धुआं छोड़ने से पहले बड़बड़ाती थी और धुआं घुटकर घुमड़ता था, खांसी आती थी, वह जो बुढ़ापा पेट में से खींचकर लाता है। आंखों से पानी निकल आता था। किन्तु वह फिर रुककर दम मारती थी, फिर खांसती थी, खखारती थी और बड़बड़ाती थी···

बालक का रोना उसके कानों में चुभने लगा। वह बड़बड़ाने लगी, "मरा, फिर कें-कें, कें-कें करने लगा। न जीने की फुरसत, न मरने का चैन, वही रीं-रीं···"

हुकिया की गुड़गुड़ ने बाकी की बड़बड़ाहट उसके कलेजे के भीतर एक खांसी में परिणत कर दी। बालक के पिटने का स्वर उसके रोने से भी अधिक बजने लगा। तब लाचार होकर बुढ़िया उठी और झोंपड़े के दरवाजे पर झुककर झांकने लगी। भीतर आनन्दी बैठी-बैठी अंगिया पहन रही थी और खरासा-खरासा गुरगुराती मौके-मौके से अपनी राय में बहुत बदतमीज लड़के को इनाम देती जा रही थी। उसे रह-रह-कर झुंझलाहट आ रही थी।

"मरा क्यों नहीं, मरे, सूअर, एक बार में जान तो बचे। नित-नित का बावेला तो बन्द हो, पापी! मगर तू तो मेरा खून पीने को जनमा है। तू क्या आसानी से मरेगा जो···"

चम्पा को फिर लाचार होकर कहना पड़ा, "आनन्दी, तेरा लाल है जो। जैसी गुठली वैसा आम। बिनौले धुनके सूत नहीं निकलता, रानी···"

और आनन्दी का सारा क्रोध किचकिचाकर बुढ़िया पर हुड़कने लगा। हाथों के शस्त्रों से बच्चे को संभालकर मुंह से उसने बुढ़िया से लोहा लेने की ठान ली। कुछ देर दोनों गुर्राती रहीं और बुढ़िया चिल्लाने लगी, "हाय-हाय, देखो इसे, दिनभर लाड़ला ले-ले डोली हूं, सौगन्ध है जो कभी इसे न खिलाकर खाया हो मैंने, मगर माई है कि रानी लच्छमी बाई···"

और आनन्दी कहती रही, "मेरे करम ही फूटे हैं, मेरी तरफ न देखा तुमने भगवान, दिन-दिनभर मील में हाड़तोड़ काम करती हूं। तीन मील जाती हूं, तीन मील आती हूं, मगर यह मौत में भी मीमन रावन नहीं छोड़ता मुझे। क्या करूं मेरे भगवान्…"

और वह रोने लगी। बूढ़ी अपने एक नेत्र मे देखती रही और फिर फूलेवाली आंख को आधा मीचकर, गाल बजाकर चीखने लगी, "हाय-हाय रे, कोई देखियो, ऐसा कलयुग आ गया है, तेरी रांड़ महतारी होती तो न सहेज के रखती तेरा सपूत खिलौना, मेरी छाती का सूखा दूध, न रहा अपना, नही तुझ-सी बगीची में भरती अपना पानी…"

और फिर सूझती-बेसूझती आंखों मे किनारों पर जमी पीली कीचड़ में सनता पानी टपकने लगा।

इसी समय कमीज और ऊंची धोती पहने रग्घू ने झुककर झोंपड़ी में प्रवेश किया। चम्पा चुपचाप लौट गई और वहां जा बैठी जहां सड़क पर बस्ती के बच्चे धूल में खेल रहे थे, हंस रहे थे। बच्चे उसे देखकर अजीब-अजीव नामों से पुकारने लगे और बुढ़िया फिर बडबडाने लगी।

रग्घू थका हुआ था। उसने एक बार आनन्दी को देखा, फिर बालक को, और वह चुपचाप खड़ा रहा। कुछ देर आनन्दी चिनचिनाती रही और रग्घू ने बालक को गोद में उठाकर झोंपडी के बाहर धूल में बैठाकर कहा, "खेलो बेटा!" बालक स्नेह पाकर भूल गया और घुटनों के बल सरकता उधर ही चल पड़ा, जिधर चम्पा बैठी थी।

आनन्दी फट पड़ी, "वह मेरा बच्चा है?"

रग्घू दिल्लगीबाज भी था। बोला, "और मेरा नही है!"

आनन्दी को रोकते-रोकते भी हंसी आ गई। वह अब उसके पास आ गई। रग्घू जमीन पर बिछे चिथड़ों पर लेट गया और आनन्दी उसके सहारे अधलेटी-सी पैर फैलाकर बैठ गई। दोनों एक-दूसरे को देखते रहे। आनन्दी ने कहा, "दिन-दिन उसे लिये घूमती है, और भीख पाने के लिए उसे दिनभर चिकोटी काटकर रुलाती है कि 'भूखा है मेरा बच्चा, भूखा है मेरा बच्चा!' और उसे वही आदत पड़ गई है। मरी, अपना होता तो क्या ऐसे छिन-छिन हाथ उठता। और कहती है, 'इसके मां-बाप मर चुके हैं भला…'"

रग्घू ठठाकर हंस पड़ा।

"अरी, यही तो तरकीबें है। न तो जाकर कहेगी, इसकी मां तेल मील में काम करती है, बाप कारखाने में मजूरी करता है, मैं इसे चिकोटी काटकर रुलाती हूं…"

और फिर वह बड़ी जोर से हंस पड़ा। आनन्दी ने हतोत्साह होकर वह तीर निकाला जिसे भिखारिन से लेकर रानी तक अपना अमोघ शस्त्र समझती है। उसने आंखों में आंख डालकर कहा, "मगर बच्चा मेरा है…ऐसे तो वह मर जायेगा…"

रग्घू चौंककर बोला, "मर जायेगा?" और जैसे उस पर कोई अनजानता दुख छा गया हो, कह उठा, "आनन्दी! तू कैसी बातें कर रही है? इधर तेरा क्या दिमाग कुछ

ठीक नहीं रहा ?"

आनन्दी चुपचाप निगाह नीची किये सुनती रही। रग्घू कहता रहा, "मैं नही मरा, तू नहीं मरी, जनम से ही तो दोनों देख रहे हैं एक दूसरे को, फिर एक यह अनोखा ही चल बसेगा। तीन-तीन, चार-चार दिन तक कुछ खाने को नही मिलता था, अब दो रोटी मिल जाती हैं तो···"

आनन्दी काटकर बोली, "तब भीख मांगते थे, अब मेहनत-मजूरी करते हैं। तब दूसरों की दया पर पलते थे, अब काम करते हैं। घर में रोटी रखकर कोई बच्चे को भूखा नही मारता। मैं अपने बच्चे को ऐसे नहीं ले जाने दूंगी।"

रग्घू पशोपेश में पड़ गया। उसने पूछा, "तो चम्पा का क्या होगा? बूढ़ी भूखी न मर जायेगी? बच्चे पर दया करके लोग इस महंगाई मे भी कुछ न कुछ दे ही देते हैं···"

आनन्दी एकदम बोल पड़ी, "आलू के कारखाने में क्यों नहीं काम करती? छः आने रोजीना मिलते हैं, छः आने। अब तो बस आटा मिलता है, बासी रोटियां मिलती हैं···"

और उसके नयनों में चित्र घूम गये। एक दिन ब्याह के बाद वह भीख मांगने गई थी। सुनार के बेटे ने मुस्कराकर कहा था —"अभी नहीं, संझा को अइयो।" और सोने के लालच में जब वह शाम को गई थी···

उसने कभी किसी से कुछ कहा नहीं था, रग्घू से भी नहीं। किन्तु उसके बाद ही उसने 'मील' में नौकरी कर ली, जहां वह बस्ती की पैंतीस औरतों के साथ टोली बनाकर जाती थी, टोली बनाकर लौटती थी। लोग उनकी एक-सी लांगदार कत्थई साड़ी, उनके भारी पोले कड़े और काम के वजन से डगमगाई लंगड़ी चाल को देखकर उन पर हंसते थे, किन्तु वे आपस में हंसती थीं, बाबुओं को दूर ही दूर से ललचाई आंखों से देखती थीं, बबुआइनों पर डाह करती थीं, काली-काली गन्दी बदबूदार···

चम्पा बालक को उठाकर कुढ़ती फिर झोंपड़े की तरफ आ रही थी। आनन्दी जोर से कह उठी, "चम्पाबाई को चाट लग गई है बजार की, कारखाने में जायेगी ही क्यों वह···जाय तो मिलें छः आने रोजीना, छः आने! ···"

चम्पा ने दरवाजे पर ही से सुना और वह कर्कश स्वर से चिल्ला उठी, "चाट लग गई है मुझे और मील के मर्दों में भी तो मैं ही जाती हूं। मेरे तो बाप ने यही किया, मां ने यही किया, मैं भी यही करती रही हूं और करती रहूंगी। मैं कोई बैल नहीं, गधा नहीं, सदा की रीति चली आई है। बस्ती मे अब नहीं वैसे आदमी जैसे पहले थे। दो पैसा क्या हाथ में आ गया है, घमण्ड करने चली है ठुमको!"

"गधा नहीं तो कुत्ता बनकर रह ना। क्या अच्छी बात कही है मेरी सास ने!" आनन्दी क्रोध से फुंकार उठी।

"तो बेटी, हम कुत्ता हैं तो तेरे बाप भी कुत्ता थे, और तेरी महतारी भी कुतिया थी···"

आनन्दी 'बाप कुत्ता थे' सुनकर तो चुप रही। मगर मां का कुतिया होना सुनकर

वह एकदम हाथ-पैर चलाकर दहाड़ने लगी, "रांड़ बजार-बजार डोले है। भगवान् ने एक बजार तो बैठा दिया है पापिन, दूसरे मे भी चैन नही लेने देती है।"

और हो गई···

रघू चुपचाप सुनता रहा।

दूसरे दिन सुबह आदत के मुताबिक आनन्दी ने ताल पर हाथ-मुंह धोए, उसी पानी मे कुल्ला किया, उसी में थूका और वही घड़े में भर, झोंपड़े मे रखकर रोटियां बांध, टोली मे जा मिली और सब लगे अंधेरे ही मील की ओर चल पड़ीं। रघू उठा और काम-धन्धे मे फारिग होकर कारखाने की ओर चल दिया और अन्त में चम्पा ने ही बालक को गोद में लिया और भीख मांगने निकल पड़ी।

करीब दो बजे जब चम्पाबाई भीख के आटे की रोटियां थापकर चूल्हे पर बैठी थी, बूढ़ा बैरागी रोज की तरह उसके सामने आ बैठा और बात चल पड़ी।

"मामा ! एक बात कहूं ?" चम्पा ने अपने सूखे चेहरे को उसकी तरफ फिराकर कहा। देखने मे लगता था जैसे फूलेवाली आंख मे वह ज्यादा देखती थी।

"क्या है, चम्पा ?" बूढ़े ने दो स्वरों में छोटा-सा वाक्य कहा।

"मैं कहूं, अपने बाप-दादा सदा से क्या करते आए है ?" उसने बात शुरू की।

"भगवान् की दया पर रहे है। और क्या ?" बूढ़े ने शंकित-सा उत्तर दिया।

"तो हम किसी के नौकर-मजूर तो नहीं।" बुढ़िया ने चूल्हे में फूक मारते हुए कहा।

बूढ़ा रोटी खाता हुआ बोला, "हर्गिज नही। अपना-अपना काम है। मगर हम किसी के नौकर नही हैं। जिसने दिया उसका भला, न दे, कल देगा। बिलकुल न देगा तो परमात्मा उसे ही न देगा। मगर हम किसी के चाकर नहीं है। मन करेगा, मांगने जाएंगे; न करेगा, अपने घर रहेंगे।"

एक घूट पानी पिया और फिर रोटी चबाने लगा। बैरागी के बाल सफेद थे। उसकी मूछें सफेद थीं, दाढ़ी सफेद थी, भौं भी सफेद थी। इसका बुढ़ापा एक शस्त्र था। बूढे का भीख मांगने का ढंग इतना लाजवाब था कि बस्ती के और लोग जब खाली लौटते थे, बूढ़ा तब भी कुछ-न-कुछ लेकर ही लौटता था। बूढ़े ने कभी अपने लिए बचाकर कुछ नहीं रखा। और बस्ती के सब लोग इसी से उसकी इज्जत करते थे।

बस्ती में लौट आने पर किसी को ध्यान नहीं रहता था कि वे भिखारी थे और भीख ही पर उनका जीवन चलता था।

चम्पा के मन को सन्तोष हुआ। उसने कहा, "मामा ! बस्ती में पहले क्या नही हुआ ? ब्याह नहीं हुआ कि बच्चे नहीं हुए ? बताओ भला कौन यहां अकेला रहा ? बीरा का बेटा अन्धा हो गया तो क्या हमने छोड़ा था ? हमने अकेले सुख कब लूटे ? चन्दा की बहनियां थी कि नही मंगनी, नहीं करा दिया था दोनों का ब्याह ? लंगड़ी थी तो क्या ? मामा ! जब अन्धा और लंगड़ी जाड़े के दिनों सुबह की ठंड में नंगे निकलते

थे तो किसने उन्हें कपड़ा नहीं दिया ? बस्ती के सब लोगों ने कपड़े पहने, यहां तक कि बेचने पड़े थे, इतने हो गए थे, है कहीं वह भाईचारा आज ? है कोई जो बस्ती के लिए उस कड़कती ठंड में जाकर गा-गाकर अपने आपके तन को ऐसा दुख दे ?"

बूढ़े के नयनों में तरलता छा गई। उसने कहा, "चम्पा ! मैंने ही तो मंगनी को गिड़गिड़ाने का तरीका सिखाया था, इसी ताल पर बैठकर। बीरा का बेटा क्या कुछ जानता था ? उसे वह चिल्ला-चिल्लाकर दुहाई देना किसने सिखाया था ? मैंने। वे दिन नहीं रहे चम्पा, अब वे दिन कहां रहे ?"

चम्पा कहने लगी, "मेरे सत्रह हुए मामा, सत्रह। मगर अपना एक भी नहीं बचा, मगर भीख मांगने जाते वक्त मैंने कभी अपने बच्चों को किसी के भी साथ जाने से रोका ?"

बूढ़े ने अधीर स्वर में कहा, "पहले हम एक दूसरे पर भरोसा करते थे, अब तो नही करते ? मैंने तो पहले कहा था कि लड़कों को नौकरी करने भेजा नहीं कि बस्ती में फिर सुख नही बसेगा। और तुमने देख ही लिया।"

बूढ़ा रोटी खाता रहा हाथ पर धरकर और चम्पा सेंकती रही वे मोटी-मोटी रोटियां।

चम्पा की हालत दिन पर दिन गिरती गई। खेरीज मिलना कठिन हो गया। वह लोगों से मांगती, और लोग हंसकर जेब ढूढते और कहते --'पैसा कहां है ? खेरीज मिलती है कहीं ?' कोई-कोई मजाकिया नोट दिखाकर कहता --'माना कि महंगाई की वजह से एक पैसे की बजाय दो पैसे पाने का तेरा हक हो गया है, क्योंकि महंगाई-भत्ता सभी को मिल रहा है, लेकिन साढ़े पन्द्रह आने दे जा, नोट ले जा।' बूढ़ी देखती। कुछ भी नहीं समझ पाती। उसने इन बातों को कभी अपना अपमान नहीं समझा; क्योंकि उसकी बस्ती में पैसेवाले का तो अपमान करना, ठोकर मारना अधिकार समझा जाता था। जैसे रियासतों के राजा अंग्रेजों के सामने नाक रगड़कर भी आपस के लोगों में रोब जमाने से बाज नहीं आते। उसे यदि कोई बात नहीं आती थी तो यही कि लोग उससे मजाक करते थे और मजाक भी ऐसे जो केवल शब्द बनकर नही रह जाते, उसको एक ठोस नुकसान ही उसका फल दिखाई देता है।

घर-घर की औरतें काटने को दौड़ती और कांय-कांय करतीं --'धरा है तेरे लिए यहां ! मिलता है कहीं गेहूं ?' और औरतों की यह बात फौरन उसके दिमाग में ठक करके चोट करती, किन्तु आदत के मुताबिक वह बालक को छज्जे पर बैठाकर रोने लगती, 'ऐ माई, तेरे घर मे सोना बरसे। ऐ माई, तेरे लाल गद्दी पै चढ़ें। देख, मेरा भूखा बच्चा···'

और बच्चा यद्यपि ढेर का ढेर खाता था, कभी उसकी हड्डी पर मांस नही चढ़ा। मक्खियां उसके गन्दे मुह पर भिनभिनाती रहती और तभी बुढ़िया इशारे से उसे चिकोटी काटती, वह मेंऽऽऽ करके रो देता। उस समय उसको देखकर सबके दिल में दया हो

आती, कोई कुछ दे भी देता, नहीं तो अक्सर वही रूखा जवाब उसको निराश कर देता और एक अज्ञात भय उसके हृदय में हाहाकार कर उठता। वह बालक को एकदम उठा लेती और प्यार से पुचकारती, 'मेरे लाल! मेरे राजा! तुझे पूरी दूंगी, माई रोटी देंगी।' और बालक यह बढ़िया-बढ़िया नाम, जिनका उन्हीं चीजों से सम्बन्ध उसने डाक्टर की शादी की मुफ्त दावत में हाल में जानकर याद कर लिया था, सुनकर चुप हो जाता; बुढ़िया के फूलेवाले नेत्र की भीषण निःस्तब्धता पर निगाह डालकर एकाध बार नाक से बहते पानी को ऊपर खींचता और फिर उसके कन्धे पर सिर टेक देता।

लाचार होकर बुढ़िया अनाज की दुकानों पर जाने लगी। वहां वह घंटों बैठी रहती। क्योंकि उसकी कोई आमदनी नहीं थी, उसे कोई राशनकार्ड नहीं मिला था। अनेक औरतें झुण्ड-के-झुण्ड बनाकर बैठती, लड़ती; जवान औरतें आपस में मजाक करतीं और मर्दों की सिरफोड़ भीड़ में एकाध गलती से घुसी औरत की चर्चा करतीं कि कैसे उसे गुण्डों ने भिच्ची में ले लिया, छाती पर हाथ डाल दिया, औरत ने गाली दी, बड़े झगड़े में छोटा झगड़ा खड़ा हो गया...

बनिया सिविल गार्डों से कुछ इशारे करता। वार्डन चिल्लाते —'हो गया सब। आज का माल बंट गया।' बनिया आखिरी बार डंडी मारकर कहता—'चलो, उठाओ, बढ़ो-बढ़ो...'

दूना शोर मचता, कभी-कभी मार-पीट हो जाती। बुढ़िया देखती रहती। वह कभी आनन्दी का दूसरों का—बच्चा लेकर उस भीड़ में नहीं घुसती। एक दिन उसने देखा था, एक जवान औरत उस भीड़ में ऐसी कुचल गई थी कि उसका बच्चा पेट के भीतर ही मर गया था...

दूसरी तरफ आनन्दी का सितारा धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रहा था। जब 'सील' में फूलकुमारी और गुलाब आपस में बतराती तो यही शिकायत करती कि पहले महंगाई न थी, न सही, मगर चीजें कितनी सस्ती थीं। पहले दस सेर-ग्यारह सेर का गेहूं था, सोलह सेर का चना था और अब ढाई सेर का गेहूं और साढ़े चार सेर का चना! राम-राम! कोई हद है! अब तो गेहूं के दाम सोने के दाम हैं।

गुलाब जवानी में झुर्री पड़े अपने गालों पर हाथ रखकर जवाब देती, 'मेरी मौत, मिठाई के दाम मिट्टी बिक रही है भौजी, मिठाई के दाम!

आनन्दी सुनती, मन में अचरज करती, ऊपर सिर हिलाती। पहले के जीवन में न मिठाई का नाम उठता था, न सोने का। अब कम-से-कम नाम तो आया। हाथ-पैर में गहने हैं 'इरी' के, 'रांग' के, दूर से जरूर चांदी के लगते होंगे, और हर स्त्री के इस प्राकृतिक विचार से कि वह 'बुरी नहीं है', बल्कि 'अच्छी है' वह भी मन-ही-मन सोचती और चांदी में क्या बात है ऐसी! बदन-बदन का भी तो फर्क होता है कुछ।

'सील' में गेहूं सस्ता मिलने लगा। आनन्दी की बाछें खिल गई। उस दिन बस्ती की सब औरतों ने गीत गाया था। चांदनी में ताल के किनारे खूब अच्छी रही थी। हंसियों से, किलकारियों से सारे जवान पुलक उठे थे। इधर कुछ दिन से हुक्म हुआ था

कि मिट्टी का तेल भी मिल जाया करेगा। आनन्दी ने इस विचार पर कोई प्रसन्नता प्रकट नहीं की। क्या होगा मिट्टी के तेल का ? कौन रोज-रोज वह ब्या रही है कि जच्चा को दीया चाहिए ही चाहिए। मरे-सांझ चूल्हा-चौका किया, पौढ़ रहे। एक बात पर उसे अचरज हुआ। उससे कहा गया कि घर में कौन चीज कहां रखी है, उसे क्या अंधेरे में कोई ढूढ़ सकता है? उसे अपनी झोंपड़ी की एक-एक चीज याद थी। कोने में मटके हैं, एक तरफ टूटी, नही साबुन भी, नही जैसी एक चिथड़ों से लदी खाट है। उस पर उसका मरद सोता है। वही रग्घू, जो तीन बार हंसता है तो एक बार बात करता है और नीचे एक फटी चटाई पर जो चिथड़े पड़े हैं, उन पर कम्बल ओढ़कर वह स्वयं सोती है अपना कलमुहा लेकर। उसे समझ नहीं पड़ता कि सुबह 'भील' जाते वक्त उसकी बस्ती की लुगाइयां और वह स्वयं जब कांख में हाथ दाबे सुरसुराती तेज-तेज लंगड़ाती ठुलकी चाल में बिना कपड़े लादे पहुंच सकती हैं तो इतने कपड़ों का लोग करते क्या हैं? वैसे देखने को जरूर अच्छे लगते हैं। मगर मिट्टी का तेल मिलने पर फूलकुमारी और गुलाब ने जो हर्ष दिखाया था, आनन्दी को तनिक भी न हुआ और वह चुपचाप सुनती रही। कौन नहीं जानता कि लड़ाई हो रही है। कभी-कभी फूलकुमारी आकर बहुत बातें बनाती है कि अब जर्मन हारें चाहे जीते, मगर लड़ाई बन्द नहीं होगी, तो उसने मुसकराकर कहा—'तो क्या बन्द भी होगी ?' और अनेक स्त्रियों ने ठहाका लगाया था। मेट चिल्लाकर बोला था—'तुम्हारा बाप है न जर्मन ! खबरदार जो यहां चुहल की ! काम नहीं किया जाता, ठूंस-ठूंस के खाना भीतर कर लेना आता है···' और वे सब काम में लग गई थीं। लड़ाई गोया खत्म हो गई थी और हो रही है तो हमसे क्या मतलब···

रग्घू मनवाले की बान थी कि पहले हंस देना, चाहे खुशी हुई हो चाहे गमी; और बाद में चुप होकर समझने की कोशिश करना। समझ में आ गई तो ठीक और चुप रहना और न आई समझ मे तो दो-चार गोते खाना और सिर हिलाकर फिर बड़े खुश। उसका बाप भी ऐसा ही कहा जाता था। जब रग्घू ने पुश्तैनी पेशा भीख मांगना छोड़कर पहले नौकरी करना शुरू किया, तब बस्ती के कुछ लोग नाराज हुए थे। तब सामने की दुमंजिली कोठी में डॉक्टर नहीं थे, एक तहसीलदार रहते थे। उनके नौकरों के साथ उठते-बैठते, बार-बार भिखारियों को गाली खाते देखकर उसने नौकरी करने का निश्चय किया। रग्घू तब सत्रह वर्ष का था और तहसीलदार साहब की लड़की बाईस साल के लगभग थी—गोरी-गोरी, चिकनी-चिकनी; पढ़ती थी तो रात के दो बजे तक और गाती थी तो झूम-झूमकर, हंसती थी तो रग्घू देखना का देखता रह जाता था। जैसे वह एक परी थी जो रग्घू कभी नहीं छू सकता। वह कूल्हे उचकाकर चलती थी और पीछे से गजब की लगती थी, जैसे रग्घू नहीं जानता वह क्या कहे, वह बहुत अच्छी जरूर थी। उसी ने एक दिन कहा था—'हाथ-पैर रखकर भीख मांगते हो ? शर्म नहीं आती ? मेहनत-मजदूरी करके खाओ, आदमी बनो, आदमी !' रग्घू ने उसी दिन से भीख मांगना छोड़ दिया और नौकरी की तलाश में लग गया। उसके बाप को लोगों ने समझाया। पहले तो वह

कुछ नहीं समझा और बड़ा खुश रहा, जब समझा तो चुप हो रहा, और अपने ही बाप के इस बेटे ने बाप के ही चरणों पर अनजान में पैर रखा।

रंग के काले, कुछ ऊंचे, दिलदार, हर चीज में दिलचस्पी लेनेवाले इस व्यक्ति को बहुत-सी बातें घेर लेनी थी और उनसे लड़कर रास्ता निकाल ले जाना उसके लिए एक कठिन-सा काम था।

जिस कारखाने में वह काम करता था उससे कुछ ही दूर उत्तर की तरफ सड़क के चौराहे पर दो गोरे फौजी, सिपाही की जगह खड़े दिखाई दिए। उनके चारों तरफ एक भीड़ इकट्ठी थी। रग्घू ने पूछा—"यह लोग कौन हैं?"

किसी ने कहा—"गोरे।" मगर किसी ज्यादा समझदार ने कहा—"अमेरिकन।"

"अमेरिकन!" रग्घू हंसा। बोला—"यह कौन?"

उत्तर मिला—"जैसे अंग्रेज विलायत के, वैसे अमेरिका के अमेरिकन।"

रग्घू समझ गया। लिहाजा चुप हो रहा। अमेरिकन सिपाही नए आए थे। उन्हें अभी हिन्दुस्तान को हिकारत से देखने या सीखने का समय नहीं मिला था। वे अभी इसी ताज्जुब में थे कि यहां तो सड़कों पर चीते और सांप नहीं घूमते। बाबू लोग आपस में देखकर उन्हें मजाक करते कि "अमेरिका जाकर क्या कहेंगे? सात समन्दर पार जाकर भी चौराहे के सिपाही ही हुए। तो यार, यह अमेरिका में तो बहुत जबर्दस्त कबाड़िए होंगे।"

"और क्या?" दूसरे बाबू ने कहा, "ऐसे ही मजदूर-वजदूर हैं ये लोग वहां के।"

रग्घू की दिलचस्पी बढ़ गई थी, यह सुनकर कि मजदूरों के ये ठाठ भी हो सकते हैं। उसने आंख फाड़कर देखा—बेहतरीन कपड़े, पीने को सिगरेट और हाथ में चांदी की घड़ी।

उस दिन-भर उसके दिल में एक अजीब-सी उलझन रही। वह कहता, "वाह री लड़ाई! तूने भी बड़ी-बड़ी रंगत दिखाई!" और शाम को जब वह लौटता, सड़क पर धुआं घटा-सा छा जाता। एक के बाद एक सैकड़ों बड़े-बड़े रोशनी की जंजीरों से बंधे-से चले जाते। रग्घू जब थका-मांदा झोपड़ी में घुसता, आनन्दी आंख मटकाकर देखती, फड़कती, लजाती और रग्घू कुछ न समझकर भी सब कुछ समझता हुआ-सा कहता—"कहो आनन्दी! आज कैसी रही?"

आनन्दी ने साड़ी को समेटकर कांछ मारते हुए कहा, "आओ, रोटी सेंक लूं।" रग्घू ताल पर जाकर हाथ-मुंह धो आया। सांझ का वक्त था। गाएं लौट रही थीं। उनके पैरों से उठी धूल झोंपड़ियों पर बरस रही थी और गधों के लौटने से रास्ता बिलकुल धूमिल हो गया था। उसके पीछे वह डूबता सूरज था और झोपड़ियों में से संध्या की रोटी पकने का धुआं धूल में मिलकर एक दमघोट वातावरण तैयार कर रहा था। ताल पर उजाला था, लेकिन डरा-डरा कांप रहा था। शायद उसे काले पानी की स्तब्ध पर्त्त पर फिसल जाने का डर था।

आनन्दी और रग्घू खाना खाकर लेट रहे। रग्घू ने खटिया पर कम्बल ओढ़ते हुए

पूछा, "आनन्दी ! आज लल्ला कहां गया ? चम्पा नहीं लौटी ?"

आनन्दी ने सुना-अनसुना करके कहा, "मरा उसी से हिल गया है । आज वहीं सो रहा है उसके पास ।"

"ओह !" रघू हंसा और आनन्दी को पास खड़ा देखकर उसका हाथ पकड़ उसे खाट पर बिठा लिया और उसे देखकर हंस उठा। आनन्दी अपने मरद के हंसने का मतलब खूब जानती थी। उसने एकाएक कहा, "तुम्हारा कारखाना कब तक चलेगा ?"

"लड़ाई-लड़ाई ।"

"और उसके बाद ?"

इस बात को रघू भी न सोच सका। उसने कहा, "मामा कहते थे, पहली लड़ाई के बाद बहुत आदमी बेकार हुए थे, बहुत गरीब हो गए थे। पता नहीं क्या होगा ?"

आनन्दी ने निस्संकोच पूछा, "कारखाने बन्द हो गए तो सेठ क्या खाएंगे ?"

इस प्रश्न को सुनकर रघू को पहले तो दिल्लगी सूझी, मगर उसने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "सेठ अपनी सेठगिरी करेगा। कमाऊ बाप मरे से बेटा भूखा मरता है, कि बेटा मरे से कमाऊ बाप ? सेठ को क्या कमी है ? सेठ मोटर में डोलेगा, उसके द्वार वन्दनवार बंधेगी, बन्दूक लिए दरबान रहेगा। यह भी कोई सेठ को अपना जैसा समझ रखा है ?"

आनन्दी ने सोचते हुए कहा, "और हम क्या करेंगे ?"

"हम वही करेंगे जो बाप-दादा ने किया ।"

"तो क्या फिर भीख मांगनी पड़ेगी ?" आनन्दी का हृदय कुम्हला गया। वह कांप उठी।

दोनों देर तक चुप रहे। सुराखों से आती धुंधली रोशनी को किसी ने मिटाकर भीतर स्याह अंधियारा कर दिया था। सहसा रघू बोल उठा, "आनन्दी, जिसने पैदा किया है, वही देता है। आज मजूरी है, कल भीख थी। जीने के लिए तो सभी कुछ करना पड़ेगा। मगर मन नहीं करता कि फिर भीख मांगू। तू कहे तो फौज में चला जाऊं। आज रंगरूटों की भर्ती हो रही थी। कल ही ले, अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा, अच्छी तनख्वाह···"

आनन्दी कांप उठी। उसने उसके मुंह पर हाथ रख दिया और सिसकते स्वर में रिरियाने लगी, "कैसी बात करते हो तुम? नहीं जाने दूंगी मैं। किसके सहारे जीऊंगी? क्या होगा मेरे लाल का ?"

रघू ठठाकर हंस पड़ा। वह बोला, "यह भी खूब रही कि मैं रांड हो जाऊंगी तो तुम क्या रोने आओगे ? अच्छा बाबा, न जाऊंगा। बस !" अन्तिम शब्द में एक प्रार्थना थी, एक विराम था, एक प्रश्न था, और थी एक सांत्वना। आनन्दी पुलकित हो उठी और रघू ने उसे अपना कम्बल उढ़ा दिया···

रात बहुत छोटी साबित हुई।

जब दिन के अन्त में अजीब स्वर से गानेवाला रामू और नत्था शाम को शराब पीकर लड़ने लगे, पूरी की पूरी बस्ती इकट्ठी हो गई। औरतें कर्कश कोलाहल करने लगीं और बूढ़ियों को गालियां सुनाने का खासा मौका मिल गया। बच्चे कभी चिल्लाते, कभी एक दूसरे के पीछे दौड़ते, कभी कोई बड़ा लड़का छोटी सी किसी लड़की को पीट-कर तू-तू, मैं-मैं की नकल उतारता या किसी बैठे बूढ़े से जा टकराता और फिर मर्दानी वजनी गालियां खाता।

ऐसे मौके बस्ती में बहुत कम उठते, जब सब मिलकर बात करते या शोर करते। जन्म होना तो एक मामूली बात थी। हां, शादी होने पर जरूर एक पिटपिटी दिन-रात बिना मुहूर्त का ध्यान किए आपस के ही बच्चे बजा लेते। बाराती आकर सड़क पर सोते और औरतें घरों की दूसरी तरफ के खुले में सोतीं। जवान-जवान ब्याहता नए-नए जोश में छिपकर मिलते और आगे चलकर ब्याह का तांता लगाए रखने की कोशिश में लगे रहते। सड़क पर ही दावत होती। उस दिन पत्तलें बिछतीं और पूरियां उतरतीं और राह चलते कहते, "देखो सालों को! भीख मांग-मांग कर घी की उतारते हैं। देखा? भला कोई कहे कि कहां से आया इतना माल?"

बूढ़े भिखारी सुनते तो हाथ जोड़कर कहते, "बाबू, आपकी दया पर चल रही है यह गाड़ी। हमारा अपना क्या है? आपके टुकड़ों पर पलते हैं, जूठन पर···"

और वह बस्ती के और लोगों की तरफ देखकर मुसकराता, जैसे यह भी उसकी विजय का द्योतक था कि बाबू भी अचरज में पड़ गए।

नत्था और रामू का यह द्वन्द्व थोड़ी देर के बाद थम गया। दोनों नशे में थे और ललचाई नजरों से सड़क पर चलती बबुआइनों को ताकते रहे। किसी ने भी इनकी तरफ नहीं देखा, जैसे वे सड़क के किनारे पड़े पत्थर थे या धूल, और वे जब पलटे तो देखा कि बिंदिया मुस्कराई थी और आग ले जाते में बिदककर पीछे भाई मार गई थी। दोनों तय नहीं कर पाए कि वह किस पर लट्टू हुई है और चूंकि शराब के नशे में एक बादशाहत का जोर होता है, वे आपस में भिड़ गए और जब नशा उतर चला, वे दूर होने लगे। मुंह से तीर चलते तो अब भी थे, मगर छोटे, उतनी दूर न चोट करनेवाले, न उनकी धार ही इतनी तेज थी।

इसी बीच रघू को हाथ का इशारा करके सामने की कोठी के डॉक्टर ने अपने पास बुलाया। रघू सकपकाता-सा उसके सामने जा खड़ा हुआ। डॉक्टर एक सफेद कमीज, सफेद जर्सी और रेहिया रंग की पतलून पहने था। उसकी तुलना में रघू ने देखा वह धूल से भरा था, मैला था, गन्दा था, और डॉक्टर जैसे जान-जानकर उसकी बदबू पर नाक सिकोड़ रहा था। डॉक्टर असल में एक सीधा-सादा आदमी था और इसीलिए डॉक्टरी चलाना उसके लिए मुश्किल था। कभी-कभी वह बस्तीवालों के बुलाने पर मुफ्त कोई रोगी देख जाता था या अपने घर बुलवाकर देख लेता था और उसकी बीवी, एक ठिगनी-सी सफेद रंग की औरत, एक रायबहादुर की लड़की थी। उसी की हिम्मत थी कि घर का काम चलाए जा रही थी और डॉक्टर ही का दिल था

कि उससे निभाए चला जा रहा था। डॉक्टर के कुछ कहने के पहले नेपथ्य में से ही बोलती उसकी बीवी ने प्रवेश किया और अपनी चुस्त पेशानी को उठाकर रग्घू से कहा, "क्योंजी तुम्हें, मील में तेल मिलता है ?"

स्वर मिठास से भरा था, कोमल।

रग्घू ने कहा, "जी बीबीजी, मैं तो नहीं जानता, मेरे घर में बता सकेगी, उसे बुला दू ?" और सामने खड़े नन्दू-जैसे ऊधमी लड़के पर निगाह गई। नन्दू दौड़ा-दौड़ा गया और बोला, "भाभी ! चल जल्दी, तेरे भैया ने बुलाया है।"

"मेरे भैया ?" वह एकाएक चौंक उठी।

"अरे नही, तेरे नही, मेरे भैया ने; मगर जल्दी चल। तोतापरी में बात हो रही है आज।"

आनन्दी जब आई तो वह हंस रही थी। उसकी गठीली देह इस समय फुर्ती से भरी लगती थी। और जवान औरत चाहे कितनी भी सीधी हो, अगर कोई उसकी ओर देखे, इसका उसे ज्ञान हो जाय तो फौरन उसकी चाल बदल जाती है। दांत उसके दीखते रहे। वह बीबीजी की तरफ खडी हुई। बीबीजी साफ थीं, धुली-पुछी थीं, कहीं-कही रंगी-पुती थीं। आनन्दी मैली, गन्दी और इनकी निकटता में उसमें से आती बदबू भी साफ हो गई।

बीबीजी ने कहा, "तुम मिल में काम करने जाती हो ?"

आनन्दी ने हाथ बांधकर कहा, "हा जी !"

"तो देखो !" डॉक्टर ने कहना शुरू किया, मगर वह कह न सका, क्योंकि वह इसे घमंड से भरी बात समझता था, किन्तु इन्हीं कामों को संभालने के लिए औरत जो थी, वह बोल उठी, "तुम्हें मिट्टी का तेल मिलता है। तुम लोग जलाते नही हो। कौन है जो तुम्हारे यहां पढ़ाई-लिखाई का काम करे ? हमें रात को जरूरत पड़ती है। मिलता नहीं है कहीं और बाजार में दूकानदार परेशान करते है, अब आओ, कल आओ। आज-कल नौकरों की अजब तकलीफ है। सब कारखानों में, सी० ओ० डी० में मजदूर हो गए हैं। एक है अपना, उसे कहां-कहां भेजा जाय। तो तुम ला दिया करोगी मिट्टी का तेल ?"

बात मामूली थी। घमण्ड की कोई झलक न थी। जो बात थी वह साफ कह दी गई थी। रग्घू ने बुरा नहीं माना, आनन्दी के सामने एक नया जरिया खुला। बड़े आदमी है, उन्ही की सब बात है। पढ़ाई है, लिखाई है और अपने अनेक काम हैं।

आनन्दी को चुप देखकर उस समझदार औरत ने कहा, "तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए। अरे भई, इतनी दूर से लाओगी कुछ, तो हम यही कोशिश करेंगे कि तुम्हें भी कुछ-न-कुछ फायदा ही हो। एक दूसरे की मदद करने के लिए ही पड़ोस होता है।"

आनन्दी ने झेंपते हुए स्वीकार कर लिया और बीबीजी ने गर्व से अपने पति की ओर हिकारत-भरी मुस्कान मारी और फिर आनन्दी से मुड़कर कहा, "तो कल ले

आओगी न ?"

आनन्दी ने कहा, "मगर एक से आपका क्या काम चलेगा, बीबीजी ? आप कहें तो हम चार-पांच जन अपना-अपना कारड आपके लिए काम में ले आएं ?"

"अरे, तब तो बहुत ही अच्छा है। इसमें तो घर बैठे हमारा काम चल जाएगा। अच्छा तो तय रही। जाओ, कल से ले आना।"

आनन्दी जब पैसों के बारे में सोच रही थी, रग्घू मन-ही-मन डॉक्टर और उसकी बीवी की जोड़ी मिला रहा था। बात खत्म हो गई और साथ ही खत्म हो गई उनकी वह आशा भी कि चलने से पहले बीबीजी फिर उनसे कुछ बोलेंगी।

झोंपड़े में पहुंचकर आनन्दी ने निर्लज्ज भाव से रग्घू को कसकर पकड़ लिया और कह उठी, "अब तो मेरा बालक मुझे दिला दो। क्या तेल के दाम से चम्पाबाई का भीख मांगना नहीं छुड़ाया जा सकता ? भील के और मजदूर-मजदूरनियां हमें हिकारत की नजर से देखते हैं। कोई न कोई पीछे से कह भी देता है—'भिखारी हैं ये, आज टुकड़े मिल रहे हैं, इससे आ गए हैं, मगर इनके घर में अब भी भिखारी-पेशा है।' क्यों मैं कहती हूं ...यह नहीं हो सकता ?"

रग्घू ने देखा, वह प्रसन्न थी। उसकी आंखें चमक रही थीं। अन्धकार के धूमिल आवरण में, वासना के कुहरे से जब रूप छिप जाता है, तब पुरुष और स्त्री-मात्र होने की आवश्यकता होती है। रग्घू ने उसके हृदय की अपार प्रसन्नता को तोड़ना ठीक नहीं समझा। अब यदि वह पूछ ले कि तेल जब सबको मिलेगा तब ? कितनी अनबूझ है यह अभी तक, जैसे बिलकुल लड़की; पुरुष अधिकारी है, स्वामी है, किन्तु नारी भी एक क्षण तो उसे दास ही बना लेती है। रग्घू के नेत्रों से रस झलक मारने लगा। लजाकर कोने में हो गई आनन्दी और कह उठी, "नहीं, नहीं, अब नहीं!" उसने गर्व से अपना पेट देखा और फिर प्यार से, स्नेह और जाने किस-किस से देखा रग्घू को जो अन्धकार की पृष्ठभूमि पर लगता था, जैसे यहां अंधेरा ठोस हो गया हो, बोल उठा हो।

कड़कती सर्दियों का बल देखकर हाड़-मांस का पुतला आदमी थर्रा उठा। कुत्ते भी अब रात-बिरात बेवकूफी से ख्वाहमख्वाह नहीं भौंकते। मजदूर-मजदूरिनें काम पर जाने से पहले सूखे पत्ते और पेड़ों पर से तोड़ी लकड़ियों को जलाकर तापते और तब कोई काम करते। बड़े-बड़े कुनबे कपड़ों की कमी के कारण एक साथ चिपटकर सो रहते। बूढ़े बैरागी के तन पर यद्यपि चिथड़ों से अधिक कुछ नहीं चढ़ा था, किन्तु सिर पर एक तिकोना टोपा अवश्य आ गया था, जिसके कारण वह स्वयं भिखारियों को ही दयनीय लगता था। सामने की कोठी में जब मेहतर सुबह आंच जलाकर तापते, धुआं लगकर आंखों से पानी निकल आने पर कपड़ा रख लेते और तामचीनी के नीले बर्तनों में चाय पीते, मजदूरिनों की टोली चल पड़ती मिल की ओर; सड़क पर लड़ाई के काम करने वाले बाबू जरूर साइकिलों पर कटोरदान लटकाए जाते। मिलते मोटे-मोटे लाला, जो तोंद छांटने पर आमादा रहते, सुबह-सुबह एक-दूसरे से भाव पूछते, कल जो माल बाजार

से इधर का उधर कर दिया उसकी डींग हांकते, या बतलाते कि कैसे दारोगा ने उन्हें घेर तो लिया, मगर इन्होंने उसे वह आड़े हाथों लिया कि रिश्वत के जोर से मुंह बन्द कर दिया।

डॉक्टर सुबह-सुबह वायलिन बजाता और झूमता। शीशे की खिडकियों में से रोशनी में दीखता वह कैसे-कैसे गर्म कपड़े पहनता था।

आनन्दी का पेट बढ़ने लगा था। वह थक जाती थी और भूख उसे कभी-कभी यदि बहुत लगती तो कभी मन मिचलाने लगता। परसों उसे बड़े जोर से, दोपहर की खाना खाने की छुट्टी में, कै हो गई। टोली के साथ कदम रखकर चलने में भी वह हांफ जाती। रघ्घू कहता, 'दो-चार दिन काम पर न जाय तो क्या कुछ हरज है?' वह सशंक नेत्रों से कहती, 'मेट ने कहा है, वह दिन पूरे होने पर छुट्टी दिला देगा। अभी मैं न जाऊंगी तो बरखास्त कर देंगे मुझे।' और वह थककर बिस्तर पर पड़ रहती। कभी-कभी चम्पाबाई ही आकर रोटी सेंकती और बच्चे से तो अब आनन्दी का कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा था। हर मा जब गर्भवती होती है, मतलब समाज के कायदों के मुताबिक, तब उसे अपने अन्य बच्चों से इतना स्नेह नहीं रहता, जितना पेट के भीतरवाले से।

उस दिन रघ्घू ने आकर बताया कि उसका कारखाना अब इस जगह से हट उस जगह हो जाएगा। ज्यादा जगह में बनेगा अबकी। लड़ाई बढ़ गई है। सरकार की जीत हो रही है। आनन्दी ने उसे सुनकर कहा, "तब तो लड़ाई अभी चलेगी।"

शाम के समय एक दिन कुछ बाबुओं के लड़के, जो झकाझक नहीं, मामूली कपड़े पहने थे, आकर उधर बोलने लगे। उनके हाथों में तस्वीरें थीं। कोई आदमी मरा पड़ा है कोई औरत हड्डी-हड्डी दीख रही है। कहीं लाशों को कुत्ते खा रहे हैं, कहीं ढेर के ढेर मरे पड़े हैं।

बाहर बाबू कुछ कहते रहे। आनन्दी ने जब भीतर चटाई पर पड़े-पड़े कुछ शोर-गुल सुना तो दरवाजे पर आ गई। बाहर देखा। बस्ती के लोग उन्हें घेरकर तस्वीरें देख रहे थे, बात सुन रहे थे और सबके चेहरे गमगीन थे। आनन्दी भी धीरे-धीरे वहीं जा खड़ी हुई। तस्वीरें देखकर उसका दिल कांप उठा।

बच्चे शोर कर रहे थे, ऊधम मचा रहे थे, अन्त में बाबू ने कुछ कहा। आनन्दी ने इतना ही समझा कि जगह-जगह अकाल पड़ रहा है। मांएं बच्चों को बेच रही हैं, मजदूर भूखे मर रहे हैं, गांधी बाबा जेल में हैं, और आज नहीं तो कल शायद हमारी भी यही हालत हो जाय। इसलिए गरीबों की पूरी मदद करनी चाहिए। रघ्घू चुपचाप खड़ा रहा। आनन्दी ने देखा। उसका दिल दहशत से भर गया। बड़े-बड़े घर के आज भीख मांगते हैं···हम भी कल ऐसे ही हो जाएंगे? वह कांप उठी।

किनारे ही खड़ी होने के कारण उसने सुना, एक राह चलता सरकारी चपरासी दूसरे से कह रहा था, "क्या अकल है इन लौंडों की! इन भिखारियों की बस्ती में चंदा इकट्ठा करने आए हैं, जाते किसी सेठ के यहां?"

आनन्दी ने सुना और उसका हृदय विक्षोभ से भर गया। उसने देखा, टोली की

एक मजदूरिन ने आगे बढ़कर उन्हें कुछ दिया। टेंट में से दुअन्नी निकालकर दो कदम बढ़ी, तभी ख्याल आया, फूलकुमारी ने भी कहा था कि कहीं अकाल पड़ रहा है। लोग मर रहे हैं। मजदूरों में बहुतों ने कुछ पैसे भी दिए थे, वहां मिल के पास बसनेवालों ने। उन्होंने कहा था कि मजदूर भूखे मर रहे हैं।

इस विचार का तार तड़पता हुआ आया और उसे गर्म-सा करता निकल गया।

भिखारी सुन-सुनकर अब लौट रहे थे झोंपड़ों की ओर, यह कहकर कि "बाबू, यहां तो हम भिखारी हैं, हमारे पास क्या है बाबू? आप देंगे तो हम पलेंगे।" बाबू सुन-सुनकर कुछ परेशान हो रहे थे कि आदमी इतना परवश भी हो सकता है! यह तो ठीक ही है कि और कोई चारा न होने से आदमी गरीबी में भीख ही मांगता है···

और भीड़ की आड़ में से ही देख आनन्दी फिर हिचक गई। ठिठक गए पैर! दुअन्नी! फिर विचार आया, और सौदामिनी ने ही कौन मोती दिए होंगे! बढ़ ही गई और डाल दी झोली में दुअन्नी। सामने खड़े लड़के ने पूछा,, "तुम कौन हो, माई? क्या काम है तुम लोगों का?"

क्या काम है ऐसा जो वह बताए? संकोच हुआ। सोचा शायद गरीबी का मखौल कर रहा है, किन्तु फिर कहा —"मजूर हैं हम। मजदूरी करते हैं।" और कहते हुए उसका सिर उठ गया जैसे वह बिलकुल शर्मिन्दा न थी।

लड़के जाने क्या-क्या नारे लगाकर चले गए, "नेताओं को छोड़ दो।" कहां किसका कैसे राज हो; क्यों छोड़ दें, कुछ नहीं समझी वह। देखती रही चुपचाप।

जब शाम का उजाला अंधेरे में बिलमा गया, उसने रग्घू की ओर नए गर्व से देखा, जिस दृष्टि में सन्तोष था कि आज भीख देकर मैंने अपने पहले भिखारी होने के पाप को मिटा दिया। अब हम अपने बूते पर खाते हैं। दूसरों की कृपा पर नहीं पलते। किन्तु रग्घू चिन्तित था। परेशानियां बढ़ती जा रही थीं। आनन्दी अपने दुख कहती नहीं तो क्या वह भी नहीं समझता! दवाओं का खर्चा कैसे चले? मंदी से नाज मिलता है तो बड़ी मुश्किल से। मिल में नाज मिलना बन्द हो गया है, क्योंकि सरकार ने कंट्रोल लगा दी है और अब सबको मिल जाएगा यह एक बड़े जोर का वादा था जिसको पूरा न होते देखकर गरीब की भैंस हथिनी मालूम देती थी। सर्दी में कपड़े भी नहीं थे और सौ बातें···

तभी चम्पा ने बूढ़े बैरागी से कहा, "आज तो आनन्दी ने भीख दी है, मामा! अब तो बस्ती के लोगों का घमण्ड समाये नहीं समाता।"

बूढ़ा हंसा और उसने इसी बात की नरायन से चर्चा की जिसे सुनकर वह खूब हंसा और सबने आनन्दी के नए ढंगों पर कड़ी आलोचना करके अपना जोश ठंडा किया।

धीरे-धीरे सबने देखा, नरायन के घर की छत पक्की बन गई और ऊपर अट्टा बन गया। सामने की सफेदी लिपी डौलियों पर उसने गमले रख दिए और नीचे दरवाजे के दोनों तरफ सोना तथा स्वस्तिका बना दिए। नरायन पहुंचा हुआ भिखारी था। घर के

पीछे की तरफ उसने गाय बांध रखी थी, जिसे उसकी सूखी चमड़ीवाली बहू सतरमनी पुचकारती हुई दुहती थी और पड़ोस के स्टेशन के चायवाले को धेला कम ही के हिसाब से दूध बेच आती थी। कभी-कभी नरायन उसके सामने ही भीख मांगता था। वह चुपचाप देखती, जैसे उसे जानती न हो। कोई नरायन को फटकारता तो दयार्द्र हो कह उठती—"बेचारा गरीब है", और चायवाले से पैसा दिला देती। चायवाला असल में अपने को पूरा आशिक हुसैन समझता था और हर जली-जलाई बीड़ी के लिए अपने को एक-मात्र माचिस समझता था। अपने ठीक था। सतरमनी के पीछे-पीछे लोग रतरमनी या ठहाके के साथ जगरमनी कहते थे, किन्तु वह सदा भोली बनी रहती थी। उसके चार बच्चे थे, जिनमें से सबको वह उतना ही प्यार करती थी जितना अपनी गाय के बछड़े को। चम्पा को देखकर वह हंसती थी और सामने उस पर ताना कसती थी। नरायन से उसका सम्बन्ध घर में था; क्योंकि नरायन के पास पक्का घर होना, गाय होना वैसा ही अपराध था, जैसा आजकल ऊंची नौकरी पाने की हौंस रखके किसी बेपैसेवाले गरीब खानदान का होना।

बस्ती में इसकी कहीं कुढ़कर दबे-दबे चर्चा हुई, कहीं मजाक के तौर पर जोर-जोर से और नरायन बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाता, मजदूर अपनी तकदीर का उसकी तकदीर से मुकाबला करते।

महंगाई दिन-दिन बढ़ी जा रही थी। हर स्टेशन पर शहर में हर नए आदमी को घुसते ही तांगेवाले हर चीज का दाम बताकर बढ़ी हुई मांगों को ठीक साबित करने के लिए सदा मुस्तैद रहते।

इसी बीच एक दुर्घटना हो गई। आनन्दी जब सात महीने का बढ़ा पेट लेकर भी मिल जाकर मजदूरी करने से बाज नहीं आई तो पूंजीपतियों को हठात उस पर दया आ गई। सरकार ने उस दया के लिए उन्हें मजबूर कर दिया। कोयले की कमी के कारण मिल बन्द हो गई। वसन्त के दिन थे। चमारों के टोले में जब रात को फाग होते, डफ बजती, स्वांग होते और पतली बारीक आवाजवाली चमारियां गाना गाया करतीं, बस्ती में, मिल में काम करनेवाली औरतें उदास और उत्सुकता से उस दिन की बाट जोहतीं, जब मिल फिर खुलेगी। सरकार ने कह दिया, रेलें खाली नहीं हैं। सबों ने कह दिया सर-कार कोयला नहीं देती, और मिल बन्द हो गई। अब ये औरतें काम न होने के कारण कभी तो मिल जातीं, वहां के आस-पास बसे मजदूरों के घर जाकर दुखड़ा सुनतीं, रोतीं, या घर पर रहकर एक-दूसरी से लड़तीं। इन्हीं दिनों ज्यादा आराम से रहने के कारण कोई-कोई बहुत परेशान रहती या उन उपायों को सोचती जिससे बाल-बच्चों के भूखों मरने की नौबत न आये। गेहूं के दाम लगातार चढ़ रहे थे। मण्डी में नाज ही नहीं मिलता था। एक दिन शहर में लूट मच जाने तक की खबर फैल गई थी। आमदनी रुक गई थी। कई स्त्रियां फिर से भीख मांगने लगी थीं और बार-बार अपमान होने पर घर लौटकर अपने टूटे-फूटे आदमियों से लड़ती थीं कि उसने डांटा, किसी ने फटकार दिया, पहले तो बुरा नहीं लगता था, तब छोटे थे, अब तो बड़ा मन उचाट खाता है। नहीं, भीख

नहीं मांगूंगी और तभी बच्चा कें-कें करके रो उठता। अगर पति भी भीख मांगता होता, तब तो हंस देता और मजूरी करता होता, तो मुंह लटकाकर सोचने लगता। इस परेशानी का नतीजा यह हुआ कि बस्ती की बहुत की औरतें गर्भवती हो गईं। एक तो बसंत की ऋतु, दूसरे गरीबी की परेशानी, जिसका ओर-छोर कहीं दिखाई नहीं देता, तीसरे वही एकमात्र सुख की पराकाष्ठा···

उधर नरायन ठाठ बांध रहा था। उसके उदाहरण ने फिर से स्त्रियों के हृदय में आशा भरना प्रारम्भ किया, किन्तु जब वे सब स्त्रियां मिलतीं तब उनमें वह स्वाभिमान भीतर ही भीतर जाग उठता जो अपने हाथों से कमाकर खाने में होता है। कोई अगर उस समूह में भीख मांगने की बात करती तो फौरन जवाब मिलता, "तू क्या जगरमनी बनना चाहती है ? अरी, रण्डी भी तो मेहनत करके खाती है" और रण्डी बनने को हिंदुस्तान की किसी भी वर्ग की स्त्री, जब तक बहुत ही आदत या परिस्थिति न बिगड़ जाए, तैयार नहीं होती और इसी तरह मजदूरों की परेशानी बढ़ती जाती। दिन में वे एक दूसरी के सिर की जूंए बीनतीं, ताल के किनारे जा बैठतीं; नून, तेल, लकड़ी का रोना रोतीं, एक नहीं, दो नहीं, सबकी सब···और चारों ओर उन्हें अंधेरा ही अंधेरा दिखाई पड़ता। अकेले मर्दों की कमाई से पूरा ही न पड़ता, और बस्ती के टूटते छप्परों की ओर किसी की दृष्टि जाती भी तो वह बरबस आंखें फेर लेता; क्योंकि फूस भी काफी महंगी हो गई थी और नाम मात्र की ऊंची मजूरी पाकर भी मजूर दिन-दिन गरीब होते जा रहे थे; क्योंकि दाम मजूरी से कहीं अधिक ऊंचे चढ़ गए थे।

इन्हीं कारणों से आनन्दी एक दिन बिस्तर पर पड़ गई और रघू ने जमीन पर बिछी चटाई पर सोना शुरू किया।

ताल के किनारे की जमीन सूख चली थी। फागुन की सुलगती हवा चलती और सूरज अनजान-सा उठता, डूबता···रेलें आतीं, सीटी देकर चली जातीं, डाक्टर सुबह-शाम फिर भी वायलिन बजाता और आनन्दी दर्द से कराह उठती।

रात का गहरा अंधेरा छा रहा था। चारों तरफ सूखी-सूखी-सी हवा बह रही थी, पतली-सी, ऐसी ठंडक लिए जो हड्डियों पर असर कर जाए, आदमी बीमार हो जाय, लेकिन फिर भी सुखद-सी, मनवाली-सी। झोंपड़े के भीतर आज दीपक जल रहा था। लौ कभी हवा के झनझन करते हल्के झोंकों में कांपती, बड़ी-बड़ी छायाएं नाचने लगतीं और आशा की वास्तविकता की तरह कांप-कूपकर छोटी हो जातीं, स्तब्ध हो जातीं, अचल हो जातीं और दीपक फिर एक आंख से अंधेरे को देखता, फिर आंख मिचकाता झूमता···

खाट पर दर्द से बेहोश आनन्दी कभी-कभी बर्रा उठती थी। पेट में ऐंठा-सा चल रहा था जैसे कुछ घुमड़कर निकल आएगा अब, और वह दर्द से चिल्ला उठती, दांतों की किचकिची बंध जाती, मुट्ठियां बंध जातीं और वह झोंपड़ी के बाहर जाकर हाहाकार करने लगती।

नत्था चला गया, नरायन चला गया, अकेला रग्घू बैठा झोंपड़े के द्वार पर हुक्का गुड़गुड़ाता रहा। हवा उसके सीने पर फिर रही थी। वह चुपचाप सोच रहा था। बस्ती की जिन स्त्रियों ने आनन्दी की हालत देखी थी, उसे बहुत ही नाजुक बताया था। बचने की कम ही उम्मीद थी। लेकिन साथ ही रग्घू सोचता कि उन्होंने बच्चे जने है मगर कोई इलम तो उनमें नहीं। इस बात को दुनिया का कोई आदमी अस्वीकार नहीं करेगा कि बच्चा जनना कोई इलम का काम नहीं है। रग्घू कहता---"मर जायेगी तो लल्ला अपने-आप चम्पा का हो जाएगा। मुझे तो पहचानेगा ही।" मगर फिर उसके दिल में उस औरत के लिए एक अजीब स्नेह उमड़ता जो उसे अपना इतना मानती, वह जिसका मरद था, सुख-दुख की साथिन, और फिर वह आह भर आसमान की तरफ देखने लगा।

आनन्दी अभी 'मिल' जा नहीं सकती, और अभी तो मिल भी बन्द है। वह मशीन क्या चलेगी, जिसमें तेल न हो, उसने इसी बात को दो बार दुहराया।

अभी-अभी कबीर के पद गाने से जो स्वयं कबीर कहाता था, बस्ती का एक अधेड़ उम्र का भिखारी उसे साहस बंधाने आया था। कहा था उसने कि बेटा! कितनी बची है अब? काहे की इज्जत है हमारी? अब बाकी भी कट जाएगी यों ही। मगर तुम नौकरी करते हो, कमाते हो, अच्छा है यह भी, यह न सही वो ही सही। असल मतलब तो पेट भरना है। और कबीर के जाने के बाद आनन्दी ने दर्द की घोर यत्रणा में बुलाकर रग्घू से कहा, "मैं जा रही हूं। मैंने जो तुम्हें दुख दिया हो, उसके लिए माफ करना। मैं हूं ही खराब। सदा किसी-न-किसी से झगड़ती रही। सबसे कह देना, आनन्दी सबसे माफी मांगती थी···"

और वह बड़ी जोर से कराह उठी।

चम्पा और सौदामिनी हंस दी थीं। चम्पा ने मुख टेढ़ा करके पूछा, "बेटी, बहुत दरद चल रहा है? पहला बच्चा तो नहीं। और क्या तू पहली औरत है जिसके कोई बच्चा होगा? अरी, बच्चा जनते बनियों की औरतें मरती हैं, बनियों की, बहुत जनती हैं, बहुत मरती हैं, और मर-मरके जी जाती हैं···"

सौदामिनी ठठाकर हंस पड़ी।

आनन्दी कहने लगी, "लल्ला को चम्पा से न लेना। बेचारी बड़ी अच्छी है। वह तो उसी का है, उसी के पास रहने देना।"

और फिर कराहकर कह उठी, "एक बात मानोगे मेरी?"

रग्घू ने प्यार से पूछा, "क्या है, आनन्दी? कह भी तो।"

आनन्दी ने ठंडी सांस भरकर कहा, "दवा नहीं कर सके, इसका अफसोस मत करना। मत करना दुख कि जी जाती तो अच्छा होता·· मगर तुम जहां तक हो सके, भीख न मांगना।"

आनन्दी चुप हो गई। सौदामिनी ने डांटते हुए कहा, "कोई नहीं मरता-वरता आज। कोई ऐसी अजीब बात हो रही है क्या यहां? खबरदार जो मरने-वरने का नाम लिया है फिर से! और जब कल साड़नी-सी चलेगी तो नाक काट लूंगी, नाक···एक मिल

गया है न पागल-सा मरद कि रो-रोकर सारा काजर बहाए दे रही है···"

वह और भी न जाने क्या बड़बड़ाई और उसी स्वर में उसने रग्घू से कहा, "जाओ जी तुम। सरम नहीं आती ? मरद होकर खड़े हो यहां। चलो बाहर। सब हो जाएगा, देखें कौन मरता है सरमदार ऐसा। बता देंगे सब बखत आने पर···"

और रग्घू झेंपा-सा बाहर आकर बैठ गया। जबरदस्ती एक डांट लग गई।

किन्तु फिर भी हृदय की धुकधुकी बन्द न हुई। ये औरतें कैसी हैं जो इतने कष्ट को देखकर सिर्फ मुस्करा रही हैं और कहती है, 'कोई बात नहीं, सब ठीक है !' दवा-दारू नहीं, और कल को पैसा भी नहीं।

रग्घू ने एक बार आकाश की ओर देखा और फिर सिर नीचा कर लिया। हुक्का बुझ चला था। फिर एक जोर का कश लगाया और चिलम औंधा दी।

झोंपड़े में एकाएक हलचल-सी मच उठी। आनन्दी बड़े जोर से कराहने लगी और एक चीख के साथ बेहोश हो गई। चीथड़े भीग गए और भीतर से चट-चट की दो आवाजों के [illegible] किसी का 'क्वां-क्वां' शब्द गूंज उठा।

रग्घू निःस्तब्ध दांतों में होंठ भींचे बैठा रहा। भीतर एक सन्नाटा छा गया, जैसे आंधी के बाद बिलकुल नीरवता छा जाती है और नए भाव उदय होने लगते हैं।

इसी समय हंसती हुई चम्पा ने द्वार में से झांककर कहा, "सुना रग्घू ?"

रग्घू ने कांपते स्वर में पूछा, "बच गई ?"

"बच गई, भैया, बच गई। ऐसे औरतें मरने लगें तो दुनिया क्यों चलेगी, बेटा !" और एक हास्य गूंज उठा। चम्पा, कुछ हर्ष से जो नारी को सहज जन्म होने से होता है। गद्गद स्वर से व्यंग्यपूर्वक कह उठी, "देवता मानें तेरे रग्घू ! देख, बस्ती में एक नया मजदूर।"

रग्घू का हृदय गर्व से भीतर ही भीतर विद्वेषहीन-सा गरज उठा—"वह कुछ भी क्यों न हो, भिखारी नहीं है।"

और उसने देखा, रात धीरे-धीरे अलसाकर बीत चली थी—नीरव, उन्मना-सी शिथिल-सी। हल्की सफेदी आसमान में एक तार बनकर कांप रही थी। आसमान साफ था, हवा भीग गई थी। और रग्घू ने सुना कि दूर किसी मुर्गे की बांग सन्नाटे में गूंज उठी, जैसे अब सोने का समय नहीं था।

['हंस', दिसम्बर '44]
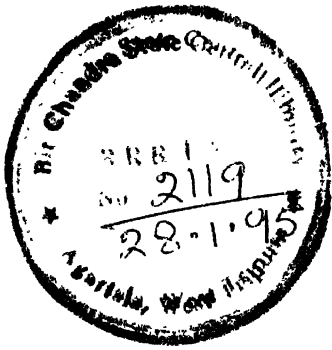
चकाबू का किला

रात हो गई है। महल की भव्य छाया में अनगिनत दीपक जल उठे। उनकी लौ अंधेरे से लड़ने लगी। गुलाम लड़कियों ने उन पर शीशे के ढक्कनों को लगा दिया। उनके हाथ उठते ही फूले-फूले वक्षस्थल देखने लगे और हाथों में बंधे सोने के गहने बजने लगे, जिससे महल में घूमती हुई लोहबान से सुगन्धित वायु झंकृत हो उठी। चारों ओर नृत्य करती हुई कामिनियों के नूपुरों का रव मुखरित हो उठा। उनकी सुडौल मांसल जंघाएं रेशम के झलमल लहंगों में से चमकने लगीं। यौवन के उस उन्मत्त मादक विलास में युवतियों के नयन अनेक दीपकों की भांति जगमग करने लगे और वे कामातुर-सी बादशाह के आने की प्रतीक्षा करने लगीं।

इसी समय दो अर्धनग्ना युवतियों के कन्धों पर हाथ रखे बादशाह ने धीरे-धीरे प्रवेश किया। भूमि उनके जल्दी-जल्दी पग-विक्षेप से प्रताड़ित होकर गूंज उठी और बादशाह के मदिरा के प्यालों की तरह छायाओं से आक्रांत होकर कांपने लगी।

दासी ने मदिरा का प्याला भर दिया। अपनी शैया पर कुहनी के बल लेटे हुए बादशाह ने आज व्यथित स्वर में कहा—"नाच बन्द कर दो।"

नृत्य बन्द हो गया। स्त्रियों के उठे हुए पैर नूपुरों का मुख बन्द कर पृथ्वी पर आ टिके, फरफराते कपड़े ऐसे आकर सिमट गये जैसे बतख अपने पंखों को समेट लेती है। चारों ओर सन्नाटा छा गया। उसके बाद बादशाह ने देखा, सफेद रेशम की झलमल में स्वर्ण का-सा दमदमाता यौवन लिये वे नर्तकियां धीरे-धीरे लौट चलीं, जैसे रेगिस्तान की काली रात में धीरे-धीरे नक्षत्र घूमने लगते हैं और उनकी टिमटिम पर दूर-सुदूर कहीं कोई पथभूला विश्रांत कारवां वेदना से चूर होकर एक गीत की कड़ी को बार-बार दुहराता हुआ अपने आपको भूल जाता है।

किन्तु फिर भी उसका मन आज असंतोष से जल रहा था, जैसे झाड़-फानूसों में दीपक जल रहे थे, जैसे अनेक रत्नों से भरकर भी उनके हृदय का दाह स्नेह से जल उठा। उसके शरीर के सारे आभूषण आज उसे भारी लग रहे थे।

उसने एक प्याला पिया। फिर एक प्याला पिया, फिर एक और पिया किन्तु प्यास फिर भी नहीं बुझी। उसने विक्षुब्ध होकर सबको वहां से हटा दिया। दासियां आशंका से भयभीत होकर बाहर चली गईं। महल का वह दीर्घ प्रकोष्ठ सुनसान हो गया। चारों ओर नीरवता छा गई।

आज वह शहरजादी को परास्त करना चाहता था। नौ सौ निन्यानबे रातें उसने उसे बहलाकर काट दी थीं। उसने उसे देर तक विभोर होकर सुना था, किंतु न उसे सिंदबाद की यात्राओं से तृप्ति मिली, न किसी और शहज़ादी के आंसू शहरजादी को भुजाओं में भींच सके। वह उसे अभी तक मूर्ख बनाती रही। और वह बनता रहा। उसके पहले कोई भी स्त्री उसके सामने आंख भी नहीं उठा सकी। रात्रि को वह शैया पर आती और प्रात:काल उसके रक्त से भीगी पृथ्वी पर बादशाह मंथर गति से चलते हुए मुस्करा देता। नारी एक वासना की पुतली थी। वह उससे घृणा करता था और अपनी एकमात्र पराजय के विक्षोभ से उससे भयानक बदला लिया करता था। आज वही वीभत्स आकांक्षा हृदय में हाहाकार करने लगी थी।

वह उठा। उसने पास में ही रखे घण्टे को तीन बार हाथी दांत के हथौड़े से झंकृत कर दिया। उसी समय सुर्खाब के परों से ढंकी शहरजादी ने प्रवेश किया। अपराजिता। बादशाह उसको देखते ही आकुल हो गया। उसने उसकी ओर कदम बढ़ाया। शहरजादी मस्तानी चाल से चलकर अपने बहुमूल्य आसन पर आकर बैठ गई। बादशाह के नयनों में अभी उसके विशाल नितम्बों की मादक थिरकन घूम रही थी। उसने विह्वल होकर अपने हाथों को पसार दिया। शहजादी ने अपने सुर्खाब के परों को उतार कर फेंक दिया। भीतर का दृश्य देखकर बादशाह दो कदम पीछे हट गया, जैसे किसी ने उन पर वज्र का प्रहार किया हो। शहरजादी ठठाकर हंस पडी। वह चिथड़े पहने थी जिसमें से अपनी लाज छिपाना भी उसके लिए असंभव हो गया था। किन्तु आज वह लज्जित नहीं थी। आज उसके नयनों में क्रोध था। आज वह युग-युग से अपने ऊपर अत्याचार करने वाले से बदला लेना चाहती थी।

उसने कहा - "बादशाह, सुन ! घड़ा बूंद-बूंद करके भरता है और एक दिन पानी ऊपर निकल कर फैल जाता है। मैंने तुझे इतने दिन तक कहानियां सुनाईं कि तू सुधर जाये, मगर तू नहीं समझा। अब मुझे डर का काम नहीं है। जो कपडा जर्जर हो गया है, वह सिये से शोभित नहीं हो सकता। जिस घर मे घना अंधेरा है, वहां दीपक जलाकर सूरज को धोखा नहीं दिया जा सकता। सुन और समझ कि कमजोर को दबाने वाले ही आज तक ताकतवर कहे गये हैं। रईस वही है जो छल से रुपया पाता है और दूसरों के लहू पर अपनी शतरंज पसारकर दांव लगाता है। तेरी बड़ी से बड़ी मेहरबानी मे भी मैं अभी तक गुलाम बनी रही हूं; क्योंकि तेरी मेहर तेरे फायदे की ओट में चलती है। सो सुन और समझ कि तूफान में विद्वान तोते को भी देखकर मैना ने उसको दुतकार दिया कि ऊपर से चिकने-चुपड़े सदा अच्छे नहीं रहते। मगर वह बात थी दूसरी कि उनका मेल तो हो गया पर अपना न होगा।"

बादशाह ने बैठते हुए कहा—"कह शहरजादी कि वह विद्वान् तोता कौन था और मैना ने उससे क्या कहा ?"

और शहरजादी ने देखा और सुना और समझ कर मुस्कराई।

शहरजादी ने कहा, "एक समय जब हिंदुस्तान में अंगरेजों का राज था, तब एक

शहर के बाहर एक बरगद के घने पेड़ पर एक मैना तूफान में बैठी आसमान में कड़कती बिजली को देख-देखकर कांप उठती थी। हवा की सांय-सांय सुनकर पेड़ों का दिल दहल जाता था और वे मारे डर के थर-थर कांपने लगते थे। उनकी डालियों पर बैठे पक्षी पंख समेटे, चोंच छाती में छिपाये सहमे हुए चुप थे।

"हे बादशाह! मैना के दिल की क्या बात, वह तो अपने मुख की होंके रही है। बातें करना उसे अवश्य आता है। सो बैठी-बैठी डरती तो है; मगर जतन नहीं करती। करे भी तो आखिर क्या? इसके किये क्या हो? अभी तक आंधी-पानी को कोई रोक सका है? कभी-कभी मैना सोचती कि यह आदमी नाम का जानवर जो गुमान करता है कि आस्मान को फाड़कार जमीन और चांद तक एक कर दूं, क्या बेकार का घमंड है उसे? मगर फिर विचार आता है कि उसने क्या नहीं किया? उसने तारों को गिना, उसने बेतार का तार बना दिया, उसने मिट्टी में गाना बांध दिया, उसने बड़ी से बड़ी करामात कर दिखाई, क्या वह एक दिन इस सब पर भी अपनी ताकत नहीं चलायेगा? तभी सोचती कि काम बड़ा कठिन है। मगर अचरज क्या? जो उसने आज किया, उसे सुनकर क्या कल आदमी भरोसा करते? मीलों की लम्बाई और दूरी को हमसे जल्दी उड़कर पार कर गया, समंदर पर शहरों के बराबर बड़े-बड़े लोहे के जहाज उसने तैरा दिये, आवाज से भी तेज भागने वाली मशीनें बना दी, मशीनों से जमीन जोत के हवाई जहाज से बीज डाल के एक की दस गुनी फसल कर दी, मरे की आंख निकाल कर जिन्दे के डाल दी और वह देखने लगा तो क्या ठीक? एक का काम तो बड़ा कठिन है। हम पंछी जो शहर, गांव बना के समाज में रहते, लड़ते-झगड़ते भी, मगर एक की जगह बीस चोंच होती तो शायद हम भी कुछ का कुछ कर दिखाते।

'हे! बादशाह, मैना की समझदारी की कोई थाह नहीं, मगर उसमें वफा नहीं। गुनगुनाती है, मगर गुनती नहीं।

"आस्मान में घने बादल और भी घने हो चले। चारों तरफ अंधेरा डमरू की तरह कड़कते बादलों से टकराकर बजने लगा। आकाश से मूसलाधार पानी बरसने लगा। एक लगातार धार बंध गई जिसके कारण पृथ्वी पर से दुगुने छींटे उड़ने लगे। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। हवा पागल हो रही थी। हजारों जटायें लटककर जमीन फाड़-कर भीतर तक गड़ गई हैं; लेकिन बरगद उस तूफान में पत्ते की तरह कांप रहा है। बड़ी-बड़ी शाखाएं और टहनियां ही नहीं कभी-कभी बीच का मोटी खालवाला अजगर-सा गुद्दा भी थरथरा उठता। एक तारा नहीं, कहीं रोशनी नहीं। स्याही-सी गीली-गीली अंधेरी, बस कभी-कभी बीच-बीच में बिजली चमक जाती। चमकती तो आंखें बन्द हो जातीं और बाद में आंख खोलो तो दुगुना अंधेरा। पत्तों पर जो धार पड़ती है तो बरछी-सी फिसलती जाकर भूमि से टकराती और वह अनवरत निर्घोष आकाश और पृथ्वी को प्रताड़ित करता घोर हाहाकार-सा प्रलय की बेला के समान गम्भीर और भयानक उन्माद बनकर दसों दिशाओं में फैल गया।

"मैना ने करुण आंखों से ऊपर देखा। सघन पत्तों में से एक भी बूंद उस ठौर पर

नहीं गिरी थी जहां वह बैठी थी। मन ही मन उसने पेड़ को धन्यवाद दिया और चुप-चाप अंधेरे को देखने का प्रयत्न करने लगी।

"आकाश में बिजली बड़े जोर से कडक उठी और चारों ओर एक उज्ज्वल चका-चौंध करने वाला प्रकाश व्याप्त हो गया। अधमिची आंखों में मैना ने देखा कि उसी डाल पर एक तोता आकर बैठने लगा। उसके पंख फैले थे। चोंच खुली थी। वह ऐसा फड़फडा रहा था जैसे अभी-अभी व्याध के हाथ से छूटकर आया हो। वह घबराया हुआ था। बैठते ही मैना की शांति भंग हो गई। पराये मर्द के पास आकर बैठने ही वह मन ही मन नाराज हुई। उसने सोचा कि अगर हम औरत आदमी होते तो जैसे जनाने रेल के डिब्बे में कैसी भी जरूरत हो, आदमी नहीं बैठ पाता, मैं भी उसे यहां नहीं बैठने देती। मगर जंगल का राजा न मैना का ही है, न तोते का ही। वह तो राजा ही इसलिए है कि शिकार करना जानता है, मांस-लोहू का भोग लगाना जानता है। उसका पेट भरा रहे, उसे न्याय करने से क्या पड़ी।

"सो हे बादशाह! मैना मन मार कर मुंह फेर कर बैठ गई। तोता था विद्वान्, साधु-सन्तों का सोहबत तो क्या, ऐसा कौन था जिसके साथ उसने दो दिन न बिताये हों। वह समझ गया कि मादा जो है सो ही यह अदा न दिखायेगी तो कौन दिखायेगा? इसे मनाना चाहिये। औरत से हंसी-खुशी बात करके जो वक्त कट गया, वह कट गया। नहीं तो सहमी-सहमी मुरझा जायेगी। तूफान से तो पहले ही डरी हुई होगी। हरज ही क्या है? एक से दो अच्छे।

"यह मन में धारणा करके तोते ने कहा -'अरी आदमी की सी बोलने वाली! देखा कैसा तूफान है? इसमें जो पड़ गया, वह नदी के भंवर में पड़ गई नाव के समान समझो। कभी नहीं बच सकता!'

"मैना कुछ नहीं बोली। पंख और सिमेटकर एक बार मुड़कर देखा। फिर मुंह फेर लिया। पर कुछ बोली नहीं।

"तोते ने फिर कहा—'घर आये को जिसने आश्रय नहीं दिया, तूफान में जिसके गले में आवाज नहीं रही, वह कायर होता है। क्या तू डर गई है?'

"मैना ने चिढ़कर कहा—'तेरा क्या भरोसा? जाने कब क्या धोखा दे? मरद का क्या विश्वास है?'

"तोता ठठाकर हंस पड़ा। उसने कहा—'सुन मैना? मरद-औरत का मान करने तो बैठ गई, मगर यह बात तो इन्सान की है। हममें तो ऐसा भेद नहीं होता। वह तो आपस में एक-दूसरे पर विश्वास नहीं करता। मगर उसके पास तो इसके अतिरिक्त अनेक वस्तुएं होती हैं, जिनके कारण वह आपस में भेद करता है। तू ऐसी बात क्यों करने लगी?'

"मैना सोचने लगी। बात तोता ठीक कह रहा है। ऐसी बात ही क्यों उठी? मन ही मन लजा गई। कहा—'मैं तो ऐसे ही कहती थी। विश्वास तो जानने-पहचानने से होता है।'

"तोता मुस्कराया। उसने कहा —'तो जान-पहचान तो रास्ते का दिलबहलाव है मैना! उसमें क्या देर लगती है? लेकिन तू जो मरद-औरत कहती है, वह सौदागरों वाले सांड़नी पर चढ़ के भागने वाले दिन तो बीत गये। अब तो दुनिया ही बदल गई है। अब आदमी आदमी पर भी भरोसा नहीं रखता।'

"'ओ हो!' मैना ने अचरज से मुंह फाड़ कर कहा।

"तोता फिर बोल उठा—'आदमी तो जितना बढ़ा है, उतना ही गिरा भी है; क्योंकि बड़ी से बड़ी चीज बना कर भी उसे उसका रखना नहीं आया। करने को सब करेगा मगर पैदावार को बांटने में जैसी गड़बड़ आदमी करता है, वैसी कोई और जानवर नहीं करता है। कह मैना! हिरनों के झुण्ड में किसी हिरन को उसका सर्दार चरने से रोकता है?'

"'नहीं विहंगम,' मैना ने स्वीकार किया—'ऐसा तो नहीं होता।'

"आस्मान से पानी बरसना अब बन्द हो चुका था। पेड़ हवा से हिलते थे, तब जरूर टपटप करके मेह-सा झर जाता था। धीरे-धीरे तूफान थमने लगा। जंगल ने जैसे चैन की सांस ली।

"हे बादशाह! तोता और मैना दोनों की बात अब ध्यान धरकर सुन कि इसमें वह गुण है जो अंगूठी के नगीने में चमक बनकर समाया रहता है, जो सुहागिन के बालों में मांग का सिन्दूर बनकर सुहाया करता है।

"और भोर फूटने लगी। आसमान में उजाला फैलने लगा। एक शीतलता व्याप्त हो गई। मैना सिहर उठी। ठंडी-ठंडी हवा बहने लगी। कलियों ने अपने घूंघट खोल दिये। पेड़ों ने पत्तों पर जमी बूंदों को हिलाकर गिरा दिया, किन्तु घास पर फिर भी हीरे चमकते रहे। बादल क्षितिजों पर जाकर डूबने लगे। वन-भूमि पर पानी भर-कर झलमला रहा था। प्रभात की फूटती किरणों की ललाई में वह जल दर्पण की तरह हिल रहा था। पक्षी मदिर-मदिर कलरव कर इस डाली से उस डाली पर उड़-उड़ जाते थे। चारों ओर वह धुले-धुले पेड़-पात, उनकी मोहक हरियाली देखकर मैना का हृदय प्रसन्न हो गया। लम्बे-लम्बे ऊंचे पेड़ों की जड़ों के पास पानी एक मनोहर कलकल निनाद कर रहा था।

"तोते ने कहा —'मैना! देखा तूने? कल रात जो प्रकृति प्राण लेने पर उतारू थी, अब कितनी सुन्दर लग रही है।'

"मैना ने उत्तर दिया—'हे विहंगम! मैं तो इसी पृथ्वी को प्यार करती हूं। इसके जो यह अनेक रूप है, इसी से इस पर रहने को जी करता है, जहां चीजें बदलती नहीं, वहां हम क्या, आदमी भी नहीं रह सकता।'

"तोते ने सोचते हुए कहा—'अरी मैना! तूने कभी देखा है यह आदमी कितना अजीब जन्तु है। इसके जी की जलन का तो कोई अन्त ही नहीं लगता। हजारों बरसों से भटक रहा है, बराबर भटक रहा है मगर कोई अन्त नहीं, लगातार वही चलना, वही थकान······'

"मैना ने कहा—'कहो विहंगम ! जिस भट्ठे में रोज कच्ची हांड़ियां पकाई जायें वह मौत का घर है कि जिन्दगी का ? यह जो भोर और सांझ की-सी कड़ियां एक दूसरे से मिली हुई चली जाती हैं, यही तो है उसकी भूख। आज तक आदमी सुखी होने के लिए लड़ता रहा है। किन्तु सुखी नहीं हो सका। आनन्द की बात मैं नहीं कहती। आनन्द तो वह मन का सन्तोष है, जब ऐसी तृप्ति छा जाती है कि फिर कुछ करने को नहीं रहता···'

"तोते ने काटकर कहा—'वह तो किसी को नहीं मिल सकता मैना। जिन्दगी की निशानी काम है, और पूरा आनन्द है मौत जब कि सारे काम समाप्त हो जाते हैं। यह तो सांझ का पन्थी है।'

"मैना ने चोंच टेढ़ी कर कहा—'मैं तो उड़ चली विहंगम ! देश-देश देखने का मुझे बड़ा शौक है।'

" 'आहा !' तोते के मुंह से हठात् निकल गया—'और क्या चाहिये ? मुझे भी यही काम है। मगर मैं अकेला उड़ता हूं। कह मैना ! सांझ के झुकते-झुकते इसी पेड़ पर आकर बैठेगा। देखें तू आदमी की दुनिया के बारे में क्या देखकर आती है।'

मैना उड़ गई। तोता भी थोड़ी देर बाद उड़ चला। धूप घटने लगी। कानन में फिर वही नीरवता सांय-सांय करने लगी। बरगद का पेड़ जैसे प्रतीक्षा कर रहा था।

['हंस', फरवरी-मार्च '45]

अवसाद का छल

अवसाद की इन रेखाओं का कहीं अन्त नहीं है। वह उन्हें सीधा करना चाहती है किन्तु बालक के हाथ में उलझे हुए डोरे की लच्छी कभी नहीं सुलझ सकती, कभी उसमें वह स्वच्छन्दता नहीं आ सकती जो दो फटे टुकड़ों को जोड़ दे, एक कर दे, क्योंकि जो दूसरों में छेद करती है उसके छेद में घुस सकना सरल काम नहीं है।

आज उस सबकी याद आती है, क्योंकि जीवन का यह क्षीण सम्बल जो वेदना का मूल स्तम्भ है वही मानव की सत्ता निभाने का एकमात्र आधार है, जैसे यह जो चित्र मे सज्जित वितान है यह वायु में और किसी प्रकार नहीं टिक सकता।

रात आ गयी है और पुष्पा अपनी मादकता की भस्म को अपने उन्माद में छिपाए आकाश के असंख्य तारों को देखती है और फिर आंखों को मूंद लेती है। एक नहीं अनेक-अनेक ताराओं का ब्रह्माण्ड सा उनमें घूमने लगता है जैसे इतने ग्रह, उपग्रह, नक्षत्रों के रहते हुए भी वास्तव में वह एक व्याप्त विस्तृत शून्य है जिसे कोई भी नहीं भर सकता।

पुष्पा सोचती है। वेदना का यह उत्ताप व्यक्ति की शक्ति है या निर्बलता, किन्तु कोई उत्तर नहीं मिलता। क्योंकि चन्द्रमोहन बलिदान को सत्ता से अधिक महत्व देकर भी अपने आपको कभी-कभी देश का द्रोही कहने लगता है। आजकल दोनों कलकत्ते में है। जब वह बी० ए० करके यही शिक्षक के रूप में आयी थी, उसके बाद ही एक दिन उसे पत्र मिला कि चन्द्रमोहन भी कलकत्ते के दमदम हवाई अड्डे में पाइलट बनकर आ गया है और शीघ्र ही उससे मिलेगा। उस दिन जीवन की अनेक अनेक स्मृतियां पंगुता की अभिव्यंजना सी उसके सामने कराह उठीं। वह अभी तक उसे भूला नहीं था। वह उस रात सो नहीं सकी। याद आने लगी वह कालेज की भूली मादकता की छलना जब आलिंगन के अतिरिक्त संसार में कुछ मोटी-मोटी किताबें थीं, चहल-पहल थी, और आज?

दो

पुष्पा आबादी के सघन जाल में से निकली। जनरव में से निकलकर जैसे सांप बिल में घुस जाता है उसने घर पहुंचकर शान्ति की सांस ली। घर था एक दो कमरों का डेरा, ऊपर-नीचे दायें-बायें, अनेकों से घिरा। यहां नहीं है देश की सी शान्ति, यहां

वह घिरी है, परदेशी बंगालियों के बीच में, जो उसे नहीं चाहते, जिन्हें वह नहीं चाहती।

आकर स्टोव पर चाय चढ़ायी। कमरा निर्घोष से कांप उठा। निराधार-सा यह कोलाहल अपने मौन के प्रतिकार से स्वयं ही कांप उठा। वह बैठकर देखने लगी। लौ के टकराने से आवाज होती है, यह आवाज ऐसी है जैसे पृथ्वी के टकराने से वायु-मण्डल में होती होगी जिसे हम नहीं सुन पाते क्योंकि उस कोलाहल की महानता को हमारा छोटापन कभी भी नहीं जान सकता, नहीं समझ सकता।

उसी समय द्वार पर किसी की पगध्वनि हुई। भारी-भारी बूटों की दिल-दहलाती आवाज, आवाज जिसमें कुचल देने की अदम्य क्षमता है, जो अपनी शक्ति की प्रतारणा को हुंकारती-सी फैला देती है।

कमरे में जो व्यक्ति घुसा वह और कोई नहीं स्वयं चन्द्रमोहन था। पुष्पा से अच्छा रंग था उसका, पुष्पा से अधिक अच्छा खाने-पीने से, कठोर होकर भी जो अधिक साफ और चिकना था, जिसमें भूले यौवन में अल्हड़ बने रहने से उससे कहीं अधिक ताजगी थी, जिसके कपड़ों में कलफ था, एक सफाई थी और पुष्पा अपनी खद्दर की साड़ी में पहली बार संकोच का अनुभव करती स्वागत के लिए उठकर खड़ी हो गयी। चन्द्र-मोहन की बड़ी-बड़ी निर्मल आंखें उसे देखकर रस से भर गयीं और उसने स्नेह से उसके दोनों हाथ पकड़ लिये, कुशल पूछा और कन्धों पर हाथ रखकर उसे पलंग पर बिठाकर स्वयं खड़ा-खड़ा स्टोव को पम्प करने लगा और बातें करते हुए चाय बनाने लगा। पुष्पा उस व्यक्ति के बारे में कुछ भी नहीं समझ पायी। जब चन्द्रमोहन कालेज में था तब वह कुरता-धोती पहनता था, तब वह चुराती आंखों से पुष्पा की ओर देखता था, तब पुष्पा उसे अधिकार से देखती थी और आज वह सब कुछ नहीं था। आज जैसे गरीब के घर राजा आया था जिसके सबल यौवन ने पुष्पा को वाक्यहीन कर दिया, शब्द मन ही मन, ऐसे चक्कर लगाने लगे जैसे शान्त पानी में कंकड़ डाल देने से पानी में गोल-गोल रेखाओं का प्रसार होता है, जो कुछ नहीं कहतीं, केवल किनारों से निस्तब्धता से टकरा जाती है और चील की तरह हिलकर स्थिर हो जाती हैं।

एक प्याला बढ़ाकर दूसरा प्याला चन्द्रमोहन ने हाथ में ले लिया और स्टूल पर ही बैठ गया। उसकी आंखों में एक नया बचपन था जो पहले पुष्पा ने कभी नहीं देखा था। वह अपनी वर्दी में जंचता था। कैसे चौड़े कंधे थे, कितनी सुडौल ग्रीवा थी, कंधे पर उसके अधिकार की पट्टियां थीं और पास में ही उसका ऊनी छज्जेदार टोप था जिस पर आगे 'क्राउन' था।

पुष्पा पढ़ी-लिखी है। अचानक ही उसे याद आ गया, ऐसे ही एक दिन आजकल के बादशाह के बाप से वृद्ध तपस्वी गांधी मिला था। हवा थम गयी। तूफान रुक गया। पुष्पा चैतन्य हो गयी।

बातें करते-करते घंटाभर बीत गया। वह बर्मा भी गया था और वहीं से लौट-कर आया है। ऐसी-ऐसी बातें कहता है जो पत्रों में नहीं छप सकतीं। देर तक वह उन्हें सुनती रही। आंखों के सामने चित्र खेलते रहे। कीचड़ में भारी बूट छपछप करते

हैं, एक झनझनाहट से कानों पर से गोलियां निकल जाती हैं। मशीनगन से खटखट करके जब आग निकलने लगती है, तब जुन्न से हवाई जहाज चक्कर मारकर आकाश में उठ जाता है और फिर भयानक बम गिरते हैं, भूमि से धुआं उठता है, धूल उठती है, बसे-बसाये घर उजड़ जाते हैं। इस बरबादी के पीछे न्याय भी है, स्वार्थ भी है, चन्द्रमोहन तो न्याय के समय मनुष्य नही है, स्वार्थ के समय लड़ाई का एक औजार या हथियार भी नहीं।

"यूरोप की लड़ाई में यह बात नही," चन्द्रमोहन ने कहा—"वहाँ न्याय न्याय है, अन्याय अन्याय, और लड़ाई की नौकरी कोई नौकरी है ? कल सब निकाले जायेंगे तब मैं तो तुम्हारे पास आ जाऊंगा। खिला सकोगी ?'

पुष्पा के हृदय में जो द्रोह था, वह शान्त हो गया। वह उनके साथ कदम मिलाकर चलता है जो इतिहास बदलते हैं, जो मरने के आगे जीवन की सतह को पारे की तरह चढ़ाकर बर्राते हैं, जिनकी हलचल इतिहास की करवट है, जिनका व्यक्ति संगठित समूह है, जिनकी शक्ति रक्षा भी है और भय भी, किन्तु चन्द्रमोहन वास्तव मे भूला हुआ है। वह अब भी उसी प्रकार उस पर विश्वास करता है। किन्तु अब वह हवा मे नहीं लड़ता, रोटी की बात करता है। संघर्ष को वह जानता है।

चन्द्रमोहन ने फिर कहा—"पुष्पा ! तुम बहुत थक गई हो। सच, बहुत काम करना पड़ता है ?"

पुष्पा हंसी। उसके दांत बहुत सुन्दर हैं तभी उसमें कुछ आकर्षण है। उसने उत्तर नही दिया बल्कि चन्द्रमोहन के हाथ की किताब लेकर उसे खोला और देखने लगी। एक पत्रिका थी जिसका नाम था—'मैन ओन्ली' (केवल पुरुष)।

चन्द्रमोहन ने हंसकर कहा—"यह तुम्हारे काम की चीज नहीं, सब फौजी है, तुम रहने दो, उसे अश्लील कहोगी।" उसने वापस लेने को हाथ बढ़ा दिया।

"तुम यह सब क्यों पढ़ते हो ?," पुष्पा ने स्नेह से कहा—'पहिले तो इतनी चंचलता नहीं थी ?'

"पहले पानी पीता था देवीजी, अब शराब पीता हूं ? समझीं ? और एक बात कहूं, बुरा तो न मानोगी ? तुम पर मेरा विश्वास है, कह दूं, उलटा अर्थ न लगा लेना।" चन्द्रमोहन ने तनिक झिझकते हुए कहा।

पुष्पा हंस दी। उसने कहा—"मैने कभी तुम्हारी बात का बुरा माना है ? तुम लोग फौजी हो। तुम लोगों को हम लोग समझ नहीं पाते। किन्तु तुम मेरे सामने तो मनुष्य हो। और फौजियों को देखकर उपेक्षा से सदा कुतूहल होता है।"

चन्द्रमोहन ने कहा—"बात यह है कि ये चीजें स्त्रियों के लिए नहीं हैं। लेकिन बहुत सी लड़कियां पढ़ती भी हैं तो वे केवल हम लोगों के मनोरंजन…"

अकचकाकर रुक गया। पुष्पा की भौं चढ़ी हुई थी।

"बुरा मान गयीं ?" चन्द्रमोहन ने भय से लड़खड़ाकर पूछा।

पुष्पा उसे घूरती रही। फिर देखकर आंखें बन्द कर लीं और पूछा—"लड़ाई

के बाद मेरे पास आ सकोगे ?"

"और नहीं तो करूंगा ही क्या ?" चन्द्रमोहन ने पूछा, "क्षमा नहीं करोगी ? गुलाम की नागरिकता एक खाली गिलास है, उसमें धन और बल का छल बहुत तेज नशा होता है। अमेरिकन और अंगरेजों की स्त्रियों की भूख अधिक होती है। उन्होंने सिखाया है।"

"तो तुम क्यों सीख गए ?" पुष्पा ने चोट की—"तुम्हें स्त्रियों का मान करना नहीं आता ?"

"किंतु वे स्त्रियां भी ऐसा मान नहीं चाहतीं।" चन्द्रमोहन ने बात काटकर कहा।

"जानते हो ?" पुष्पा ने कहा—"वह सब कुछ मेरा था। तुम खाकी में हो, मैं खद्दर में हूं। किन्तु और तो कुछ नहीं बदला। फिर तुम जैसे मुझे भूल गये हो, यदि मैं भी तुम्हें भूल जाती तो ?"

"तुम्हारा अधिकार है पुष्पा। इसमें बिगड़ता ही क्या है ? क्षण भर यदि अपरिचित होकर भी हम सुखी नहीं रह सकते···"

बात काटकर पुष्पा ने कहा—"हमारे भारत में प्रतीक्षा की अथाह वेदना है, हम शीघ्र ही बादल की भांति झरते नहीं, सागर की तरह भीतर भी, बाहर भी मंडराते हैं, यह जहाज जो हमारे सीने पर चलते हैं, सब करके भी हम पर आश्रित हैं, अभी यह हमें समाप्त नहीं कर सके, तिनके हैं, तिनके। तुम कहोगे—मैं थर्मामीटर का चढ़ा हुआ पारा हूं, तभी तुम वत्ती को तेजी से जला रहे हो, लेकिन एक बात कहूं ?"

चन्द्रमोहन ने स्वीकार किया।

पुष्पा ने कहा—"जब साहस न रहे तो मेरे पास आना। यह उबा देने वाला सन्नाटा भी एक कोलाहल की शक्ति है। यह अपमानित शक्ति, यह दुःखों का सागर, भूखे, नंगे···" वह कांप उठी—"आना, जब बुझ चुको मैं तुम्हें फिर जला दूंगी।"

चन्द्रमोहन उसके पास बैठ गया।

"मेरे पास शब्द हैं, शक्ति नहीं," चन्द्रमोहन ने कहा।

"मेरे पास शक्ति है, शब्द नहीं," पुष्पा ने कहा।

चन्द्रमोहन ने उसके बालों की लटों को छुआ। उनमें गन्ध न थी। फिर भी उसने उसे देखा और निस्संकोच होकर उसके गाल को चूम लिया।

पुष्पा लाज से मुस्कराई। कहा—"अनाड़ी। बरसों हो गए तमीज न आई। अब यह बचपन के दिन हैं ? यह तो सब कालेज में बीत गये।"

किन्तु वह प्रसन्न थी। सामने लगे शीशे में उसने देखा था, चन्द्रमोहन गोरा था, वह सांवली थी। वह सुन्दर था, वह साधारण थी। वह स्वच्छ था, चिकना था, वह खुरदरी थी, चिकनाहट का नाम नहीं था। एक सैनिक ने प्यार किया था। सैनिक !

उसने कहा—"सैनिक ! भूलोगे तो नहीं ?"

"नहीं," चन्द्रमोहन ने छलहीन उत्तर दिया।

चन्द्रमोहन चला गया।

तीन

चन्द्रमोहन फिर से बर्मा चला गया और मारा गया। मारे जाने की बात की खोज एक-दो की नहीं देशों की बात है, राष्ट्रों और स्वार्थों की मुठभेड़ है। प्रत्येक सैनिक की मृत्यु और जीवन की कहानी युद्ध का इतिहास है। सिद्धांतों का संघर्ष होता है, किंतु पुष्पा के लिये वह सब कुछ नही। देश, विदेश, यूरोप, अमेरिका, शक्ति, दासता, सेना, नागरिक जीवन सब कुछ पर मेधावी एक विराट उपन्यास लिख सकता है, जैसे टाल्सटाय ने सेवेस्टोपोल के युद्ध पर लिखा था, जिसे वह नहीं लिख सकती, क्योंकि सत्य केवल कल्पना ही है, देखा उसने नही, वह अनुभव करती है···

चन्द्रमोहन मर गया है। उसे राष्ट्रों और साम्राज्यों की याद नही आती। उसे याद आती है उसकी जो सैनिक नहीं था मनुष्य था, जिसने इतनी सरलता से बच्चों की तरह उसे चूम लिया था।

वह देखती है, कभी रोती है, हंसती है,कभी सोचती है, किन्तु सन्नाटा जीवन का अंधकार है, लोहे की मोटी चादर है, उसके नीचे हवा नही है, किन्तु दीपक नही बुझा है, लौ अब भी जल रही है, दीपक में तेल नहीं, जीवन और यौवन का रस है। रक्त है···

['विश्वामित्र', जून '45]

पंच परमेश्वर

चन्दा ने दालान में खड़े होकर आवाज देने के लिए मुंह खोला, पर एकाएक साहस नहीं हुआ। कोठे के भीतर खांसने की आवाज आई। अभी अंधेरा ही था। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। गधे भी भीतर की तरफ टाट बांधकर बनाई हुई छत के नीचे कान खड़े किए बिलकुल नीरव खड़े थे। खपरैल पर लाल-सी झलक थी, देखकर ही लगता था जैसे सब कुछ बहुत ठंडा हो गया था, जैसे स्वयं बर्फ हो। गली की दूसरी तरफ मस्जिद में मु[illegible] ने अजान की बांग दी। चन्दा कुछ देर खड़ा रहा, फिर उसने धीरे से कहा—"भैया!"

बिस्तर में कन्हाई कुलबुलाया, अपनी अच्छी वाली आंख को मीड़ा। उसे क्या मालूम न था? फिर भी भारी गले से पड़ा-पड़ा बोला—"कौन है?" और कहते में वह स्वयं रुक गया। नहीं जानता तो क्या रात को दरवाजे खुले छोड़कर सोता। उसे खूब पता था कि कल सूरज-नारायण चढ़े न चढ़े मगर चन्दा लगी भोर आकर बिसूरेगा।

दोनों भाई असमंजस में थे। इसी समय चौधरी मुरली की बूढ़ी खांसी सड़क पर सुनाई दी। चन्दा की जान में जान आई। चौधरी को बहुत सुबह ही उठ जाने की टेव थी। वास्तव में टेव-फेव कुछ नहीं। दिन में हुक्का गुड़गुड़ाने से रात को ठसका सताता था और फिर उल्लू की तरह रात को जागकर वह सुबह ही बुलबुल की तरह जग जाते और लठिया ठनकाते सड़क से गली, गली से सड़क पर चक्कर मारते रहते।

इतनी भोर को जो कन्हाई का द्वार खुला देखा, और फिर एक आदमी भी, तो पुकारकर कहा—"को है रे?"

चन्दा को डूबते में सहारा मिला। लपककर पैर पकड़ लिए।

"क्यों? रोता क्यों है?" चौधरी ने अचकचाकर पूछा, "रम्पी कैसी है?"

"कहां है, चौधरी दादा," चन्दा ने रोते-रोते हिचकी लेकर कहा—"रात को ही चल बसी।"

"और तूने किसी को बुलाया भी नहीं?"

चन्दा ने जवाब नहीं दिया। सिसकता रहा। गधे अपनी बेफिक्री से मस्ती के आलम में खड़े रहे। उनकी दृष्टि में आदमी ने ही अपना नाम उनपर थोपकर, उनका असली नाम अपने पर लागू कर लिया था।

"ओह! कहां है रे कन्हाई!" चौधरी पंच ने अधिकार से कहा—"सुना तूने!

अब काहे की दुसमनी ! दुसमन तो चला गया। मट्टी से बैर करना सुहाएगा ?"

कन्हाई ने जल्दी-जल्दी धोती पर अपना रुई का पाजामा चढ़ाकर, रुई का अंगरखा पहना और बिगड़ी आंख पर हाथ धरकर बाहर निकल आया। चौधरी ने फिर कहा—"बिरादरी तो तब आएगी जब घर का अपना पहले लहास को छुएगा बावले। चली गई बेचारी। अब काहे को अलगाव है बेटा ? देख और क्या चाहिए ? तेरी मां थी न ?"

कन्हाई ने दो पग पीछे हटकर कहा—"दादा ! जे क्या कही एक ही ? किसकी मां थी ? मेरी महतारी सब कुछ थी, छिनाल नहीं थी, समझे ? अब आया है ? देखा ? कैसा लाड़ला है ? नहीं आऊंगा समझे ? बीधों का छोरा हूं तो नहीं आऊंगा।"

चौधरी ने शांति लाने के लिए कहा—"हां-हां रे कन्हाई, तू तो बिरादरी की नाक बन गया। पंच मैं हूं कि तू ?"

कन्हाई दबका। उसने कहा—"तो मैंने कुछ अलग बात कही है दादा ! उसने मेरे ख़िलाफ क्या नहीं किया ! मैंने हड्डी-हड्डी करके उसके चन्दा को ज्वान बना दिया। ताऊ मरे थे तब मेरे बाप की आंख फूट गई थी। जो धरेजा किया तो भाभी से ही और अपनी ब्याहना को छोड़ दिया। रिसा-रिसा के मारा है मेरी मां को। वह तो मैं कहूं, मैंने फिर भी उसे अपनी मां के बरोबर रखा। तुम तो सब अनजान बन गए ऐसे ! घर छोड़ दिया। अपनी मेहनत के बल पै यह घर नया बनाया है। अपना गधा है। जब सपूनी का सुलच्छना बड़ा हुआ तो कैसी आंखें फेर गई। वह दिन मैं भूल जाऊंगा !"

चौधरी निरुत्तर हो गए। फिर भी कहा—"पर बेटा, तेरे बाप की बहू थी, यह तेरे बाप का ही बेटा है, तेरा भइया है, दस आदमी नाम धरेंगे। गधा लाद के बाजार से दुकान के लिए सब्जी लाता है। आज वह न सही; अनजाना करके लगा दे कन्धा, तेरा जस तेरे हाथ में है। कोई नहीं छूटता, अपनी-अपनी करनी सब भोगते हैं···"

कन्हाई निरुत्तर हो गया। चन्दा ने उसके पैर पकड़कर पांवों पर सिर रख दिया, और रोने लगा।

"मेरी लाज तो तुम्हारे हाथ है भैया ! पार लगाओ, डुबा दो। घर तोऽ तुम्हारा, मैं तोऽ तुम्हारा गधा। कान पकड़ के चाहे इधर कर दो चाहे उधर, पर वह तो बेचारी मर गई···"

और उसकी आंखों का पानी कन्हाई के पैरों पर गर्म-गर्म टपक गया। कन्हाई का हृदय एक बार भीतर ही भीतर घुमड़ आया।

दोनों ने बगल के घर में घुसकर देखा—रम्पी निर्जीव पड़ी थी। हल्की चादर से उसका शरीर ढंका हुआ था। न उसे ठंड लग रही थी, न भूख, न प्यास। कन्हाई का हृदय एक बार रो उठा। इससे क्या बदला लेना ! एक दिन सबका यही हाल होना है, उस दिन न घर है, न बार, बस मिट्टी में मिट्टी है···

और वह उसके पैरों पर सिर रखकर रो उठा—"अम्मां···"

रम्पी फुंक गई। कन्हाई ने अपने हाथ से आग दी। उसके पेट का जाया न सही,

बाप का बड़ा बेटा तो वही था। बिरादरी के लोगों के मुंह से वाह-वाह की आवाज निकल गई। कारज ऐसा किया कि कुम्हारों में काहे को होता होगा! स्वयं चन्दा को भेजकर फूल गंगा में डलवा दिया। पाप कौन नहीं करता! मगर हम तो उसकी गत सुधार दें। बारह बामन हो गए। और जब कन्हाई लौटकर तेरहवें दिन अपने घर आया तो ऐसा लगा जैसे अब कुछ नहीं रहा। चन्दा गधा लेकर मिट्टी डालने गया था। यही आमदनी थी आजकल। कुछ बढ़-चढ़कर ग्यारह आने रोज, सो मिट्टी के मोल पैसा आने पर मिट्टी के ही मोल चला जाता। गेहूं की जगह बाजरा-चना सस्ता था। सब वही खाते थे और यही सबसे अधिक सुलभ था। चन्दा के पास वास्तव में कुछ नहीं था। रम्पी ने अपना पति मरने पर देवर किया। देवर की पुरानी गिरस्ती तोड़ दी, क्योंकि वह चटोरी थी और जलन में सदा उसकी छाती फटती रहती। वह किसी के क्या काम आती! छोड़ा तो है चन्दा, उसके पास बस दो साठ-साठ रुपयों के गधे ही तो हैं। पुराना अपना घर गिरवी रखा है और अब शायद छूट भी नहीं सकता। किराये का मकान लेके रह रही थी छल्लो!

कन्हाई का हृदय विक्षोभ से भर गया। भीतर कोठे में घुसकर एक आंख से ढूंढ़कर आंखों पर हरा चश्मा लगा लिया, ताकि आंखों की खोट बाजार वाले न परख लें। पूछने पर कन्हाई कहता —"दुख रही हैं, दुख" —और जवानों से कहता —"स्कूल की लौंडियां देखने को पर्दा डाला है, पर्दा।"—सब सुनते और हंसते। उसके बारे में कई कहानियां थीं कि वह एक प्रोफेसर के यहां नौकर था, जिसकी बीवी जवान थी और काम से जी चुराती थी। उसने कन्हाई से खाना पकाने को कहा तो कन्हाई ने अपनी नीची जाति का फायदा उठाने को धर्म की दुहाई दी। बीवी अंग्रेजी पढ़ी-लिखी थी। उसने एक नहीं मानी। तब वह नौकरी छोड़ आया। उसके बाद भटक-भटककर सब्जी की दुकान की और वह चल निकली कि कन्हाई शौकिया ही एक-दो गधे रखने लगा, बस्ती में लादने के लिए किराये पर चलाने लगा।

कन्हाई ऊबकर दुकान पर जा बैठा। दिन-भर उसका जी नहीं लगा। आज उसे फिर से घर भरने की याद आने लगी। चन्दा बाईस वर्ष का हो गया। अचानक ही उसे उस पर दया-भाव उत्पन्न होता हुआ दिखाई दिया। अब तो सचमुच बीच की फांस हट गई थी। कन्हाई ने अपने पैसे से कारज किया था। हृदय की उद्वेलित अवस्था भीतर के सन्तोष पर तैर उठी। कन्हाई दुकान बन्द करके घर लौट आया।

●●

चन्दा के ब्याह के लिए कन्हाई ने आकाश-पाताल एक कर दिया। दिल बल्लियों उछलता था। चौधरी पंच मुरली के घर जाकर जब उसने किस्सा सुनाया तो पंच उछल-उछल पड़े, खांसी का ढेर लगा दिया। उनकी बहू ने बूढ़ी पलकें उठाकर देखा और गीत गाने के लिए तैयारी करने का वचन दे दिया। आज जैसे घर-घर में हर एक वस्तु में आनन्द ही आनन्द था। चन्दा का घर साफ हो गया। एक ओर मटके सजाकर रख दिए गए। अब चन्दा के बच्चे होंगे, वे दिवाली पर दीये बेचेंगे, बड़े होंगे तो चन्दा मिट्टी लादने

का काम छोड़कर चाक संभालेगा और फिर हर थिरकन पर झटका खाकर कुल्हड़ पर कुल्हड़ उतर आएगा। चौधरी के पीछे जो बाड़ा है उसीमें भट्ट लग जाएगा।···

चन्दा मस्त होकर गा रहा था। फागुन का सुलगता मास था। बारात बाहर गली में बैठकर जीम रही थी। भीतर औरतें गालियां गा रही थीं—

'मेरौ गरमी कौ मार खसमौ देखिकै रह रह पलटा खाया···
नैंकु लहंगा नीची कर लै···'

कन्हाई ने रंगीन फेंटा बांधा था। आज उसके पगों में स्फूर्ति थी; दौड़-दौड़कर इन्तजाम कर रहा था। चारों ओर कोलाहल पर प्रकाश की धुंधली किरनें तैर रही थीं। बरातियों के खच्चर, जिनपर वे चढ़कर आए थे, एक ओर मूर्खों-से चुपचाप खड़े थे, जैसे उन्हें मनुष्य की इस उन्मदिष्णु तृष्णा से कुछ मतलब न था।

और इसी तरह एक दिन बहू ने आकर घूघट की दो तहों में से देखते हुए कन्हाई के पैर छुए। चन्दा की गिरस्ती बस गई। और कन्हाई बगल में अपने घर में लौट गया।

चन्दा की गाड़ी जब चलने से इन्कार करने लगी तभी उसने घर से बाहर कदम रखा। पड़ोस की औरतें लुगाई के इस गुलाम को देखकर कानाफूसी करतीं, राह चलते इशारे करके हंसतीं और जब मिलतीं तो यही चर्चा चलती। चन्दा फूलो के सामने पराजित हो गया था। फूलो को देख कुम्हरिया कोई कह दे तो उसे आंखों में काजर लगाने की जरूरत है। वह तो पूरी जाटनी है। जवानी का किला है, लचकती जीभ है, फौरन तर हो जाए। चन्दा की क्या बिसात! ऐसा बस्ती में बहुत कम हुआ। दिन में चन्दा और फूलो जोर-जोर से बोलते हैं, ठहाके और किलकारियों को सुनकर पड़ोस के लोग दांतों तले उंगली दबाते हैं। कुब्जा जो प्राय: तीन ब्याहता ज्वान छोकरियों की मैया है (और तीनों लड़कियां गालियां गाने में उसका लोहा मानती हैं), वह तक चौंक जाती है कि सरम-हया का तो नामोनिशान ही उठ गया।

इधर चन्दा सुबह जाता, मरे मांझ लौटता तो थका-मादा और फूलो मुंह फुलाकर बैठ जाती। पति-पत्नी में अक्सर पैसों के पीछे झगड़ा हो जाता। चन्दा कहता – "तो मैं कोई राजा नहीं हूं, समझी! जो तू पांय पसारकर बैठे और मैं दर-दर मारा फिरूं?"

कहते-कहते बीड़ी सुलगा लेता। फूलो कभी-कभी रो देती। कहती—"तो तुम मुझे ब्याह कर ही क्यों लाए थे! जमाने की औरतों के तन पर बस्तर हैं, गहने हैं, यहां खाने के लाले हैं···"

चन्दा काटकर कहता—"ओह, हो। रानी बहू! बस्ती में सब ही ऐसे हैं। तू ही तो एक नहीं है। मैया की तरह राब ही तो नहीं। उनका पैसा-धेली का हिसाब तो मिट्टी में गड़ता है, यहां पेट में गचकती है मेरी कमाई, रांड़!"

फूलो कह उठती—"चलो रहने दो। भांजी भांग के परबीन गाहक तुम ही तो हो। जग के नाम धरे, अपना भी देखा? ब्याह तो मुफ्त हुआ था, नहीं तो तुम्हें कौन देता छोरी? सेंत का चन्दन, लाला तू लगा ले. और घरवालों के लगा ले।"

चन्दा विक्षुब्ध होकर बोला—"तो जा बैठ भैया के घर ही। रोकता हूं ? जमाने के मरद पड़े हैं। चली जा जहां जाना हो।"

फूलो लजाकर कहती—"अरे धीरे बोलो, धीरे, तुम्हें तो हया-सरम कुछ भी नहीं। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?"

चंदा हंस देता। और रोज-रोज की बात या तो रोने में समाप्त होती या हंसने में और दोनों काफी देर तक एक-दूसरे से बात नहीं करते, लेकिन बारह बजे रात को अपने-आप फिर दोस्ती हो जाती। चंदा द्विविधा में पड़ा रहा। फिर कन्हाई से एक भी बात नहीं कही। मन ही मन उसके वैभव को देखकर ईर्ष्या करता। कन्हाई ने एक और गधा खरीद लिया।

उस दिन जब वह सुबह चन्दा को घर पर समझकर खबर देने आया, चंदा तो था नहीं, आंगन में पसीने से लथपथ, अस्तव्यस्त कपड़ों में प्रायः खुली फूलो नाज पीस रही थी। कन्हाई ने देखा और देखता रह गया। फूलो ने मुड़कर देखा और अपना घूंघट काढ़ लिया। वक्षस्थल फिर भी जल्दी में अच्छी तरह नहीं ढंक सकी।

कन्हाई पौरी में आ गया। और फिर पूछकर लौट आया। चन्दा ने गधा खरीदने की बात सुनी और अपनी परवशता के अवरोध में फूलो से फिर लड़ बैठा। फूलो देर तक रोती रही।

प्रायः एक सप्ताह बीत गया। चंदा का मकानदार उस दिन किराया वसूल करने आया था। चंदा ने उसे लाकर आंगन में खाट पर बिठाकर उसकी खुशामद में काफी समय लगा दिया। फूलो कुछ देर प्रतीक्षा करती रही। फिर ऊबकर बाहर सड़क के नल से डोल भरकर कन्हाई के घर में घुस गई। मालूम ही था कि कन्हाई उस समय दूकान पर रहता है, घर पर नहीं।

गरीबी के घर में गुसलखाने नहीं रहते। ऊपर छत पर नहाने से बाबू लोगों के लड़के छिपकर अपने ऊंचे-ऊंचे घरों से देख लेते थे, अतः वह आंगन के एक कोने में बैठकर नहाने लगी। जूंएं तो फिर भी बीन लेगी। जब तक जेठ बाहर है तब तक जल्दी-जल्दी नहा ले। इसी समय न जाने कहां से कन्हाई आ घुसा। देखा और आंखों के सामने से बिजली कौंध गई। फूलो घुटनों में सिर छिपाकर बैठ गई। जब वह कपड़े पहनकर निकली, कन्हाई बाहर पौरी में प्रतीक्षा कर रहा था। फूलों ने देखा और बरबस ही उसके होंठों पर एक तरल मुस्कराहट फैल गई। पौरी में उजाला अधिक न था, तिस पर कन्हाई की आंखों पर चश्मा चढ़ा हुआ। वह थोड़ा ही देख सका किन्तु पुराना आदमी था। समझ काफी दूर ले गई। कहा—"बहू ! चन्दा कहां है ?"

उसके स्वर में बड़प्पन था, अधिकार; डरने का कोई कारण शेष नहीं रहा। उसने सिर झुकाकर घूंघट खींच लिया और पांव के अंगूठे से भूमि कुरेदते हुए कहा—"घर बैठे हैं।"

कन्हाई ने फिर कहा—"तो ले। लिए जा। बना लेना।"

दो ककड़ी भीतर से लाकर दे दीं हाथ में। फूलो ने घूंघट पकड़कर उठानेवाली

उंगलियों के बीच से देखा और मुस्कराती हुई ककड़ियों को डोल में रखकर चली गई।

कन्हाई कुछ सोचता-सा खड़ा रहा। चन्दा ने देखा और पूछा—"यह कहां से ले आई ?"

कन्हाई ने भी अपने आंगन से वह संदेह-भरा स्वर सुना। वह सांस रोककर प्रतीक्षा में खड़ा रहा, देखें क्या कहती है ? फूलो ने तिनककर कहा- "परसों दो आने दिए थे। तुम्हारी तरह मैं चाट उड़ाती हूं ? दारू पीती हूं ? बच रहे सो कभी-कभार खाने को जी चाह ही आता है, सो ही ले आई।"

"कहां से ? भैया की दुकान से ?" चन्दा ने फिर उपेक्षा से पूछा।

"हां ! नहीं तो ?" फूलो ने धीरे से उत्तर दिया।

"राम-राम," चन्दा का स्वर सुनाई दिया : "भइया हैं ये ? अकेले का खरच ही क्या है ? इसलिए जोड़-जोड़कर रखते हैं ? कौन है इनका ? न आगे हंसने को, न पीछे रोने को। दो ककड़ी तक नही दे सके जो फूटी आंख से देखकर दाम ले लिए ?"

फूलो ने उत्तर नहीं दिया। कुछ बुरबुराई अवश्य जिसे कन्हाई नहीं सुन सका। उसके दांतों ने क्रोध से भीतर पड़ी जीभ को काट लिया। कैसी यह दुनिया ? मतलब के साथी हैं सब। इनका पेट तो नरक की आग है। बराबर डाले जाओ, कभी भी न बुझेगी। हाथ फैलाना सीखे हैं। कभी उल्टा करना नही आया।

फिर मन एक अजीब उलझन में पड़ गया। ब्याह हुए अभी तीन महीने भी नही हुए, बहू ने यह क्या रंग कर दिए ! ठीक ही तो है। भूखा मारेगा तो क्यों मरेगी सो ? उसके तन-बदन में जोस है तो दस जगह खाएगी। ऐसी क्या बात है लाला में जो सती हो जाए। जैसा फेरा, वैसा धरेजना। वैयर तो राखे से रहेगी।

एक कुटिलता उसके होंठों पर झटका खा गई।

●●

बरसात की ऊदी घटाओं ने आकाश घेर लिया। आंगन की कीच से पांव बचाता हुआ कन्हाई भीतर आकर बैठ गया। आज रोटी बनाने का मन नही कर रहा था। उठकर दीया जला दिया और चुपचाप उसे देखता रहा। दीया भी अपनी एक आंख से ही चारों ओर के अंधकार को देखकर कांप रहा था, जैसे बार-बार उसकी पलकें झपक जाती हों। बाहर अंधेरा छा चुका था। दूर पर सड़क भी नीरव थी। कीचड़ के कारण बहुत कम लोग इधर से उधर आ-जा रहे थे।

एकाएक दालान में खड़-खड़ की कुछ आवाज हुई। कन्हाई ने शंका से पुकारकर कहा—"को है रे ?"

एक मरियल कुत्ता लकड़ियों के पीछे से निकलकर चला गया। कन्हाई झेंप गया। उठकर बाहर चला गया। निन्हू हलवाई की दूकान पर जाकर दूध पिया और लौट आया। अब कौन खाने के पीछे हाय-हाय करता ? अपना क्या है ? जो खा लिया, सो ठीक है। गिरस्ती के चक्कर हैं।

कन्हाई बिस्तर पर लेट गया। कुछ ही देर बाद उसकी औंध किसी के खिल-

खिलाकर हंमने की आवाज से टूट गई। इस व्याघात से उसका मन असन्तोष से भर गया। निश्चय ही फूलो की हंसी थी। और फिर उसने देखा, वह रात थी, घटाओंवाली रात, सनसनाती, आकाश से पृथ्वी तक फन फुफकारती, रह-रहकर लरजती। आंखों के सामने अप्रस्तुत का चित्र आया : चन्दा ! फूलो ! रात ! बिस्तर और···।

कन्हाई पशु की तरह एक बार आर्त्त स्वर से कराह उठा। बगल के घर की ध्वनियों ने उसे बेचैन कर दिया। अभी कुछ देर पहले पड़ोस की औरतों ने गाकर बन्द किया था—

'रडुआ तो रोवै आधी राति—
सुपने देखी कामिनी···'

अपमान से कन्हाई का पुरुषत्व क्षण-भर को विषधर सांप की तरह बदला लेने की स्पर्धा से भर गया। क्यों है वह आज ऐसा की बिरादरी में लोग उसके पास पैसा रहने पर भी उसकी इज्जत नही करते? सब उसे देखकर हंसते हैं। और यह चन्दा! जो कुल दस-बारह आने लाता है, उसी में गिरस्ती चलाता है, उसको न्यौता भी है, बुलावा भी है, उसके गीत भी हैं···

क्योंकि वह बिजार नही है। उसके घर है, उसकी बात है, एक गिरस्त की बात, जिसमें दुनियादारी की समझ है। उसका कोई था ही नही जो उसका ब्याह कराता। जैसे वह तो आदमी ही न था। तभी भी सब अपने-अपने में लगे थे, आज भी वही। कन्हाई व्याकुल-सा बिस्तर पर बैठ गया। आकाश में बादल गरज रहे थे। अभी उसकी आयु ही क्या थी? पैंतीसवां ही तो था। तब शहर में प्लेग फैला था, कन्हाई घुटनो चलता था। आज वह अकेला रह गया है। जैसे उसका कही कोई नही। उसके द्वार पर न सोना सरवन कुमार है न आंगन कोई लिपा-पुना ही। खुद ही जब ऊब जाता है, सोचता है घर साफ करे, किन्तु वह औरत नही है। लुगाई का एक काम करते ही आंखें फूट चली। चूल्हा फूकना लोग का काम नहीं।

क्या नही किया उसने चन्दा के लिए? क्या था उसके घर? आज तो लाला छैला बन गए है? कैसी मांग-पट्टी काढ़के फेटा बांधना आ गया है। बेटा के पास अधेली भी नहीं, बड़ा सतूना बांधा है।

उपेक्षा से उसके होंठ टेढ़े हो गए। कन्हाई को याद आया : उसके पास पैसा है। वह भी ब्याह करेगा। चन्दा तो उसे लूटे जा रहा है। उसके गधों की लीद तक उसकी अपनी नही। क्या करे वह उसका? आती है वह हरम्पा फूलो और ले जाती है बटोरकर लेकिन कौन धन जमा कर लेगी? उसके चन्दा की रोजी ही क्या है? वह तो इज्जत-दार है। परसों उसने बिन्नू की जमानत दी है। दुकान है दुकान। कैसी लड़ती है चन्दा से दिन-भर और रात को ··

कन्हाई का ध्यान फूलो पर केन्द्रित हो गया। कांसे के हैं सब। बोरला तो, कड़े तो, खंगवारी तक। वह चांदी के मढ़वा सकता है। फिर उसे वह दृश्य याद आया कि कैसे वह भीतर बिना खांसे घुस रहा था चन्दा के घर में और फूलो बैठी चक्की पीस रही

थी। यौवन का वह गदराया स्वरूप याद आते ही कन्हाई हारकर लेट गया। किन्तु वह क्यों अकेला रहे? चंदा को ऐसे सुख मे रहने का ऐसा क्या हक है? जन्म हुआ तब मे उसे कभी सुख-चैन न मिला। वह दूसरों के लिए कर-करके मरता गया और लोग-बाग अपना-अपना घर भरते गए। किसी ने यह भी नहीं पूछा कि भैया कन्हाई, तेरे भी कुछ सुख-दुख हैं? कोई नहीं। सब अपने-अपने मतलब के।

कन्हाई का चन्दा के प्रति विद्वेष मुखर हो गया। अनजाने की विरोध जाग उठा। कल उसके बच्चे होंगे, तो क्या मेरा नाम चलेगा? बूढ़ा हो जाऊंगा तो खाट की अद-मान तक कमने कोई नहीं आएगा। अपने फिर भी अपने हैं, पराया तो पराया ही रहेगा···

बादल आपस में टकरा गए। घोर वर्षा होने लगी। कन्हाई तड़पता-सा करवट बदलता रहा। सामने अन्धकार में फूलो आकर खड़ी हो गई। पुरानी घृणा ने फिर आघात किया। वह स्वयं ऐसी है नागिन। जेठ मे आंख मिलाके बात करना क्या खेल है? कैसी आती है बात-बात पर। है बड़ी रुठल्लो, बाप के घर मे उसके कुछ है नहीं, नहीं तो पीहर भाग-भाग जाती। बहू रखना भी आसान काम नही है। कही गधे ढो के आराम नही किए जाते। मैं ऐसे कब तक समझौते कराता फिरूं। चन्दा भी कोई आदमी में आदमी है?

फिर वह मुस्करा उठा।

कौन नही जानता चन्दा लुगंपिटा है। लुगाई की ठसक देखो, मालिक तो गधा है। वह चमक-चौदिम वाली, डबल बचा नही कि फौरन खोम्चा वाला बुलाया और चाट उड़ा गई।

मुझे क्या मालूम नहीं कि वह चन्दा मे बचा-बचा के खाती है, चोरी करती है।

फिर वही चंचल आंखें अंधेरे में चमक उठीं। कन्हाई के सीने पर किसी ने कटारों की जोड़ी भोंक दी। आसमान में जोर से बिजली कड़क उठी। अरे काम तो कांकर-माटी के खाने वालों को सताना है, फिर दूध-मलाई वालों की तो बात ही और है। चन्दा बेटा का गरूर तो देखो! अरे तुझे ही देखूंगा। तेरी मैया ने मेरा घर तबाह किया था।

कहीं दूर बिजली बड़ी जोर से कड़ककर गिरी। कन्हाई जगता रहा।

••

भोर हो गई लेकिन आकाश मे बादल छाए रहे। एक सन्नाटा समस्त बस्ती मे समान रूप से घहर रहा था। कभी-कभी सड़क पर भूकते कुत्तो के शोर से वह हल्की मगर घनी तह टूट जाती थी और जैसे-तैसे स्वर पीछे खिचने लगते थे कि वही निस्त-ब्धता अपना दबाव डालने लगती थी। हवा ठण्डी थी। हल्की-हल्की बूदाबांदी हो रही थी। समय काफी हो गया था। दफ्तरों और नौकरियों पर जाने वाले सवेरे अंधेरे ही अपनी तकदीर कोसते जा चुके थे। सड़क पर भी गांवों की-सी हल्की तन्द्रा छा रही थी। गली में चारों तरफ कीच ही कीच हो गई थी। कन्हाई की आंख खुल गई। उसने

सुना, आंगन में कोई औरत चल रही थी। बिछियों की हल्की आवाज उसके कानों में उतरकर दिल में समा गई। वह एकदम उठ बैठा। बाहर निकलकर देखा, फूलो चुपचाप उसके गधों की लीद जमा कर रही थी। उसको देखकर उसके शरीर में में नशा-सा फैल गया। पास जाकर कहा—"यह चोरी कर रही है बहू ?"

फूलो ने घूंघट नहीं खींचा। मुंह उठा दिया। गेहुएं रंग में दो मांसल आंखें थीं जिनमें से रात का खुमार अभी बिल्कुल मिटा नहीं था। देखा, और धीरे से बोली—"चोरी काहे की जेठजी। वे तो अंधेरे ही लदाई लिए गधा लेकर चले गए। अब बरसात भी तो लग गई है। जो हाथ लगे उसी को बटोर लूं। कंडे बना लूंगी, कुछ तो काम निकलेगा ही।"

कन्हाई प्रसन्न हुआ, किन्तु प्रकट नहीं होने दी उसने वह चंचलता। निरातुर स्वर में कहा—"क्यों ? चन्दा गिरस्ती नहीं चला पाता ?"

"अपना-अपना भाग है जेठजी। इसमें कोई क्या करे ! मरद जिसका जोग होगा, लुगाई उसकी पांय पै पांय धरके बैठेगी।"

"तुझे बड़ा दुख है बहू ?" यह प्रश्न न होकर एक वक्तव्य के रूप में एक निश्चयात्मक ध्वनि में कन्हाई के मुख से निकला, जैसे उसे स्वयं इस पर पूरा विश्वास हो और वह अपनी बात को पीछे नहीं लेगा। फूलो की आंखों में पानी भर आया। उसने मुंह फेरकर आंखें पोंछ लीं। कन्हाई ने उससे कहा—"जो चाहे मांग लिया कर मुझसे। लाज न करियो। अपना ही घर समझ। चंदा तो निखट्टू है, निरा बुद्धू; समझी ? तेरा ही है सब कुछ। खा, पी, मेरा और कौन है ?"

"ब्याह क्यों नहीं कर लेते ?" फूलो ने टोककर पूछा।

"ब्याह ?" कन्हाई ने ऊपर देखकर कहा—"ब्याह करके क्या होगा ? मेरे तो परमात्मा ने सब दिया। तू फिकर न कर। मेरे रहते कोई तेरा बाल भी बांका नहीं कर सकता। यहीं रह तो भी डर नहीं। कन्हाई का नाम बिरादरी में एक है। तेरे लिए उसका सब कुछ हाजिर है।"

फूलो ने आंख टेढ़ी करके कहा—"बिरादरी क्या कहेगी ? जात-भाई क्या कहेंगे ? मेरा बाप क्या कहेगा ? और तुम्हारे भैया की कौन सुनेगा ?"—जैसे फूलो ने सात पेड़ एक ही बार एक ही बाण से बेंधने की कड़ी शर्त सामने उपस्थित कर दी थी।

कन्हाई ने निडर होकर कहा—"बिरादरी कुछ नहीं कह सकती। हुक्का-पानी बन्द करेंगे तो जात-भाई देखेंगे कि कन्हाई बीड़ी-सिगरेट पिएगा। तेरे बाप को क्या मतलब ? वह तो एक बार पैर पूज चुका। और चन्दा की हैसियत ही क्या कि मेरे सामने खड़ा हो ? तुझमें हिम्मत होनी चाहिए।"

फूलो ने अविश्वास से पूछा—"दगा तो नहीं दोगे ? मैं कहीं की भी नहीं रहूंगी ?"

कन्हाई ने हाथ पकड़कर कहा—"सौगन्ध है गंगाजली की। परिजापती का बेटा हूं तो धोखा नहीं दूंगा। आज से तू मेरी है। यह घर अब तेरा है। उस भिखारी से तेरा

कोई नाता न रहा। रह, हुकूमत कर। मैं चंदा नहीं हूं जो मिट्टी डालने में बात-बात पर बाबू लोगों के जूते खाऊं और हंमके चुप रह जाऊं।...लौट के तो नही भागेगी ?"

"सौगन्ध है, मेरे एक बालक न हो जो तुम्हें छोड़कर जाऊं।"

कन्हाई ने आनंद के आवेश मे उसका हाथ जोर से दबा दिया और कोठे मे घुसकर द्वार बन्द कर लिया। बूंदें गिरने लगी थीं। आसमान साफ होने का नाम ही नहीं लेना था, जैसे पृथ्वी चारों ओर से घनी उसांसों पर उसांसें छोड़ रही थी।

●●

बिजली की तरह बात बस्ती के वातावरण पर कौंध गई। चन्दा ने जब लौटकर घर खाली देखा और देखा कि चूल्हा बिलकुल ठण्डा पड़ा है तब उसका माथा ठनका। सोचा शायद पीहर चली गई है। बिना किसी से कहे अपनी ससुराल चल पड़ा। दो दिन बाद जब वहां से लौटा तो पग भारी थे, हृदय में घृणा और क्रोध की भीषण आग लग रही थी। इधर कुंजी ने आते ही खबर दी —"लाला ? कहां चले गए थे रूठकर ? वह बिचारी किसके जिम्मे छोड़ गए थे ? लाचार कन्हाई ने दया की और बिचारी के दो टूक खाने का तो सिलसिला लगा !"

चन्दा के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई। सीधे जाकर कन्हाई के आंगन मे जा बैठा। फूलो ने भीतर से देखकर कहा– "क्यों आए हो ?"

"क्यों आया हूं ?" चन्दा ने तड़पकर कहा—"हरामजादी ! यहा आ गई और मैं तेरे पीछे जहान ढूंढता फिरा ?"

कन्हाई घर पर था नही। दुकान गया था, फूलो ने भीतर से ही कहा—"फिर आना, जब वे आ जाएं, और नहीं, लोग कहेंगे दिन-दहाड़े पराए मरद घर में बैठे हैं।"

चन्दा के मुंह की आवाज मुंह मे ही रह गई। क्षण-भर वह वज्राहत-सा किंकर्त्तव्य-विमूढ कुछ भी नहीं समझ सका। फिर स्वस्थ होकर कहा - "अब चल, यहा क्या कर रही है ? रोटी सेंक दे।"

फूलो निर्लज्जता से हंसी, कहा---"अब मैं तुम्हारी नहीं हू, समझे ? जब तुम्हारे भैया लौट आएं तो उनसे बात करना।"

चन्दा नही उठा। कन्हाई के घुसते ही फिर लड़ाई शुरू हो गई। जब जूता पैजार तक हो गई तब और कोई चारा न समझकर फूलो घूंघट काढ़ के दोनो के बीच मे आकर खड़ी हो गई। उस समय काफी शोरगुल सुनकर बस्ती के कितने ही बड़े-छोटे एकत्रित हो गए। बच्चों ने व्यर्थ ही युद्ध का वातावरण लाने को खूब हल्ला किया। कन्हाई और चन्दा दोनों छूट-छूटकर एक-दूसरे पर झपटते थे। चन्दा जवान था, इसी से लोग भय से उसे पकड़ लेते थे और स्वाभाविक ही था उसका अधिक क्रोधित होना। इसी बीच में कन्हाई दो-एक मार जाता था। इसी बीच-बचाव की हरकत में चन्दा काफी पिट गया क्योंकि एक चोट भी दस के बीच में बीस चोटों के बराबर है। अपमान से विह्वल होकर चन्दा रोने लगा। आंसू देखकर यद्यपि लोगों के हृदय में दयाभाव उत्पन्न हुआ किन्तु स्त्रियों ने ठिठोली कर दी। कैसा बालिक है जो जार-जार रो रहा है।

चन्दा लौट आकर बडी देर तक घर पर रोता रहा। सब जानते थे। कन्हाई से कुछ नहीं कहा। क्या सबकी आंखें फूट गई है ? बिरादरी के कान फूट गए है ? उठा और चौधरी पंच मुरली के घर की चौखट पर जा बैठा। चौधरी कहीं से सफेदी करके लौटे थे, हाथ-पैरों और गालों पर सफेद-सफेद छींटे दिखाई दे रहे थे। सुन तो चुके ही थे। फिर भी कहा—"कह, चन्दा, कैसे आया है ?"

चन्दा का गला रुंध गया। लाज ने जैसे उंगलियां गड़ा दीं। कैसे कहे कि उसके जीते-जागते लुगाई दूसरे के घर जा बैठी ? वह मरद ही क्या जिसमें इतना भी जोर नहीं कि औरत उसके कहने पर चले ? मरद तो वह कि निगाहों पर बैयर के पांव उठें। पलकें थम जाएं तो उठा कदम थम जाए। किन्तु अवरोध अधिक नहीं टिका। दौड़कर चौधरी के पांव पकड़ लिए। चौधरी ने संदिग्ध दृष्टि से देखकर गम्भीरता से पीढ़े पर बैठते हुए हुक्का संभाला और पूछा—"तो कुछ कहेगा भी कि रोए ही जाएगा ? क्या आफत टूट पड़ी ऐसी ?"

चन्दा ने कहा—"दादा, नाक कट गई। इज्जत धूल में मिल गई।"

चौधरी ने विस्मय से कहा—"अरे ! सो कैसे ?"

"बहू तो भैया के जा बैठी ?"

चौधरी को झटका लगा। पूछा—"सच ? यह कैसे ?"

"क्या बताऊं ? गरीब आदमी हूं। सुबह ही निकल जाता हूं। संझा को आता हूं, दिन-भर वह घर में रहती है, भैया रहते हैं, फुसला लिया बिचारी को। मिठाई-विठाई खिलाते रहे। अब दादा, गिरस्ती सभालने वाले का ही हाथ तंग होता है। अकेला बिजार तो सड़क पर ही खाने को पा जाता है। सो चटाने को पैसे की क्या कमी ? गरीबी तो तब है जब रोज का बोझ है ?"

चौधरी ने सुना। सिर हिलाया। कहा कुछ नहीं। चन्दा ने फिर कहा—"दादा, पंच परमेश्वरों के रहते परजापतियों में ये अधरम होगा ?"

"पंचायत बुलाएगा ?" चौधरी ने शका से पूछा, "बड़ा खरचा होगा और हारने पर दण्ड भुगतान करना पड़ेगा।"

"हारूंगा कैसे चौधरी ? मैं क्या गलत कह रहा हूं ! मेरी लुगाई है, ब्याहता है, मैं तो उल्टे रुपए लूंगा। मेरे जीते जी दूसरे के पास जा बैठी है। और छोटे की बड़े भाई के घर बैठने की कोई रीत नहीं, बड़े की छोटे के यहां बैठने की तो रीत भी है। कोई दिल्लगी है ?" चन्दा ने सिर उठाकर कहा। चौधरी ने फिर भी उत्तर नहीं दिया। उसने गम्भीरता से कहा—"तेरी मर्जी।"

चन्दा उठा चला। राह में याद आया। खरचे को पैसा कहां है ? दो महीने का तो घर का ही किराया चढ़ा हुआ है। अब तक तो कैसे भी खुशामद से काम चल गया लेकिन अबके कैसे भी मकानदार राजी नहीं होगा। कहेगा दिल्लगी हो गई ? खैर, तब ब्याह की बात थी, धेली-पैसे की बात हाथ रहा न रहा, अब उसके पास तो कुछ था नहीं। वही मजूरी के दस-बारह आने आए जो, सो उन्हीं में से चारआने खाएगा बाकी बचाएगा,.

लेकिन उससे भी कितने दिन काम चलेगा ? ऐसा क्या बच जाएगा ? फिर विचार आया अभी रुपया लगा दूंगा। एक गधा बेच दूं। पंचायत भी हो जाएगी। किराया भी चुक जाएगा और फिर तो कन्हाई को रुपये भरने ही पड़ेंगे। फिर फूलो भी नहीं रहेगी। अपने मस्ती का खरच चलेगा। और जो फूलो लौटी तो कन्हाई दण्ड भुगतान देगा और अबके फूलो से भी नौकरी करवा लूंगा। तब घर ठीक से चल पड़ेगा। अबके तो हरामजादी को जूते की नोक के नीचे रखूंगा, ऐसा कि याद करे। मैंने ही दुलार कर-करके बिगाड़ दिया उसे।

उधर कुंजी और अनेक स्त्रियों में ठिठोली हो रही थी। लजमंती ने कहा—"ऐ भैना, एक आंख का कर बैठी। दो आंखों से ऐसी क्या दुश्मनी निकली ?"

"कलदार की ठमक है बेटी, कलदार की," चम्पी ने कहा और हाथ मटकाए। कुंजी अपने ग्यारहवें बच्चे को बैठी दूध पिला रही थी जो अपने सबसे बड़े भाई से लगभग सत्ताईस बरस छोटा था। बैठे ही बैठे मुस्कराई और गा उठी—'जैसे देवरिया मलूक तैसे होते बालमाउ···'

हंसी-दिल्लगी के इस व्यापार में एक कौतूहल था, एक ईर्ष्या की अभिव्यंजना थी। सब जानते थे फूलो बदमाश थी, लेकिन चन्दा के गरीब होने के कारण किसी बात पर पक्का निर्णय नहीं ठहरता था।

शाम हो चुकी थी। अंधेरा गहरा हो गया था। बस्ती अंधेरे में डूब गई थी। किसी-किसी के ओसारे में दिया जल रहा था। औरत और मरद आंगनों में बैठे बात कर रहे थे, हुक्का पी रहे थे। औरतें रोटी बना चुकी थीं। मरद खा चुके थे। अब रात हो गई। दुनिया की रोशनी सूरज है। वही चला गया तो फिर रात से होड़ किसलिए ? कैसे हुआ यह ? रामन, फलाने का ब्याह, फलाने का दहेज आदि अनेक बातें हैं जिन पर वे बहस करते हैं और कच्चे मकानों में चुपचाप सो जाते हैं। उनके गधे चुपचाप खड़े रहते हैं, कभी सोते हैं, जागते हैं, उनके सोने-जागने का भेद भी अधिक स्पष्ट नहीं।

चौधरी पंच ने कन्हाई के घर में प्रवेश किया। उस समय कन्हाई कोठे से बाहर निकल रहा था। फौरन आगे बढ़कर कहा—"आओ दादा, आओ।"

पीढ़ा डाल दिया। हुक्का भरकर फूलो पास से ही घूंघट काढ़कर धर गई। चौधरी ने टेढ़ी आंख से उसका वह गदराया आकार देखा और हुक्के में कश मारते हुए वे सब समझ गए। कन्हाई ने इधर-उधर की बातें की। फिर उठाकर भीतर से एक चीज लाया। चौधरी ने देखा। हंसकर कहा --"अरे, इसका क्या होगा ?"

किन्तु कन्हाई ने कहा —"तो बात ही क्या है दादा ? कौन पराए हो ?"

और खोल दी ठर्रे की बोतल। "अब तो," चौधरी ने कुल्हड़ से मुंह लगाते हुए कहा —"महंगी हो गई है, हो गई है न ?"

"दादा, लड़ाई है जे। कौन महंगा नहीं हो गया है ? मैं नहीं हुआ, कि तुम नहीं हुए ? अब तो मौत का इतना खरचा नहीं, जितना जिन्दगी का।"

दोनों हंसे। हल्का नशा चढ़ चुका था और अब खोपड़ी में घोड़े की-सी टाप लगने

ही वाली थी। ठर्रे की महक में कन्हाई ने कहा -- "दादा, तुम्हारा ही भरोसा है !"

चौधरी ने झूमते हुए कहा -- "अरे, काहे की फिकर है तुझे ?" कन्हाई ने हर्ष मे कुल्हड़ फिर भर लिया और चौधरी के 'हां-हां' करते भी उनके कुल्हड़ में आधी बोतल खाली कर दी। और उसके बाद चेतना के मन पर वही अंधकार छा गया जो बाहर एकाग्रचित्त होकर तड़प रहा था।

●●

पंचायत बड़े जोर-शोर से जुडी। चारों तरफ यही एक चर्चा थी। बस्ती के सारे मरद कुम्हार आकर इकट्ठे हो गए। चौधरी चौनरे पर आ बैठे। हुक्का हाथों-हाथ घूमने लगा। चौधरी ने पहले कश लगाए और हुक्का सरका दिया। एक ओर कन्हाई खड़ा हुआ था। उसके शरीर पर सफेद अंगरखा, साफ धोती थी और सांझ होने पर भी आंखों का खोट छिपाने को हरा चश्मा लगा हुआ था। फूलो घूंघट काढ़े बैठी थी। दूसरी ओर चन्दा था। मैली धोती, मैली फितूरी और मैली ही हल्की-सी नखदार टोपी मशीन से कटे बालों पर टिपक रही थी।

चौधरी ने गम्भीरता से पूछा-- "तुमने क्या किया ?"

चन्दा ने कहा --"पंच परमेश्वर सुनें। चौधरी महाराज ने पूछा है, मैंने क्या किया ? सो कहता हूं। बड़े भैया ने छोटे की बहू घर डाल ली है। वह उसकी बेटी के बराबर है।"

चौधरी ने रोककर कहा--"सो हममे भेद नहीं है चन्दा। बड़ी जातों में बड़े की बहू मां समान है, हमारे तो यह कायदा नही। यह बामन-छत्री जात की बात है। हम तो नीच कहे गए है। और सुना !"

चन्दा का पहला बाण पत्थर से टकराया फलक टूट गया। शिकारी विह्वल हो गया। उसने फिर धनुष पर बाण निकालकर चढ़ाया। कहा --"मेरे जीते-जी दूसरी ठौर जा बैठी है। मुझे हरजाना मिल जाना चाहिए।"

चन्दा बैठ गया। पंचों के सिर हिले, कानाफूसी हुई और कोलाहल से जगह भर गई। चौधरी ने फिर कहा --"कन्हाई, बोलो तुमने लड़की को घर कैसे डाल लिया ?"

कन्हाई ने नम्रता से कहा --"चौधरी महाराज न्याय करें। घर मे भूखी नार आई। मालिक रोटी तक न जुटा सका। तब मैंने देखा, घर की बैदर डगर-डगर ठोकर खाएगी, सो कहा -- रह, तेरा घर है। मुझे कौन छाती पर बाँध के ले जाना है ?"

चौधरी ने कहा --"पंच सुनें। फूलो कहे कि कन्हाई ने ठीक कहा। क्या चन्दा के घर तुझे खाना नही मिलाता था ?"

फूलो ने स्वीकार किया। चौधरी ने कहा --"पंच बताएं। लुगाई तब तक ही रहेगी जब तक मरद खाना देगा, भूखी मरने को तो नही ?"

"नही," पंचों ने एक स्वर उत्तर दिया।

कन्हाई ने फिर कहा-- "चन्दा के फूलो के बाप ने जब ठौर कर दी, तो चन्दा ने वादे के जेवर नहीं दिए।"

चन्दा गरजकर बोला— "यह झूठ है, मैंने कोई वादाखिलाफी नहीं की।"

चौधरी ने रोककर कहा—"फूलो, बता कि किसने ठीक कहा ?"

फूलो ने फिर इंगित से कन्हाई की बात को ठीक साबित किया।

चन्दा घृणा से विक्षुब्ध हो गया। चौधरी ने कहा —"और तो बात साफ हो गई। जैसे बड़े की छोटे ने की तैसी छोटे की बड़े ने की। जेवर नहीं दिए, वादाखिलाफी की, रोटी नहीं दी सो वह क्यों रहती ? पंच बताएं, किसका कसूर है ?"

पंच फिर परामर्श करने लगे।

चन्दा ने उठकर कहा— "पंच परमेश्वर की दुहाई। चौधरी भगवान के औतार हैं। मैं गरीब हूं; जैसी रूखी-सूखी मैंने खाई, तैसी उसे खिलाई। घर-गिरस्ती के मरद के पीछे लुगाई चलती है। बताएं मैंने क्या दोस किया ?"

फिर पंच विचार में पड़ गए। चौधरी ने सबके शान्त होने पर फिर कहा—"चन्दा रुपये मांगता है कि उसके जीते-जी बहू ने दूसरी ठौर कर ली। अगर उसने दूसरा ब्याह करके फूलो को छोड़ा होता तो जब तक फूलो दूसरी ठौर नहीं कर लेती तब तक उसका महीना उसे बांधना पड़ता। सदा की रीत है कि चन्दा को रुपया मिलना चाहिए। पचों का न्याय हो ? भूखी मारी या न मारी, वह खुद गरीब है। बेटी बाप ने देते बखत क्यों नहीं सोचा। जैसा खुद खाया तैसा उसे खिलाया। लेकिन ब्याहता है उसकी फूलो। फूलो रजामन्द नहीं कि ब्याह करके जन्म-भर भूखी मरे। वह ठौर छोड़ गई। जो खाने को दे, जो पालन करे, वही भरतार। पंच कहें। रुपया लेने का चन्दा को हक है या नहीं ?"

फिर कोलाहल मच उठा। चौधरी ने तो जैसे हाथ धो लिए। उन्हें अब निर्णय को दुहराकर सुना देना था। फूलो अभी तक चुप खड़ी थी। बाजी कमजोर पड़ रही थी। उसे यह असह्य था। इससे तो वह कुलटा साबित हो जाएगी। बैठ गई सो बुरा नहीं, पर यह रुपया देना तो भुगतान है। उसने भरी पंचायत में आगे बढ़कर कहा —"चौधरी भगवान हैं। पंच परमेसुर है। लुगाई मरद की है, मगर जो मरद ही न हो, उसकी कोई लुगाई नहीं है।"

सबने विस्मय से सुना। सच, ठीक कहा था। ब्याह हो जाने से ही क्या ? पुरुषार्थहीन पुरुष को कोई अधिकार नहीं कि वह स्त्री को दास बनाकर रखे।

पंचायत उठ गई। चन्दा पर पच्चीस रुपये दण्ड लगाए गए जो रोष में उसने वहीं फेंक दिए और हारकर लौट आया। आज उसे कहीं मुंह तक दिखाने की जगह न थी। अब उसका कहीं ब्याह नहीं हो सकता। भरी पंचायत में फूलो ने उसकी टोपी उछालकर पैरों तले कुचल दी थी। यह ऐसी बात थी जिसमें फूलो की बात अंतिम निर्णय थी।

कन्हाई फूलो को लेकर लौट आया और रात को कन्हाई और चौधरी ने फिर से ठर्रे की बोतलें खोलीं और दोनों मस्त होकर पीने लगे। जब बहुत रात हो गई तब चौधरी लड़खड़ाते हुए चले गए। फूलो चुपचाप बैठी थी। वह न जाने क्या सोच रही

थी। और कन्हाई नशे से आंगन में औंधा पड़ा था।

दूसरे दिन शाम को मकानदार ने चन्दा का किवाड़ खटखटाया। चन्दा ने चुपचाप उसके हाथ पर किराया रख दिया। वह झूम रहा था। उसके मुंह से दारू की बू आ रही थी। मकानदार चुपचाप लौट गया।

चन्दा लौटकर पीने लगा और बकने लगा --"बेटा कन्हाई, छिनाल तो छिनाल ही रहेगी। कुत्ते की पूछ क्या सीधी हुई है ? तेरी बहार भी कै दिन की है ? बेटा अब गिरस्ती पड़ी है, अब दो दिन बाद तेरे भी खरचे देखूंगा। हाथ-पांव ढीले हो जाएंगे, पर मैं करूंगा मजे बेटा ! चटाने को तो मेरे पास भी पैसे हो जाएंगे, समझा ? भगवान समझेगा तुमसे, पापी !"

और वह देर तक बकता रहा, जोर-जोर से सुनाकर बकता रहा। कन्हाई ने सुना और संदिग्ध दृष्टि से फूलो की ओर देखा। उसका हृदय भीतर ही भीतर कांप उठा। फूलो समझ गई। चूनर के कोने में बंधे बीस रुपये खोल लिए। पांच पंचायत में लग गए। बीसों रुपये आंगन में खड़े होकर चन्दा के आंगन में बीच की जैर पर से फेंक दिए और कहा -- "भूखा मत मर। तेरे धन से सुरग नहीं जाऊंगी। समझा ? ऐसे चटाने को बड़ा मक्खी का छत्ता लगा रखा है न ?"

कन्हाई ने सुना, रुपये चन्दा के आंगन में खन्न करके गिरे और बिखर गए, किन्तु चन्दा उस समय नशे में बेहोश पड़ा था। उसे कुछ भी मालूम नहीं पड़ा।

फूलो आगे बढ़ आई, गर्व से कन्हाई की ओर देखा और चंचल हंसी बरबस ही अंग-अंग को गुदगुदाती उसके होंठों पर कांप गई। कन्हाई ने सिर झुका दिया। उसने मन ही मन अनुभव किया, फूलो बहुत जवान थी और वह भाटे पर था।

['हंस', अगस्त '45]

गूंगे

"शकुन्तला क्या नहीं जानती ?"

"कौन ? शकुन्तला ! कुछ भी नहीं जानती।"

"क्यों साहब ? क्या नही जानती ? ऐमा क्या काम है जो वह नहीं कर सकती ?"

"वह उस गूंगे को नही बुला सकती।"

"अच्छा बुला दिया तो ?"

"बुला दिया !"

बालिका ने एक बार कहनेवाली की ओर द्वेष से देखा और चिल्ला उठी—"दूं दे !"

गूंगे ने नहीं सुना। तमाम स्त्रियां खिलखिलाकर हंस पड़ीं। बालिका ने मुह छिपा लिया।

जन्म से वज्र बहरा होने के कारण वह गूंगा है। उसने अपने कानों पर हाथ रखकर इशारा किया। सब लोगों को उसमें दिलचस्पी पैदा हो गई, जैसे तोते को राम-राम कहते सुनकर उसके प्रति हृदय में एक आनन्द-मिश्रित कुतूहल उत्पन्न हो जाता है।

चमेली ने अंगुलियों से इंगित किया—"फिर ?"

मुंह के आगे इशारा करके गूंगे ने बताया—"भाग गई।" कौन ? फिर समझ में आया। जब छोटा ही था तब 'मां' जो घूंघट काढ़ती थी, छोड़ गई। क्योंकि 'बाप', अर्थात् बड़ी-बड़ी मूंछें, मर गया था। और फिर उसे पाला है—किसने ? यह तो समझ में नहीं आया, पर वे लोग मारते बहुत हैं।

करुणा ने सबको घेर लिया। वह बोलने की कितनी जबर्दस्त कोशिश करता है ! लेकिन नतीजा कुछ नहीं, केवल कर्कश कांय-कांय का ढेर। अस्फुट ध्वनियों का वमन, जैसे आदिम मानव अभी भाषा बनाने में जी-जान से लड़ रहा हो।

चमेली ने पहली बार अनुभव किया कि यदि गले में काकल तनिक ठीक नहीं हो तो मनुष्य क्या से क्या हो जाता है। कैसी यातना है कि वह अपने हृदय को उगल देना चाहता है किन्तु उगल नहीं पाता।

सुशीला ने आगे बढ़कर इशारा किया—मुंह खोल ! और गूंगे ने मुंह खोल दिया। लेकिन उसमें कुछ दिखाई नहीं दिया। पूछा, गले में कौआ है ? गूंगा समझ गया।

इशारे से ही बता दिया —किसी ने बचपन में गला साफ करने की कोशिश में काट दिया। और वह ऐसे बोलता है जैसे घायल पशु कराह उठता है, शिकायत करता है जैसे कुत्ता चिल्ला रहा हो और कभी-कभी उसके स्वर में ज्वालामुखी के विस्फोट की-सी भयानकता थपेड़े मार उठती है। वह जानता है कि वह सुन नहीं सकता और बताकर मुस्कराता है। वह जानता है कि उसकी बोली को कोई नहीं समझता फिर भी बोलता है।

सुशीला ने कहा—"इशारे गजब के करता है। अक्ल बहुत तेज है।" पूछा—"खाता क्या है, कहां से मिलता है?"

वह कहानी ऐसी है जिसे सुनकर सब स्तब्ध बैठे हैं। हलवाई के यहां रातभर लड्डू बनाए हैं; कढ़ाई मांजी है, नौकरी की है, कपड़े धोए हैं, सबके इशारे हैं, लेकिन—

गूंगे का स्वर चीत्कार में परिणत हो गया। सीने पर हाथ मारकर इशारा किया—हाथ फैलाकर कभी नहीं मांगा, भीख नहीं लेता; भुजाओं पर हाथ रखकर इशारा किया—मेहनत का खाता हूं, और पेट बजाकर दिखाया इसके लिए, इसके लिए···

अनाथाश्रम के बच्चों को देखकर चमेली रोती थी। आज भी उसकी आंखों में पानी आ गया। वह सदा से ही कोमल है। सुशीला से बोली—"इसे नौकर भी तो नहीं रखा जा सकता।"

पर गूंगा उस समय समझ रहा था। वह दूध ले आता है। कच्चा मंगाना हो थन काढ़ने का इशारा कीजिए; औटा हुआ मंगाना हो, हलवाई जैसे एक बर्तन से दूध दूसरे बर्तन में उठाकर डालता है, वैसी बात कहिए। साग मंगाना हो गोल-गोल कीजिए या लम्बी उंगली दिखाकर समझाइए···और भी···और भी···

और चमेली ने इशारा किया—हमारे यहां रहेगा?

गूंगे ने स्वीकार तो किया किन्तु हाथ से इशारा किया—क्या देगी? खाना?

हां, चमेली ने सिर हिलाया।

कुछ पैसे?

चार उंगलियां दिखा दी। गूंगे ने सीने पर हाथ मारकर जैसे कहा—तैयार है। चार रुपये।

सुशीला ने कहा—"पछताओगी। भला यह क्या काम करेगा?"

"मुझे तो दया आती है बेचारे पर," चमेली ने उत्तर दिया—"न हो बच्चों की तबीयत बहलेगी।"

घर पर बुआ मारती थी, फूफा मारता था, क्योंकि उन्होंने उसे पाला था। वे चाहते थे कि बाजार में पल्लेदारी करे, बारह-चौदह आने कमाकर लाए और उन्हें दे दे, बदले में वे उसके सामने बाजरे और चने की रोटियां डाल दें। अब गूंगा घर भी नहीं जाता। यहीं काम करता है। बच्चे चिढ़ाते हैं। कभी नाराज नहीं होता। चमेली के पति

सीधे-सादे आदमी हैं। पल जाएगा बेचारा, किन्तु वे जानते हैं कि मनुष्य की करुणा की भावना उसके भीतर गूंगेपन की प्रतिछाया है, जब वह बहुत कुछ करना चाहता है, किन्तु कर नहीं पाता। इसी तरह दिन बीत रहे हैं।

चमेली ने पुकारा—"गूंगे ?"

किन्तु कोई उत्तर नहीं आया, उठकर ढूंढ़ा—कुछ पता नहीं लगा।

बसंता ने कहा—"मुझे तो कुछ नहीं मालूम।"

"भाग गया होगा," पति का उदासीन स्वर सुनाई दिया। सचमुच वह भाग गया था। कुछ भी समझ में नहीं आया। चुपचाप जाकर खाना पकाने लगी। क्यों भाग गया ! नाली का कीड़ा ? एक छत उठाकर सिर पर रख दी, फिर भी मन नहीं भरा। दुनिया हंसती है, हमारे घर को अब अजायबघर का नाम मिल गया है···किसलिए···

जब बच्चे और वह भी खाकर उठ गए तो चमेली बची रोटियां कटोरदान में रखकर उठने लगी। एकाएक द्वार पर कोई छाया हिल उठी। वह गूंगा था। हाथ से इशारा किया - भूखा हूं।

"काम तो करता नहीं, भिखारी।" फेंक दीं उसकी ओर रोटियां। रोष में पीठ मोड़कर खड़ी हो गई। किन्तु गूंगा खड़ा रहा। रोटियां छुईं तक नहीं। देर तक दोनों चुप रहे। फिर न जाने क्यों गूंगे ने रोटियां उठा लीं और खाने लगा। चमेली ने गिलासों में दूध भर दिया। देखा, गूंगा खा चुका है। उठी और हाथ में चिमटा लेकर उसके पास खड़ी हो गई।

"कहां गया था ?" चमेली ने कठोर स्वर से पूछा।

कोई उत्तर नहीं मिला। अपराधी की भांति सिर झुक गया। सड़ से एक चिमटा उसकी पीठ पर जड़ दिया। किन्तु गूंगा रोया नहीं। वह अपने अपराध को जानता था। चमेली की आंखों से दो बूंदें जमीन पर टपक गईं। तब गूंगा भी रो दिया।

और फिर यह भी होने लगा कि गूंगा जब चाहे भाग जाता, फिर लौट आता। उसे जगह-जगह नौकरी करके भाग जाने की आदत पड़ गई थी। और चमेली सोचती कि उसने उस दिन भीख ली थी या ममता की ठोकर को निस्संकोच स्वीकार कर लिया था ?

बसंता ने कसकर गूंगे के चपत जड़ दी। गूंगे का हाथ उठा और न जाने क्यों अपने आप रुक गया। उसकी आंखों में पानी भर आया और वह रोने लगा। उसका रुदन इतना कर्कश था कि चमेली को चूल्हा छोड़कर उठ आना पड़ा। गूंगा उसे देखकर इशारों से कुछ समझाने लगा। देर तक चमेली उससे पूछती रही। उसकी समझ में इतना ही आया कि खेलते-खेलते बसंता ने उसे मार दिया था।

बसंता ने कहा—"अम्मां ! यह मुझे मारना चाहता था।"

"क्यों रे ?" चमेली ने गूंगे की ओर देखकर कहा। वह इस समय भी नहीं भूली थी कि गूंगा कुछ सुन नहीं सकता। लेकिन गूंगा भाव-भंगिमा से समझ गया। उसने

चमेली का हाथ पकड़ लिया। एक क्षण को चमेली को लगा जैसे उसी के पुत्र ने आज उसका हाथ पकड़ लिया था। एकाएक घृणा से उसने हाथ छुड़ा लिया। पुत्र के प्रति मंगलकामना ने उसे ऐसा करने को मजबूर कर दिया।

कहीं उसका भी बेटा गूंगा होता वह भी ऐसे ही दुख उठाता। वह कुछ भी नहीं सोच सकी। एक बार फिर गूंगे के प्रति हृदय में ममता भर आई। वह लौटकर चूल्हे पर जा बैठी, जिसमें अन्दर आग थी, लेकिन उसी आग से वह सब पक रहा था जिससे सबसे भयानक आग बुझती है—पेट की आग, जिसके कारण आदमी गुलाम हो जाता है। उसे अनुभव हुआ कि गूंगे में बसंता से कहीं अधिक शारीरिक बल था। कभी भी गूंगे की भांति शक्ति से बसंता ने उसका हाथ नहीं पकड़ा था। लेकिन फिर भी गूंगे ने अपना उठा हाथ बसंता पर नही चलाया।

रोटी जल रही थी। झट से पलट दी। वह पक रही थी; इसी से बसंता बसंता है···गूंगा गूंगा है···

चमेली को विस्मय हुआ। गूंगा शायद यह समझता है कि बसंता मालिक का बेटा है, उस पर वह हाथ नही चला सकता। मन ही मन थोड़ा विक्षोभ भी हुआ, किन्तु पुत्र की ममता ने इस विषय पर चादर डाल दी। और फिर याद आया, उसने उसका हाथ पकड़ा था। शायद इसीलिए कि उसे बसंता को दण्ड देना ही चाहिए, यह उसको अधिकार है···।

किन्तु वह तब समझ नहीं सकी, और उसने सुना गूंगा कभी-कभी कराह उठता था। चमेली उठकर बाहर गई। कुछ सोचकर रसोई में लौट आई और रात की बासी रोटी लेकर निकली।

"गूंगे!" उसने पुकारा।

कान के न जाने किस पर्दे में कोई चेतना है कि गूंगा उसकी आवाज को कभी अनसुना नही कर सकता; वह आया। उसकी आंखों में पानी भरा था जैसे उनमें एक शिकायत थी, पक्षपात के प्रति तिरस्कार था। चमेली को लगा कि लड़का बहुत तेज है। बरबस ही उसके होंठों पर मुस्कान छा गई। कहा—"ले खा ले।"—और हाथ बढ़ा दिया।

गूंगा इस स्वर की, इस सबकी उपेक्षा नहीं कर सकता। वह हंस पड़ा। अगर उसका रोना एक अजीब दर्दनाक आवाज थी तो यह हंसना और कुछ नहीं—एक अचानक गुर्राहट-सी चमेली के कानों में बज उठी। उस अमानवीय स्वर को सुनकर वह भीतर ही भीतर कांप उठी। यह उसने क्या किया था? उसने एक पशु पाला था जिसके हृदय में मनुष्यों की-सी वेदना थी।

घृणा से विक्षुब्ध होकर चमेली ने कहा—"क्यों रे तूने चोरी की है?"

गूंगा चुप हो गया। उसने अपना सिर झुका लिया। चमेली एक बार क्रोध से कांप उठी, देर तक उसकी ओर घूरती रही। सोचा—मारने से यह ठीक नहीं हो

सकता। अपराध को स्वीकार कराके दण्ड न देना ही शायद कुछ असर करे। और फिर कौन मेरा अपना है। रहना हो तो ठीक से रहे, नहीं तो फिर जाकर सड़क पर कुत्तों की तरह जूठन पर जिन्दगी बिताए, दर-दर अपमानित और लांछित···।

आगे बढ़कर गूंगे का हाथ पकड़ लिया और द्वार की ओर इशारा करके दिखाया—निकल जा !

गूंगा जैसे समझा नही। बड़ी-बड़ी आंखों को फाड़े देखता रहा। कुछ कहने को शायद एक बार होंठ भी खुले किन्तु कोई स्वर नहीं निकला। चमेली वैसे ही कठोर बनी रही। अबके मुंह से भी साथ-साथ—"जाओ, निकल जाओ। ढंग से काम नहीं करना है तो तुम्हारा यहां कोई काम नहीं। नौकर की तरह रहना है तो रहो, नहीं बाहर जाओ। यहां तुम्हारे नखरे कोई नही उठा सकता। किसी को भी इतनी फुर्सत नहीं है। समझे ?"

और फिर चमेली आवेश में आकर चिल्ला उठी---"मक्कार, बदमाश ! पहले कहता था भीख नहीं मांगता, और सबसे भीख मांगता है। रोज-रोज भाग जाता है, पत्ते चाटने की आदत पड़ गई है। कुत्ते की दुम क्या कभी सीधी होगी ? नहीं। नहीं रखना है हमें, जा, तू इसी वक्त निकल जा···।"

किन्तु वह क्षोभ, वह क्रोध, सब उसके सामने निष्फल हो गए, जैसे मन्दिर की मूर्ति कोई उत्तर नहीं देती, वैसे ही उसने भी कुछ नहीं कहा। केवल इतना समझ सका कि मालकिन नाराज है और निकल जाने को कह रही है। इसी पर उसे अचरज और अविश्वास हो रहा है।

चमेली अपने-आप लज्जित हो गई। कैसी मूर्खा है वह ! बहरे से जाने क्या-क्या कह रही थी ? वह क्या कुछ सुनता है ?

हाथ पकड़कर जोर से एक झटका दिया और उसे दरवाजे के बाहर धकेलकर निकाल दिया। गूंगा धीरे-धीरे चला गया। चमेली देखती रही।

करीब घंटे-भर बाद शकुन्तला और बसंता दोनों चिल्ला उठे—"अम्मां ! अम्मां ! !"

"क्या है ?" चमेली ने ऊपर ही से पूछा।

"गूगा···" बसंता ने कहा। किन्तु कहने के पहले ही नीचे उतरकर देखा – गूंगा खून से भीग रहा था। उसका सिर फट गया था। वह सड़क के लड़कों से पिटकर आया था, क्योंकि गूंगा होने के नाते वह उनसे दबना नहीं चाहता था···दरवाजे की दहलीज पर सिर रखकर वह कुत्ते की तरह चिल्ला रहा था···।

और चमेली चुपचाप देखती रही, देखती रही कि इस मूक अवसाद में युगों का हाहाकार भरकर गूज रहा है।

और ये गूंगे···अनेक-अनेक हो संसार में भिन्न-भिन्न रूपों में छा गए हैं, जो कहना चाहते हैं पर कह नही पाते। जिनके हृदय की प्रतिहिंसा न्याय और अन्याय को परख कर भी अत्याचार को चुनौती नही दे सकती, क्योंकि बोलने के लिए स्वर होकर भी—स्वर में अर्थ नही है, क्योंकि वे असमर्थ हैं।

और चमेली सोचती है, आज दिन ऐमा कौन है जो गूंगा नहीं है। किमका हृदय समाज, राष्ट्र, धर्म और व्यक्ति के प्रति विद्रेष से, घृणा से नहीं छटपटाता, किन्तु फिर भी कृत्रिम सुख की छलना अपने जाल में उसे नही फांम देती-- क्योंकि वह स्नेह चाहता है, समानता चाहता है !

['आजकल', दिसम्बर '45]

आदमी

पाल्यन ने उधर-इधर देखकर चुपचाप कौड़ियां के घर में झांका। बूढ़ा शायद सो रहा था घर के भीतर धुंधला दीपक जल रहा था। कुछ भी नहीं दीखा। दीखने का अर्थ था कौड़ियां परयन् की लड़की चिन्नी का दीख जाना। पाल्यन हताश-सा लौट आया। एक भूली हुई कसक हृदय के भीतर ही जाग उठी। जाकर सड़क के किनारे उस टूटी डौरी पर बैठ रहा। घर में भी कौन है, जो फिर वहीं जा मरे? दिन-भर क्या काम करने को काफी नहीं है?

एकाएक पण्ढार ज्योतिषी जाता हुआ दिखाई दिया। बूढ़े का इधर-उधर नाम था। बड़े-से-बड़ा और छोटे-से-छोटा सब उनसे भविष्य के बारे में पूछते थे। पण्ढार के हाथ में यश था। जो बात उसने बताई, अक्सर सच निकली। पाल्यन उसे देखकर आतुर-सा पुकार उठा। पण्ढार ने निकट आकर उसकी ओर देखा और कहा—"क्या है रे?"

"स्वामी एक बात पूछना चाहता हूं।"

"कह तो।"

"मेरा ब्याह कब होगा?"

पण्ढार ने घूरकर देखा और कहा—"तुझे पैसे की कमी है?"

"है, महाराज!"—अवरुद्ध कण्ठ से पाल्यन ने कहा, और वह अपने-आप कांप उठा।

वृद्ध ने युवक की आतुरता देखी और कहा—"अभी दो महीने ठहर जा।"

पाल्यन समझ गया। बिना पैसे के बात ज्योतिषी के मुंह में ऐसे बार-बार अटक जाया करती है, जैसे पथरीली भूमि पर बालक ठोकर खा-खाकर गिरता हुआ चलने का प्रयत्न करता है। उसने अपनी गुड्डै (तहमद) की अंटी में से एक चवन्नी निकाली और पण्ढार के हाथ पर रखकर कहा—"स्वामी, मेरा मनोरथ पूरा होगा?"

पण्ढार ने कुछ देर सोचा और कहा—"अभी देर है, बालक! कुछ ठहर जा।"

वृद्ध के चले जाने पर पाल्यन का हृदय एक बार सामने खड़े नारियल के पेड़ की तरह ऊंचा होता चला गया और दूर···। उसमें नारियल-से लग गए, जिन्हें वह सरलता से कभी भी नहीं तोड़ सकता और जिनके गिरने से नीचे रहने वाले व्यक्ति के सिर फट जाने की आशंका रहती है।

पाल्यन उदास होकर उठा। राह में उसने देखा, दो पोली परस्पर झगड़ रहे थे।

उन्हें देखकर वह घृणा से भर जाता है। आवारे ! दिन-भर सोना, रात को सोना ! जिन्दगी में कभी भी इन लोगों को कोई काम नही। बड़े घरानों के लोग बाहर जहां कूड़ा डालते हैं, वहीं अपने खाने की जूठन फेंक जाते हैं। पोली उस जूठन पर कुत्ते की तरह टूट पड़ते हैं, परस्पर लड़ते हैं और फिर उसी जूठन को खा-खाकर हट्टे-कट्टे हो जाते हैं। कोई-कोई तो वेश्या के दरवाजे पर पड़े रहते हैं। पाल्यन अपनी बात भूलकर उनके विषय में घृणा से विषाक्त हो गया। जब वह घर पहुंचा, रात बहुत बीत गई थी। सुबह काम पर जाना है, सोचकर वह और कुछ न कर चुपचाप चटाई पर लेट रहा।

2

घर के द्वार पर केले के पत्ते बांधे गए। घट स्थापित हुए। एक नही, अनेक स्त्रियों- सुब्बी, काताई, मरताई, करपाई, कुप्पी, रामाई—ने उसका शृंगार किया। फिर गानों की ध्वनि से घर गूजने लगा।

[illegible] का गुरु वल्लूव पण्डार द्वार पर आ बैठा। वह कभी ब्याह कराते समय भी उनके घर में नही घुसता। अत: उनकी शादियां द्वार पर ही होती हैं। एक नही, दो नहीं, अनेक पीढ़ियों से यही होता चला आ रहा है। उस दिन परयन् लोगों ने भी गुड्डै खोलकर कच्छ लगाए और रात-भर के लिए पाल्यन भी ब्राह्मण हो गया। शाम को उसने जनेऊ पहना और तिलक लगाकर मन्त्रोच्चारण किया। चिन्नी के गले में ताली (तिर-मंगल्यम) बांधा गया। उच्च जातियों के सुहाग-चिह्न का उसे एक रात-मात्र का अधिकार था।

विवाह हो गया। सुबह ही जनेऊ और ताली उतारकर फेंक दिए गए। पाल्यन ने एक बार स्नेह से चिन्नी की ओर देखा। दोनों का नीला-काला मिश्रित रंग था। दोनों मुस्कराए। गालों पर स्वाभाविक लाली आई; किन्तु अजीब बैंगनी रंग के रूप में प्रतिबिम्बित हुई।

पाल्यन घर लौट आया। चिन्नी भी आ गई। घर बस गया। जैसे सब-कुछ बदल गया। अब पाल्यन को किसी से मिलने की फुर्सत नहीं रही। अब वह कभी शिकायत नही करता कि मालिक बहुत तंग करता है। चिन्नी जीवन का अनूठा केन्द्र बन गई। तोप्लां और वीरन् जब कभी कोई जरूरत पड़ती है, घर ही आ जाते हैं।

अब पाल्यन पहले की तरह इधर-उधर चक्कर नही मारता। काश, आज मां-बाप होते, तो बेटे को भरा-पूरा पाकर कितना सुख पाते ! और पाल्यन चिन्नी को सुनाता—कैसे वह अनाथ होकर दर-दर ठोकरें खाता, नौकरियां करता फिरा ! कितने-कितने दु:ख नहीं उठाए उसने ! और चिन्नी एक बार वेदना से रोती, फिर प्यार से आंसू-भरी आंखों को लेकर मुस्कराती।

3

चिन्नी ने ढेर सारा चावल लाकर पत्ते पर परोस दिया और अलग खड़ी हो

गई। पाल्यन मन-ही-मन कुढ़ा। बोला—"बस, और कुछ नहीं?"

चिन्नी ने कहा—"बगल में ही तो नारियल रखे हैं।"

पाल्यन मुस्कराया। उठाकर एक नारियल जमीन पर जोर से मारा। खोपड़ा फट गया। रस टपकने लगा, तब उसे उठाकर चावल पर सान लिया। वह गरी को साग की तरह लगा-लगाकर खाने लगा। खाने के बाद हाथ धोकर उसने कहा—"चिन्नी, कल तक यह घर मुझे काटे खाता था। आज तो दुनिया ही बदल गई है।"

केले के पत्ते को बाहर फेंककर तब तक वह लौट आई थी। चिन्नी मुस्कराई। उसके हृदय में भविष्य की आशाएं थीं। इसी समय किसी ने द्वार पर झांका।

"कौन है?"—पाल्यन ने पान खाते-खाते पूछा।

"मैं हूं।"—शब्द सुनाई दिया।

पाल्यन जाकर वाशतिराणं पर खड़ा हो गया। देखा, शिन्नपैयन पोन्नी था। घृणा से मन फिर फुफकार उठा। बोला—"क्या है?"

शिन्नपैयन ने कहा—"अब तो जूठन भी नही डालते। ब्याह हो गया, तब से ऐसे कंजूस हो गए हो?"

पाल्यन ठहाका मार कर हंस पडा। उसने तीखे स्वर में कहा—"जूठन बड़े घर के लोग डालते हैं। हम लोग तो स्वयं मुश्किल से पेट-भर खा पाते हैं। उधर ही जाया करो, समझे?"

पोली ने कहा—"ब्राह्मण तो धीरे-धीरे यह प्रथा बन्द करते जा रहे हैं। तुम क्यों अपने यश को भुला देना चाहते हो?"

पाल्यन ने तीखे स्वर को और तीखा बनाकर कहा—"मेहनत क्यों नही करते? कुत्तों की तरह जीवन बिताते हो और अपने-आपको सुखी समझते हो?"

पोली ने चिढ़कर कहा—'तुम नीच जात! कोल्हू के बैल, दूसरों के दास! समझते हो, सारा तेल तुम्हारा ही है?'

पाल्यन का हृदय विक्षुब्ध हो गया। एकदम चीख उठा—"कुत्ते! जूठन से पेट भरने वाले! हम तो जैसा परमात्मा ने पैदा किया है, वैसे रहते हैं। जितनी चादर है, उससे बाहर पैर नही पसारते। तुम्हारी तरह जानवर नही, आदमी हैं।"

"आदमी बनने का ढोंग है मूर्ख, तभी तो तुम हमसे भी गए-बीते हो। अरे, हम भिखारी नहीं हैं, तुम्हारी तरह दास नहीं हैं, समझे? आदमी का गुण नही, भगवान का गुण मानते हैं। उसने मुंह दिया है, वही उसे भरता भी है।"

पाल्यन के तिक्त अधर भीतर की ओर मुड़ गए और बलात् उसके मुंह से निकल गया—"हरामी पिल्ले!"

पोली ठहाका मारकर हंसा और चला गया। पाल्यन लौट कर भीतर गया। वह उदास था। चिन्नी ने कहा—"ब्राह्मण इन्हें न दें, वे तो समर्थ हैं; लेकिन हम क्या इनके शाप को सह सकेंगे?"

पाल्यन ने धीरे से कहा—"लेकिन चिन्नी, इतनी आमदनी कहां है, जो अब

जूठन भी फेंका करें ?"

4

शाम हो गया थी। अंधेरा छाने लगा था। ऊंची जातियों के मुहल्ले में वीणा लेकर गाने वाले ब्राह्मण साधु का सुरीला शब्द गूंज रहा था। उस स्वर को सुनकर औरतें चावल लेकर निकलती थीं और उसके झोले में डाल जाती थीं।

पाल्यन घर लौट रहा था। एकाएक ठिठक गया। ताल के पीछे झाड़ियों में कुछ चमक रहा था। बढ़कर देखा, शिन्नपैयन हाथ में अरिया लिए पड़ा है। वह प्राणहीन था! पास से ही उसकी कैसे बदबू उड़ रही थी; किन्तु मरने के बाद भी वह उस अरिया को खाना चाहता था, क्योंकि वह भूखा था।

पाल्यन ने देखा और घर आकर उसने चिन्नी के हाथ से चावल लेकर भीतर छिपा लिया। कहीं कोई उससे उसे छीन न ले। चिन्नी भयातुर-सी पाल्यन से चिपक गई।

['विशाल भारत', जनवरी '46]

विडंबना

लखनऊ मे गाड़ी शाम को चली। इतनी भीड़ थी कि मनमोहन को हिलने की भी जगह नही मिली। डिब्बे में लोग या तो गांधी जी की बात करते थे या औरतों की। और जैसे जितने विषय हैं वे उनके अपने हैं, उन्हें छूना सभ्यता के विरुद्ध है।

डिब्बे में बैठे-बैठे मनमोहन को लगा जैसे सांझ का धुंधला प्रकाश रात के निविड़ अंधकार में तेजी से घुसता चला जा रहा है। भीतर कितनी गर्मी थी। प्राणों में कसक उठती है, मन बचना चाहता है, किन्तु खिड़की से बाहर झांकने तक की कोई राह नहीं। भीतर घुप्प अंधेरा छा रहा है। लोगों ने खिड़कियों पर पीठें अड़ा रखी हैं। दरवाजों के सामने बड़े-बड़े बक्सों के ढेर पर एक न एक आदमीनुमा जानवर बैठा ही है जो जरा-सा छूते ही काटने को दौड़ पड़ता है, मनमोहन निराश होकर देखता है। कुछ भी नहीं दीखता। बातें हो रही हैं। किन्तु मन नहीं लगता।

"कहां जा रहे हैं आप ?"

प्रश्नकर्ता ने उस उबा देने वाले सन्नाटे को तोड़कर मनुष्य बनने का प्रयत्न किया है। पशु भी साथ रहते हैं, किन्तु परस्पर बोलते नहीं। इनमें से किसकी अपनी व्यथाएं नहीं। किसकी हड्डियों में तपिश का जहर नहीं लेकिन सब हंसते हैं जैसे हंसी का सफेद झूठ सारे जीवन की घोर कालिमा को ढांक लेगा।

उत्तर दो-तीन व्यक्तियों ने एकसाथ दिया। अंधकार में यह निश्चय नहीं हो सका कि किससे प्रश्न पूछा गया था। वास्तव में किससे प्रश्न हुआ है जो कोई भी उत्तर दे सके। इस भ्रम का उत्तर था कोलाहल।

मनमोहन ने एक लम्बी सांस खीची और धोती उठाकर पसीना पोंछा। बगल-वाले व्यक्ति ने तड़पकर कहा—"ए जनाब! यह वर्जिश घर कीजियेगा। यहां आंख कुचा दी।"

मनमोहन को मन ही मन हंसी आ गयी। अंधकार ही समस्त संघर्ष का मूल कारण है।

"जी मैं कानपुर···?"

"टूंडला तक जाने का विचार है···"

"यहीं आगरा···"

कानपुर की मिलें। टूंडले का जंक्शन, आगरे का ताजमहल और पेठा···

मनमोहन फिर मन ही मन हंसा ।

"कानपुर तो गाड़ी चार घंटे ठहरेगी न ?"

"सवा चार घंटे ।"

"जी ।" एक व्यंग्यमिश्रित उत्तर । इतनी सतर्कता होने पर ही जीवन कौन अच्छा है ? तुम क्या भीड़ में नहीं हो ? तुम भी क्या पिस नहीं रहे हो ?

और फिर मनमोहन को विचार आया । तीसरे दर्जे मे तो शायद आदमी अधमरा ही हो गया होगा । है कहीं ड्योढ़े में भी सांस लेने की गुंजाइश । क्या जमाना है । कमबख्त औरतों ने तो इधर बैठना ही छोड़ दिया । सफर की आधी दिलचस्पी तो यों समाप्त हो गयी । जो बैठती है वह औरत की शकल का पठान ही होता है । कंजर भी रोटी के पीछे इतना नहीं झगड़ते होंगे जितना वे जगह के लिए मरते हैं । और है ही कितनी देर की बात ? यह लाइन अच्छी है। इसमें उतने फौजी नहीं होते, वर्ना वह लात पड़ती है कि लीडरों में पड़ जाय तो एक दिन मे एका हो जाय और सारा मामला नील हटने के पहले ही तय हो जाय ।

[illegible] उसका ध्यान टूटा । एक पतली आवाज ने कहा—"जी, मैंने इसी साल एम० बी० बी० एस० की परीक्षा पास कर ली है ।"

"किसने, आपने ?" एक और शब्द हुआ ।

"जी हां. मैं गार्ड हू ।"

मनमोहन चौंक गया । सिगरेट मुंह से लगाकर जलायी और दियासलाई को जरा देर तक हाथ में रखकर इधर-उधर देखा ।

आवाज आई, "आप तो डिब्बे में बैठने ही न देंगे ।"

दियासलाई बुझ गयी । किसी ने खांस कर कहा—"आजकल के लड़के सिगरेट के बिना जी सकेंगे ?"

कुछ हास्य, कुछ अर्धविक्षिप्त नीरसता ।

कहने वाले ने जैसे हवाई जहाज के गुजरने तक विश्राम किया । प्रतीक्षा थी कि यह कोलाहल आगे बह जाय । और बहने को क्या नहीं कहा ? इस समस्त ब्रह्माण्ड में प्रत्येक क्षण बहा जा रहा है, भारतवर्ष बहा जा रहा है, रेल बही जा रही है, लेकिन कौन किधर बहा जा रहा है, इस पर सबके भिन्न-भिन्न विचार हैं। यह बहना ही यदि जीवन का चिह्न है तो क्या जीवित नहीं है ? रेल की एक लकड़ी भी धीरे-धीरे बदल रही है, ठीक ऐसे ही जैसे कि करोड़ों आदमियों का जीवन अपने आप बदलता चला जा रहा है । इन करोड़ों आदमियों का जीवन अपने आप बदलता चला जा रहा है। इन करोड़ों का अपार दुःख यदि रेल का सा हाहाकार ही है, तो क्या उसके लिए कोई स्टेशन नहीं है ? क्या यह करोड़ों व्यक्तियों की यात्रा एक बिना टिकट सफर का भय ही है या उसमें जो जगह पाने की तृष्णा है उसका कोई अधिकार भी उनके पास है ?

अधिकार ! मनमोहन ने अंधकार में इधर-उधर देखा ।

प्रश्न हुआ, "आप गार्ड हैं और एम० बी० बी० एस० भी ?"

"जी, मैं होम्योपैथ हूं ।"

सारा डिब्बा ठठाकर हंस पड़ा । अर्थात् रोग के साथ इनकी रोगी से भी उतनी ही दुश्मनी है ।

मनमोहन ने सोचा, कितनी विकृत अस्वास्थ्यकर है यह जीवन की प्यास । मनुष्य कुछ करना चाहता है; किन्तु कर नहीं पाता, क्योंकि वह अवरुद्ध है ।

डाक्टर की पतली आवाज फिर गूंजी—"मैं आपको स्टैथेस्कोप दिखला सकता हूं ।"

किन्तु अंधकार ने हिलकर इस सत्य को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया । इसके बाद डिब्बे में असह्य नीरवता छा गयी । एक अनवरत घोष हो रहा है; लोहे पर लोहा रगड़ा खा रहा था । कितनी कटुभाषिनी है यह फिसलन भी । किन्तु यह निःसीम शब्द भी शांति बन गया है ।

सारा संसार आज डॉक्टर बन बैठा है । लेकिन इस जहर का साहस है कि कहीं से भी उतरने का नाम नहीं लेता···

काश, उजाला होता तो डाक्टर अपना स्टैथेस्कोप दिखलाते । लेकिन इस समय वे ऐसे ही मन मसोसकर रह गये जैसे प्रेमी सौ कसमें खाकर भी प्रिया को विश्वास न दिला पाने पर छटपटा कर रह जाता है कि वह उसे अपना दिल चीरकर नहीं दिखा सकता ।

और अंधेरा ! कितना भयानक ! जैसे मानव की घृणा हो, एक भीतर ही भीतर गलकर फैलने वाला घाव हो । न धोया जा सकता है, न चेतना में उसका संग ही हृदय का तारतम्य झेल सकता है । जिसमें बचने का उपाय एक चीरा है जो अपने आप में इतना भयानक है कि उसके लिए अपने आप औषधि सूंघकर मूर्छित होना भी श्रेयस्कर है ।

क्योंकि वे गुलाम हैं, सरकार ने गुलामों की रोशनी बुझा दी । उसने रोटी सामने रखकर कहा है, न खाओ, यद्यपि रोटी का आटा हमी ने दिया है । उसने कहा है, सफर कम करो । हम नहीं मानते, दुख उठाते हैं । आजाद होने की यह चेष्टा ही हमारे जीवन का, हमारी अनन्त परंपरा का, अभिशाप है, दुस्साहस है···

रेल एक झटके के साथ रुक गयी है । न जाने लोग किधर घुसे आ रहे हैं··· जैसे मच्छर हों, जैसे मक्खियां हों···

डिब्बे में अभी भी कोई बड़बड़ा उठता है । जैसे मनुष्य अपने अधिकार को तनिक भी नहीं त्यागना चाहता । आज वह पूर्ण रूप से इतना स्वार्थी हो गया है कि उसके लिए केवल एक शब्द है—कमीना । किन्तु सत्ता की धारा आज कठोर पत्थरों पर लड़खड़ाती हुई बह रही है । उसके पास जैसे और कोई चारा नहीं ।

डिब्बे में घुसने वालों के लिए भी न जाने कैसे उस भीड़ में अपने आप जगह हो गयी । मनमोहन को विस्मय हुआ । यह हिन्दुस्तान का डिब्बा है । इसमें सदा ही ऐसे लोग जबरदस्ती घुस-घुस आये हैं, और ऐसे ही जगह भी हो गयी है···इतिहास की यही

भीरुता आज जातियों की एकता बन गयी है, जैसे मध्यकालीन व्यक्तिगत शौर्य (Chivalry) को हमने मूर्खता का नाम दे दिया है ।

अंदाज से लग रहा है कि चारों ओर जो खड़े-खड़े यात्रा कर रहे हैं, या कहिये पैदल सफर कर रहे हैं उनमें से ही कोई गुनगुना रहा है । ठीक वही गीत जो मनमोहन ने एक बार लाखेरी के छोटे स्टेशन पर एक कुली को गाते सुना था । उस दिन ठंडी हवा चल रही थी । बरसात हो चुकी थी । बरसात तो अब भी हो रही है । अपने ही शरीर की दुर्गन्ध से मन मिचला रहा है । यदि अपना न होता तो कभी का छोड़ दिया होता । किन्तु दुर्बल है यह मनुष्य । मन की केंचुली बदलेगा हजार । तन की एक नहीं बदल सकता । यह भीरु है या प्राणों की वह अनन्यभूत पराजय जिसमें पशुता की शक्ति की हीनता को मनुष्य ने एक भाषा का माध्यम होने के कारण मानवता कहा है और उसे श्रेष्ठ कहने के लिए सुरत्व की छलना भी उसके आगे फेंक दी है जैसे बालक दौड़ रहा हो गेंद के पीछे जो आगे बढ़ती जा रही हो, ढुलकती जा रही हो, पीछे बुलाती और, और…

"…ने देखा ! उफ् बड़ी गर्मी है ।"

एकाएक मनमोहन चौंक उठा । यह बियावान में किसकी तान गूंज उठी । जैसे सहारा के रेगिस्तान में कोई मशक भरकर छिड़काव कर रहा हो ।

डेढ पैसे का खून और सही । औरत की आवाज है ।

दियासलाई निकालने के लिए जेब की ओर हाथ बढ़ाया ।

"भाई साहब !"

"जी फरमाइये ।" कठोर स्वर में उत्तर मिला । फिर बगल वाले सज्जन ने कहा, "हां तो क्या तय रहा दरोगा जी ? हजार गांठों की परमिट (Permit) दिलवाइयेगा ।"

"जनाब, वारफण्ड में क्या देंगे ?"

"अच्छा हटाइये । हर गांठ पर तीन-तीन रुपये ।"

"तीन हजार !"

"तो क्या हुआ." हास्य, बड़ा बुरा हास्य ।

"अजी हम लाला हैं । तीन हजार दूंगा, बीस हजार कमाऊंगा…"

एक ठहाका और मनमोहन ने फक से माचिस जलाकर देखा ।

स्त्री के दांत बाहर निकले हुए थे और उसकी आवाज में ऐसा फाहशापन था जिससे मनमोहन के हृदय में एक घृणा सी कांप उठी जिसे वह अपने आप दबा गया । 'हां' क्या अपने आप विचार ने लौटकर ठोकर मारी । आपका मतलब है कि जो सुन्दर नहीं उसे संसार को अपनी ओर आकर्षित क…ने का अधिकार ही नही ? है क्यों नहीं ? वह स्वयं ही कौन सुन्दर है । लेकिन जो कुछ नही है, उसे उस ओर हाथ नहीं बढ़ाना चाहिए ।

तब भारत की मांग, एक अनुचित मांग है ।

मनमोहन अपने आप लज्जित हो गया । अंधकार में किसी की आकृति नही है,

क्योंकि आज छाया चिरसंगिनी नहीं रही, क्योंकि आलोक का खड्ग उसकी म्यान में डूब गया। यह छायाओं का विराट सम्मेलन ही अंधकार बन गया है, जैसे व्यक्तियों की वज्र जड़ता का नाम ही परम्परा है, गतिरोध की हलचल हीनता ही एक सत्ता की कोशिश नहीं, एक अपदार्थ अकिंचनता है। व्यक्ति का यह लय वैसा ही है जैसा अंधेरे में लगी घास का, इतना भी नहीं कि नदी की तह में पड़े कंकड़ हों जो अपने आप बह-बहकर चिकने हो जाएं, जैसे शालिग्राम···

गाड़ी फिर स्टेशन पर रुकी। बाहर उजाला है। बाहर भी जीवन एक पहले से बना कार्यक्रम है। रेल आते ही पूरी बेचैनी है, जलेबी की पुकार लगती है, पान, बीड़ी सिगरेट और फिर वो धर्मोपदेश, हिन्दू पानी, मुस्लिम पानी, हिन्दू मिठाई, इस्लामी समोसा···एक चिता है, एक कब्र और मनुष्य सोचता है किस पर अपना पांव धर दूं, क्योंकि मैं भी मुर्दा हूं, क्योंकि या तो मैं नंगा हूं या मुझ पर किसी ने कफन ओढ़ा दिया है।

"जरा आप इस गठरी को हटा लें, सेठ साहब···"

"जी यह चश्मा न होने की गड़बड़ी से है। जरा गौर फर्माइये, यह गठरी नहीं, मेरी जांघ है···"

"इधर आ जाइये, इधर," कोई कहता है। ठठाकर हंसने वाले चुप हैं, व्यक्ति ने धम से बैठकर कहा—"देखिये न! क्या बताऊं? बड़ी मुश्किल से टिकट मिला है, साहब। एक रुपया तो टिकट बाबू ही खा गया।"

"अरे साहब! क्या पूछते हैं? एक सेकेंड क्लास का टिकट लिए रो रहे हैं ड्यौढ़े में।"

कहने वाले के प्रति लोगों के हृदय में एक अज्ञात श्रद्धा का उदय हुआ है। त्याग करने का ही संसार में मोल है। घर में यदि खाने को नहीं है तो राजनीति में कौन भाग लेने को तैयार नहीं हो जाता? कम ही है मोती के जवाहर, जो दर-दर की ठोकरें खाते फिरते हैं···क्या वे आज कहीं के एडवाइजर नहीं होते? शत्रु के पद की तोल में रख-कर अधिकारहीन का गौरव देखा जाता है। यदि रावण आक का पेड़ होता और राम एक कटार से ही उसे काट डालते तो क्या उनकी घर-घर पूजा होती?

"क्यों, आपने गार्ड से कहा नहीं?"

"सुनते हैं किसी की यह लोग? टुकड़ों के गुलाम!" कहने वाले के स्वर में अपार विक्षोभ है। उसका बस चलता तो स्वर्ग के धोखे में वह आकाश के सारे नक्षत्रों को पृथ्वी पर उतार लाता और अपनी ही भूमा को चकनाचूर कर देता। यह शब्द ऐसे निकले हैं जैसे मोटी लाइन के चलते समय उसके स्लीपर खड़खड़ा उठते हैं, फटर-फटर करते हैं। उनका यह क्रोध सामाजिक है, क्योंकि व्यक्तिगत है, क्योंकि उनके अज्ञान में भी उनका व्यक्ति एक सामाजिक दासत्व है···

क्योंकि रेल उनकी अपनी नहीं। और वे उसमें भी समझौता करके बैठ नहीं सकते। उन्हें यही अविश्वास भूत की तरह डरा रहा है कि एक दूसरा केवल एक दूसरे को खा जाने के लिए है। जो बाहर है वह शत्रु है, जो भीतर है वह पड़ोसी है। पैसा

चाहिए, अनाथ बनकर पेट बजाइये, जो माता के पक्षपाती बनकर सब को वेश्यागामी करार दीजिए, या आंख मीचकर अंधे बन जाइये। बाहर झांकने वालों को प्लेटफार्म की दूसरी तरह कलामुंडी खाकर बहलाइये। क्लर्कों को नवाबों की औलाद बताइये···

एक झूठ नहीं अनेकों और समाज के यथार्थ चित्रण। एक के बिना भी काम नहीं चलता। यहां कोई किसी का नहीं है। सब अपने-अपने लिए हैं। क्योंकि सबको पैसे देकर यात्रा करने का गर्व है, जिसके पास पैसा नहीं वह अपराधी है।

औरत का स्वर सुनाई दिया। वह कह रही थी—

'मुखडा क्या देखूं दरपन में
धरमी धरमी पार उतर गये
पापी डूबे जल में।'

मनमोहन के मन में आया कह दे, पहले आप दान बदलवा लीजिये।

और उत्तर भी याद आ गया—आंखें कमजोर हो जायेंगी। तभी तो हाथी के दांत मरने पर ही मिलते हैं। अगर जिंदा रहते हाथी के दांत मिल जाएं तो फिर क्या है, घर-घर हाथी बंधा पाइएगा।

किन्तु औरत की आवाज में धरम का उतना नशा नहीं जितना स्त्रीत्व के ज्ञान का बाजारूपन है।

मुखड़ा देखने योग्य तो कोई नहीं। मनमोहन यदि यही बात कहता तो शायद लोग समझते कि अब चूरन बेचने का गीत शुरू होने वाला है। लेकिन वह एक स्त्री का स्वर था। इतने मर्दों में एक औरत। जैसे बहुत से फौजियों में एक 'सिविलियन', जैसे बहुत से कलक्टरों में एक कांग्रेसी, जैसे बहुत से ऊंटों में एक गधा।

अपना-अपना विचार, अपनी-अपनी हांडी है, सब अपनी-अपनी अलग-अलग पकाते हैं। और सबको अपनी-अपनी में सबसे अधिक आनन्द आता है।

अचानक एक चिहुंक।

"माफ कीजिएगा, कुहनी लग गई।"

"हैं, हैं, पकड़िये-पकड़िये। यह गयी, वह गयी, वह देखिए।"

"गिर जाने दीजिए साहब। चीज भी ज्यादा महंगी नहीं थी।"

"अजी मेहनत की अधेले की चीज सोना है। चेन खींच दीजिए।"

"चेन खींचकर तो शायद मुझे बेचकर भी पचास रुपए नहीं मिलेंगे।"

"क्या गिर क्या साहब?"

"जी कुछ नहीं। चांदी की मूठ की छड़ी थी।"

"तो गिर गयी?" स्वर में विषाद और विस्मय दोनों घुल गये।

"क्या किया जाय साहब। यह कोई बैलगाड़ी तो है नहीं जो जहां चाहे आवाज देकर ठहरा ली।" मनमोहन के मुंह से निकल ही तो गया।

"जी!" किसी ने चिढ़ कर कहा, "आपका नुकसान थोड़े ही हुआ है। दूसरों का भी ख्याल किया कीजिए।"

किसी और ने डिब्बे में एक दूर के कोने से कहा, खिड़की के बाहर कोई भी बदन का हिस्सा रखने से ही नुकसान होता है।

छड़ी खोनेवाले ने कहा—"अजी साहब छड़ी गिरी है। वह क्या मेरे जिस्म का हिस्सा था।"

क्या मस्त आदमी है। सुननेवालों की तबीयत फड़क गयी। वाजिद अली शाह ने कैद में कहा था कि एक नाच तो दिखा दो कमबख्तो! मगर फिरंगी उस वक्त जहाजों में सामान लदवा रहे थे। नवाब का राज गया, गोरों का तो ईमान चला गया। मगर समय का अत्याचार देखिए। शहंशाह भूखे खड़े हैं। और कल जो गज हाथ में लिए कपड़ा बेचते फिरते कहते थे है कि तुम्हें इससे ज्यादा कपड़ा नहीं मिलेगा। तुम कमीज पहनकर क्या करोगे?

दरोगा जी की धीमी फुसफुमाहट—"लालाजी, यह तो औरत कोई ऐसी-वैसी ही है।"

लालाजी की दबी हंसी जैसे डूबते आदमी के मुंह में पानी भरता जा रहा हो। सारा शरीर हिल रहा है। सारा शरीर हिल रहा है, क्योंकि मनमोहन भी कभी-कभी उस हलचल में लचक जाता है।

औरत फिर बोल उठी। "आप, मास्टरजी को कब से जानते हैं?"

"जी हाल ही की मुलाकात है।"

"मैं उन्हीं से मिलने जा रही हूं। वे अब फौज में भर्ती हो गये हैं।"

"अच्छा किया।"

"इंजीनियर हैं।" और फिर जल्दी से कहा, "मैं डाक्टरनी हूं।"

"आप? किसी अस्पताल में या आपकी अपनी डिस्पेंसरी?"

"जी क्या?"

"मैंने कहा डिस्पेंसरी कहां है?"

"जी हां। पहले मास्टरजी की लौंडरी थी। वहीं कपड़े धुलवाने लोग आया करते थे..."

लेकिन अधिकांश लोग ऊंघ रहे हैं। उनकी चेतना अब लड़खड़ाकर राह दे रही है। और अधिक सहना अब उनकी शक्ति के बाहर है। खाने और सोने के दो ही तो आराम हैं जिनके लिए इन्सान मेहनत करता है, जागता है। जब दोनों में से एक नहीं रहता तब वह या तो फौज में रहता है या कब्र में।

उस सन्नाटे पर स्त्री की वह पतली आवाज, कभी-कभी खिलखिलाहट और पुरुष के स्वर की गुप्त मादकता, उतावलापन कि अंधकार में भी समाज का भय!

कितने घिनौने हैं वे दांत! किन्तु मिट्टी की भी हों। पुरुष, विकृत पुरुष की वासनाओं का एकमात्र केन्द्र। आंख मीचकर शब्द सुने जाएं। मनमोहन को कोई आपत्ति नहीं। बस यह याद न आये कि यह आवाज उन दांतों को छू-छू कर आ रही है।

उस अचेतन घुटन में प्राणी वैसे ही झूम रहा है जैसे किसी को चक्कर आ रहा

हो। वह अपने आपको संभालने में असमर्थ है। उस शिथिलता का विश्राम, जैसे घोड़ा या गधा खड़ा-खड़ा सो रहा हो···कैसे भी हो जीवन का सफर है, सफर को काबू में लाना कठिन है, क्योंकि यह सफर उस नीच के दर्जे के कीड़ों का है जो अपने से ऊंचों से पायी हिकारत को अपने से नीचों को चुराकर अपने आपको किसी तरह छोटी-छोटी दूकानों का मालिक बनाये रखना चाहते हैं। विद्वेष और घृणा के बीच में अविश्वास है। और वे भूम रहे हैं जैसे बदनामी ने शादी रोक दी हो···

स्टेशन पर भीड़ हमला कर उठी। भीतर एक बाबू ने तड़पकर कहा—'ऐ! ड्योढ़ा है, ड्योढ़ा!'

लोग सुन-सुन कर लौट रहे हैं। यह उनके बस से बाहर की बात है। क्या खाकर चढ़ेगी। कुछ ने सिर्फ बक्स उठाना सीखा है, बक्स रखना नहीं; कुछ ने नाज उगाया ही है, आज तक जिस रफ्तार से उगाया है, उस ठाठ से खाया नहीं। एक की कमर में दर्द है, एक के दिल में। और पेट का दर्द ऐसा है जो न उनके बाप के जमाने में हटा, न अब जा रहा है। मैले होंगे वे लोग। निश्चय ही सफेद नहीं हैं उनके कपड़े क्योंकि वे डांट खाकर विरोध नहीं करते। क्योंकि वे एक नेता के पीछे मर सकते हैं, नेता नहीं बनना चाहते···दो आदमी और एक औरत घुस ही आये।

बाबू ने तड़पकर कहा—"क्यों घुस आये हो भीतर? ड्योढ़ा है, ड्योढ़ा!"

"एँ ड्योढ़ा है, ड्योढ़ा!" गांव वाला बोला—"तुम टिकट बाबू हो?" बाबूपन लौटने लगा है। स्वर में कड़वाहट है। जैसे उन्हें कमीना साबित कर दिया गया है, क्योंकि यह रेल उनके बाप की नहीं है; शायद उन्हें अभी तक बाप का नाम नहीं मालूम था, या रईसी समझकर पहली बार ड्योढ़ा सफर कर रहे थे। धुंधले उजाले में अब एक झिल्ली-सी बराबर है।

खुले दरवाजे से गठरी बाहर उछलकर निकल गयी। गंवारिन ने देखा। और पति से कहा—"यह क्या हुआ?"

पति किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रहा। स्त्री देखती रही।

बाबू को डांटने वाले गांववाले ने उपेक्षा से देखा। उसे कोई मतलब नहीं। और वह स्त्री खड़ी है। उसे बाबूवर्ग वह सम्मान नहीं देना चाहता कि वह स्त्री है, उसे बैठने का पहला अधिकार है। वह शायद स्त्री नहीं है, क्योंकि वह गंवार है।

एक छोटी-सी गठरी गिर गयी है। स्त्री कहती है—"जंजीर खींच दो।"

बाबू कहते हैं—"हैं, हैं, पचास रुपये का जुरमाना हो जायेगा।"

"बाबू," स्त्री कह उठी—"मार का लहंगा है उसमें। बिरादरी में क्या कहेंगे?"

बिरादरी का उत्तर बाबू के पास नहीं है।

अनवरत महानिनाद से रेल बढ़ी चली आ रही है। किसान खेती करता है। दाना-दाना महाजन ले जाता है। जैसे वह विराट् जनता का प्रसार खानों का अनखुदा कोयला है, जिसे खोदा इसलिए जाता है कि एक बड़े इंजिन की आग जगायी जा सके। किन्तु इंजिन की भूख मिटनेवाली नहीं है क्योंकि वह भागा जा रहा है, भागा जा रहा

है, बेतहाशा भागा जा रहा है, और कोयला जलता जा रहा है, भस्म होता जा रहा है, क्योंकि उसके दो ही प्रयोग हैं—या तो कोयला जिसमें वही चीज है, जो हीरे में है, या वह खाद है, जो गेहूं की शक्ति की मिठास है···

भोर की पहली किरण आकाश में फूट रही थी। मनमोहन ने देखा—वह स्त्री नीचे बैठकर रो रही थी, लोगों के पैरों के पास और उधर हंस-हंसकर मास्टरनी डिब्बे को रिझा रही थी।

मनमोहन का हृदय जाने क्यों भीतर ही भीतर कराह उठा। जिन साहब की छड़ी गिर गई थी, वे ऐसे बैठे थे जैसे निर्लिप्त होना ही मनुष्य का एकमात्र सुख है और एक बूढ़ा प्रतीक्षा कर रहा था कि यदि वे ढंग से बैठ जाएं तो वह भी जरा टिक जाए··· बैठने का बहाना करके साबुन को ही कलाकन्द समझ ले···

['पारिजात', फरवरी '46]

गाजी

आगरे के प्राचीन नगर में बाजार के ऊपर एक बड़ी लाल मस्जिद है। कहा जाता है, यह मुगलों के जमाने में एक भव्य स्थान था। अनेकानेक युग बदल गए हैं; किन्तु हाथ-मुंह धोकर जब अस्सी बरस का बूढ़ा इमाम सामने लड़कों को बिठा कर पढ़ाने लगता है, तब उसके होंठों पर एक कम्पन छा जाती है और लगता है कि वह व्याकुल हो गया है और नहीं जानता कि अन्तर की उस हलचल को छिपाने के लिए वह क्या करे ? बूढ़े का मुख अनेक ऋतुओं के थपेड़े सह-सहकर झुर्रियों से भर गया है; किन्तु उसकी सफेद दाढ़ी को देख बाजार के गुण्डों का भी सिर अज्ञात श्रद्धा से झुक जाता है। वृद्ध के शरीर पर उसका लम्बा मटमैला ढीला-ढाला सा कुर्ता झूला करता है। सुबह की ठण्डी हवा में जब उसका अजां का स्वर गूंजने लगता है, तब पानवाले रऊफ का पिंजरे में बन्द तोता टें-टें कर उठता है, मानो वह भी उसकी याद में बोल उठता है, जिसको इमाम अपने उस लम्बे पथ मे याद कर रहा है, जिसका प्रत्येक पल काफिले के एक-एक ऊंट की तरह जिन्दगी के रेगिस्तान पर चलता चला आया है। और गंभीर कण्ठ का वह स्वर थोड़ी देर तक चारों ओर चक्कर मार और उस निस्तब्धता में कांप फिर एक भारी भाप की तरह उड़कर आस्मान में लटक जाता है।

इस्लामी होटल में नीचे झाड़ू लगने लगी। आने वाले दोनों पठान चाय पीने लगने और होटल का लड़का कभी उनको घूरता और दबी जबान में कभी-कभी मजाक करने की भी कोशिश करता। किन्तु जब बाजार की वह घोर हलचल भी मस्जिद की सीढ़ियों पर शोर मचाती हुई चलने लगती, तो बरबस ही उसका मुंह बन्द हो जाता और वह चुपचाप दबे पांव लौट जाती। कभी-कदा आस्मान मे हवाई जहाज उड़ते, कभी-कदा नीचे कसाई की दुकान मे गोश्त के कच्चे टुकड़े काटने का शब्द आता और फिर कभी-कभी दो-तीन दुकानें छोड़ कर जो दुमंजिले पर एक छत है, वहां बहीखाते लेकर बाजार के बनिये आकर इकट्ठे होते और सट्टा होता। किन्तु वृद्ध इन बातों में कभी दिलचस्पी नहीं लेता। सोचता, यह तो सब देखा हुआ है। इसमें है ही क्या ?

लड़के सामने बैठ झूम-झूम कर पढ़ते। वृद्ध इमाम बैठा-बैठा देखता रहता कि लड़कों के कोमल कण्ठों की कांपती आवाज शीशे की तरह झनझनाती हुई मस्जिद के लाल पत्थरों से टकरा उठती और वृद्ध एक लम्बी सांस खीच कर ऊपर देखने लगता।

उस समय लड़के कुछ देर को आपस में ऊधम कर लेते और फिर वही सिर हिलाना, हिल-हिल कर पढ़ना। और जीवन की नवीनता ऐसे गुल मचाने लगती, जैसे बाग में बहार चहक उठती है, लहरों में चंचल कोलाहल होने लगता है।

वृद्ध ने अपने हाथ धोकर मुंह धोया और सीढ़ी से नीचे उतर चला। रऊफ की बूढ़ी झुकी मां ने देखा और कहा—"आज कहां चले?"

"कहीं नहीं"—वृद्ध ने कहा और छज्जे पर ही बैठ गया।

कसाई अपनी मैली चादर ओढ़ कर दुकान में ऊंघ रहा था। बाजार पर दोपहर की थकान छाने लगी थी। एक-आध तवायफ दिन में ही बाहर छज्जे पर आ बैठी थी और बाजार में आते-जातों से आंखों के खेल कर रही थी। कभी-कभी जब वह बनावटी अंगड़ाई लेने लगती, तो सामने दर्जी की दूकान से लड़कों की नजर उधर ही अटक जाती और फिर वे बगलों में हाथ दबा कर भद्दे ढंग से हंसते। कुछ फौजी सड़क पर से चक्कर लगाते हुए उसकी ओर सतृष्ण नयनों से देखते···।

बूढ़ी ने कहा—"इमामपाक, कहो, अब भी खुदा हम पर मेहरबानी क्यों नहीं करता?"

इस्लामी होटल में शीरीं फरहाद का नाटक ग्रामोफोन पर बज रहा था। उसका स्वर कभी-कभी इधर भी थिरकने लगता और फिर प्यालियों की खनखनाहट होती। वृद्ध ने एक बार अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरा और कहा—"रऊफ की मां, खुदा क्या करता है, यह तो हम लोग, जो गुनाहों में डूबे हुए हैं, इतनी आसानी से नहीं समझ सकते।"

"दुरुस्त है"—जब्बार ने साइकिल का ट्यूब तसले के पानी में घुमाते हुए कहा। वह देख रहा था कि कहीं पञ्चर तो नहीं रह गया है?

वृद्धा ने पोपले मुंह से एक बार कुछ कहना चाहा, किन्तु फिर कुछ सोच कर रुक गई। रऊफ ने घुटनों पर जोर देकर कहा—"अब कल से देखना, क्या लुत्फ आएगा। कहते हैं, दो छटाक गेहूं का राशन मिलेगा और···।" वह कठोर हंसी हंस पड़ा जिसमें एक नहीं, अनेक वेदनाओं की घुटन लुट गई और लुटेरा आस्मान तक अपने डंके की चोट को गुंजा कर इन्सान का गला घोंटने लगा।

वृद्धा ने कह—"अल्लाह रहम करे। हमारे जमाने में फकीर को भी बुला-बुला कर खैरात दी जाती थी, बेटा।"

कसाई, जो जाग कर सुन रहा था, कह उठा—"यानी भिखारियों को पाला जाता था। अंगरेजों का रहम है अम्मी, अब हिन्दुस्तान को भिखारियों की कोई जरूरत नहीं। उन्हें भूखों मार दो।"

जब्बार ने एकदम जोश से उठते हुए कहा—"और यह भिखारियों की बला हटाने के लिए सबको ही भिखारी बना दिया! जिस मुल्क में कोई खायगा, वहीं तो भूखे की आह लगेगी?" वह भी हंसा और वातावरण पर एक हल्कापन छा गया।

रऊफ की मां ने खंखार कर थूका और मुंह में तम्बाकू डालते हुए कहा—

"बेटा, एक वह भी दिन था, जब हमारी मां कहती थी कि मैं फिरंगी···।"

रऊफ ने चौंक कर जरा कठोर स्वर मे एकदम टोक दिया—"अम्मी !"

वृद्धा फिर मुस्करा उठी, "जैसे कुछ नही हुआ। बात बदल गई। वृद्धा ने कहा—"अभी कितनी और है, इमामपाक ?"

इमाम ने बिना उसकी तरफ देखे ही कहा—"कितनी भी हो मुझे तो वह काम दिया है उसने, जिसके लिए एक दिन किले के बुर्ज मे बादशाह तड़पा करता था।"

वृद्ध की बात कितनी गहराई से छा गई, यह वृद्धा के अतिरिक्त और कोई नहीं समझा; क्योंकि जिस दिन की बूढ़ा कह रहा था, सिवा वृद्धा के उस दुनिया की छाया के निकट और कोई नही था।

और शीरी-फरहाद का वह नाटक अब भी बज रहा था। उसमें गलत इतिहास था, लेकिन इन्सान की वह भयानक ताकत 'जिसने बारूद से नहीं' बेलचे से चट्टानों को निचोड कर पानी निकाल दिया था, जैसे कोई सल्तनत के फरेब में से सचाई का आब निकाल ले।

सांझ की धूप मस्जिद के ऊंचे गुम्बद पर ठण्डी होकर लेटी-लेटी सरकने लगी थी। इमाम ने कहा—"उन दिनों शाहंशाह औरंगजेब कुछ बेचैन रहा करते थे। उन्होंने सिक्खों के गुरु को कैद कर लिया। और जानते हो, उस पीर ने कैद की घड़ी में कैदखाने की खिड़की से क्या देखा ?"

छोटे-छोटे बच्चों ने उत्सुकता से कहा—"क्या देखा इमामपाक ?"

वृद्ध ने कहा—"उसने देखा, दूर समुन्दर पर फिरंगियों के कई जहाज खड़े थे। हिन्दुस्तान से व्यापार करने आए थे। सौदागरों को शाहंशाह ने रहम करके रहने के लिए जमीन दी। और उसने देखा, जहाजों के सफेद-सफेद पाल हवा से भर कर फूल उठे थे।'

बच्चों का ध्यान एकत्र हो गया। उन्होंने यह भी नहीं देखा कि गुम्बद पर अब एक कौआ आकर बैठ गया है और अपनी गर्दन को देखने के लिए ऐसे घुमा रहा है, जैसे उसे एक ही आंख से दिखाई देता है। और दिन होता तो, यूसुफ जरूर मोहसिन की बगल में कुहनी मारकर उसे दिखाता और फिर दोनों उस तरफ ललचाई आंखों से देखते। हसन ने कहा—"फिर ?"

"फिर"—इमाम ने गम्भीर स्वर में कहा—"उस पीर ने कहा कि एक दिन ऐसा आएगा, जब हमारे झगड़ों से बेईमान फायदा उठाएंगे और सारे हिन्दुस्तान पर ये सफेद पाल एक किनारे से दूसरे किनारे तक छा जाएंगे।"

इसी वक्त अस्पताल की सड़क पर बहुत से लोगों के गले से 'इन्कलाब जिन्दाबाद' सुनाई दिया। बच्चों के रोंगटे खड़े हो गए। वृद्ध सिहर उठा। उसने भर्राये गले से कहा। "बच्चो, मैं अस्सी बरस का बूढ़ा हूं, लेकिन उन दोनों सतरों को कभी नहीं भूल पाया, जो मुगलों के आखिरी चिराग शाहंशाह बहादुरशाह के मुंह से उनके आखिरी दिनों मे रंगून के कैदखाने मे निकल पड़ी थीं···।"

"बादशाह और कैद ?"—बड़ी-बड़ी आंखें उठाकर मोहसिन ने साश्चर्य पूछा।

"हां बेटा, फिरंगियों ने उनके छः बेटों के सिर काट, भालों की नोंक पर टांग कर, उनका तोहफा उनके बुढ़ापे के सामने पेश किया था।" वृद्ध की आंखें भर आईं, जैसे भीतर सारी नसें अब फट पड़ना चाहती हों, उनमें से रक्त के स्थान पर अरमानों की भस्म निकलने को आतुर हो—वह भस्म, जिसमें जगह-जगह अबुझ अंगारे निकल कर गिर पड़ेंगे और उनकी दहक से पत्थर भी पानी की तरह पिघल उठेंगे।

बच्चे स्तब्ध थे। उनकी आंखों में वही नफरत थी, जो जुल्म और बर्बरता के विरुद्ध हिन्दुस्तान के हर बच्चे की आंखों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी तरह सुलगा करेगी। मानो उन्हें गुस्सा इसका नहीं कि विदेशियों ने भी यह किया था, वरन् क्रोध इस बात का है कि सरे बाजार बेचने वाली यह तवायफ अपने-आपको पारसा कहती है और चाहती है कि हम भी इसे कुबूल कर लें कि इसकी माप-जोख ही इंसानियत का पैमाना है। किन्तु नासमझ बच्चे खामोश थे। वृद्ध इमाम ने ही कहा —"उस वक्त बादशाह ने अपने दिल की उस आंधी में से एक पैगाम दिया था—

'गाजियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की,
तख्ते-लंदन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की !'

वृद्ध के होंठ कांप उठे। फिर 'इन्कलाब जिन्दाबाद' की आवाज थहर उठी। चुनाव का जमाना था। कांग्रेस, लीग, कम्युनिस्ट और न जाने कौन-कौन-सी पार्टियां अपना-अपना जोर आजमा रही थीं, क्योंकि गोरी सरकार ने कहा है -कि वह हिन्दुस्तान को आजाद कर देना चाहती है! वृद्ध ने सुना। हसन कह उठा —"इमामपाक, फिर हिन्दू-मुसलमान आपस में क्यों लड़ते हैं ? अब क्या अंगरेजों का राज नहीं है ?"

"है क्यों नहीं, लेकिन लोग तो अपनी-अपनी खुदगर्जियों में उलझे हुए हैं। उन्हें क्या पड़ी कि गरीबों की क्या हालत है ?"

हसन कुछ समझ नहीं सका। उसने फिर कहा—"इमामपाक, बादशाह ने तो कहा था कि जब तक गाजियों में ईमान की बू रहेगी…।"

"शाबाश !" वृद्ध ने कहा—"लेकिन कहां है ईमान की बू ? मैं चाहता हूं कि तुम में से हर एक में ईमान की बू हो, तुममें से हर एक गाजी बने। उस दिन भी बादशाह के तख्त के लिए हिन्दुओं ने तलवार उठाई थी। आज से पच्चीस वर्ष पहले एक बार फिर भाई-भाई मिल कर उठे थे, तब खूनी के पांव डगमगाने लगे थे। लेकिन बद-किस्मती से फिर फूट पड़ गई।" वृद्ध का स्वर तीखा हो गया। उसने कहा— "बच्चो, रसूले-इलाही का पैगाम सुनकर गुलाम आजाद होते थे। आज आजादी को पैरों से कुचल कर हम मुसलमान बनने का दावा नहीं कर सकते।"

मोहसिन ने पूछा— "लेकिन अब्बा तो कहते थे कि पाकिस्तान के बिना हम अंगरेजों से नहीं लड़ेंगे।"

"नहीं, बेटा," वृद्ध ने कहा—"पाकिस्तान तो अंगरेजों के हाथ में गुलाम है। तुम्हारा घर तुम्हारा है, पाकिस्तान की भीख मांगते हो ? और वह भी एक भूखे गुलाम

से ? उसे कोई तुमसे नहीं छीन सकता, अगर तुम आजादी के लिए खून बहाने को तैयार हो जाओ; क्योंकि जो तुम्हारा है, उसको अपना न समझने की बात कमजोरि-ए-जज्बात है, दिमागी गुलामी है।"

मोहसिन खामोश हो गया। वृद्ध ने फिर कहा—"मैं चाहता हूं, तुम अभी से जुल्मों से नफरत करने लगो। तुम्हारे खून की बूंद में बिजली की तरह यह ख्याल दौड़ा करे कि तुम इन्सान होने के पहले गुलाम हो। तुम्हें याद रहे कि तुम्हारी कोई हस्ती नहीं, क्योंकि तुम्हारा रहनुमा आज वह है, जिसके सामने तुम्हारी जान की कोई कीमत नहीं।" बच्चों का खून जैसे जम गया था। वृद्ध ने धीरे से बात पलटकर कहा—"हां, बेटा हसन, सुनाओ तो हौले-हौले जरा—पहले आती थी···।"

और हसन गालिब के अशआर सुनाने लगा।

इमाम के विद्यार्थी उसी मुहल्ले के लड़के थे, जो बारह बरस तक के होने पर भी इमाम के बुढ़ापे के सामने बिल्कुल बच्चों जैसे थे। किसी का बाप बटन बेचता था, किसी का जिल्दसाज था, तो किसी का किसी कारखाने में काम करता था। सब ही गन्दे रहते और उर्दू बोलते; किन्तु शिक्षा का इनके सामने कोई ठोस महत्त्व हो, ऐसा गलती उन दिनों की गोरी सरकार ने कभी उनके पक्ष में नहीं की। मस्जिद के नीचे ही दोवट कबाड़िए की दुकान थी। उसका छोटा-सा लड़का चंदू वहीं सब बच्चों के साथ खेला करता था।

मोहसिन चाकू से कलम बनाते-बनाते उससे बातें कर रहा था। चंदू कभी हंसता, कभी उछलता और कभी-कभी सूनी दुकान पर भी दृष्टि डाल लेता। दोवट मुहल्लों में टूटी-फूटी बोतलें खरीदने गया हुआ था। मोहसिन ने कहा—"अबे चंदू, वह जो है हसन ? मैंने साले को दो झपाटे दिए।"

चंदू उस समय मोहसिन की छोटी बहन के कान पकड़कर उसे उठाकर दिल्ली दिखा रहा था और उधर अधिक तन्मय था। मोहसिन ने उसके ध्यान न देने से चिढ़कर कहा—"क्यों बे कबाड़िए, साले सुनता ही नहीं। दूंगा अभी एक हाथ।"

चंदू भला कब सुननेवाला था। उसने कहा—"अबे जा जा, देख लिए तुझ जैसे सैकड़ों।"

"अबके न कहियो उल्लू के पट्ठे, वर्ना···।"

"वर्ना क्या ?" चंदू अकड़कर सामने खड़ा हो गया।

अब तो मोहसिन फंस गया। आन का मामला था। उसने कहा—"देख, मान जा।"

"अबे जा," चंदू ने घृणा से मुख विकृत करके कहा। इसी समय मोहसिन को एक झटका-सा लगा और चाकू से उंगली जरा कट गई। खून बह निकला। चोट साधारण थी, किन्तु रक्त की लाली ने उसे एक हमले का भयानक रूप दे दिया। दूसरे ही पल मोहसिन का चाकू उठा और चंदू के अंगूठे से खून टपक पड़ा। इसके बाद यह दे, वह दे और चाकू छिटककर दूर जा गिरा और दोनों सड़क की धूल में एक-दूसरे को पटखियां

देने लगे और दोनों ही नाली की तरफ कलामंडियां खाते हुए लुढ़क चले।

इसी समय जब्बार के बड़े-से हाथ ने चंदू का गला पकड़कर उसे मोहसिन से अलग कर दिया, और चंदू ने सुना—"क्यों बे साले, कहां है तेरा बाप? तोड़ दूंगा साले की हड्डियां···।"

"क्या हुआ?" कसाई ने दुकान से ही पूछा—"कौन है?"

"कोई हिन्दू लौंडा है।"—रऊफ ने बीड़ी का कश बाहर छोड़कर कहा।

और "हिन्दू" शब्द सुनकर बाजार के दो-एक राहगीर ठिठक गए! एक ने आगे बढ़कर कहा—"क्या है? क्यों मारते हो उसे?"

जब्बार ने चंदू का हाथ तो छोड़ दिया, और अकड़कर बोला—"क्यों, तुम कौन होते हो उसके? आ गए बड़े हिमायती बन के?"

"होश से बोलना,"—राहगीर ने लांग कसकर कहा—"समझा होगा यह तुम्हारा मुहल्ला है। मगर हिन्दुओं का खून कोई मर नहीं गया है, समझे!"

इसी समय एक गम्भीर स्वर ने उनको रोक दिया। इमाम की दीर्घ काया बीच में थी। उसके हाथ में वही खून से भीगा हुआ चाकू था। बोला—"किसलिए लड़ते हो बावलो?" उसका स्वर कांप उठा।

जब्बार ने चेतकर कहा—"लौंडे का खून बहा है यह।"

"किसका खून बहा है?"—इमाम का प्रश्न गम्भीर आवरण-सा सबके हृदयों पर छा गया। उस छोटी-सी भीड़ का कोलाहल थम गया और सबकी उत्सुक आंखें उस पर गईं। इमाम ने कहा—"तड़प रहा था अभी तुम्हारा हिन्दू खून! उबल रहा था तुम्हारा इस्लामी खून।"

"जब्बार, बता सकते हो, इस चाकू पर कितना खून हिन्दू है और कितना मुसलमान?"

सुनने वालों के सिर झुक गए। इमाम ने कहा—"बेवकूफो, जिनके पीछे लड़ते हो, वे क्या कर रहे हैं देखो और जरा आंखें खोलकर देखो।"

सबने देखा—उस समय मोहसिन की छोटी बहन अपने नन्हे हाथों से कुरता उठाकर चंदू की आंखें पोंछ रही थी, मानो समस्त मानवीय वेदना घुमड़ आई हो, जैसे एक गुलाम ने दूसरे गुलाम की मर्यादा को अपनी संकीर्णता को ठोकर मारकर पहचान लिया हो!

भीड़ छंट चली। इमाम वहीं खड़ा रहा। जब वह लौटकर मस्जिद में पहुंचा, हसन को लगा, जैसे वह रो पड़ेगा। कुछ देर तक नीरवता छाई रही। फिर हसन ने पतली आवाज में धीरे से कहा—"इमामपाक।"

वृद्ध के मुंह से निकला—"बेटा! एक दिन आगरे के इसी बाजार में गोरे सौदागरों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के गलों में फन्दे लगाकर फांसी पर लटकाया था; लेकिन लोग शायद भूल गए हैं···।"

हसन ने कहा—"लेकिन हम नहीं भूलेंगे, इमामपाक!"

"तू नहीं भूलेगा ?" वृद्ध ने गद्गद स्वर से कहा—"तू सचमुच नहीं भूलेगा ? तब, तब अल्लाह, अस्मी बरस बाद आज इन्सान में ईमान की बू आ रही है !"···और वह रो पड़ा।

उस रात हमन सो नहीं सका। शहर में लोगों में एक सनसनी थी। कोई कहता था—घटिया में लूट मच जाएगी, कोई कहता था—शहर में शीघ्र ही भयानक दंगा होगा। सामने के मुन्शीजी कहते थे—उन्होंने अखबार में पढ़ा है कि जंग खत्म हो गया है, मगर हर मुल्क में बलवे हो रहे हैं। सरकार की घबराहट दिन पर दिन बढ़ रही है। कुछ समझ में नहीं आता कि क्या होने वाला है। बारह-तेरह बरस का हमन अधिक कुछ नहीं समझा, मगर बहादुरशाह की दोनों सतरें उसके दिमाग में गूंज रही थीं। घर-घर तहलका मच रहा था। राशन घटाकर रोज का दो छटांक कर दिया गया था, क्योंकि सरकार ज्यादा का इन्तजाम नहीं कर सकती।

दूसरे दिन अलस्सुबह इमाम ने देखा, हमन हाथ में एक कागज लिए खड़ा था। इमाम ने मुस्कराकर कहा—"पढ़ो।" और हमन की कांपती हुई आवाज गूंज उठी—

"शहीदों के खून में हुंकार उसकी गूंजती,
जिसने मरकर भी न इज्जत मुल्क की कुर्बान की।
'गाजियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की,
तख्ते-लंदन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की।'
फिर बुला हमको रहा है दूर से वह कोहेनूर,
जुल्म का बदला तो क्या नोचेंगे तेरी शान भी।
होंगे तेरे; देख लेंगे कौन-से कानून हैं !
अब फरिश्ता बन रहा है देख लो शैतान भी !
भूख से हम मर रहे हैं राह के कुत्ते बने,
मौत के नुस्खे बने हैं वह तेरे फरमान भी !
तख्तो-ताजों की अधेरी आज धरती में मिटे,
गरजते मजदूर हम, मजलूम, देख किसान भी !
तेग चंगेजी न कर सकती कभी इंसाफ है,
एक है हम, टेक दे घुटने यहां तूफान भी।
बादलों में बिजलियां टूटी तड़पती जो बंधी,
लरजती है मिल बगावत का बनी उन्वान-सी।
सल्तनत के धन पै हिन्दी पिट के अब फौलाद है,
देख हर गोशे में जागी आबरू ईमान की !

हमन का स्वर रुक गया। वृद्ध तन्मय होकर बैठा था। उसने विस्मय से सिर उठाकर पूछा—"यह तूने कहा है हमन ?"

हमन के अभिमान को चोट पहुंची। उसने कहा—"क्या मैं नहीं कह सकता;

इमामपाक ?"

"रदीफ और काफिये की कुछ गलतियां हैं, मगर वह कोई बात नही। लेकिन मुझे यकीन नहीं आ रहा। अल्लाह, सच कह ? क्या हिन्दुस्तान के बच्चों को अब बचपन भी नसीब न होगा ? क्या उनमे भी तूने यह आग भर दी ? क्या यह गुलामी आज इन्सान को पत्थर बना देना चाहती है ?"

वृद्ध उद्भ्रांत होकर मस्जिद में टहलने लगा। आज बिसाती के बेटे ने उस तख्त को ललकारा, जिस पर बैठने वाले का नाम सुनकर हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े राजा व नवाब कुत्तों की तरह दुम हिलाते हैं, क्योंकि उनके दिलों में ईमान नहीं रहा है क्योंकि दौलत और ऐश का कोई ईमान नही है। ईमान है तो सिर्फ गुलाम का, क्योंकि वह पेट का ईमान है ! वृद्ध को लगा, जैसे पत्थर का हर टुकड़ा अपनी जगह से उखड़ कर छिटक जाएगा। आज जो यह लड़का अभी-अभी आग उगल रहा था, उस पर जैसे कानून का खूनी दरिन्दा झपट कर उसे मार डालेगा और इन्सान के खून से भीगे हुए होंठ चाट कर कहेगा—'यह तहजीब और तमद्दुन की इन्तहा है। इसके आगे कोई मजहब नही कोई सुख नहीं।'

वृद्ध कांप उठा। उसने घुटने टेक हाथ बांधकर कहा—"अल्लाह, मुझे माफ कर। मैंने कोई गुनाह नहीं किया। मैने राह पर दम तोड़ते हुए गिलबिले कीड़े से सिर्फ यह कहा है कि तू इन्सान है, रोटी पाना तेरा अख्तियार है। जो भी तेरे मुंह से तेरी रोटी छीनता है, वह जल्लाद है। उसे तू कभी भी माफ न कर, क्योंकि तू उससे न सिर्फ अपने ऊपर जुल्म करता है, बल्कि सांप के जहर की तरह बढ़ने वाले गुनाहों को अंधेरे को फैल जाने के लिए अपना उजाला भी समेट लेता है और वह दिन आ जाता है जब उस अधेरे में तेरे उजाले का बेड़ा ऐसे गर्क हो जाता है जैसे दलदल में राहगीर और फिर तू घुट-घुट मरने लगता है।"

हसन चुपचाप सुनता रहा। वृद्ध उठ खड़ा हुआ। उसने स्नेह से आगे बढ़ कर हसन के सिर पर हाथ फेरा और कहा—"बेटा शाबाश; लेकिन तेरा बाप कहेगा कि इमाम ने मेरे घर के चिराग को कितने बड़े तूफान के बीच रख दिया।"

हसन ने अपनी मासूम आंखो से देखा और हठात् ही उसके मुंह से निकला—"लेकिन मै किसी से नही डरता, इमामपाक।"

इमाम ने सुना और मन ही मन कांप उठा।

शहर में हड़ताल थी। चारों ओर दुकानें बिलकुल बन्द थी। कुछ कालेज के लड़के सिगरेटों के लिए सड़कों पर चक्कर लगा रहे थे। दुकानदार दुकानें बन्द कर-कर के सड़क पर आ इकट्ठे हुए थे। मजदूरों और गरीबों की टोलियां इधर-उधर घूमती हुई 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाती; कभी 'महात्मा गांधी की जय' बोलतीं। उनके लिए गांधी का मतलब व्यक्ति से नही, किन्तु अपनी आजादी के लिए लड़ने की भावना के प्रतीक से था। बच्चों के झुंड जगह-जगह नारे लगाते हुए घूम रहे थे। राजनीतिक पार्टियों के जगह-जगह एलान हो रहे थे। आज हर कोई बाहर था, क्योंकि रोटी की

राजनीति थी और सबका पेट पुकार उठा था !

तीन बजते-बजते लोग जुलूस के लिए इकट्ठे होने लगे। हर मुहल्ले में से क्रांति की धारा बही और जाकर एक जगह समुद्र बनने लगी। आज मजदूर, गरीब, मध्यवर्ग, हिन्दू, मुसलमान, बच्चे, बूढ़े, औरतें वगैरह सब ही जुलूस में एक बनकर शामिल हुए थे। वे राजनीतिक पार्टियां जो कल तक नहीं मिलती थीं, आज उन्हें जनता के उस अपार समूह में अपने-अपने झण्डे लेकर स्वयं आना पड़ा था, क्योंकि भारत के प्रत्येक व्यक्ति के सामने एक ही प्रश्न था। कल जब नगर में स्वतन्त्रता-दिवस मनाया गया था, पार्टियों के अलग-अलग जुलूस निकले थे और पुलिस ने सबको तितर-बितर कर दिया था, किन्तु आज 'रोटी-दिवस' था और सब एक थे !

जुलूस के उस भीम प्रवाह ने दूर-दूर तक बाजार को ढंक दिया, और जब सहस्रों वज्र कण्ठों से 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का स्वर गूंजने लगा, तब पत्थर की सड़कें अपना कण्ठ खोलकर मानो चौंक-सी उठीं और दीवारों पर जाकर स्वर जैसे अंकुश मारकर उन्हें गुलामी की नींद से जगाने के लिए झकझोर उठा। घोड़ों पर बन्दूकधारी पुलिस चक्कर लगा रही थी। नाके-नाके पर स्पेशल आर्म्ड-कांस्टेबुलरी का सशस्त्र पहरा था। किन्तु लोग चिल्ला रहे थे—'अंगरेजी सरकार का नाश हो ! निकम्मी सरकार को बदल दो ! राशन को बढ़ाना होगा ! आध सेर गेहूं लेके रहेंगे।' और पुलिस उस बटे हुए बर्त्त जैसे जुलूस को देख भीतर ही भीतर कांप उठी थी ! किस पर करेगा जालिम अपना राज, क्योंकि आज गुलाम अपने सारे भेद छोड़कर वह मांग रहे हैं, जिसको न देने के लिए अत्याचारी ने धर्म की दीवार उठाई है।

इमाम अपने छोटे-छोटे विद्यार्थियों को लेकर मस्जिद पर खड़ा-खड़ा उस विराट जन-समूह को गुजरते हुए देख रहा था। एकाएक भीड़ में किसीने आवाज लगाई—"अखण्ड हिन्दुस्तान···!" उधर से आवाज लगी—"पाकिस्तान लेके रहेंगे···!" भीड़ में शोर मच उठा। कोई भी संयत नहीं रह सका। मुसलमानों ने कहा—'अपना-अपना जुलूस अलग निकालिए।' हिन्दुओं ने कहा—'आप अपने नारों को बदल दीजिए।'

पुलिस मौका देखकर इस समय भीड़ तितर-बितर करने की फिराक में थी। एकाएक सहस्रों सिर मस्जिद की ओर उठ गए। इमाम हाथ उठाकर कह रहा था—"अभागे गुलामो, देखा नहीं था, जब थोड़ी ही देर पहले तुम सब एक होकर जा रहे थे। तब वह नादिरशाही पुलिस भीगी बिल्ली की तरह दुम दबाकर खड़ी थी और अब उसके हाथ में फिर पांसा आ जाएगा। हिन्दू और मुसलमान होने की वजह से तुम गुलाम नहीं हो, रोटी के गुलाम हो। अगर पेट के बल पर भी तुम एक नहीं हो सकते तो दुनिया में तुम कभी एक नहीं हो सकते—यानी कभी आजाद नहीं हो सकते। रोटी की सियासत आज तुम सबकी सियासत है। तुम वेदों और कुरआन की नई जिल्दें चढ़वाने के लिए लड़ रहे हो या अपने-अपने पेट भरने के लिए ? अरे, जब तक गुलाम हो, तब तक एक होकर हुंकार उठो, भूल जाओ अपने सारे भेद-भाव···"

हसन ने स्तब्ध जन-समाज पर गर्म सीसा फैला दिया—"इन्कलाब···"

जन-समाज चिल्ला उठा—"जिन्दाबाद !" और जुलूस बढ़ने लगा। रोटी के लिए यह चट्टान जैसी भीड़ आज हराम की टांगें झुकाने के लिए बढ़ रही थी। जिसकी जितनी रोटी है, उसे कोई छीन नहीं सकता लेकिन जो सबकी रोटी को छीन रहा है···

और आवाज गूंज रही थी—'जालिम है सरकार विदेशी !' इमाम ने आगे बढ़ कर कहा—"हसन !" हसन स्तब्ध था, जैसे उसके भीतर खून इतनी तेजी से दौड़ रहा हो कि अब बोलना भी असम्भव हो गया था। इमाम ने उसके सिर पर हाथ रख कर कहा—"कसम खा कि जब-जब यह दोनों वेवकूफ भाई लड़ेंगे, तब-तब तू इन्हें याद दिलाएगा कि तूफान की नाव के मुसाफिरों की पहली लड़ाई पानी के धोखे से है !"

हसन की आंखों में प्रकाश था, मानो जीवन का जाने कौन-सा नया अध्याय आज सामने खुलता चला जा रहा था। इमाम ने ही फिर कहा—"आज जो गुलामी को मिटाने को सबसे बड़ा जंग नहीं छेड़ता, वह मजहब का दुश्मन है। असली गुलामी है कि हम सब उस जालिम के राज्य में भूखे हैं। हम उसके इसलिए दुश्मन नहीं कि उसकी चमड़ी गोरी है, क्योंकि वह सैकड़ों काले कुत्तों के गलों में पट्टे डालकर हम पर लहका रहा है, बल्कि इसलिए कि उसके तख्त में हीरे नहीं हैं, हमारे दुधमुंहे बच्चों की आंखें निकाल कर उस पर जड़ दी गई हैं, और वे हमारी तरफ घूर रही हैं, हमें बुला रही हैं !"

रात हो गई थी। जुलूस ऐसा निकला था, जैसा आज तक आगरे में कभी नहीं निकला। पुलिस दबी-दबी-सी खड़ी थी। वह जब वार करना चाहती थी, उससे पहले ही इमाम ने उसे रोक दिया था। अमन की गुलामी को आज आजादी के एके के अमन ने हरा दिया था।

हसन चुपचाप खड़ा था। मोहसिन ने उसे हिलाकर कहा—"इमामपाक कहां है, हसन ?" हसन नहीं बोला। मोहसिन ने फिर कहा—"इमाम बुजुर्ग कहां हैं, हसन ?"

इसी समय इमाम ने प्रवेश किया। वह गम्भीर था। मोहसिन ने चिल्लाकर कहा—"इमामपाक, आप कहां चले गए थे ?"

इमाम ने भर्राए स्वर से कहा—"बेटा, पुलिसवाले मुझे धमकाने के लिए कोतवाली पकड़कर ले गए थे। कहते थे मैंने कल दंगा करवा दिया होता। वह तो पुलिस थी, इसलिए लोग दब गए। वे कहते थे कि मैंने मस्जिद में से बगावत का नारा लगाया था उनके बादशाह के खिलाफ। खुदा के इबादतखाने की वजह से उन्होंने मुझे नहीं पकड़ा···।"

हसन ने दृढ़ होकर कहा—"नहीं कहेंगे कि कल उनके होश फाख्ता थे। जालिम के घुटने कितने कमजोर हैं ? उनकी दुकान का सौदा जाली सिक्कों के बल पर ही चलता है। दो आने का रुपया सोलह आने में चलाकर रईस बनता है ! उसके कोई खुदा नहीं, उसका मजहब लूट है !"

इमाम ने हर्षित होकर कहा—"क्यों दे दे वह आजादी ? हम क्या उसके इक-

लौते बेटे हैं ? अरे, वह मरकर भी ऐसी वसीयत कर जाए, इतनी भी उसमें इंसानियत नहीं है । वह तो दरिन्दा है—खूरेज़ !"

हसन और मोहसिन सुन रहे थे । उनका खून तड़प रहा था और इमाम कह रहा था —"क्योंकि उनमें ईमान की बू नहीं बची है ।"

['विशाल भारत', मार्च '46]

नारी का विक्षोभ

"अभी चार-पांच साल की ही बात है," कल्ला ने अपने चश्मे को उतार कर साफ करते हुए कहा—"मैं तब लखनऊ यूनिवर्सिटी में पढ़ता था। आप तो जानते ही हैं कि लखनऊ में कैसी बहार है।"

बीच ही में मिट्टी बोल पड़ा—"ओह, बला की ठंड है। चंदू, जरा यार, ढंग से बैठो! कोई खुदगर्जी की हद है कि सारा कम्बल अपने चारों तरफ लपेट बैठे हो। भाई, वाह ?"

"अमां, तो बिगड़ते क्यों हो ? आखिर कोई बात भी हो ? फिर," मुड़कर चंदू ने कहा—"हां, भाई कल्लाजी, फिर !"

कल्ला ने अपने दुशाले को और अच्छी तरह लपेट लिया। फिर कहा—"लखनऊ की जिन्दगी के तीन पहलू हैं, एक नवाबों का, दूसरा टुटपूंजियों का, और तीसरा गरीबों का। क्या बतायें, यार, हमारा समाज ही कुछ···"

"खबरदार !" मिट्टी ने जोर से डांट कर कहा—"कह दिया है, बको मत !"

और चंदू ने अपने मटरगश्ती वाले लहजे से कहा—"हां, भई कल्ला जी, फिर ?"

कल्ला फिर कहने लगा—"देखो, यार, यह बोलने नहीं देता !"

चंदू ने मिट्टी की ओर देखकर कहा—"खामोश !"

कल्ला ने कहना शुरू किया—"जवानी किस पर नहीं आती, मगर जो उस पर आई, वैसी शायद हमने कभी नहीं देखी। मेरे साथ एक लड़का सूरज पढ़ता था। जात का वह कायस्थ था, पर था एक लफंगा। लफंगा से तुम लोग कुछ का कुछ न समझ लेना। भाई, वक्त ऐसा है कि कालेज के लड़के चाहते हैं कि उनकी गिनती उस्तादों में हो। नेकटाई, सूट, चमचमाते जूते, कालेज में कोई कुछ पहन लें पर बातें करने तक का जिसे सलीका नहीं, वह किसी काम का नहीं।

"सूरज की आंखें सदा लड़कियों की ही खोज में रहती थीं।"

"संयोग की बात है," कल्ला ने आगे कहा—"एक लड़की सविता को देखकर सूरज पागल हो गया।

"सूरज के बाप नहीं थे, मां नहीं थी। हां, गांव में उसके चाचा थे, चाची थीं। उनके बाल-बच्चे थे। और सबसे बड़ी एक और बात थी। चाचा जमींदारी का इंतजाम करते थे। सूरज उनका कहना मानने वाला लड़का था। लेकिन कानून की नजर से चाचा

सूरज के चाचा हों, या सिकन्दर के चाचा हों, जायदाद का वह कुछ नहीं कर सकते थे, क्योंकि वही जायदाद का मालिक था।

"इस गारंटी के होते हुए सूरज को किस बात की चिन्ता होती !

"सविता देखने में जितनी सुंदर थी, उतनी ही चतुर भी थी। सबसे बड़ी बात उसमें यह थी कि वह कालेज के डिबेटों में खूब हिस्सा लिया करती थी। जब वह बोलना शुरू करती, तो कोई कहता-- इसका बाप भी ऐसी बातें नही सोच सकता ! जरूर कोई उस्ताद है इसके पीछे, जो प्रेम के कारण अपने आप को छिपा कर इसे आगे बढ़ा रहा है; लेकिन इन बातों से होता जाता कुछ नही। अगर मान लिया जाय कि वह रट कर ही आती थी, तो रटने की भी एक हद हुआ करती है। आज तक हमने नहीं देखा कि 'चन्द्रकान्ता सन्तति' के चौबीसों हिस्से किसी की जबान पर रखे हों। वह बोलने में एक भी भूल नही करती।

"उसके खयाल एकदम आजाद थे। विधवा विवाह, तलाक, सहशिक्षा, स्त्री का नौकरी करना, गोया जिन्दगी के जिस पहलू मे नारी की जो बात है, वह सविता की ही थी। हर [illegible] उसके अपने अलग विचार थे।

"नये विचारों की वह लड़की शाम को लड़कों के साथ घूमने निकलती, पार्टियों में जाती, कविता लिखती। कविता का मजाक शायद आप लोगों को मालूम नहीं। कोई आपकी तरफ आंखें उठा कर देखता तक नहीं तो बस, कविता लिखिये !

"सूरज ने जब सुना कि वह कविता करती है, तब दौड़ा-दौड़ा उस्ताद हाशिम के पास गया। उस्ताद ने उसे देखा, तो सब कुछ समझ गये। उनके लिये क्या बड़ी बात थी ? कालेज का लड़का चटकदार कपड़े पहने उनके पास आया है। चेहरा गुन्ना नून है, मतलब आंखों में वह खुशी नही, वह उत्साह नहीं, जो जवानी का अपना लक्षण है, तो आखिर इसका क्या कारण है ? उस्ताद बिना पूछे ही भांप गये। उस्ताद ने मुस्करा कर पीठ ठोकी। कहा --'बेटा, शाबाश ! मगर मैं एक गजल के बारह आने से कम नहीं लेता। हुलिया बताओ, जो टूटा-फूटा ख्याल हो, उगल जाओ, आला जबान में तरतीब से सजी हुई वह चीज दे दूगा कि जिसके लिये वह होगी, वह तो रीझेगा ही, इधर-उधर बैठे हुए भी दो-चार अपने आप रीझ जायेंगे।'

"एक पांच रुपये का नोट काफी था। सूरज लौटा तो गुनगुनाते हुए। मुझे खुद ताज्जुब हुआ : चार बजे गया था, तब एक शरीफ आदमी था। अब सिर्फ छः बजे है, मगर शायर हो गये हैं।

"आप शायद पूछेंगे कि सविता तो करती है कविता हिन्दी में और सूरज साहब करते हैं शायरी उर्दू में, ऐसा क्यों ? तो सुन लीजिये कि कायस्थों में अधिकतर मर्द हिन्दी नही पढ़ते, औरतें पढ़ती हैं।

"सविता भी कायस्थ थी। उसके एक छोटी बहन, एक छोटा भाई और एक बड़े भाई थे। बड़े भाई लॉ में पढ़ते थे। इरादा था छूटते ही वकालत शुरू करने का।

"सविता अंधी न थी। उसे सूरज की बातें मालूम हो गईं लेकिन न जाने क्यों वह

उसे एकदम टाले दे रही।

"सूरज सविता को गुजरते देखता, तो गजल पढ़ता। जब उसका कोई नतीजा नहीं निकलता, तो कहता, 'खुदा समझे उस कमबख्त हाशिम से! ऐसे हंसकर चली जाती है, जैसे हम सिर्फ गजल पढ़ रहे हों।'

"किन्तु प्रेम की कोई बात स्थिर नहीं है। उसके अनजाने के बन्धन किसी भी वक्त जंग बन कर कठोर से कठोर लोहे को भी चाट जा सकते हैं। दोनों ओर एक-सी परिस्थिति है। दोनों ओर एक ही सूनापन है। आप कहें यह बेवकूफी की इंतहा है। मैं कहूंगा असली प्रेम वही है, जिसे दुनिया बेवकूफी समझे, क्योंकि बेवकूफ वही है!"

चंदू ने टोककर कहा—"हम समझ रहे हैं!"

कल्ला ने एक बार सिर हिलाकर कहा—"समझ रहे हैं, तो बताइये क्या हुआ?"

सिद्दी ने कहा—"नहीं, आप ही बताइये!"

कल्ला मुस्कराया। कहने लगा—"तो हुआ वही जो होना था।"

"यानी?" सिद्दी ने चौंककर पूछा।

"एक दिन," कल्ला ने कहा—"सविता के बड़े भाई मेरे पास आये। कहा, आप सूरज के गहरे दोस्तों में से हैं न?

मैंने कहा—"जी हां, फरमाइये।"

"वह कुछ सोचते हुए बोले—'कैसा लड़का है?'

"इसके बाद सोरों के पंडों की तरह मुझे सूरज के सात पुश्तों के नाम गिनाने पड़े। घर की हालत बतानी पड़ी।

"भाई साहब ने बताया कि उन्होंने कुछ उड़ती हुई उनके प्रेम की कहानियां सुनी हैं। मैंने कहा—'जी वह सिर्फ कहानियां ही नहीं हैं।'

"मेरी तरफ गौर से देख कर भाई साहब मुस्कराये। कहा—'खैर! मैं औरतों की पूरी आजादी का कायल हूं। मेरी बहन ही सही, मगर जब मैं खुद चाहता हूं कि कोई पसन्द की शादी करूं, तो मेरा फर्ज है कि उन्हें पूरी मदद दूं।'

"अब मेरी भी सविता से जान-पहचान हो गई। हमारी जो मामी हैं, उनके भाई की बहन सविता की भाभी होने वाली थी। मगर अचानक उसके गुजर जाने की वजह से वह शादी न हो सकी।"

सिद्दी ने जम्हाई लेकर कहा—"बड़ा लम्बा किस्सा है!"

"लीजिये, साहब," कल्ला ने चिढ़ कर कहा—"शादी हो गई सूरज और सविता की। छोटा हो गया अब?"

"भाई तुम्हारे मुंह में घी-शक्कर!" चंदू ने सिगरेट पेश करते हुए कहा—"सिनेमा का-सा लुत्फ आ रहा है।"

सिद्दी ने कहा—"फिर?"

कल्ला ने एक लम्बा कश खीचा, और धुआं छत की तरफ छोड़ कर फिर कहना

शुरू किया—"उसके बाद एक दिन की बात है। सूरज, मैं और मेरा एक और दोस्त, चंद्रकान्त, कालेज में घूम रहे थे। सविता की कालज की पढ़ाई जारी थी। अब भी वह अपने भाई के यहां ही रहती थी, सूरज के यहां नहीं। शादी के तीन-चार महीने बीत चुके थे।

"शादी हो जाने से तमीज आ जाती है, यह हमने जरा कम देखा है। सूरज की आदतें बदस्तूर कायम रही। किंतु इस बीच में यह जरूर हुआ कि मेरा सविता के यहां आना-जाना काफी बढ़ गया।

"चंद्रकान्त मुंह का वक्की था लेकिन दिल का बिलकुल पक्का। सौ लड़कियों को देख कर दो सौ तरह की बोलियां निकाल सकता था, मगर वह जहर उसके दिल में नहीं। सिर्फ गले के ऊपरी हिस्से मे ही था।

"उस दिन चंद्रकान्त ने लड़कियों की एक भीड़ देख मुस्करा कर कहा—'देख, यार, कल्ला! कभी-कभी तो देख लिया कर!'

"लेकिन हम चूंकि जरा ऊंचे खयालों के आदमी हैं, इन बदतमीजियों में हमारा दिल, आपकी कसम, बिलकुल नहीं लगता।

"जिस लड़की की नीली साड़ी थी, वह चंद्रकान्त की पुरानी जान-पहचान की थी। चंद्रकान्त ने हाथ से इशारा करते हुए मुझसे कहा—'देखा?'

"मैंने देखा, और बिलकुल चुप। लड़की की पीठ मेरी ओर थी। झट से लाइब्रेरी में घुस गई। सूरज अपने ध्यान में मग्न पहचान नही पाया उसे। झट से चंद्रकान्त का हाथ पकड़ कर बोल उठा—'चलो जरा देखें तो हातिमताई की हीरोइन बनने के लायक है या नहीं!'

"पहचान तो मैं गया था कि वह कौन है, फिर भी चाहता था कि सूरज को आज एक ऐसी नसीहत मिल जाय, जिसे वह जिन्दगी भर याद करे।

"लड़की की पीठ ही फिर नजर आई। सूरज ने दबी आवाज में कहा—'काश, हमें भी दीदार हो जाता।'

"लड़की ने मुड़ कर देखा। सूरज के काटो तो खून नहीं। वह सविता थी। उसकी त्यौरियां पहले तो चढ़ीं, लेकिन जब सूरज को पहचान लिया, तब न जाने क्यों उसे हंसी आ गई। भला बताइये, कोई स्त्री अपने ही पति को इस हालत में देखे, तो उसे कोफ्त तो होगी ही, लेकिन हंसी न आ जाय उसे, यह नामुमकिन है। रेल में कोई आपकी जेब काटे और आप जेबकट को पकड कर देखें कि वह तो आप ही का छोटा भाई है, तो हंस कर डांटियेगा, या पुलिस के हवाले कर दीजियेगा।

"हम तीनों लौट आये। चंद्रकान्त को मालूम नहीं था कि सूरज सविता का पति है। उसने कहा—'देखा आपने? है मुझमें कुछ अक्ल? पूरी भीड़ में ले जाकर किसके आगे खड़ा कर दिया आपको? जनाब जेब में पैसा चाहिये, बस फतह है!'

"सूरज मेरी तरफ देख रहा था। मैं अब चंद्रकान्त को चुप होने का इशारा भी नहीं कर सकता था। वह बकता गया, 'सारा कालेज जानता है कि आज से दो साल

पहले जब यह लड़की आई०टी० में थी तब इसका एक मास्टर से दोस्ताना था। मास्टर आदमी काबिल था। पढ़ाई में तेज, हॉकी खेलने में नम्बर वन और हिन्दुस्तान में चुनाव और प्रेम में कमाल कर दिखाने वाली चीज भी उसके पास थी, मेरा मतलब मोटर से है। यह दिन-रात उसके साथ मोटर में घूमा करती थी। भाई हैं इसके अपने अलग मस्त।'

"कमबख्त बके जा रहा था। सूरज का सिर झुक गया। मैंने धीरे से इशारा किया कि चुप रह। मगर उसने समझा कि सूरज पर उस लड़की का प्रेम भूत बन कर सवार होने लगा है। उसने कहा--'अमां, छोड़ो भी ऐसी लड़कियों से तो दूर ही रहा जाय, तो अच्छा। यह हिन्दुस्तान है हिन्दुस्तान! जब अपनी देसी सरकार बनेगी, तो इन अधगोरों का क्या हाल होगा, यह पंडित नेहरू भी नहीं बता सकते। जाने दो, यार! समझदार आदमी हो। क्यों तुम प्रेम-ब्रेम के चक्कर फंसना चाहते हो?'

"रात आ गई थी। सूरज बैठा सिगरेट फूंके जा रहा था। उसके चेहरे पर उदासी छायी हुई थी। वह किसी घोर चिन्ता में पड़ गया था। देर के बाद उसने कहा — 'कल्ला, चाचा को मालूम होगा यह सब, तो क्या कहेंगे?'

"मैंने सुना, और सोचकर कहा—'क्यों, क्या चन्द्रकान्त को तुम्हारे चाचा का पता मालूम है?'

" 'नहीं तो।

" 'तो फिर उन्हें कैसे मालूम होगा? मैं तो कहने से रहा और सविता भी क्यों कहने लगी। अब आप ही अगर इतने अक्लमन्द हों, तो मैं लाचार हूं। कम-से-कम, भई, मैं तो इसमें कुछ नहीं कर सकता।'

"सूरज ने कहा—'और तो कुछ नहीं, लेकिन मुझे एक बात कचोट उठती है। जाते वक्त चन्द्रकांत ने कहा था कि जिस आदमी से इस लड़की की शादी होगी, वह भी एक ही काठ का उल्लू होगा।'

"गनीमत है, मैंने दिल में कहा।

"एक काम करोगे? सूरज ने कहा।

"मैंने पूछा—-'क्या?'

" 'सविता से मैं एकान्त में मिलना चाहता हूं उसे कल यहां ले आओ?'

" मैंने कहा—'बेखुश! यह क्या मुश्किल है?'

"सूरज ने एक लम्बी सांस को जैसे लाल किले से रिहा किया। मैंने कहा—'कल शाम को जाऊंगा। उसके यहां।'

"सूरज खुश नजर आता था। दूसरे दिन जब शाम को मैं उसके कमरे में घुसा, तो उसने हर्ष से मेरे कंधों को पकड़ कर कहा—'क्या कहा सविता ने?'

"मुझे मन-ही-मन बड़ी हंसी आई। कानून की निगाह से, धर्म की रूह से, समाज के नियम से वही उस औरत का देवता है। मगर बात ऐसी करता है, जैसे शादी के पहले का प्रेम हो रहा है।

"मैंने कहा—'बात जरा गौर करने की है। बैठ जाओ, तब कहूंगा।'

"सूरज ने बैठ कर सिगरेट सुलगा ली।

"मैंने कहा—'मैं गया था उसके पास। उसने कहा—'ऐसे कैसे मिल सकती हूं? अभी तो हमारा गौना भी नहीं हुआ।'

"सूरज ने तड़प कर कहा—'मुझसे मिलने के लिये गौने की जरूरत है? मास्टर से मिलने को तो किसी की जरूरत नहीं थी? कैसे-कैसे आदमी हैं, इस दुनिया में?'

"मैने कहा—'मास्टर से सिर्फ मिलना-जुलना था। तुम्हारे यहां आने का मतलब स्पष्ट है। जमाना हंसेगा।'

"'और तब न हंसता था?' सूरज ने मुझे घूरते हुए पूछा।

"मैंने कहा—'खूब हो, यार, तुम भी! हकीकत में दुनिया डरती है। अपना ही मन साथ न हो, तो तिनका भी पहाड़ नजर आता है।'

"लेकिन सूरज की समझ में न आना था न आया। उसने मेज पर मुट्ठी मार कर कहा—'तो एक महीने के अन्दर देख लेना!'

"मुझे फिर हंसी आई, जैसे वह कोई कमाल कर रहा हो।

"लिख दिया सूरज ने अपने चाचा को। इजाजत लेना तो क्या एक तरह से इत्तला देनी थी। काम हो गया।

महीने भर बाद गौना हो गया। सविता उसके घर में आ गई। अब सूरज कभी-कभी मुझे भी घूरने लगा, क्योंकि मैं बार-बार सविता की तरफदारी करता था। कहा कुछ नहीं। थोड़े दिन तक जिन्दगी ऐसे चली, जैसे चाय और दूध। लेकिन मैं आखिर कब तक चीनी बनकर स्वाद कायम रखता?

"एक दिन दबी जबान से सूरज ने सविता से उसके पहले जीवन के बारे में प्रश्न किया।

"सविता ने कहा—'आप ऐसी बातें करते हैं? मुझे सचमुच बड़ा ताज्जुब होता है। आप लोग जो कुछ करते है, हम लोग तो उसका पांच फी सदी नहीं कर पाते।'

"सूरज मन-ही-मन कुढ़ गया। उसके हृदय में पुरुषत्व की वह जायदाद की मिलकियत वाली बात, जो उसमें कूट-कूट कर सदियों से भरी हुई थी, भीतर-ही-भीतर चोट खाते, सांप की तरह फुंकार उठी। स्त्री और पुरुष की क्या बराबरी? वेद में जिक्र है, यज्ञ के खम्भे में अनेक रस्सियां बांधी जा सकती हैं। हां, एक रस्सी से दो खम्भे नहीं बांधे जा सकते। सूरज चुप हो रहा। मास्टर से सविता का क्या सम्बन्ध था, इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला। वह जो अंधेरा था, उसमें भीतर का अविश्वास नफरत का भयानक भेड़िया बनकर इधर-उधर घूमने लगा, कि कब शिकार की आंखें जरा झपकें, और कब वह झपट कर अपने दांतों की नोकों को उसके गले में गड़ा दे और उसके शरीर को नोच-नाच कर तीखे नाखूनों से फाड़ डाले।

"सीधी-सादी बात थी। अगर सूरज पूछ लेता, तो बात वहीं की वहीं साफ हो सकती थी। लेकिन अपना पाप ही तो समस्त निर्बलता की जड़ है।

"सविता ने कहा—'आप मुझ पर अगर शुरू से ही भरोसा नहीं करेंगे, और बाहर

वालों की बातों का ही यकीन करेंगे, तो न जाने आगे क्या हाल होगा। माना कि आप मुझे अपनी बात पूरी तरह कहने का अवसर देंगे, तो भी क्या यह जरूरी है कि जो मैं कहूं, आप उसे सच ही मानेंगे ? जाहिर ही है कि कोई अपने मुंह से अपनी बुराई नहीं करता। तो स्त्री होने के नाते जब आप मुझ पर किसी तरह भी विश्वास नहीं कर सकते, तो मैं अपने आप चुप हो रहूं, यही बेहतर है !' फिर तनिक रुक कर कहा —'आपने तो कहा था कि आप मुझे किसी तरह भी अपना गुलाम नहीं बनायेंगे। पर मैं देखती हूं, शादी के पहले जो आपने अपने खयालों की आजादी दिखाई थी, वह सब झूठ थी।'

"सूरज उस समय तो हंस कर टाल गया। उसी शाम को उसके लिये एक नई रेशमी साड़ी भी लाया। सविता ने पहले तो प्रसन्नता दिखाई, फिर उसने कहा—'इस महंगी में इसकी क्या जरूरत थी ?'

" 'तो क्या हो गया ?' सूरज ने प्रसन्न होकर कहा —'पच्चीस जगह उठना-बैठना होता है।'

" 'सविता ने उदास होकर पूछा—'आप मेरी दिन की बातों का बुरा तो नहीं मान गये ?'

"सूरज ने आंखें झुका लीं। तीर मर्म पर जा कर गड़ गया था।

"सविता ने कहा—'आप मेरी बातों का बुरा न माना कीजिए। मुझे बचपन से ही ऐसे बक-बक करने की आदत पड़ गई है, क्योंकि मां-बाप तो रहे नहीं, जो तमीज सिखाते। लेकिन एक बात का मैंने पक्का इरादा कर लिया है अब। काम वही करूँगी, जिसमें आप खुश हों। स्त्री के विचार वही होने चाहिए, जो उसके पति के होते हैं। आप मुझे माफ कीजिये !' कह कर वह रो पड़ी।

"सूरज ने स्नेह से उसके आंसू पोंछ कर कहा —'तो रोती क्यों हो ? छि: !'

"वह चुप हो गई।

"सूरज ने मुझसे जब ये बातें कहीं, तो मैंने कहा—'यह है हिन्दुस्तानी ! इसे कहते हैं हार !'

" 'क्या मतलब ?' सूरज ने कहा—'कैसी हार ?'

"एक जंगल का आजाद परिंदा पिंजरे में पड़कर सोच रहा है कि पिंजरा ही जीवन का सबसे बड़ा स्वर्ग है

" 'हूं ?' सूरज ने मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और कहा—'अभी अकेले हो न ! जब तुम्हारी बारी आयेगी, तब देखेंगे !'

"मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। बेकार बहस करने से क्या फायदा ? मैं चुप हो रहा। पर मुझे ऐसा लगा, जैसे अंधेरे चलते-चलते किसी को यक-ब-यक यह खयाल हो जाय कि उसका कोई पीछा कर रहा है, और धोखे से वार करके उसे मार देने की राह देख रहा है।

मिट्टी ने चंदू की ओर देखा। दोनों इस समय गम्भीर थे। कल्ला ने नई सिगरेट जला कर फिर कहना शुरू किया—"आना-जाना पहले की तरह जारी रहा। तुम जानते

हो, आदमी का दिल एक चट्टान की तरह है, जिसकी जड़ को शक की लहरें एक बार काटने में कुछ भी सफल हो जाती हैं तो एक-न-एक दिन ऐसा आता है, जब पूरी-की-पूरी चट्टान लुढ़क जाती है।

"कालेज में सूरज ने मुझसे कहा—'यार, आज तो शाम को गोमती में बोटिंग को चलेंगे। वहां से फिर सिनेमा। साढ़े चार बजे हमारे घर ही आ जाना?'

"जब मैं उसके घर पहुंचा, तो सूरज नहीं लौटा था। सविता ने गोल कमरे में ले जा कर मुझे बैठाया, और जा कर स्टोव पर चाय के लिये पानी चढ़ा दिया।

"आकर पूछा—'क्या खाते हैं आप?'

"मैंने कहा—'सब-कुछ खाता हूं, बशर्ते कि कोई खिलाये!'

"हँस पड़ी वह। बोली—'खाने की तो ऐसी पड़ी नहीं, पर उनका इंतजार तो करेंगे न?'

"मैंने कुछ नहीं कहा।

" 'आते ही होंगे।' उसने मुस्करा कर कहा—'वक्त तो हो गया है। क्यों आज क्या कोई प्रोग्राम है?'

"मैंने कहा—'जी नहीं बस शाम को नदी की सैर करने का विचार है। फिर सिनेमा···'

" 'उसने काटकर कर कहा—'तो और क्या रात भर घूमना चाहते हैं?' कह कर वह हंस पड़ी। कहा—'आप जानते हैं, मैंने कालेज छोड़ दिया है।'

" 'जी, ऐसा क्यों?' मुझे सचमुच मालूम नहीं था।

"उसने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'उनको मेरा कालेज जाना पसंद नहीं। कहते थे, बी० ए० तो कर चुकी हो, एम० ए० करके क्या तुम्हें नौकरी करनी है?"

"उसके स्वर में एक तीव्र वेदना थी जो उसके मुस्कराने के प्रयत्न में और भी कठोर प्रतीत हुई, मुझे ऐसा लगा, जैसे खिलौने सामने फैला कर कोई बच्चे से कह रहा हो, खबरदार, जो हाथ लगाया!

"मैने विक्षुब्ध होकर कहा—'आपने सूरज से यह नहीं पूछा कि उनको बी० ए० तक पढ़ने की क्या जरूरत थी?'

" 'अब यह तो आप ही पूछिये! मुझमें तो इतनी ताब नहीं कि बार-बार उल्टी-सीधी बातें सुनूं।'

"मैने सुना। किन्तु मन का कौतूहल फिर भी जागा ही रहा। मैंने पूछा—'अच्छा, एक बात पूछता हूं, माफ कीजिएगा, बात जरा कड़ी है। आप कालेज में न होतीं, तो सूरज बाबू क्या आपको कभी देख सकते थे? और जब यही नतीजा निकलना था, तो चाचा से कह कर किसी बिलकुल ही पुराने ढंग की लड़की से उन्होंने क्यों नहीं शादी की?'

"मन तो बहुत कुछ बकने का था, लेकिन हठात् चुप हो गया, क्योंकि उसी समय सूरज कमरे में आ दाखिल हुआ। उसका प्रवेश इतना आकस्मिक था कि एक बार हम

दोनों ही चौंक उठे। सूरज की तेज आंखों ने इसे देख लिया।

"दूसरे दिन जब मैं सूरज के यहां गया, तो बाहर बरामदे में ही ठिठक गया। अंदर मे सूरज की आवाज आ रही थी, 'मेरी गैरहाजिरी में अगर कोई भी आये, तो दरवाजा खोलने की तो क्या, जवाब तक देने की जरूरत नहीं है।'

"फिर सविता की आवाज सुनाई पड़ी, 'बहुत अच्छा ! आपके चाचा जी आयें, तब भी !'

" 'उन्हें तो दूर करने की कोशिश करोगी ही ! अजी, बाहरी लोगों के लिये कहा है।'

" 'तो मैंने किन-किसको बुलाया है ?'

" 'कल वह कौन आया था ?'

" 'मैंने बुलाया था कि आपने ? मैंने तो उल्टे आप पर एहसान किया कि आपके एक दोस्त की नजर में आपको गिरने नहीं दिया !'

" 'मुझे इन एहसानों की जरूरत नही !' सूरज का स्वर दृढ़ था, कठोर भी।

" 'आपकी जैसी मर्जी। मुझे किसी से क्या मतलब ?'

"मैंने सुना। क्रोध से मेरी आत्मा छटपटा उठी। बाहर ही से लौट आया।

"इसके बाद मैंने उसके घर पर आना-जाना बहुत कम कर दिया। इम्तहान आ गये।" कह कर कल्ला चुप हो गया।

" 'चुप क्यों हो गये ?' चंदू ने चौंककर पूछा।

" 'सिगरेट !' माथे पर बल डाल कर पूरी आंखें फाड़ते हुए कल्ला ने कहा—"जरा थक गया हूं।"

"तो हुजूर, मालिश ?"

"नो, थैंक्स !"

"सिगरेट जलाकर कल्ला ने कहा—'मुझे अपनी साइकिल वापिस मिल गई। जो लड़का मेरी साइकिल पहुंचाने आया···'

सिद्दी ने काटकर पूछा—"इसी बीच में साइकिल कहां से आ गई ?"

"यार, कोई मैं गढ़-गढ़ कर तो सुना नहीं रहा। अब जैसे-जैसे याद आता जायगा, मैं तुम्हें सुनाता जाऊंगा। कोई सबक तो मैं आपको सुना नहीं रहा हूं।"—कल्ला बिगड़ कर बोल उठा।

"अच्छा, अच्छा !" चन्दू ने बीच में पड़ते हुए कहा—"तो साइकिल वाला लड़का ?"

"हां," कल्ला ने कहा—"उसके हाथ में एक खत था। खोल कर पढ़ा—

'प्रिय भाई,

अब हम गांव जा रहे हैं। आपकी साइकिल वापिस भेज रही हूं ! धन्यवाद !

आपकी

सविता।'

"साइकिल उठाकर धर ली। मुझे मालूम हुआ कि साइकिल ही इस विद्वेष की जड़ थी।

"मेरे एक दोस्त थे। साइकिलों की चोरी करना ही उनका रोजगार था। एक बार वह कानपुर से एक साइकिल चुरा कर लाये। बोले—'बहुत दिन से सस्ती साइकिल मांगा करते थे। अब ले लो!' मैंने कहा—'वाह, यार! गोया हम मर्द न हुए, औरत हो गये, जो आप जनानी साइकिल लाकर एहसान जता रहे हैं! मांगी थी पतलून, लाये हैं साड़ी!'

"बोले—'भई, दिक न करो! हमें कुछ नहीं चाहिये, सिर्फ पंद्रह रुपये दे दो! फिर मामला तय होता रहेगा।'

" 'चंद्रकांत की भाभी आने वाली थी।' उसने कहा—'अबे भाभी के काम आ जायगी। ले ले!'

"एक दिन कालेज में सविता मिली। बात चलने पर उसने कहा—'देखिये, घर हमारा है बहुत दूर। पैदल आते-आते दिवाला निकल जाता है।'

"मैंने कहा—'आपको साइकिल तो दे सकता हूं, पर कुछ ही दिन के लिये।'

"सविता प्रसन्न हुई।

"अब वह साइकिल पर बैठ कर कालेज जाने लगी।

"एक दिन सविता ने मुझे कालेज में रोक लिया। पैर में पट्टी बंधी थी। लंगड़ा-लंगड़ा कर चल रही थी।

"मैंने कहा—'क्या हुआ?'

" 'चोट लग गई।'

" 'तो अब तो ठीक है?'

" 'हां, एक तकलीफ दूंगी।'

"मैंने कहा—'फरमाइये।'

" 'एक तांगा ला दीजिये!'

" 'क्यों, साइकिल क्या हुई?'

" 'वह मैं वापस कर दूंगी।'

" 'क्यों?'

" 'कल वह आये थे हमारे घर। मैं लौट कर आई, तो भैया ने कहा—'सविता, यह साइकिल तू कहां से ले आई?' मैने बताया। भैया ने कहा—'सूरज को मालूम है?' मैंने कहा, 'उनसे तो कभी मिलती नहीं।' भैया ने कहा, 'आज सूरज आया था, कहता था, चाचा आए थे। उन्होंने सविता को साइकिल पर चढ़े देखा था।'

"मैं सुनता रहा। सविता सुनाती रही, 'चाचा ने बहुत बुरा माना था। भला कोई बात है कि घर की बहू-बेटियां साइकिलों पर घूमा करें!' भैया ने कहा—'सूरज बाबू कह गए है कि सविता को साइकिल पर जाने से तो रोक ही दें।' मैंने भैया से कहा, 'आपने कहा नहीं कि कालेज दूर है?' 'कहा था,' भैया ने कहा, 'पर सूरज ने कहा कि

यदि य-बात है, तो पढ़ाई की ही ऐसी क्या जरूरत है ?' मुझे बहुत बुरा लगा । मैंने कहा, 'मैं तो साइकिल पर जरूर चढ़ूंगी ।' तब भैया ने कहा, 'देखो, सविता, अब तुम बच्ची नहीं हो । शादी के बाद तुम्हें अपनी आंखें खोल कर चलना चाहिए ! यह बचपन अब काम नहीं देगा ।' कह कर सविता चुप हो गई । फिर कहा—'भिजवा दूंगी आपकी साइकिल !'

"मैंने कहा— 'सुना है, आपका···'

" 'जी हां !' उसने लाज से सिर झुका कर कहा ।

"मेरा इशारा उसके गौने की ओर था । वह तांगे में चली गई ।

"पत्र हाथ में लेकर मैंने सोचा, अब वे गांव में होंगे। साइकिल लाने वाला लड़का खत देने के कई दिन बाद आया था । उसकी मेहरबानी थी, कोई नौकर थोड़े था वह ।

"एक-एक कर चित्र मेरी आंखों में घूमने लगे । यही थी सविता की सूरज के प्रति उपेक्षा । उसकी आदतों की वास्तविकता देखकर धीरे-धीरे उसका मन भीतर-ही-भीतर कुढ़ता जा रहा था ।

"किन्तु यौवन फिर भी प्यासा होता है । समाज के जिस बन्धन को हम विवाह कहते हैं, उसका कार्य-कारण रूप चाहे कैसा ही कठोर, वास्तविक, आवश्यक क्यों न हो, किंतु उसकी पृष्ठभूमि में मनुष्य-जीवन का वही संचित व्याकुल मोह है ।

"मैं नहीं जानता कि यह कहते हुए मैं कहां तक ठीक हूं कि मनुष्य के समस्त अन्वेषण, उसकी कला, उसके विज्ञान, युद्ध और जो कुछ भी उसकी हलचल है, उसके मूल में वही एक हाहाकार करती तृष्णा है, जिसे वह सम्वेदना, सहानुभूति और प्रेम की मृग-तृष्णा समझ रहा है ।

"सविता का जीवन उस तलवार की तरह था जिसकी धार को कोई कायर योद्धा पत्थर पर मारकर तोड़ देना चाहता हो । उसमें इतना साहस नहीं है, जो वह उसे उठाकर उससे समाज की घृणित व्यवस्थाओं पर चोट करे, और उसके खून से उसकी धार चमका दे ।

"सविता की बहन कभी-कभी जब कालेज में मिलती, तो पूछती कि मुझे दीदी की कोई खबर मिली ? मैं कह देता कि जब उसे ही कोई खबर नहीं मिली, तो भला मुझे कैसे कुछ ज्ञात हो ?

"अविश्वास की जिस तेज छुरी से सूरज के भय ने सारे सम्बन्धों को जड़ से काटना शुरू किया, वही उसके सुख को काट-काटकर लहूलुहान करने लगी । मैं बहुधा सोचता कि क्या उसका जीवन अब सुधर गया होगा ?

"इसके बाद एक शाम को मैं इलाहाबाद में गंगा के किनारे टहल रहा था । सूरज डूब रहा था । लाल-लाल किरणें पानी पर उतरकर ललाई फैला रही थीं । हवा में कुछ नमी आ गई थी ।

"एकाएक किसी ने आवाज दी—'मिस्टर कल्ला !'

"मैं एकदम चौंक गया, सोचा, यहां कौन कमबख्त आ टपका ? जान-पहचान

वालों से मैं उतना ही चकराता हूं, जितना सड़क पर बदतमीजी से भागती हुई भैंस को देखकर। मुड़कर देखा, आंखों को विश्वास नहीं हुआ। सोच सकते हो, कौन था वह ?"

मिट्टी और चंदू ने सवालिया जुमला बनी भौंहों को उठा दिया।

"था कौन ? वह सविता थी !"

"सविता ?" दोनों ने आश्चर्य से कहा।

"जनाब ! वह सविता ही थी।" कल्ला ने खांसकर कहा—"देखकर मेरी आखें फैलकर रह गई। वह अकेली थी। उसके शरीर पर सादी साड़ी और एक ब्लाउज था। मांग में सिंदूर नहीं था। माथे पर बिंदी जरूर थी। हाथों में चूड़ियां भी थीं। समझ में नहीं आया कि उस फैशन की पुतली में यह सादगी कैसे आ गई !

"मेरे मुंह से सहसा निकला - 'सविता देवी ! आप यहां ? अकेली !'

"वह हंस दी। कहा —'क्यों आप इलाहाबाद से कब आये ?'

" 'जी, मैं तो कल ही रिसर्च के सिलसिले में आया हूं।'

" 'सामान कहां पड़ा है ?'

" 'होटल में।'

" 'मेरे यहां ठहरने में आपको कोई एतराज तो न होगा ?'

"मैंने कहा 'आप कहां ठहरी हैं ?'

" 'मैं तो यहीं रहती हूं।'

"इसके बाद हम लोग थोड़ी देर तक टहलते रहे। कुछ रिसर्च के बारे में बातें हुईं मुझे विस्मय हुआ, उसकी जानकारी की बातें सुनकर। पहले तो उसने कहा कि उसका वह विषय नहीं है और उस पर बात करना उसके लिए एक अनधिकार चेष्टा है। पर सच कहता हूं, उसकी बातें सुनकर मेरी रूह कांप गई। मैं अपने खास विषय पर उस सफाई से बात नहीं कर सकता, जिस पर सविता सिर्फ अनधिकार चेष्टा मात्र कर रही थी फिर सोचा, अच्छा ही है कि सविता का यह विषय ही नहीं, वर्ना मुझे सात जन्म में भी डाक्टर बनना नसीब नहीं होता।

"अंधियारी घिरने लगी। सविता ने कहा—'तो चलिये, अब आपके होटल चलें वहां से आपका सामान लेकर चलेंगे।'

"मैंने कहा —'कहां चलिएगा ?'

" 'घर' उसने हंसकर कहा—'हंसिये नहीं। कुल एक कमरा है। उसे घर कह लीजिए, बंगला कह लीजिए, मेरे लिए काफी है। छोटी बहिन को लिखा था आने को, लिखा है उसने कि एक हफ्ते के भीतर ही आ जाएगी। मैंने तो भैया से भी कहा था कि प्रैक्टिस-प्रैक्टिस का खब्त छोड़ दें, और आकर यहां कोई नौकरी कर लें। चलिए न !'

"मैं लाचार हो गया। हम लोग चलने लगे।

"सविता ने कहा—'एक वक्त था, जब घर की हालत बहुत अच्छी थी। मगर अब हालत ठीक नहीं रही।'

"मैं सोच में पड़ गया। पारिवारिक जीवन की जो झंझटें अधेड़ औरतों को हुआ

करती है, वे आज सविता को खाये जा रही थीं। कल वह एक लड़की थी। लजाया करती थी आज उसकी बातों में एक बुजुर्गी थी, एक स्थिरता थी।

"जब हम होटल पहुंचे, तो काफी ठण्डी हवा चलने लगी थी। आसमान में कुछ बादल भी इकट्ठे होने लगे थे। एक तांगे में सामान रखा। हम दोनों बैठ गये। सविता ने घर का रास्ता तांगेवाले को समझा दिया, और फिर मुझसे बातें करने लगी। अबकी उसने मेरे विवाह के पहलू पर बात शुरू कर दी।

"उसकी बातों में कोई सिलसिला नहीं था। उसके मन में जैसे इतना कौतूहल था इतनी सम्वेदना थी कि वह मेरे विषय में सब कुछ जान लेना चाहती थी।

"घर पहुंचकर उसने बत्ती जला दी, और खाने का इंतजाम करने लगी। चूल्हे पर कुछ चढ़ाकर जब वह बाहर आई, तो उसमें और हिंदुस्तानी घरों की औरतों में कोई फर्क न था। कल वह शायद इन औरतों से नफरत करती थी।

"मैं बैठा-बैठा सिगरेट पीता रहा। सविता ने कहा—'कहां सोइएगा? बरामदा तो है नहीं। छत पर तो शायद रात को आप भीग जाएंगे।'

" 'आप क्या कमरे में ही सोती हैं?' "

" 'जी, नहीं, जब गर्मी होती है तो ऊपर सो रहती हूं। चटाई बिछाई और बिस्तर लगा दिया।' फिर रुककर बोली—'सच, आपसे मिलने की बड़ी इच्छा थी। आप ही तो हमदर्द थे मेरे उस जीवन में, जिससे सब घृणा करते थे, और वह सच्चा विश्वास सबकी आंखों में व्यभिचार का पाप बनकर खटका करता था। अरे···मैं तो भूल ही कही गई। दाल उफन न गई हो।'

"फिर वह उस छोटी-सी रसोई में घुस गई। मैं कुछ-कुछ समझने लगा।

"उसके बाद जब वह लौटी, तो मेरे सामने थाली धर दी। फिर अपने लिए खाने का सामान लगा लाई।

"हम दोनों खाने लगे।

"खाते-खाते हठात उसने पूछा—'कैसा खाना बनाती हूं?

"मैंने कहा—'अच्छा तो है।'

"धीरे से उसने कहा—'वह लोग कहते थे कि मैं खाना बनाना भी नहीं जानती हूं!'

"वह 'हूं' मेरे कानों में सुई की तरह चुभ गई।

"मैंने कहा—'कौन कहते थे?'

"वे कहते थे,' उसने कहा—'मैं तो मेम हूं। बेवकूफ! वे क्या जानें कि मेम भी अपने कायदे से अपना खाना बनाना जानती हैं। फिर क्या खाना अच्छा बनाना औरतों के लिए जरूरी है?'

"मेरे मुंह से निकला—'फिलहाल तो है ही। वैसे बना लेना काफी है। उस्ताद तो खाना बनाने में औरत कभी नहीं रहीं। पाक तो दो ही प्रसिद्ध हैं—भीम-पाक और नल-पाक और दोनों ही पुरुष थे।'

"वह जोर से हंसी। उसने कहा —वहां नौकरानी थी, पर काम तो वह ही करेगी। करने को तो मना नहीं किया मैंने। पर कोई तुल जाय कि मेरा बनाया उसे पसन्द ही नहीं आयेगा, तो कोई कितना भी अच्छा बनाए, क्या नतीजा निकलेगा? बस, वही हुआ जो होना था।'

"हम लोग खा चुके थे। छत पर चटाई बिछाकर बैठ गये। मैंने अपनी सिगरेट जला ली।

"मतवाली हवा थी। सिर पर पीपल खड़खड़ा रहा था। हम दोनों उस अंधेरे में पास-पास बैठे थे।

"सविता ने कहा—'अच्छा, सच बताइए, आपको यह सब देखकर कुछ ताज्जुब नहीं हुआ?'

"मैंने कहा—'नहीं।'

"वह कुछ देर मुझे घूरकर देखती रही। फिर कहा—'यह अंधेरी रात, यह सन-सनाती हवा और मैं किसी दूसरे की पत्नी! ताज्जुब नहीं होता तुम्हें, कल्लाजी? सोचते नहीं कुछ मेरे बारे में?'

"वह हंसी। फिर गम्भीर हो गई। कठोर स्वर में कहा—'विश्वास नहीं कर सको तो न करना। किंतु यदि घृणा ही तुम्हारे आश्वासनों का एकमात्र आधार है, तो भी मैं तुमसे घृणा नहीं कर सकूंगी।'

"मैंने रोककर कहा—'सविता देवी!'

"सविता का बांध टूट गया। आंखों में आंसू छलक आये, जिन्हें उसने मुंह मोड़ कर शीघ्रता से पोंछ लिया। जब उसने मेरी ओर देखा, तो हंस रही थी, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

"सविता ने कहा—'एक दिन हम दोनों रात को बैठे बातें कर रहे थे। उन्होंने कहा, 'सविता अब तो परीक्षा भी हो गई। तुम्हारा क्या विचार है? गांव चला जाय, तो कैसा? मै नहीं जानती, उन्होंने क्या सोचकर यह प्रस्ताव किया। गांव तो दूर न था, किन्तु मैं गांव जाने का नाम सुनकर ही डर-सी गई। न जाने मेरी आत्मा मे एक अनजान यातना की भावना कैसे भर गई। किंतु मैंने कहा, चलिए, मुझे कोई उज्र नहीं।

" 'तीसरे दिन हम चल पड़े। मैंने एक बसंती रंग की रेशमी साड़ी पहन रखी थी पैरों में ऊंची एड़ियों की सैंडल थी। बस और कोई खास बात न थी।

" 'हमने इक्का कर लिया। इक्केवाले ने मुझे घूर कर देखा। उनसे पूछा—'सर-कार, कहां चलूं?'

" 'उन्होंने पता बताया। उसी गांव का इक्कावाला भी था। फौरन उन्हें पहचान गया फिर उसने एक बार दबी नजरों से मेरी तरफ मुड़कर देखा, और मुस्कराकर अपनीतरफ की बोली में कहा, सरकार की पढ़ाई तो खतम हो गई?

" 'उन्होंने कहा, हां।

" 'इसके बाद वे कुछ चिंता में पड़ गए। उनके मुख पर स्पष्ट ही कुछ व्याकुलता

के चिह्न थे। मैंने अंग्रेजी में पूछा, आप इतने परेशान क्यों हैं ?

" 'उन्होंने मेरी ओर देखकर एक लम्बी सांस ली। शायद एक बार पूरे शरीर में एक कंपकंपी सी दौड़ गई। उन्होंने बहुत धीरे से अंग्रेजी में ही उत्तर दिया, मैंने गलती की कि तुम्हें यहां इस तरह ले आया। अब भगवान के लिए कम-से-कम कुछ तो शरम करो ! सिर तो ढक लो।

" 'मैं मन-ही-मन बहुत विक्षुब्ध हुई। मैंने भला कब मना किया था। किंतु शहर में तो इन्हें यह सब बुरा नहीं लगता। गांव की तरफ पैर उठाते ही क्यों कुछ से कुछ होने लगे ? जैसे मैं कोई अंग्रेज थी कि मुझे हिंदुस्तान में शरम करने की रीति भी नहीं मालूम थी। शरम का विचार भी कैसा अजीब लगता है। मदरासी औरतें कभी सिर नहीं ढकतीं तो क्या वे सब बेशरम हैं ?

" 'खैर, एक सिर क्या मेरे दस सिर होते तो भी मैं उन्हें ढंक लेती। एक दिन में तो किसी देश के रीति-रिवाज, अच्छे हों या बुरे हों, कभी बदल नहीं जाते।

" 'इक्का बढ़ा जा रहा था। उस राह के दचके याद आते ही अब भी कमर में दर्द होने लगता है। पहली ही बार मुझे मालूम हुआ कि गांव की जिन्दगी कितनी कठिन है।

" 'उसके बाद हम लोगों ने बैलगाड़ी पकड़ी। जैसे-जैसे गांव पास आता जाता था उनका चेहरा फक पड़ता जा रहा था। लगता था, जैसे उन्हें मुझ पर असीम क्रोध आ रहा हो। मेरा मुंह खुला ही था। यह मुझे वास्तव में बहुत ही घृणित मालूम दिया कि मुंह पर मैं एक लम्बा-सा घूघट खींच लूं और फिर उनकी एड़ियों पर नजर गड़ाये चलूं।

" 'रास्ते में जो भी गांववाले मिलते, हमें खुली बैलगाड़ी में बैठे आपस में एक-दूसरे की ओर देखकर वे मुस्कराते। वह यह सब देखते और जल-भुनकर खाक हो जाते। किंतु करते क्या ? एक बार तो मुझे लगा, जैसे अब एक चांटा पड़ने ही वाला है। लेकिन मुझे स्वयं उनके ऊपर अचरज हुआ। यह आदमी जो शहर में क्या-क्या रंग नहीं दिखाता, यहां बिलकुल ही फक पड़ता जा रहा है ? गांव के बहुत-से छोटे-छोटे लड़के और लड़कियां हमें देखकर कौतूहल से इकट्ठी हो गये। मैंने उनकी बातों को सुना। वे आपस में कह रहे थे—छोटे मालिक शहर से पतुरिया लाये हैं। आज कोठी में नाच होगा…।

" 'उनके आनन्द की सीमा न रही। उनके जीवन का यह भी एक बड़ा स्वर्ग है कि मालिक के घर रंडी नाचेगी और वह देख सकेंगे। मेरे मन में तो आया कि धरती फट जाय और मैं समा जाऊं। वह घृणित शब्द 'पतुरिया' मेरे हृदय पर हथौड़े की-सी भयानक चोट कर उठा। आज उन अज्ञानी, देहाती अनपढ़ बच्चों ने उस संस्कृति का पर्दा फाड़ कर रख दिया था, जो उनके मालिक ने उन्हें दी थी।

" 'मैंने देखा, वह चुप बैठे थे, जैसे यह मोम की एक पुतली मात्र है। मेरी आंखों में आंसू उबल रहे थे, जिन्हें मैं जबरन अपने होंठ काटकर रोक रही थी। और बच्चों की खुशी का वह कठोर शब्द 'पतुरिया' मेरे सारे जीवन के सचित पुण्य और अभिलाषाओं के साथ एक भीषण बलात्कार कर रहा था।

" 'शहर में कोई यदि मुझसे यही बातें कहता, तो मैं उसकी आंखें नोच लेती।

किन्तु वहां मैं कुछ भी नही कर सकी। वास्तव में यह सोलहवीं सदी के स्थिर अन्धकार का बीसवीं सदी की चलती किरन पर हमला था।

" 'दिन भर मुझे लम्बा घूंघट खींच कर रहना पड़ता था। किन्तु मैंने कभी कुछ नहीं कहा।

" 'घर में उनकी चाची, उनकी बुआ, बुआ की बहिन की लड़कियां और एक बूढ़ी मामी थीं। उन बुढ़ियों को जैसे एक नया शिकार मिल गया था।

" 'जब कभी वह मुझे मिलते, मैं कहती, शहर चलिये ! यहां तो मन नहीं लगता। तो वह कहते, कुछ दिन तो रहना ही होगा। सदा तो यहां रहना नहीं। फिर इतनी घबराती क्यों हो ? थोड़े दिन ऐसे ही रह लो !

" 'गांव में अंधेरा हुआ नही कि बस ब्लैक आउट हो गया। जहां लोग पढ़ना-लिखना नही जानते, जहां लोग दिन में इतनी कड़ी शारीरिक मेहनत करते है कि रात को कोशिश करके भी नहीं जाग सकते, वहां रोशनी जले भी तो किसलिए ? वहां तो बस आदमी ने प्रकृति से इतना संघर्ष किया है कि सिर पर एक छप्पर छा लिया है और कुछ नही।

" 'घर की बगल में अपना ही एक छोटा मकान था। उसमें उन्होंने लगभग तीन-चार साल पहले एक पुस्तकालय खोला था। उसमें सैकड़ों पुराने उपन्यास भरे हुए थे। दैनिक पत्र भी आता था।

" 'सुबह चाचीजी मुझे सबके उठने से पहले उठा देती। मैं तब झाड़ू-बाड़ू लगा देती, ताकि जब लोग उठें, तो मुझे उनके सामने यह काम करने की नौबत न आये। फिर मैं खाना बनाने में जुट जाती थी। सबको खिलाते-पिलाते प्रायः तीन बज जाते। फिर शाम का खाना बनाने को तैयारी होती। रात को जब सब खा चुकते, तब प्रायः नौ बज जाते। उसके बाद पैर दाबने की रस्म के लिए तैयार रहना पडता। जितनी स्त्रियां थीं, सभी के पैर दाबने पड़ते। आप ही बताइए, किसके पैर में दर्द नहीं होगा जब कोई आदमी पैर दाबने को खुद-ब-खुद पहुंच जाय ?

" 'साढ़े ग्यारह बजे रात को मैं एक दिन उपन्यास लेकर, लालटेन जला छत पर बैठ गई। दूसरे ही दिन चाची ने कहा, बहू, तुम बहुत रात तक पढ़ती हो। लोगबाग कहते हैं कि सिर खोले ही बहू छत पर बैठती है। यह तो भले आदमियों के घर के कायदे नहीं ! रात को देर तक पढ़ोगी, तो सुबह उठने में भी देर हो जाया करेगी।

" 'मैं खून का घूट पीकर रह गई।

" 'रात को मेरा बिस्तर भी उसी छत पर लगाया जाता था, जिस पर और औरतें सोया करती थी। यह मैं मानती हूं कि कभी-कभी मैं पढ़ने के कारण देर तक जागती रहती, और उठने में देर हो जाती। कभी-कभी रात को मैं इतनी थक जाती कि फिर किसी के पैर-वैर दबाने नही जाती। इस पर एक हंगामा उठ खड़ा होता —बहू क्या हुई, आफत का परकाला हो गई। भला कोई बात है ? यह कायदा है ?

" 'मैंने अब इधर-उधर ध्यान देना छोड़ दिया। रात को पढ़ने के बाद इतनी थकावट आ जाती कि जा कर बिस्तर पर एकदम बेहोश हो जाती, और किसी बात का

ध्यान ही नही रहता। जब दो-चार दिन ऐसे ही बीत गए, तो अचानक एक रात उनके सिरमें दर्द होने लगा। मैं मरहम लेकर गई। किन्तु यह दर्द कैसा दर्द था, वह मुझसे छिपा नही रहा। दर्द की भी कोई हद होती है। रोज रात हुई नही कि उनका दर्द शुरू हो गया और मुझे उसी तरह वही रह जाना पड़ता। हम दोनों को दूसरी छत पास होने के कारण कोई स्वतन्त्रता नहीं थी।

" 'डाक्टर कहते हैं, इंसान को जवानी में कम से कम छः घंटे सोना चाहिए। किन्तु मेरी रात तीन घंटे की हो गई थी। उस थकान के कारण मुझमें एक प्रकार का चिड़चिड़ापन पैदा हो गया।

" 'एक रात उन्होंने कहा, 'तो तुम पढ़ती क्यों हो ?

" 'मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

" 'उन्होंने कहा, भारतीय नारी सहनशक्ति की एक प्रतिमूर्ति समझी जाती है।

" 'मैंने ऐसी रटी हुई बहुत-सी बातें सुनी थीं। कहा, आप मुझे शहर में ही रखें, तो अच्छा हो !

" 'उन्होंने देर तक सोचा। फिर कहा, शहर तो चलना ही है। लेकिन जिस गांव के कारण शहर है, उसमें भी तो रहना होगा।

" 'मैं फिर चुप हो गई। देर के बाद मैंने कहा, आप बुरा न मानें, तो एक बात कहूं।

" 'उन्होंने कहा, कहो !

" 'मैंने कहा, गांव की यह जिन्दगी आपको जैसी भी लगे, मुझे तो अच्छी नहीं लगती। इससे तो यह अच्छा हो कि आप अपने पैरों पर खड़े होकर कमायें, खुद खायें और मुझे भी खिलायें। गरीबों का खून चूसकर, अपने स्वार्थों को कायम रखने के लिए उन्हें धोखा देकर, अपने जीवन का आदर्श खो देना मुझे तो अच्छा नही लगता !

" 'वह चौंक उठे। उन्होंने कहा, तुम्हारी हर बात मे कुछ नफरत है। प्रत्येक स्त्री तकलीफों के होते भी अपने पति से अवश्य मिलना चाहती है। तुम हो कि किस्से कहानियां पढ़कर सो जाती हो। तुम्हें कभी मेरी चिन्ता भी नहीं हुई। इसी से सिर दर्द के बहाने तुम्हें बुलाना पड़ता है फिर एक लम्बी सांस खींचकर कहा, तुम्हें न जाने क्या हो गया है ?

" 'मुझे हंसी आ गयी। मैंने मजाक मे कहा, आपसे नफरत भी करूंगी, तो क्या हो जाएगा ? आप फिर मेरे पति न रह कर कुछ और हो जायंगे क्या ?

" 'उन्होंने मुझे घूर कर देखा और कहा, 'तो तुम समझती हो कि तुम फंस गई हो। अर्थात् तुम मुझे प्यार नही करती ?

" 'मैं बड़े चक्कर मे पड़ी। किसी से कोई कैसे कहे, मैं तुम्हें प्यार करता हूं। सच, मेरा तो मुंह नही खुलता। एकदम बड़ी लाज-सी मालूम देती है। मैंने कोई उत्तर न देकर एकदम चुप्पी साध ली। उन्हें जमींदारी की शान के विरुद्ध कही हुई बात अच्छी नही लगी। कहने लगे, खानदान की इज्जत को कायम रखना पहला फर्ज है, सविता !

" 'मैंने कहा, लेकिन अब तो सवाल ही दूसरा है। कल तक आप दूसरों को पिटवाने में अपनी शान समझते थे, आज वह बर्बरता बढ़ गई है। आप स्वतन्त्रता के आदर्श को लेकर चले थे और यहां रीति-रिवाजों की खूनी धारा में सब-कुछ बहाते चले जा रहे हैं। खानदान की इज्जत क्या इसी में है कि आप इसी तरह बेकार पड़े रहें, दूसरों के पसीने की कमाई खाया करें ? क्या आप जिन रस्मों को खानदान की इज्जत कह पाल रहे हैं, आप उसी गंवारपन में विश्वास करते हैं ?

" 'वह घूरते रहे। कहा, तुम्हारी बातें कैसी रटी हुई-सी लगती हैं। यहां कोई डिबेट हो रहा है क्या ?

" 'मैंने कहा, आप इतनी बड़ी बात को हंसकर टाल रहे हैं ? आप में मुझे यकीन हो गया है, साहस की कम है।

" 'उन्होंने कहा, धीरे-धीरे बात करो, सविता ! कोई सुन लेगा।

" 'मुझे बहुत ही बुरा लगा।

"उन्होंने कहा, अच्छा मान लो तुम्हारे पीछे सब को छोड़ दूं।

" 'मैंने कहा, 'ऐसा आप सपने में भी खयाल न करें। अगर आपने ऐसा सोचा है, तो आपने बड़ा भारी गलती की है। मैं अपने लिए नहीं कहती। मैं उस विचार-स्वातंत्र्य और आदर्श का विचार करके कहती हूं, जिसके आप पहले स्वयं कायल थे। घर छोड़ने को तो मैंने नहीं कहा। मैंने सिर्फ कहा कि पुराने ढर्रे की झूठी रस्मों को छोड़कर हम और आप वही करें, जो आज तक कहा है।

"'उन्होंने कहा, ऐसा नही हो सकता, सविता ! भले ही तुम आदर्शों की दुहाई दिए जाओ, लेकिन जो कुछ होगा, उसे देखकर लोग समझेंगे कि एक औरत की बाते सुनकर घर छोड़ चला गया कपूत। और यह मैं कभी बर्दाश्त नहीं कर सकूंगा ?

" 'एक बार मेरा रक्त क्रोध से खौल उठा। कितना भारी कायर था वह व्यक्ति, जो अपने जीवन की सारी झूठ का सहारा ले अपनी प्यास बुझाने के लिए मुझसे प्रेम की आड मे विलास चाह रहा था।

" 'सुबह की सफेदी झलमलाहट पर मुर्गे की गूंजती हुई बांग सुनाई दी। मैं उठ गयी, क्योंकि मेरे झाड़ू लगाने की बेला आ गई थी।

" 'मैंने एक बार करुण आंखों से उनकी ओर देखा, किन्तु वह झपकी ले रहे थे।

" 'मैं उठ गई। वह सो गए।

" 'उन दिन मेरा शरीर थकान से चूर-चूर हो रहा था। काम तो करना ही था। यदि किसी से कहती कि मै सोना चाहती हूं, रात को सो नहीं सकी, तो जो सुनता वही मुझे निर्लज्ज समझता ! लज्जा और संकोच ने मेरी जीभ को तालू से सटा दिया और मैं बराबर काम करती रही।

" 'दोपहर को जब मैं कमरे में बैठी थी, मुंशीजी पुस्तकालय बन्द कर चाभी देने भीतर आये। उस समय वहां कोई और नहीं था। मुंशी जी मुझे देखकर ऐसे घबरा गए, जैसे कमरे में कोई सांप पड़ा हो। मैंने कहा, चाभी मुझे दे जाइए, और कल का अखबार

आपने क्यों नहीं भेजा ?

" 'मुंशीजी ने लजाते हुए सिर नीचे करके जवाब दिया, भिजवा दूंगा।

" 'वह चले गए। इसी समय मैंने उनकी बुआ की बहिन की बेटी का कर्कश स्वर सुना—आय-हाय ! देखो तो, कैसी लपर-लपर जीभ चला रही है ! जरा भी तो हया-शर्म हो !

" 'मैं एकाएक कांप उठी। उत्तर दिया बूढ़ी मामी ने—अच्छा किया, दुल्हिन, बहुत अच्छा किया ! मुंशीजी को देखकर तेरी चाची या सास तक घूंघट खींचकर चुप हो जाती हैं। एक नहीं उनके अनेक बच्चे हो चुके हैं। तेरे एक आध तो हो जाता।

" 'एक तीसरी आवाज सुनाई दी—अजी हटो, मामीजी ! कोई बात है। उल्टे मुन्शीजी शरमा रहे थे। और दुल्हिन रानी हैं कि मुंह तक नहीं ढंका गया। छिः ! यह भी कोई बात है ?

" 'बुआ की भांजी ने कहा—पढ़ी-लिखी हैं जी ! तुम तो हो गंवार ! शहरों का यही रिवाज है। पराये मर्द से जब तक हंस-हंसकर बातें कर न ले, तब तक खाना कैसे हजम हो ? जाने बेचारी कितने दिन के बाद आज यह मौका पा सकी है।

" 'इसी समय चाची आयीं। उन्होंने भी सुना। तुरन्त आ गईं मेरे कमरे में। हाथ मटका कर कहा—हाय, दुल्हिन, यह तूने क्या किया ? झाड़ू न लगी न सही, पैर न दबाये तूने बड़ी बूढ़ियों के, तेरी बात तेरे ईमान पर ! हमने कभी तुझे कुछ कहा हो, तो हमारी जबान में कीड़े पड़ जायं ! मगर यह क्या है कि पढ़ाई-लिखाई ने तेरी चुटिया के नीचे से अकल ही साफ कर दी ?

" 'वह क्रोध से हांफ रही थीं। मैं चुप बैठी रही, जैसे मैं जीवित नहीं। मुझे मालूम हो रहा था कि जो कीड़े मेरी नसों में खून बनकर भाग रहे थे वे अब धीरे-धीरे जमने लगे थे, मरने लगे थे, और अब वे सब मर जायेंगे, और उन्हीं के साथ मैं भी मर जाऊंगी। मेरे मुख पर पीलापन छा गया। हाथ-पांव कांपने लगे। उस कठोर लांछन से मुझे प्रतीत हुआ कि वास्तव में अब जिन्दा तो हूं ही नहीं, लेकिन यह लोग हैं कि मेरी लाश पर थूकने से भी बाज नहीं आते।

" 'चाची ने फिर कहा—मामीजी, दुहाई है तुम्हें ! इस घर में आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ ! आज तक किसी ने इस घर की औरतों की शक्ल देखना तो क्या, यह भी नहीं जाना कि उनकी आवाज कैसी है। क्या कहेंगे गांव के लोग सुनकर ? जब जमींदार के घर ही से धर्म उठ जायगा, तब लोगों के घर में क्या रहेगा ! हमने सोचा था, अभी लड़की है, सब ठीक हो जायगा। लेकिन मामीजी, जिसके मुंह खून लगा हो, उसकी पानी से प्यास बुझेगी ?

" 'मैं जोर से रो उठी। मैंने चिल्ला कर कहा. किसका खून लगा है मेरे मुंह ? किस काम से इनकार किया है मैंने, जो आप मुझ पर दोष लगा रही हैं ?

" 'ओ हो !' चाची चिल्ला उठी—दुल्हिन रानी पर दोष लगा दिया मैंने ! दुश्मन तो मैं हूं ही ! इसी से दुश्मनी निकालने के लिए ही तो मैंने सूरज की मां के मरने

पर उसे पाल-पोस कर इतना बड़ा किया था !

" 'मामीजी ने डांट कर मुझसे कहा—'अरी, बेहया ! क्या करूं, समझ में नहीं आता! जमाना बदल गया है, वर्ना पुराने वक्तों में इतनी बात कहने पर सारे दांत झाड़ दिए जाते। मर्द नहीं रहे, बेटी, वर्ना मजाल है कि औरत 'आ' से 'ऊ' कर जाय ?

" 'बुआ ने कहा—सूरज ने सिर चढ़ाया है इसे। जूती सिर पर धरेगा, तो धूल लगेगी ही। हम तो जानते ही थे शहर की लड़कियों के गुन। क्या किसी से छिपे हैं ? देखो न उस लछमन को ! जात का नीच ही है, मगर राजी नहीं हुआ कि शहर की लड़की आ जाय उसके घर में बहू बनकर। अरे, जो नीच जातों ने नहीं किया, वह तुमने किया ! मेरे राम, इस घर को अब क्यों भूलते जा रहे हो ?

" 'और सचमुच शाम तक खबर गांव भर में फैल गई। मैं कमरे में छिप कर बैठी रही। समझ में नही आता था कि क्या करूं। खाना बनाने गई, तो मुझे सबने लौटा दिया यह कहकर कि, जा हमें आबरू बेच कर सुख नहीं भोगने है !

" 'मैं लौट आई। चारों और अंधेरा-ही-अंधेरा नजर आता था। एक ही आशा थी कि कम-से-कम वह तो मुझे अपराधी न समझेंगे। कम-से-कम वह तो मेरी रक्षा करेंगे ?

" 'दिन बीत चला। मेरी किसी ने सुधि तक नहीं ली। किसी ने खाने तक को नहीं पूछा।

" 'रात को जब वह आये, तो शिकायतों का ढेर लग गया। ईंटों की बनी वे दीवारें शायद नहीं रहीं, क्योंकि बातों के तीर उन्हें छेद-छेद कर मेरे अन्तस्तल में बार-बार गड़ने लगे। और मुझे दर्द से चिल्लाने का तो क्या, कराहने तक का अधिकार नहीं था।

" 'चाची ने कहा, 'सूरज, इसे तो तू शहर ही ले जा, बेटा ! इसमें घर-गृहस्थी में बहू बनकर रहने का सलीका नहीं है बिलकुल !

" 'मामीजी ने भीतर से चिल्ला कर कहा —'जाने कौन जात-कुजात उठा लाया है। अच्छा जमाना आया है !'

" 'क्या बात है आखिर ?' उन्होंने घबरा कर पूछा।

" 'और जैसे यह कुछ हुआ ही नहीं !' चाची ने ताना मार कर कहा—तो क्या राह में गाने-बजाने की जरूरत थी ? भैया सूरज, हम तो कुछ कहते नहीं, पर खानदान में अपने चाचा के बाद बस तू ही सबका मालिक है। हमने तो तुझे अपना बेटा मान कर ही पाला है। चाहे तो रख, चाहे छोड़ दे ! हमारा क्या है, रो लेंगे ! मगर तेरी तो गत बन जायेगी।

" 'वह घबराहट से बोल उठे, 'पैर नहीं दाबे ? झाड़ू नहीं दी ? खाना नहीं पकाया ?

" 'कौन कहता है, भैया ?' चाची ने फिर कहा—कसम है मेरे बच्चे की, जो आज तक कभी हम कोई ऐसी बात जबान पर भी लाई हों ! इसका तो पढ़ना गजब है, बेटा ! पढ़ेगी तो आधी रात तक, और यह भी नहीं कि रामायण, उल्टे वह किस्से-कहानी तोता मैना के।

" 'मैंने सुना वह कुछ बोले। फिर उनके पैरों की चाप सुनाई दी। जैसे वह वहां से चले गए हों।

" 'स्त्रियां अब भी आपस में फुस-फुस किये जा रही थीं। और मैंने सोचा, कम-बख्त पढ़ाई न हुई मेरी मौत हो गई !

" 'जिस समय उन्होंने कमरे में प्रवेश किया, अंधेरा छा रहा था। उनके पीछे-पीछे ही लालटेन लिये चाची थी।

" 'वह मेरे पास आ गये। कठोर स्वर में उन्होंने कहा—क्यों ? यह मैं क्या सुन रहा हूं ?

" 'मैंने उत्तर नहीं दिया।

" 'चाची ने कहा—ओहो ! अब इतनी लाज हो गई कि बोल गले मे निकलने के पहले सौ गचके खा रहा है ?

" 'मैंने क्रोध मे सिर उठाया। मेरी आंखों से आंसू सूख गए। मैंने चिल्लाकर कहा—क्या किया है मैंने, जो तुम सब मेरा खून पी जाना चाहती हो ? क्यों नही मुझे गला घोंटकर मार डालते ?

" 'उन्होंने मुझसे फिर कहा—मुझे जवाब दो ! मैं जानना चाहता हूं। आज न सही कल। मैं इस घर का मालिक हू। मेरे ऊपर खानदान की इज्जत का सवाल है। क्या जरूरत थी तुम्हें मुन्शीजी से बात करने की ? समझा नहीं दिया था मैंने तुम्हें ? या अकेली तुम ही एक शहर की पत्नी हो ? मैं तो हमेशा से गांव ही में रहा हूं।

" 'चाची कमरे से बाहर चली गई। लालटेन वहीं छोड़ गई। मैंने देखा, वह क्रोध से व्याकुल होकर कांप रहे थे।

" 'उन्होंने कहा—अब तक मैं तुम्हारी बात को तरह देता आया हूं ! शुरू में तुम्हारे पच्चीसों किस्से सुने, पर सुनकर पी गया। और कोई होता, तो मार-मार कर खाल उधेड़ दी होती। मैंने कहा कि थोड़े दिन की बात है फिर शहर लौट चलेंगे। वहां तो मैं तुम्हें मटरगश्ती करने से कभी नहीं रोकता। फिर वह दो दिन तुमसे नहीं कट सकते ?

" 'उन्होंने उंगली उठाकर कहा—तुमने मुझे कहीं का भी नहीं रखा ! आज तुमने यह नहीं सोचा कि तुम क्या कर रही हो ! कभी देखा था आज तक घर की किसी और औरत को उनसे बातें करते ?

" 'मैंने दृढ़ होकर कहा—लेकिन वह कमरे में घुस आये थे। उस वक्त और कोई न था। वह मेरी तरफ देख रहे थे।

देखेंगे नही ? उन्होंने कहा—तुम मुंह खुला रखोगी, तो वह जरूर देखेंगे ! आज तक किसी और घर की बूढ़ी तक ने उनके सामने अपना मुंह खुला रखा है ? तुमने वह बात की है, जो हममें से किसी के भी बस की नही रही। घर-घर चर्चा हो रही है।

" 'उन्होंने कहा—बोलो ! जवाब क्यों नहीं देती ?

" 'मैंने कहा—तुम पागल हो गये हो ? तुम कुछ भी सोच नहीं सकते ? दुरंगी

जिन्दगी बिताने वाले ढोंगी ! पुस्तकालय मे सिर्फ अखबार मंगवाया था मैंने, क्योंकि इस नरक में सिवाय पढ़ने के मुझे और कुछ अच्छा नही लगता ! तुम मुझसे उसे भी छीन लेना चाहते हो ? मुझसे नहीं हो सकती यह गुलामी ! मैं तुम्हारी बुआ, मामी, चाची की तरह अपढ़ गंवार नही हूं, जो अपने आपको तुम्हारी जूतियों की खाक समझती रहूं।

" 'मेरी बात, पूरी भी न हो पाई थी कि मेरा पीठ, हाथ और पांव पर सड़ासड़ बेंत पड़ने लगे। मैं नहीं जानती कि मैं रोई क्यों नहीं। मैने केवल इतना कहा—मार ! और मार !

" 'उनका हाथ थक गया। घृणा से बेंत फेंक दिया, और उनके मुंह से निकला—बेशरम !

"और मैं वैसी ही खड़ी रही।

" 'रात बीत गई। मै वहीं बैठी रही। दूसरे ही दिन मैंने भैया को चिट्ठी लिख दी।

" 'उन्होंने चिट्ठी भेजने मे कोई बाधा नहीं दी।

" 'दो दिन तक मुझे किसी ने खाने को भी नहीं पूछा।

" 'सुबह उठकर देखा, द्वार पर भाई साहब खड़े थे। उनके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थी। उनको देखते ही मेरी आंखों मे आसू आ गये। बहुत रोकने का प्रयत्न करके भी मैं अपने आपको रोक न सकी।

" 'भैया ने कहा—क्या हुआ, सिवो ?

" 'मैंने कहा—मैं यहां नही रहना चाहती।

" 'आखिर क्यों ? कोई बात भी तो हो।

" 'मैंने उनसे कहा—आपने मुझे कहां फेंक दिया ?

" 'क्यों सूरज बाबू ने कुछ कहा ?

" 'मैंने कुछ उत्तर नही दिया। बांह खोलकर बेंत की मार के निशान दिखा दिये।

" 'एक बार क्रोध से उन्होंने अपना नीचे का होंठ काट लिया। फिर सिर झुकाकर कहा—मैं समझता था कि तुम दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते हो। तुम्हारा जीवन सुख से बीतेगा। लेकिन वह लोग कहीं अच्छे जो दुखी है किन्तु दुख का अनुभव नहीं करते, क्योंकि वे गुलामी और आजादी का फर्क ही नहीं जानते। हिन्दुस्तान में अव्वल तो प्रेम-विवाह होते नही और होते भी हैं, तो निभ नही पाते, क्योंकि यह प्रेम समाज की भीषण बेड़ियों को तोड़ने मे असमर्थ रह जाता है।

" 'मैंने कहा—किन्तु मैं ऐसी नहीं हूं।

" 'भैया ने सिर झुकाकर कहा—हम लड़की वाले हैं। हमें सिर झुकाकर ही चलना होगा। वर्ना मैं नही जानता कि क्या होगा ? जो वह कहेंगे, उसी को करने में हमारा कल्याण है। अन्यथा कोई चारा नही।

" 'मैं चुप हो गई। भैया ने फिर कहा—पति ही स्त्री का सब कुछ है, सविता !'

" 'मैंने सिर उठाया। कहा—पति ही स्त्री का सब कुछ है ? किन्तु वह पति

पुरुष होता है। सीता जिस राम के पीछे चली थीं, वह पुरुषार्थी था। जो व्यक्ति अपनी ही रूढ़ियों में जकड़ा हुआ हांफ रहा है, वह मेरे जीवन का आदर्श नहीं हो सकता! किस लिए मैं अपने एकान्त सुख को इतना बड़ा बना दूं कि मेरे विश्वास, मेरी श्रद्धा, मेरी शक्ति एक ऐसे व्यक्ति को देवता समझकर उसके पग पर जम जायं, जो स्वयं लड़-खड़ा रहा हो, जो स्वयं निर्बल हो और स्त्री को केवल वासना बुझाने और खानदान की इज्जत की चक्कियों में पीसने वाली दासी और बच्चे पैदा करने मात्र का एक साधन समझता हो, जो मेरी इंसानियत को धर्म के नाम पर कुचलकर मुझ पर घृणा से हंस देना चाहता हो!

" 'भैया कांप उठे। उन्होंने कहा—तू क्या कह रही है, सविता? तेरी एक छोटी बहिन है। लोग अगर यह सब सुनेंगे, तो कहेंगे, अरे, यह उसी की बहिन है···!

" 'मैंने कहा—किन्तु मैं यहां अब नहीं रहूंगी! तुम मुझे नहीं ले जाओगे तो मैं किसी दिन गले में फांसी लगाकर मर जाऊंगी।

" 'भैया सोच में पड़ गये। उन्होंने कुछ नहीं कहा।

" 'मैंने कहा—अच्छा, कुछ दिन के लिये तो ले ही चलो।

" 'भैया ने कहा—अच्छी बात है। जो होना है, वही होकर रहेगा! तू यही चाहती है, तो चल तेरी मर्जी!

" 'हम लोग लखनऊ में आ गये। एक दिन भी नहीं रही थी वहां कि इलाहाबाद में एक मास्टरनी की आवश्यकता का समाचार देखा। यहां आ गई हूं तब से। स्कूल खुलने के पहले इन्टरव्यू होगा।'

" 'मैंने देखा यह संकुचित नहीं थी। हवा से उसके बाल मुंह पर बार-बार आ जाते थे। मैंने पूछा—'तो क्या आप वहां लौटकर नहीं जायेंगी?

"सविता ने कहा—'कहां?'

" 'वहीं, गांव, सूरज के पास!'

"सविता ने दृढ़ स्वर से कहा—'नहीं, अब मैं निश्चय ही वहां नहीं जाऊंगी। आप सोच भी नहीं सकते कि मुझे आते समय भी किसी ने तनिक भी स्नेह से नहीं देखा। वरन् उनके मुखों पर घृणा का विकृत रूप अपनी सीमा पार कर चुका था। वे लोग मुझे मार डालेंगे। मैं वहां कभी भी नहीं जाऊंगी!'

"मैंने कहा—'इस समय क्रोध में हैं। आखिर सूरज से आप प्रेम करती थीं और वह भी प्रेम करता था?'

"सविता हंस दी। कहा—'आप मुझे जानते हैं। मैं आपको जानती हूं। अगर शाम को गंगा किनारे आप मुझे पहले देखते और आवाज देते, पर मैं आपको पहचानने से इनकार कर देती या टालू बातें करती, तो क्या आप फिर कभी मुझसे मिलने की ख्वाहिश रखते?'

"बात सविता ने ठीक ही कही थी। किन्तु मैंने कहा—'फिर?'

"फिर क्या?' उसने कहा—'फिर तो साफ ही है।'

"मेरे मुंह से निकला—'बड़ी हिम्मत है आप में!'

"जी नहीं!' उसने रोककर तुरन्त उत्तर दिया—'हिम्मत से काम नहीं चलता अकेले। अगर भैया न आते, और मैं अकेली निकल पड़ती, तो जब राह में लड़के, लड़कियां मुझे देखकर तालियां बजा-बजाकर चिल्लाते, बाबू की पतुरिया शहर जा रही है! तब सूरज बाबू मुझे शायद क्रोध के विक्षोभ में गला घोंटकर मार देते हैं! उन्हें तो अपनी जमीन, अपनी जिन्दगी की सच्चाई से भी ज्यादा प्यारी है। उनके खानदान की इज्जत धूल में मिल जाती। इसी से तो कहती हूं, हिम्मत से ही कुछ नहीं हो सकता। अगर मैं पढ़ी-लिखी न होती, अपने खाने-कमाने लायक नहीं होती तो क्या कभी ऐसी हिम्मत कर सकती थी? आदर्शों को पूरा करने के लिये उसके साधनों की ठोस बुनियाद की जरूरत है!'

"मैं सुनता रहा। सविता कहती रही—'दुनिया मुझे बदनाम करेगी, मुझे कुलटा कहेगी। किन्तु बताइये आप ही, मैं इसके अतिरिक्त और क्या करती? जीवन भर गुलामी की नफरत को ही पातिव्रत कहकर औरत को समाज में धोखा दिया गया है, अब मैं उस जाल को फाड़कर फेंक देना चाहती हूं।'

"वह हांफ रही थी। मैंने देखा, वह उत्तेजित हो गई थी। शायद वह यह जानना चाहती थी कि मैं उसके बारे में क्या सोच रहा था।

"मैंने कहा—'आपकी बहन का क्या होगा?'

"उसने कहा—'पढ़ी-लिखी है। कोई मन का ही नहीं, विचारों का भी दृढ़ सामंजस्य मिलेगा, तब शादी कर लेगी। वर्ना कमा खाएगी। पेट की मजबूरी से ही तो स्त्री सिर झुकाने को मजबूर होती है।'

" 'और,' मैंने कहा—'आप ऐसे ही जीवन बिता देंगी?'

"वह क्षण भर सोचती रही। फिर कह उठी—'नहीं मैं उनके पीछे अपना जीवन बरबाद नहीं करूंगी क्योंकि वह मुझसे छूटते ही फिर दूसरा ब्याह कर लेंगे। और मनुष्य उसी स्मृति के पीछे अपने सुखों का त्याग करता है, जिसे वह सुखदायक और पवित्र समझता है।'

" 'तो आप विवाह कर लेंगी?'

"उसने मेरी ओर घूरकर देखा, फिर हंसी। कहा—'मैं तो सच अपने को अयोग्य नहीं समझती। समाज में क्या एक व्यक्ति भी ऐसा न खोज सकूंगी, जिसमें आत्मा का थोड़ा भी सत्य हो, साहस शेष हो? सब ही तो एकदम निर्जीव, कायर नहीं होते। समाज मुझसे भले ही घृणा करे, किन्तु मैं तो मनुष्य से घृणा नहीं करती, जो अकेली बने रहने की तपस्या का बोझ अपने कन्धों पर रखकर छटपटाऊं, और उस यातना को आदर्श-बनाकर सत्ता-स्वार्थियों को एक और मौका दूं कि वे अपने पापों पर धूल उछालकर उसे ढंक दें। और अपनी अच्छाइयों की झूठी झलक को सब के ऊपर ला धरें।'

"और मैंने देखा, वह शांत थी। कोई डर नहीं था उसे। कोई शंका नहीं थी उसके मुख पर। आज मैंने देखा कि स्त्री भी पुरुष की तरह आत्म-सम्मान की आग में

तपकर आजादी मांग रही थी, और सारे संसार का अंधकार-भरा पाप उस पर घृणा से लांछन लगा रहा था, उसे बरबाद कर देना चाहता था, पर वह अडिग खड़ी थी।"

कल्ला चुप हो गया। सिद्दी और चंदू ने भारी पलकों को उठाया। रात बहुत बीत गई थी।

सिद्दी ने कम्बल को और अच्छी तरह लपेट लिया। तीनों इस समय गम्भीर थे।

कल्ला के मुख पर एक शक्ति दमक रही थी, क्योंकि उसने उस नारी की जीवित मानवता की हुंकार सुनी थी, उसने नारी का यह विक्षोभ देखा था, जिसके सामने परवशता की चिता धू-धू जल रही थी।

['माया', अप्रैल '46]

नारी की लाज

भोर की सुनहली आभा कव आकाश में फूटी और कब लोप हो गई, यह दिल्ली के दरियागंज के उस छोटे से घर के नीचे के हिस्से में जरूरत से ज्यादा किराया देकर रहने वाले नौकरीपेशा युवकों में कोई भी नहीं जान सका।

रोशनदान से धूप आकर मेज पर फैल रही थी, जिसके ताप में जगदीश अपने हाथ सेंकने का प्रयत्न कर रहा था। रामसरन गा-गाकर कविता पढ़ रहा था और दीपक सुनता हुआ-सा चुपचाप सिगरेट पीने में तन्मय था।

जगदीश ने कहा —"यार, आजिज आ गए इस जिन्दगी से। कमबख्त में कोई तो मजा नहीं रहा।"

दीपक के होंठों पर एक मुस्कराहट कांप उठी। उसने अपनी आंखों को उठाकर देखा।

रामसरन हंसने को उद्यत-सा कह उठा —"उठो। शायद पड़ोसी के यहां नौकरानी इस वक्त बरामदे में झाड़ू दे रही होगी। लगाओ चेहरे पर क्रीम।"

तीनों हंस पड़े।

तीनों तीन अलग-अलग प्रेसों मे काम करते हैं। आधी रात तक अखबार छपता है। प्रूफ ठीक किए, लौट आए, और फिर दिन भर खाली। उस वक्त उन्हें अपने अभावों की भीषणता कचोट उठती है। कुछ सोने में दिन कटता है, कुछ पढ़ने में, कुछ लिखने में। अपनी दृष्टि में तीनों कुशल वक्ता हैं, तीनों बहुत अच्छे लेखक हैं और यदि इन्हें भी रवि ठाकुर का-सा वंश मिलता, तो शायद चन्द्रमा तक अपनी ख्याति पहुंचा देते।

पड़ोस में चन्दा है, जिसे रामसरन ने अपने मन की आग में जलाने के लिए कच्चा मांस समझ रखा है। किन्तु यह मामला शिष्टता की सीमा के पार नहीं।

दीपक ने कहा—"हां, भई राम, कुछ सुनाओ, यार। अब क्या सब खत्म हो गया।"

"अजी, कहीं ऐसी बातें छिपती हैं।" जगदीश ने हंसकर कहा—"जब मामला असलियत पर आता है, तब यार-दोस्तों की राय कभी नहीं ली जाती।"

तीनों हंस पड़े।

दोपहर का सन्नाटा गहरा हो उठा। बाबू लोग अपने-अपने दफ्तरों को चले गए थे। घरों में अधिकतर स्त्रियां रह गई थीं। लड़के स्कूल और कालेज जा चुके थे।

रामसरन ने कहा—"यार, यह किताब पढ़ी।"

"पढ़ी। मुझे तो कुछ जंची नहीं," दीपक ने सिगरेट सुलगाते हुएक हा—"क्या है इसमें ?"

"अनमोल है, बेजोड़ है, जनाब। पादरी कहता है कि सब मनुष्यों का पिता ईश्वर है। अत: किसी को भी बे-बाप का समझकर घृणा मत करो।" रामसरन ने दृढ़ स्वर में कहा।

"तो करता कौन है," जगदीश ने तकिया सीने के नीचे दबाते हुए कहा—"आज तो, यार, ज्यादा खा गए।"

दीपक हंसा। उसने कहा—"यह तो रोज की शिकायत है।"

इसी समय रामसरन ने मुड़कर बाहर देखा। उसने देखा, चन्दा बाहर खड़ी अपनी किसी पंजाबी सहेली से बातें कर रही थी। वह हल्के से खांसकर उठा, शीशे में मुस्करा कर देखते हुए बाल ठीक किए, और गुनगुनाता हुआ बाहर निकला। दोनों पीछे रह गए मित्रों की खिलखिलाहट की आवाज कमरे में गूंज उठी।

लड़कियों ने कनखियों से देखा। एक बार मुसकराई, और फिर भीतर लौट गईं।

रामसरन मुंह बिचकाए भीतर लौट आया।

"भला यह कोई बात है।" उसने दोनों मित्रों से कहा—"मेरी सूरत कमबख्त क्या इतनी बुरी है कि देखने से कोफ्त होती है ?"

"क्यों ?" दीपक ने धुआं उगलकर कहा—"ऐसा मुगालता क्यों हुआ आपको ?"

रामसरन ने कहा—"वह लौट जो गई। कसम है, अगर इसी से शादी हो जाय, तो कल हम आदमी से देवता हो जाएं।"

जगदीश ठठाकर हंसा। उसने कहा—"तो मतलब यह कि आप चाहते हैं कि वह आपसे प्रेम किया करे, कि आप निकले नहीं कि वह गाना शुरू करे—तू डाल डाल हम पात पात···"

दीपक ने चिल्लाकर कहा—"शाबाश ! अब समझ में आया, मिस्टर रामसरन, कि आप औरतों की इतनी आजादी क्यों चाहते हैं। औरतों को अगर आजाद किया जाय, तो उन्हें एक-एक जोड़ी जूता भी अपनी रक्षा करने के लिए बांट दिया जाए।"

एकाएक एक स्त्री-स्वर सुनाई दिया। वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रही थी—"अरे, बचाओ कोई लाज, बचाओ ! ओ हिन्दुओ ! कोई हमारी लाज बचाओ।"

उस भयानक आवाज को सुनकर रामसरन के चेहरे से मुस्कराहट गायब हो गई। तीनों ने अचरज से एक दूसरे की ओर देखा। सड़क पर एक औरत चिल्ला रही है, चिल्ला-चिल्लाकर धर्म की दुहाई दे रही है।

तीनों ने बाहर आकर देखा, मुहल्ले की अनेक स्त्रियों ने उसे घेर रखा था। वह स्त्री एक सफेद साड़ी और अंगिया पहने थी। उसकी गोद में एक बच्चा था। थी तो वह काली किन्तु अभी यौवन उसमें बाकी था। देखकर लगता था कि जो मुस्कान उसने सोलह वर्ष की आयु में सीखा था, उसे वह बिलकुल ही भूल गई हो ऐसा नहीं।

स्त्रियां अब भी कुछ समझ नहीं पाई थीं। रामसरन ने चन्दा को देखा और एक-टक देखने लगा। चन्दा ने आगे आकर पूछा—"अरे हिन्दुओं, अरे हिन्दुओं ही चिल्लाती रहेगी या कुछ बताएगी भी? आखिर कुछ बात भी तो हो।"

स्त्री की चिल्लाहट फिर भी बन्द नहीं हुई। जब उसने देखा कि काफी स्त्रियां आ गई हैं, और पड़ोस के कुछ बाबू भी अलग खड़े होकर देख रहे हैं, तब उसने कहा—"रे भाई, हमारी लाज बचाओ।"

"तो कोई क्या कर रहा है?" चन्दा ने मुसकरा कर कहा।

एक अधेड़ स्त्री ने कहा—"क्या बात है, री? भूखी है?"

औरत ने मुड़कर कहा—"वह देखो, वह रही। वह मेरी साथिन है। हम बंगालिन हैं। अकाल में वहां से भागकर आई हैं। अब तुम्हारे ही हाथ हमारी लाज है।"

सबने देखा, वह बंगालिन नहीं लगती थी।

दीपक ने धीरे से कहा—"पेशेवर है। कोई बंगालिन-अंगालिन नहीं है।"

स्त्री, जो रह-रहकर युवकों की ओर टेढ़ी दृष्टि से देख लेती थी, एकदम उनकी ओर मुड़ी। उसने कहा—"भैया, यह तुम्हारी बहिन है। इसके होने वाला है···"

उसकी बात अधूरी रह गई। देखा सड़क की दूसरी ओर की एक दीवार से सटी एक और औरत बैठी थी, जो काली तो कम नहीं, किन्तु जैसे यौवन उसका अधिक निखरा हुआ है। उसके चेहरे पर घोर मलिनता छा रही है। जैसे वह थक गई है, अब और चल नहीं सकती। गर्भवती है, और काफी बढ़ा हुआ गर्भ है। सबकी खोजती हुई दृष्टियां उसके शरीर को जा-जाकर छू रही हैं। और वह निश्चेष्ट बैठी है कि उसकी लाज आज इतनी ही है कि उसकी दरिद्रता पशुतामात्र न रह जाय, कम से कम उसे मनुष्यत्व का एक अधिकार मिले कि उसे जनने के लिए एक बन्द घर तो प्राप्त हो।

स्त्रियों मे सहानुभूति की लहर दौड़ गई। अधेड़ स्त्री ने दया से कहा—"बेचारी। जाने कौन सायत थी। भूख के मारे घर छोड़ना पड़ा। कोई न रहा होगा इसके।"

दीवार से सटी स्त्री एक प्रतिमा है। जो चाहे आकर पूजा करे, जो चाहे आकर उसे खड़ा कर दे। उसके पेट मे दर्द हो रहा है। हो सकता है कि इसके गर्भ में संसार का सबसे बड़ा कवि हो या सबसे बड़ा वैज्ञानिक।

दीपक ने जगदीश की ओर देखा। दोनों ने एक बार सहानुभूति से देखा। फिर आंखों में अविश्वास का भाव आया। किन्तु इतने भीषण कांड को देखकर कुछ भी कहने का साहस नहीं हुआ।

एक बार रामसरन ने चन्दा की ओर देखा, और फिर मुंह फेरकर खड़ा हो गया। स्त्रियों ने उसे एक आना, दो आना करके पैसे देने प्रारम्भ किए। कितनी युवतियां दौड़कर भीतर गईं, और कपड़े-आटा निकाल लाईं।

एकाएक रामसरन आगे बढ़ा। उसने कहा—"सुनिये।"

उसके भारी स्वर को सुनकर स्त्रियों ने मुड़कर देखा। रामसरन क्षण भर झिझका, फिर कहा—"आप लोग इस औरत को आटा, कपड़े और पैसे दे रही हैं लेकिन

इससे औरत की परेशानी का हल कहां निकला !"

सबके नयनों में विस्मय झलक उठा।

रामसरन ने फिर कहा—"इसे किसी बन्द जगह की जरूरत है, दवाओं की जरूरत है। किसी मदद करने वाली की जरूरत है। यह सब आपने किया नही जहां तक लाज का सवाल है, वह पैसे देकर तो बचेगी नहीं। आप में से कोई अपने घर मे ले जाय, तो कही अच्छा हो।"

जो औरत सड़क पर चिल्ला रही थी, वह एकबारगी सिहर उठी। स्त्रियों में कानाफूसी होने लगी—'यह कैसे हो सकता है।' 'हमारे घर में ऐसा इन्तजाम कैसे हो सकता है।' 'मुन्ना के बाप क्या ऐसा होने देंगे।' 'यह भली रही। ऐसी क्या दुनिया में एक ही है। हम किस-किसको गले लगाते फिरें।' 'न, बाबा, यह नही हो सकता।' 'आज-कल का तो जमाना ही अजीब है। उंगली पकड़कर लोग पहुंचा पकड़ते है।'

सबने एक असमर्थता से एक दूसरे की ओर देखा। चन्दा रामसरन की ओर अपने बड़े-बड़े नेत्रों को फाड़े देख रही थी कि आज इस छबीले को क्या गया है।

रामसरन ने फिर कहा—"पैसे देकर आपने बहुत अच्छा किया। लेकिन जिस काम को करना है, वह भी करें। एक तांगा मैं लाये देता हूं। आपमें से कुछ बड़ी बूढ़ियां इसे अपने साथ बिठाकर किसी जच्चेखाने में भर्ती करा दें।"

सन्नाटा बना रहा। दीपक और जगदीश देखते रहे।

रामसरन ने कहा— "तांगे के पैसे मैं दे दूंगा। इससे कम-से-कम एक काम तो होगा। कम-से-कम यह बात तो नहीं फैलेगी कि दिल्ली की सड़कों पर हमारी मां-बहिनों की कोई इज्जत नही रह गई है।"

स्त्रियों ने थोड़ी देर तक परामर्श किया। बात कुछ जंच गई। तीन अधेड़ स्त्रियां आगे बढ़ आई।

उनमें से एक ने कहा—"बेटा, तुमने बिलकुल ठीक कहा। देखो, तो कितनी शर्म की बात है। जाओ, तुम तांगा ले आओ। हमारे साथ चलो। हम इसे भर्ती करा देंगे।"

रामसरन ने अधछिपे तौर से चन्दा के मुख की ओर देखा। वहां कोई खास बात न थी। रामसरन ने चौराहे की ओर पग उठाया, किन्तु चिल्लाने वाली स्त्री ने धीरे से कहा—"बाबू !"

रामसरन ठिठक गया। उसने कहा—"क्या है ?"

स्त्री ने दयनीय स्वर में कहा—"नहीं, बाबू इतना कपड़ा-पैसा काफी है। अब हम चले जाएंगे।"

"चले जाएंगे ?" रामसरन के मुंह से अनायास ही निकल पड़ा—"चले ही जाने से क्या सब काम बन जाएगा ? बीच सड़क पर चिल्ला-चिल्लाकर हिन्दू धरम की दुहाई दे रही थी, और अब कहती है—चले जाएंगे।"

उसने मुड़कर देखा। जगदीश, दीपक, चन्दा और अन्य स्त्रियां सब विस्मय से घूर रहे थे। आखिर इसका मतलब ?

एक अधेड़ स्त्री ने कहा - "वाह री ! इतना हो-हल्ला किया, और जब मदद करने लगे, तो कहती है कि नहीं चाहिए। हम क्या कुछ तेरा बुरा कर रहे हैं।"

स्त्री का मुख एक बार लाज से लाल हो उठा। दीवार के सहारे बैठी स्त्री ने साड़ी माथे पर और आगे खिसका ली।

स्त्री ने धीरे से कहा —"अस्पताल में हमें नहीं लिया जाता।"

"नहीं लिया जाता ?" रामसरन ने कहा -"कौन कहता है ? सब जच्चाखाने खैराती हैं। कोई भी गरीब से गरीब जा सकता है।"

स्त्री कुछ कहना चाहती थी, किन्तु जैसे गले में कुछ अटक रहा था, जैसे वह कुछ इतना भयानक था कि उसके सामने भीख मांगने का पाप भी कुछ न था।

रामसरन ने आवेश में कहा --"यह औरत मक्कारी कर रही है। ऐसे ही पेट पर कपड़ा बांध लिया है। भीख मांगने का एक तरीका निकाल रखा है कि धर्म का, लाज का नाम लिया कि कुछ न कुछ मिल ही जाएगा ! कोई बात नहीं ! व्यर्थ समय नष्ट किया !" क्रोध से उसकी वाणी रुद्ध हो गई।

चन्दा ने आगे बढ़कर कहा—"कहती क्यों नहीं ? क्या डर है तुझे अस्पताल जाने में ?"

स्त्री ने सिर झुका कर कहा—"गई थी, बीबी, इसे लेकर लेकिन भर्ती नहीं किया।"

चन्दा ने रामसरन की ओर ऐसे देखा कि पहले सुन तो लो। फिर हल्के से किन्तु स्पष्ट स्वर में पूछा--"तो क्यों नहीं भर्ती किया आखिर ? कोई कारण भी बताया ?"

स्त्री का गला रुंध गया। उसने एक बार इधर-उधर देखा, और फिर साहस बांध कर धीरे से कहा --"बीबी, बाप का नाम पूछते थे। मैं क्या बताती।"

चन्दा एकदम पीछे हट गई। रामसरन का मुख कान तक आरक्त हो उठा। स्त्रियों की भीड़ छंट गई, जैसे कुछ भी हो···अब शायद वे स्त्रियां नहीं, क्योंकि उनमें और पशु में शायद अब कोई भी भेद नहीं !

और दोनों धीरे-धीरे चली जा रही थी।

['माया', जून '46]

फूल का जोवन

मेरे बगीचे के सब फूल सुबह खिलते हैं, शाम को मुरझा जाने के पहले तोड़कर काम में लाए जाते हैं। काम क्या, कभी नीना ने अपने जूड़े में खोंस लिए, कभी जीवन ने खेलते-खेलते गुलदस्ता बना लिया। बस इससे बढ़कर और कुछ नहीं।

आया बच्चों को घुटनों पर बिठाए शाम को उन्हें परियों की कहानी सुनाया करती है। मैंने भी कभी-कभी खेमे की आड़ में खड़े होकर उन्हें सुना है। सचमुच उनकी रंगीनियों को सुनकर मेरा हृदय भी हठात् हीं सुख से भर गया था। किन्तु···दुर्भाग्य है कि वह सब सत्य नहीं होतीं। और बच्चों का प्यारा विस्मय देखकर न जाने मुझे क्यों इतनी वेदना कचोट उठी थी कि कल यह सब अपने आप भक् से उड़ जाएगा।

और रात की काली छायाओं में जब पड़ोस के बंगलों की बत्तियां जल उठती हैं, जब रेडियो की बजती हुई रागिनियां उस खामोशी पर लोटने लगती हैं, जब आसमान में दूर-दूर तक छिटके हुए तारों का वैभव खिलखिलाने लगता है तब मेरे हृदय के सूनेपन पर बरबस कोई छाने लगता है। मैं नहीं जानता कि मैं इंजीनियर होते हुए भी इतना भावुक क्यों हूं?

मैं सिगरेट पीता हुआ उस अंधेरे में बंगले के बाहर टहलने लगा। सड़क पर सन्नाटा होने लगा था। कभी-कभी एक मोटर जुन्न करती हुई गुजर जाती थी।

मैं एकाएक ठिठक गया। कला का कोई रूप नहीं जो मेरे मन को ग्रस नहीं लेता। दीवार पर ही यदि चूना झड़कर आकार बन जाए तो मुझे उसमें भी मनुष्य की आकृति दिखाई देती है।

एक ओर एक लड़का बैठा था। मैंने उस निर्बुद्धि को उपेक्षा से देखा जो विवशता बनकर उस जीवन के प्राणों में समा गई थी। भविष्य के आलोक की प्रतीक्षा में ही जिसका सब कुछ रात के अंधेरे की तरह गल रहा है। किन्तु वह शक्ल कुछ मुझे और ही मालूम दी। केवल एक भिखारी। इसके चारों ओर भी ममता का घृणित ताण्डव होगा जो अपनी सत्ता को बचा रखने के लिए यह भी चिन्ता नहीं करता कि वह हमारे समाज पर एक धब्बा है। क्यों नहीं ऐसी निर्बलता अपने आप ही आत्महत्या कर लेती जैसे राष्ट्र के सम्मान के लिए जापानी हाराकिरी कर लेते हैं···

और आसमान में घटाएं छाती रहीं। उस अंधकार में एक सनसनाहट है, जैसे कोई डर रहा है और उसकी सांस जोर-जोर से चल रही है। धीरे-धीरे आसमान के

तारों को घटाएं निगलती चली आ रही हैं। जैसे वैधव्य की बाढ़ सुहाग के कुंकुम का अभिमान एक हुंकार के साथ ग्रस लेती है। फिर वेदना का तार बजता है जिसे हम पवित्रता कहते हैं···मैं लौट आया।

पीछे के टोले से रात भर इन्कलाब जिन्दाबाद की पुकारें गूंजती आ रही थीं। हम लोगों की नींद में अक्सर खलल पड़ जाता था। चुनावों का ऊधम था। न जाने क्यों आदमी कुछ अधिकारों के लिए इतना पागल हो जाता है। कैसा फूल है जो कांटा बनकर अपने को किसी काम का नहीं रखना चाहता।

मैं हंस दिया। मुझे लगा जैसे मैंने जीवन का एक बहुत बड़ा सत्य पा लिया था।

पानी बरसने लगा था। एकाएक पड़ोस के घर में बड़ी जोर से शोर हुआ। हम लोग चौंक उठे। मजदूरों की बस्ती है। बेवकूफ नहीं जानते कि किस वक्त क्या काम करना चाहिए।

मैंने मुंह के ऊपर रजाई ढंक ली, लेकिन पानी की बूंदें तेजी से गिरने लगी थीं। एक जमाना था जब यह ओछे लोग बड़े लोगों से इतना दबते थे कि हममें से कोई अकेला भी वहां चला जाए तो सब शोर अपने आप ही दब जाता। लेकिन अब ? कोई कुछ नहीं रहा। सब ही राजा हैं···

विक्षोभ से मेरा मन भर गया। समझ नहीं सका कि यह संसार किधर जा रहा है। क्यों नहीं हम उन्हीं शाश्वत भावनाओं को अपना सब कुछ मान लेते ?

किन्तु मजदूरों की ललकारें अंधेरे के सीने पर बार-बार हथौड़ों की तरह चोट करती थीं, जैसे आज वह इन नियमों को हर्गिज नहीं मानेंगे।

बादल आसमान में निरंतर गरजते रहे। उन्हें कोई मतलब नहीं। और भोर में जब फूलों के होंठों पर ओस की बूंदों की तरह रात के यह आंसू झलमला उठेंगे तब···

शायद वह गलीज भिखारी लड़का इस वक्त भीग रहा होगा। उस भयानक रात में मुझे नींद आ रही थी।

उठकर नीना के कमरे में गया। लाइट जलाकर देखा। कितनी सुन्दर थी। उसके चेहरे से गुलाबी फूट रही थी। कोमल बाल फैल गए थे, जैसे घटाओं के बीच में चांद झलक रहा था। कितना सुखद था वह सब। रेशमी रजाई पर चमकता हुआ प्रकाश। और एकाएक नींद में ही अनजानी-सी नीना हंस दी। कितनी मीठी होगी वह नींद जिसमें इतने मादक सुपने होंगे! जब से घर में आई है, तब से कितना भरा-सा लगता है सब कुछ।

मन नहीं किया कि जगाकर उसे अपनी बेचैनी की हालत सुनाऊं। क्यों मैं किसी को दुख दूं, कष्ट पहुंचाऊं ? यह तो बिचारी किसी का कुछ बुरा नहीं करती। लगता है जैसे डालों की नई पत्तियों पर गुलाब का फूल सो रहा हो, रात के हल्के झोंके से उठती सिहरन उसके बालों पर धीरे-धीरे हाथ फेरकर उसे दुलार देती हो।

और वे दूसरों की शान्ति भंग करने वाले मजदूर···मुझे डर हुआ, कहीं नीना

जाग न जाए, कहीं इसकी आंखों का यह मीठा सुपना टूट न जाए···।

दो

पड़ोस के गायक की प्रभाती की मधुर तान सुनकर आंख खुल गई।

भोर का सुहावन आकाश में बजने लगा। कचनार की डाल पर बैठे तोतो की पांत मेरे हृदय के कोने-कोने को छू गई और गायक के करुण स्वर का सन्धान एक लय बनकर गूंज रहा था जैसे धरती का सारा कलुष आज स्वर्ग के आलोक में घुल जाएगा।

फूलो के होंठों पर हंसी फूट रही थी। रात का तूफान भी थम चुका था। बादल फटकर क्षितिजों पर झुक गए थे। उनके किनारों पर सुनहरी किरनें चमक रही थी जैसे आकाश में एक स्वर्णहार उषा के स्पर्श से झनझना उठा हो, जिसकी ध्वनि भी आलोक के चेतन स्वरूप मे मुखरित हो उठी हो।

एक गुनगुनाहट। सिर उठाकर देखा। बेलों की आड़ मे फर का हल्का ओवर-कोट ओढ़े नीना खिड़की पर दिखाई दी।

एक मादकता ही जिसकी सत्ता की पूर्णता हो वही तो ब्रह्मा की सर्वोत्कृष्ट रचना है।

"कहिए।" मैंने कहा—"नीद तो अच्छी आई न?"

नीना हंस दी। कितनी तृप्ति है इस एक तरल उफान में, जैसे बहाव में निर्मल जल कल-कल कर उठा हो।

बच्चे बाहर निकलकर खड़े थे। उनके शरीर पर ऊनी कपड़े थे। आया में यह कमाल की सिफत है। मजाल है जरा भी उसकी नजर चूक जाए और बच्चों के शीशो से चमकते हुए शरीरों पर भाप की-सी मलिनता भी शेष रह जाए।

और उस सुन्दर समय में वह गलीज चेहरे वाला बच्चा मेरे सामने खड़ा फूलो की तरफ देख रहा था। उफ, कह नहीं सकता कितनी वेदना से मेरे मन ने अपने आप भीतर ही भीतर एक मरोड़, एक ऐंठन-सी अनुभव की। लगा जैसे सब कुछ अपने आप गिर जाएगा। रोटियों के लिए झगड़ने वाले यह कुत्ते! क्या जानेंगे कि हमारी संस्कृति का वरदान हमें आज भी मर जाने से बचाए हुए है।

कितनी तृष्णा है उसकी उन कीचड़ भरी आंखों में, जैसे सब कुछ खो जाएगा। एक क्षण चैन से नहीं बैठ सकते। ज्ञान की बात आते ही पेट फूटने लगते हैं···असुन्दर का वह भीषण प्रतीक ही हमारी शांति की जड़ों में आग लगाकर इन सुन्दर गीतों में आग लगा देना चाहता है।

"तेरी मां कहां है?" घृणा से पूछा।

किन्तु कठोर स्वर से कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मूर्ख डांट खाने के आदी हैं। इनसे कोई प्रेम से बात करे तो अविश्वास से इधर-उधर देखने लगते हैं। जैसे हम तो उनका कुछ खा जाएंगे। कंगाल! है ही क्या इनके पास जो इतना अभिमान करने की

स्पर्द्धा है इनमें ? कल तक भूखों मरते थे, आज दो पैसे की मजदूरी तो भी मिल जाती है। यह तो नहीं कि अपनी किस्मत का रूखा-सूखा खाकर चुप रहें···इन्हें तो अधिकार चाहिए···दिया जाए तो संभाल सकेंगे ? रोज तो पीकर लड़ते हैं···।

बच्चे ने जवाब दिया —"रात को आई नहीं। जाने कहां रह गई···।" आरक्त हो गया मेरा मुख। अगर हमारे यहां बच्चों की मां रात किसी और जगह काट दे तो क्या बच्चे उसे इतनी निर्लज्जता से कह सकेंगे ? घोंट न देगी संस्कृति उनका गला ?

दूर कहीं फिर पुकार उठी—'इन्कलाब जिन्दाबाद !'

कितनी कशमकश है इस जिन्दगी मे ! इतना भी धीरज नही कि भोर की इस मनोहर वेला मे तो यह व्यर्थ की हाहाकार रोक दें ? जैसे कही विश्राम का कोई किनारा नही है।

आवाज के छीटे मेरे मन की तपिश पर आकर जल रहे है, जैसे मुरदा चरांध फैलता हुआ जल रहा हो, भस्म हो जाने के लिए, क्योंकि रूप के कगारों को तोड़ने वाले यह पशु मेरे मन के व्यक्तित्व पर प्रहार कर रहे है।

सामने खडे बच्चे की वह भूखी आखें। क्या फाड़-फाड़कर देख रहा है सब कुछ ? भूखा ! नजर लगा दे तो खाते के पेट मे दर्द होने लगे। कमीना ! निस्संकोच !

मन विक्षुब्ध हो गया। कितना सुन्दर होता यदि मैं प्राचीन काल में पैदा होता, जब यह शूद्र केवल सेवा मे सन्तुष्ट थे, आज वह सेवा का औचित्य चाहते है। आज वह अपने कर्त्तव्यों को तोड़कर हमारे समाज मे उच्छृंखलता-अव्यवस्था फैलाना चाहते है।

नीना खिड़की पर से हट गई थी। बच्चे नीचे लान पर उतर आए थे। सुधा फूल तोड़ रही थी। और मंटू मस्त होकर भाग रहा था। मुड़कर देखा। वह गलीज आंखों वाला गन्दा मजदूर बच्चा चला गया था।

उसके पैरों से धरती गन्दी हो रही है। अब भी ऐसा लगता है जैसे नाली की कीचड़ में से कोई कुत्ता निकल आया हो और धुले-पुंछे पवित्र आदमी के पास खड़े होकर जोर से शरीर को फड़फड़ा उठा हो कि कीचड़ के छीटों से स्वच्छ वस्त्र बिगड़ जाएं। कितनी जलन है इन लोगों में ? कितनी ईर्ष्या है; किसी को सुखी तो देख ही नही सकते।

मुझे लगा जैसे उन फूलों में पराग की जगह उस बच्चे की आंखों की कीचड़ छा गई थी और वे फूल मिचमिचाती आंखों मे मुझे घूर रहे थे। कितना भयानक था वह विचार ! कितना घृणित ! लगा जैसे मैं परम्परा के संस्कारों को खोए दे रहा हूं। भोर की पवित्र शांति पर यह आज कैसे अंगार दहक उठे है ?

दिन भर इसी उदासी मे रहा।

नीना मोटर में कही चली गई थी। खाने के वक्त मेज पर भी नहीं आई। आया बच्चों को खिला-पिलाकर पड़ोस के डिप्टी साहब के बच्चों के पास गई थी। अकेला तो कभी बच्चों को छोड़ना ही नही चाहिए···

लेकिन वह बच्चा अकेला रात भर सड़क पर पड़ा रहा, क्योंकि उसकी मां··· मां···उसे छोड़कर किसी दूसरे के साथ चली गई थी···

पाप है यह ? मन न जाने आज चिल्ला उठना चाहता है ! !

सांझ के समय जब मैं बैठा-बैठा रवि ठाकुर के गीत की कड़ियां दुहरा रहा था—

मेरा जीवन तुम्हारा परिचय है—
मेरी मृत्यु तुम्हारी विजय···

देखा मजदूरों की एक टोली दहाड़ती हुई गुजर रही थी—'पूंजीपत्तियों का नाश हो ! सरमायेदारों को जड़ से मिटा दो ! ···'

मुझे इन लोगों की गरीबी से पूरी सहानुभूति है, पर यह लोग हिंसा का रास्ता क्यों अख्तियार करते हैं ? क्या हमारी संस्कृति का अध्यात्मवाद इन तक नहीं पहुंचा है ? जब आत्मा की बात होती है तब इन्हें रोटी की याद आती है। इन मजदूरों के सिर पर एक पागलपन है। क्या पूंजीपति इनका कोई लाभ नहीं करता ? क्या वह मनुष्य नहीं है ? मालिक मालिक है। यह लोग नौकरों की तरह तो रहते नहीं। मूर्खों का हौसला तो देखो, बराबरी करने चले हैं।

फिर एकाएक मुझे संतोष हुआ। जब तक पुलिस है तब तक तो इन गुंडों को सरलता से दबाया जा सकता है। लेकिन पुलिस अंगरेजों की गुलामी करती है ! ! यह न सही, इनके बच्चों के बच्चे कहीं अच्छे हो जाएंगे···

किन्तु बच्चा खड़ा था सड़क पर। तब तक यह इसी तरह जानवर की तरह घूमा करेगा और घुन की तरह पिसता रहेगा। रात भर भीगा है कमबख्त, न जाने कौन-सी हड्डियां हैं कि सुबह उठकर एक छींक भी नही आती···

फूलों के गालों को अंधेरा अपनी छाया में डरा रहा था, जैसे भूत की भयानक सूरत देखकर वह सहम गए थे।

तीन

हवा के ठण्डे झोंकों में एक सिहरन थी। आसमान नीला-सा बिल्कुल प्रशान्त, चारों ओर वही निस्तब्धता; सुनहली-सी धूप की हल्की गर्मी में हम लोग कुर्सियों पर चारों तरफ बैठे चाय पी रहे थे।

इसी समय बाहर सेठ जी की गाड़ी रुकी। मैंने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। नीना ने नमस्ते किया। सेठ जी हाल ही में जेल से छूटकर आए थे। बीच-बीच में कई बार जमानत पर छूट-छूट आए थे और अपना काम-कारोबार चलाते रहे थे। मुझ पर उनकी विशेष कृपा थी। वास्तव में वे यदि ऐसा नहीं करते तो शायद मैं संसार में उनसे बढ़कर कृतघ्न किसी और को नहीं समझता। लड़ाई के दौरान मेरे कारण उन्हें जितना फायदा हुआ उसे मनुष्य का हृदय रख शीघ्र भुला देना सहज नहीं, और यही कारण है कि इतनी मिलों और कम्पनियों का मालिक स्वयं ही अपने नौकर के द्वार पर आता है। वैसे सेठ जी मिलनसार हैं। आते ही जीवन और मंगू को छेड़ा और

हंसकर कहा—"कहिए नीना देवी, आजकल आपकी चित्रकला चल रही है या नहीं ?"

नीना ने सिर हिलाया। सेठ जी ने फिर कहा—"आपकी कला से आत्मा पवित्र होती है। राजनीति के झगड़ों से दूर, ठीक ही तो है, कला और राजनीति का क्या सम्बन्ध ? कला तो शाश्वत वस्तु है।"

नीना की गूंजती आवाज चक्कर लगाती हुई चारों ओर फैल गई—"रामचरन !"

भीतर से आवाज आई—"हुजूर—" और जब तक स्वर छूटकर इनके कान तक पहुंचा, पीछे ही रामचरन भी था।

"जाओ !" नीना ने कहा—"जरा चीनी तो ले आओ।"

रामचरन ने देखा और चुपचाप सिर झुका लिया।

"क्यों ? क्या बात है ?" मैंने पूछा।

जीवन बीच ही में बोल उठा—"राशन हो गया है न ? तो चीनी नहीं रही ?"

उफ ! यह नादान बच्चे ? नीना ने मेरी ओर देखा। सेठ जी ने अचानक ही कहा—"तो इसमें फिक्र करने की क्या बात है ! वाह मिस्टर ठगानी, आप तो तकल्लुफ करते हैं," फिर रामचरन से मुड़कर कहा—"बूरा डाल लाओ।"

रामचरन चला गया। सेठ जी ने हंसकर कहा—"मंगा क्यों न ली आपने ? कैसे पीते होंगे यह बच्चे बिना चीनी की चाय ? आप तो बिल्कुल कुछ चिन्ता ही नहीं करते। अरे घर ही तो है वह भी। जब जी चाहे नौकर को भिजवा दें !"

मैं बैठा-बैठा मुग्ध हो रहा था। क्या आदमी है, घमण्ड तो छू ही नहीं गया। अपनों की तो दिल खोलकर मदद करता है।

रामचरन बूरा रख गया। नीना चाय बनाने लगी। सेठ जी ने कहा—"जब राष्ट्रीय सरकार होगी तब यह तकलीफें नही होंगी।" और एक भारी हास्य प्यालों की चाय पर झनझना उठा।

"क्योंकि तब कण्ट्रोल नहीं रहेगा। अंग्रेजी सरकार हमें व्यापार तक नहीं करने देती। हमसे तिगुने टैक्स लेती है, लेकिन जब हम देश की दौलत बढ़ाने को जरा भी दाम बढ़ाते हैं तब हम पर रोक लगाई जाती है..."

नीना ने टोक कर कहा—"चाय ठंडी हो जाएगी ?"

"ओह !" सेठ जी ने कहा—"हां मिस्टर ठगानी ! आपसे मुझे कुछ काम भी था।"

मेरे मुंह से अनायास ही निकल गया—"हाजिर हूं खिदमत में।"

जब चाय पी चुके तब ड्राइंग रूम में गद्देदार कोच पर बैठते हुए सेठ जी ने कहा—"आजकल चुनाव हो रहे हैं, जानते ही होंगे ?

मैंने सिर हिलाकर स्वीकार किया। सिगरेट पेश की। उन्होंने एक जलाकर धन्यवाद देते हुए कहा—"तो मैं चाहता हूं कि कुछ देश और दरिद्रों की सेवा करता ही रहूं।"

मैंने उत्सुकता से आंखें उठाईं। सेठ जी को जैसे कहीं कुछ हिचक हो रही थी। वह कुछ सोच रहे थे। एकाएक कहा—"तो मजदूरों की सीटों पर कब्जा जमाना होगा। जानते हैं क्यों? क्योंकि जो अपना भला करना चाहता है उसे दूसरों का भी भला करना चाहिए। मजदूर हैं, गरीब हैं, लेकिन हैं तो अपने ही। खाते तो हमारा ही नमक हैं।"

परम्परा की यह सौगात मेरी सांस्कृतिक जगह को भर रही थी। मैंने नहीं सोचा कि मैं सेठ जी की बात पर अविश्वास करूं भी तो आखिर क्यों?

मैंने कहा—"कहिए तो क्या करना होगा?"

"यही," सेठ जी ने कहा—"मजदूरों में कुछ रुपया बांटना है। मैं चाहता हूं आपसे ही काम कराया जाए। आप तो जानते ही हैं कि मुझे पलक मारने की भी फुरसत नहीं।"—कितनी छोटी-सी बात थी। मैंने राय दी—"उस दिन कारखानों में छुट्टी न दीजिए वरना बेचारों की तनख्वाह कट जाएगी। इससे बेहतर तो यही हो कि अपना खर्चा ही सही, लारियां तय कर दी जाएंगी और वोट डलवा दी जाएंगी। उनको भी फायदा होगा और आपके काम में अड़चन भी नहीं पड़ेगी।"

सेठ जी हंसे। कहा—"वाह ठगानी साहब, वाह! भगवान किसी-किसी के दिमाग पर खुद अपनी अक्ल बेच देती है। आप तो कमाल करते हैं।"

फिर मोटर चली गई। मैंने नीना से कहा—"नीना! उस फूलों के चित्र का क्या हुआ? प्रारम्भ तो उसका बहुत सुन्दर हुआ था किन्तु···"

नीना ने रोककर कहा—"लेकिन वह बिगड़ गया। मैंने उसे अपने ही हाथों से फाड़कर फेंक दिया।"

मैंने सुना। कितनी निष्काम साधना!! विस्मय ने सोते हुए आनन्द को जगा दिया।

चार

सेठ जी ने प्रसन्न होकर मुझे अपने एक रुपये नफे में दो पैसे का साझीदार बना दिया। आज मैं उनका नौकर ही नहीं साझीदार भी हूं। मिल में दूर ही से चौकीदार मेरी मोटर देखकर उठ खड़ा होता है।

दोपहर को एकाएक मजदूरों के दो मेट भीतर घुस आए। उनके चेहरों पर बदहवासी छा रही थी। एक ने घबराए हुए स्वर में कहा—"हुजूर!"

मैंने आंखें उठाईं। देखा। सुना।

"मजदूरों ने हड़ताल कर दी है।"

मुंशी जी ने चौंककर देखा। मैं उठकर खड़ा हो गया। इधर-उधर टहलने लगा। मुंह से निकला—"स्ट्राइक!" उपेक्षा और उपहास ने घृणा से फिर कहा—"स्ट्राइक।"

एकाएक मैं हंस दिया। मुंशी जी उठकर खड़े हो गए। धीरे से कहा—"हुजूर! यह चुनाव के खेल है। इस वक्त मजदूरों में आग भड़काकर अपनी तरफ कर लेना खेल

हो रहा है।"

मैंने उनकी ओर देखा। दुबला-पतला व्यक्ति। आंखों पर चश्मा। गाल कुछ बैठे हुए। तनख्वाह शायद सत्तर या अस्सी। इतना तो लड़ाई के दिनों में हर मजदूर कमा लेता है।

मुंशी जी ने फिर कहा - "हुजूर ! बात तो कुछ नहीं। यह तो बहती हवा है। इनको तो कुछ बदमाशी करनी चाहिए। शाम को बाजार न गए, मिल में हड़ताल कर दी। यह तो जानते ही है कि मिल में उनके बिना काम चलाना मुश्किल है।"

"नहीं !" मैंने गम्भीरता से कहा—"इन सबको निकालकर इतने ही नये मिल सकते हैं। अभी हिन्दुस्तान में ऐसे लोगों की कमी नहीं।"

"हुजूर, यह मजदूरों की अकल नहीं, कुछ पढ़े-लिखे···"

"शोहदे !" मैंने कहा—"नौकरी करना चाहें हम आज दे सकते है, मगर इनका मतलब है कि ये हमारे सिर पर मूंग दलेंगे। यह नहीं हो सकता, मुंशी जी।"—फिर रुककर कहा—"लड़ाई खत्म हो गई है लेकिन लड़ाई का ही बोनस मांगते हैं ?"

मुंशी जी ने धीरे से कहा - "हुजूर, वे कहते है कि लड़ाई तो खत्म हो गई है लेकिन लड़ाई की महंगाई तो खत्म नहीं हुई। और अभी तक मालिकों को तो लड़ाई के आर्डरों का ही नफा मिल रहा है। वे चोरबाजारी करते हैं···"

"मुंशी जी"—मैंने काटकर कहा।

मुंशी जी सहम गए। हिचकते हुए उत्तर दिया—"ऐसा उन लोगों को बहकाया गया है हुजूर।"

"मैं फिर घूमने लगा।" रुककर कहा—"मुंशी जी ! चुनाव कब है ?"

"परसों की तारीख है हुजूर।"

"अच्छा तो देखो, एक काम करो। देश को इस समय सबकी मदद की जरूरत है। वैसे तो इन जाहिलों की कोई जरूरत नहीं, मगर भीड़ बढ़ाने के लिए इनकी सख्त जरूरत है। कैसे भी हो, मजदूरों को बहकाने वालों का खात्मा करना ही होगा। बदमाशों ने कहा था लड़ाई में मदद दो और अब कहते है कि हम चोर हैं। क्या जमाना है ! हां, मुंशी जी।"

"हुजूर, सेठ जी को फोन कर दीजिए।"

मुझे क्रोध हुआ। मूर्ख यह भी नहीं जानता कि अब मैं भी उस लाभ-हानि से बंध गया हूं।

मैंने हंसकर कहा—"आप अभी बच्चे हैं। ऐसी मामूली बातें तो क्या, इनसे बड़ी परेशानियां हों तो भी मैं अकेला उनके लिए काफी हूं।"

मुंशी जी फिर किंकर्तव्यविमूढ़ होने लगे थे। मैंने धीरे से कहा—"सुनिए। मजदूरों को खरीद लीजिए। जितने रुपयों की जरूरत हो मुझसे ले जाइए। लेकिन एक भी हाथ से न निकलने पाए।"

न जाने क्यों मुंशी जी मुझे देखकर सहम गए। वे कमरे के बाहर निकल गए।

मैं बैठकर सिगरेट पीने लगा।

शाम को जब मैं घर लौटा उस समय अत्यन्त प्रसन्न था। काम पूरा हो चुका था। नीना ने हंसकर पूरी कहानी सुनी और कहा—"भला बताइए न, यह वक्त अंग्रेजों से लड़ने का है या इन बातों का? दुनिया में सभी तो अमीर नहीं होते। फिर दूसरों को देखकर जलने से क्या फायदा? अब हमसे और कोई क्या अधिक धनी ही नहीं? पर हम तो जो परमात्मा ने दिया है उसी में सब्र करते हैं। इसके लिए क्या किया जाए यदि परमात्मा ने उन्हें वह भी नहीं दिया? गरीब तो हैं ही उस पर दुगुने पाप करते हैं···क्यों न परमात्मा उन्हें सब कुछ दे।"

कितनी दार्शनिकता है! संस्कृति बोल रही है। "चलो, घूम आएं," मैंने कहा।

बाहर सड़क पर धुंधले अंधेरे में एकाएक मेरे पांव में किसी चीज की ठोकर लगी। नीना के मुंह से एक चीख अनायास ही निकल गई। मैंने कहा—"नीना, घबराओ नहीं।"

झुककर देखा। कोई पड़ा हुआ था। मन में आया चमड़ी, उधेड़ दूं मार-मार कर। इतनी भी तमीज नहीं कि कहां सोना चाहिए!

"क्यों बे! बीचोंबीच सो रहा है?" कोई जवाब नहीं।

मैंने क्रोध में पैर से एक हल्की-सी ठोकर दी।

लेकिन फिर कोई उत्तर नहीं मिला। झुककर देखा।

ठोकर लगने पर भी जो आदमी उत्तर नहीं देता वह कभी जिन्दा नहीं होता, मर चुका होता है।

नीना चीखकर पीछे हट गई, किन्तु मैं वहीं खड़ा रहा। न जाने क्यों मेरे दिमाग में एक चोट-सी हुई।

सैकड़ों फौजी लौटकर आ रहे हैं, लाखों मजदूर, करोड़ों किसान अकाल का इन्तजार कर रहे हैं। आज वे सब गुलाम हैं।

यह बच्चा मर चुका है, वही भिखारी का गलीज भयानक बच्चा···

मर चुका है यह इन्सान का नुमायशी जानवर···

मर चुका है यह, जिस पर दुनिया ने कभी अनाथ तक कहकर दया नहीं दिखाई।

लगा जैसे मैं पागल हो उठूंगा। एक दिन जब महिषमर्दिनी काली ने रक्त पीकर मृत्यु के समान नृत्य किया था तब महारुद्र भी शिव बनकर पैरों के नीचे उसका गुस्सा ठंडा करने आकर लेट गए थे, लेकिन आज यह शिव मुर्दा पड़ा है। क्या, लाश जागकर रुद्र बनकर कभी नहीं चिल्ला सकती?···और न जाने मेरे दिल में कब का बचा इन्सान पुकार उठा:

भौंरे अपनी गूंज से छलकर भौंरों का शहद चुराते हैं और फूल?···

मेरे पैरों के पास वह गलीज लाश जो या तो भूख से मरी है, या अत्याचार से··· क्योंकि भयानक लू ने फूल को झुलसा दिया है···

घिसटता कम्बल

प्रभात की जिस वेला में कोयल का बोल सुनाई देता है रागिनी उसे अपने सुहाग का एकमात्र शुभ लक्षण समझकर हर्ष में गद्‌गद हो उठती है। दूर एक पेड़ है, वरना उस मुहल्ले में पत्थरों, ईंटों और उनकी कठोरता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वह दूर-दूर तक देखती है। कहीं कुछ भी नहीं दिखाई देता। लौटकर जाती है, चूल्हे पर पानी रख देती है और घुटनों पर सिर रखकर सोचने लगती है। कुछ भी नहीं है चिन्ता करने के योग्य, क्योंकि जो है वह चिन्ता ही है, चिन्ता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।

पानी में से एक आवाज आ रही है। उसकी ओर देखा। कुछ नही, उबलने की ध्वनि आ रही है। तो क्या इस जीवन में यह जो विभिन्न ध्वनियां सुनाई दे रही हैं वे और कुछ नही केवल एक उबाल का उपहास है जिसका रूप धीरे-धीरे धुआं बनकर उड़ता जा रहा है, ताकि शून्य में अपने-आप लय हो जाए ! कोई समझने का प्रयत्न न करे, क्योंकि समझकर चलना कठिन है। अच्छा है वह बटोही, जो नहीं जानता कि जंगल में शेर-चीतों के अतिरिक्त बटमार भी हैं, लुटेरे भी हैं···

और रागिनी ने पतीली उतारकर रख दी। एक विवाह और विवाह के बाद जैसे यात्री के कन्धे पर पड़ा कम्बल जो लटकता रहता है, मैला होता रहता है···कोई कहे कि मुसाफिर देख तो पीछे तू अपने ही निशान मिटा रहा है और लौटकर देखते समय कम्बल भी उठ जाता है। यात्री समझता है कि संसार उससे उपहास कर रहा था क्योंकि संसार को अपनी हीनता का कितना विक्षोभ है, अपदार्थ निर्वीर्यता।

याद आ रहा है धीरे-धीरे एक बीता हुआ इतिहास, जिसे इतिहास न कहकर विषाद की एक टेढ़ी-मेढ़ी रेखा कहा जाए तो क्या कुछ अनुचित है ?

दाल भी कितनी खराब है कि कमबख्त गलती ही नहीं। जाओ बाजार, बनिया कहेगा --इससे सस्ती तो है ही नही।

रागिनी झुंझला उठी। एक घंटा तो होने को आया। कोई हद है···

फिर उबाल। जमीन की यह फसल इतनी कठोर है, फिर स्वयं वह ही कैसे इतनी जल्दी दब गई ? क्योंकि वह मनुष्य है ?

रागिनी मुस्कराई। कैसी बर्बरता है। लेकिन प्यार कहां है आजकल ?

उफ ! कैसी मिर्चों की झांस उठ रही है। सौ बार सोच चुकी हूं कि जाकर

पड़ोसिन से कहूं कि बहिन, एक घर में रहते है तो समझौता करके ही रहना होगा। नहीं भाती हमें तुम्हारी यह बात कि मिर्चें हवा के रुख में कूटने बैठ जाती हो।

पड़ोसिन बड़बड़ाती है। आजकल के स्कूलों की छोकरियां, जैसे परमात्मा ने इन्हें औरत क्या बनाया, दुनिया पर एक एहसान-सा कर दिया···

रागिनी का वह स्कूल का जीवन भी कितना भला था। वह मास्टरनियां कहां मिलेंगी अब ? तब वह प्रेम करना चाहती थी। हर महीने 'माया' पढ़ती थी। पढ़ने को तो मन अब भी चाहता है, क्योंकि उसमें वह है जो वैसे नही होता, हो नहीं सकता···

दाल तो नहीं ही गलेगी। दोपहर चढ़ जाएगी, दिन ढल जाएगा···

विपिन ने प्रवेश किया। नहा-धोकर पट्टे पर आसन ग्रहण किया और कहा — "क्यों, खाना बन गया ?"

"बन कहां से गया ? दाल तो ऐसी लाए हो जैसे भानमती का पिटारा। इसके सीझने की बेला आए, न उसके खतम होने की।"

मां-बाप से नहीं पटी है तभी तो दोनों अलग रहते हैं। शहर में नौकरी लग गई है। यह वही कहानी है जो आज बरसों से होती चली आई है। क्योंकि दोनों एक-दूसरे को चाहते हैं। रागिनी नही चाहती, उसके पति पर सबका अधिकार हो। जो उसका स्वामी है, वह उसकी दासी है तो इसलिए न कि अधिक-से-अधिक उसकी स्वामिनी भी हो सके।

एक मुस्कान की कटार चमकती है, दूसरे की मुस्कान कटार बनकर उस स्नेह की मार को रोकती है, फिर दुधारा इधर भी काटता है, उधर भी, और वह पैनी गर्म-गर्म लोहे की टुकड़ी इधर भी उतरती है उधर भी, और वह भी उनकी परवशता की घृणा का प्यार है, जैसे बहेलिए से डरे हुए दो पक्षी एक-दूसरे के पंखों में सिर छिपाकर गर्म होने का यत्न करते हैं !

"हूं" विपिन का स्वर भारी है—"तो गोया दालवाले को भी हमारा साला होना चाहिए।"

रागिनी चिढ़ गई। उसने कहा—"जी हां, साला नहीं तो भाई होना ही चाहिए।"

एक तरेर। रस्सी खिंच गई है। उस पर अभिमान नट बनकर अपना कौशल दिखाता हुआ चल रहा है, जैसे सैनिक शिक्षा पाते समय हाथों से पकड़कर झूलते हुए रस्सा थामकर नदी पार करते हैं।

पति और पत्नी। दास और दासी। अभिमान और ऐंठन। अच्छी भाषा में देवता और पुजारिन। एक रुपया और चवन्नी।

विपिन कहता है—"तो मैं जा रहा हूं। सरकार की नौकरी है। वहां जाने के लिए जरूरी नहीं है कि दाल खाकर ही जाना चाहिए।"

"तुम्हें मेरी कसम है। खाने के लिए सारा जीवन है। वही नहीं है तो फिर सारा संसार किसलिए है ?"

और विपिन कहता है—"खाने को या तो है ही नहीं, या है भी तो उसके खाने का समय नहीं है।"

रागिनी के मुंह पर उदासी चढ़ती है, जैसे पारदर्शी फाउण्टेनपेन में स्याही चढ़ती हुई दिखाई देती है···

विपिन देखता है, कितना क्षुद्र है वह! संसार में अनेक कार्य है, अनेक-अनेक महापुरुष है, अनेक-अनेक शक्तियां है, किन्तु वह कही भी कुछ नहीं है। उसकी असमर्थता ऐसी है जैसे टूटे हुए गिलास के शीशे के टुकड़े। वह केवल घिसटता चला जा रहा है।

उन आंखों में एक उदास छाया है, उनमें दर्द है, प्राणों का कसक है। व्यक्ति का प्यासा हृदय बुला रहा है, किन्तु घड़ी मे दस बज रहे हैं, जैसे प्रेम की सीता की ओर दस मुखों से रावण बोलता हुआ देख रहा हो, घूर रहा हो···

शाम हो गई है। फिर वही दाल है जो सीझना नही चाहती। जानती है कि वह सीझने के ही लिए है कि दुनिया उसे खाकर पचा जाए, फिर भी नहीं सीझती। कैसी पथरीली जिद है।

रागिनी फिर उठ गई। जाकर मुंह धोया। तौलिए से मुंह पोंछकर माथे में बिन्दी लगाई।

एक बार दरपन में मुख देखा। यह कोई पदिमनी का-सा रूप नही। किन्तु फिर भी इसमें वह कुछ तो है ही जो अपने मन के सूनेपन को अपने-आप गुदगुदा दे, जिसे देखकर संसार कह सके इसे कुछ चाहिए, कुछ चाहिए।

विपिन के सिर मे दर्द है। वह लेटा हुआ है। रागिनी ने कमरे में जाकर धीरे से लालटेन जला दी, सिरहाने बैठकर सिर पर हाथ रखा। कुछ हल्का-सा ज्वर था। गर्म शरीर अच्छा लगा। हाथ फिराकर कहा—"क्यों बदन गर्म है? कुछ हरारत लगती है?"

"हां! आज कुछ ज्यादा होगी। कोई ऐसी बात नहीं। तुम जानती हो, आठ घंटे की ड्यूटी, जिसमें सोलह घंटे की डांट···"

"क्या मतलब है?" रागिनी ने चौंककर पूछा।

"मेरे भाई, दो आदमी के आठ और आठ सोलह ही तो हुए?"

दोनों हंस पड़े। इसके अतिरिक्त और कोई चारा नही। कर भी क्या सकते हैं। क्लर्की छोड़ देगा तो कोई दूसरा पतंगा शमा पर जलने आ जाएगा। दिल्ली का विराट नगर है। इस क्वार्टर में कितना अपनापन है? कुछ ऐसी बात भी नहीं कि हम क्या किसी से कम हैं?

रागिनी कुछ नहीं बोलती। चुपचाप सिर पर हाथ फिराती रहती है जैसे कोई चाय की चिकनी प्याली है। दूसरी बार लगता है कहीं दाल पर से ढक्कन तो नही उतार रही।

मन एक केन्द्र है जिससे जगह-जगह के लिए बाण छूटा करते हैं।

मांस का हाथ है, वही मनुष्य-देह की तपिश से आकर्षित हो रहा है।

रागिनी दोनों हाथों से उसका मुख अपनी ओर मोड़कर कहती है—"तो क्या हम लोग कभी भी सुखी नहीं रहेंगे ?"

सुख ! एक दर्दनाक सपना, जिसके अन्त में जैसे मनुष्य चिल्लाकर बिस्तरे से उठकर भागता है।

विपिन धीरे से हंसा। उसने हल्की-सी मुस्कराहट से कहा—"पगली ! सुख और किसे कहते हैं ?"

रागिनी के मन पर कोई सांत्वना का घड़ा उड़ेल रहा है।

विपिन ने कहा—"तुम समझती हो, धन ही हमारे सुखों का मोल है ? नहीं रागिनी ! प्रेम ही हमारे जीवन की सांत्वना है, एक बड़ा भारी आधार है। यदि मैं इस दुखी संसार में तुमसे छूट जाऊं तो तुम समझती हो मैं यह अपमान का जीवन बिता सकूंगा ?"

रागिनी ने समझा। मन के किसी भीतरी भाग में प्रश्न हुआ, "तो क्या यह स्नेह किसी घोर घृणा का परिणाम है ?"

विपिन ने उसकी गोद में सिर रखकर कहा—"रानी ! डूबते को तिनके का सहारा चाहिए, किनारे पर खड़ा होकर शोर मचाने वाला तो कभी मदद नहीं देगा !"

तो क्या दोनों ही डूब रहे हैं ? रागिनी ने उसका हाथ अपनी मुट्ठी में दबा लिया। विपिन को लगा जैसे बिजली का तार उसके हाथ से जकड़ गया हो।

उसके बाद एक बुखार है। रागिनी ने उसके बालों पर स्नेह से हाथ फेरा जैसे रेशम का कीड़ा अपने मुंह से उगले रेशम में चहलकदमी कर रहा हो।

देर तक वे एक-दूसरे का मुख देखते हैं। पीलापन तो है ही, कितना असन्तोष भी है। यदि समाज का ढांचा इसके लिए दोषी है तो देवता के सामने इनकी बलि क्यों हो रही है ?

"रागिनी !" विपिन ने कहा—"कितना अंधियारा छा गया है बाहर ?"

रागिनी ने मुख मोड़कर कहा—"तुम जो वह ब्लाउज का कपड़ा देख आए थे, लाए नहीं ?"

"अच्छा, वह जो वह सिखनी पहनती है ?"

"हां ! क्यों जी यह सिख तो इतनी ही तनखाह में, ऐसी हालत में ही बड़े खुश रहते हैं। इनके साथ क्या बात है ?"

विपिन हंसा, स्नेह से उत्तर दिया—"वे ऊपर के दिखावे के जो ज्यादा शौकीन होते हैं, वे सोचते ही कम हैं।"

"तो तुम इतना सोचते क्यों हो ? हम क्या बिना सोचे सुखी नहीं हो सकते ?"

विपिन चुप है। लगता है जैसे दीपक फक् करके बुझ जाएगा ! ! !

घड़ी बज उठी है। दाल सीझ चुकी होगी। वह उठी। केवल बैठे रहने ही से तो कल का जीवन नहीं चलेगा। सुबह-शाम खाना पकाने के लिए है, बाकी समय पचाने

के लिए और विकृत मल को निकालकर अपने को स्वच्छ समझने की प्रतारणा के लिए।

वह उठ खड़ी हुई। द्वार की ओर चली। मुड़कर देखा, विपिन करवट बदल रहा था। उसकी पीठ इधर थी। वह विश्रांत था। बीच में दो शब्दों को मिलाकर एक करने वाली वह छोटी लकीर अब नहीं बन रही थी। रागिनी ने जाकर देखा—दाल अभी भी सीझ ही रही थी, सीझी नहीं थी…

मन में आया उठाकर फेंक दे, किन्तु साहस नहीं हुआ। जीवन भी तो इस दाल के ही समान है, उसे फेंक दे उठाकर, किन्तु इतनी सामर्थ्य है कहां! और रात को भी कोयल बोल ही उठती है कभी-कभी।

[लगभग '46]

पेड़

पंडित मालिगराम को अपनी छोटी-सी हवेली बहुत प्यारी थी। उन्होंने अपनी गरीबी से जीवन-भर संघर्ष करके भी उसे अपने हाथों से बाहर नहीं जाने दिया था। चाहे घर कितना भी पुराना क्यों न हो किन्तु फिर भी पुरखों की शान था। आखिर वे उसी में पले थे। उन्होंने उसी में घुटनों चलना प्रारम्भ किया था, उसी में चलना सीखा था और जीना तो था ही, मरना भी प्राय: उसी घर में निश्चित था, घर के सामने ही एक छोटा-सा मैदान था। कहने को तो वह वास्तव में पंडितजी की ही जमीन थी, किन्तु उन्होंने अपनी रहमदिली के कारण उसके चारों ओर कभी कांटे नहीं बिछवाए। गांव के बच्चे आते। आजादी से गोदी के बच्चों को धूल में खेलने को छोड़कर बड़े-बड़े बच्चे मैदान के बीच में खड़े बड़े से बरगद के पेड़ के नीचे छाया मे कबड्डी खेलते। अक्सर चाँदनी रातों में डू डू डू डू की आवाज गूजा करती। कभी-कभी पंडितजी की रात मे नींद खुल-खुल जाती जब कोई लड़का खम ठोक कर पूरी आवाज से चिल्लाता --

मेरी मूंछें लाल लाल

'चल कबड्डी आल ताल···।

किन्तु पंडितजी ने कभी क्रोध नहीं किया। उनके पुरखों ने इसी की छाया के लिए वह पेड़ लगाया था। गांव के लोगों मे यह छिपा नहीं था कि जिस पेड़ का एक छोटा-सा पौधा मात्र लाकर उनके पुरखों ने अपनी सब्जी उगाने की जगह लगाया था, वही अब इतना फल-फूलकर खूब फैल गया है। इसी की जड़े अपने आप इतनी फैल गई हैं कि जमीन का सारा रस चूस लिया है। अब उस जमीन मे दिन-रात अंधेरा-सा छाया रहता है। पेड़ की डालियों में अनेक पंछी रहते हैं। कौन नही जानता इन पंछियों की बात कि 'चरसी यार किसके, दम लगाये खिसके'। आज यहां है, कल वहां। सिर्फ मतलब के यार है।

उस जमीन में सब्जी की भली चलाई, घास तक ढंग से नही उग सकती। उल्टी बरगद की जटाओं ने लौटकर अपनी मजबूत हथेलियों को धरती से घुमा दिया है कि पूरा महल-सा लगने लगा है। एक दिन पंडितजी के पुरखों ने इसी छाया के लिए तो उसे वहां धरकर पनपने के लिए छोड़ दिया था।

पंडितजी को कभी वह पेड़ नहीं अखरा। सदा उसकी हरियाली का वैभव देखकर उनकी आंखें ठंडी होती रही हैं।

और पंडितजी देखते कि गूलरों के गिरने पर बच्चों का जमघट आकर इकट्ठा हो जाता। सब और शोर करते। गांवों के मेहरबान जमींदार को तो जैसे उस पेड़ से खास प्रेम था। दशहरे पर जब गद्दी होती तो वे उस शाम को इसी पेड़ के नीचे अपना दरबार करते। आस-पास के गांवों तक से लोग उन्हें भेंट देने आते। भला वे राजा आदमी। पेड़ क्या हुआ उन्होंने उसे गांव वालों के लिए भगवान का अवतार बना दिया।

पेड़ भी एक ही कमाल का था। जगह-जगह उसमें खोखलें हैं। शायद जगह-जगह उसमें सांप हैं। और उसके अरमानों की थाह नहीं। वामन के विराट् रूप की भांति तीन डगों में ही सारे संसार को नाप लेना चाहता है। आकाश, पाताल और धरती। ऊपर भी फैलता, नीचे भी उतरता है और धरती को भी जकड़ता चला जाता है। जैसे पृथ्वी को संभालने वाले हाथियों में एक की संख्या बढ़ गई हो। हवेली की बगल में पेड़ की इस सघनता में एक सुनसान बियाबान की-सी नीरवता छा गई है। और शायद अब ग्न दिखाई भी नही देती। पेड़ ही पेड़ छा गया है।

और रात को जब अंधेरा फैल जाता है, उस सन्नाटे में हवा के तेज झोंकों में जब पेड़ खड़खड़ाता है तब लगता जैसे कोई भयानक दैत्य अपने शिकार पर टूट पड़ने के पहले भयानक आकार को हिला रहा हो।

पंडितजी की छोटी बच्ची भय से आंखें मीच लेती और अपनी मां की छाती में चिपट जाती। पंडितजी वह भी देखते किन्तु कभी इस बात पर ध्यान नही देते क्योंकि उन्होंने सदा ही अपने पूर्वजो की बुद्धि पर विश्वास किया है, और इतना किया है कि अपने पर तो कभी किया ही नहीं···

दो

पंडितानी सुबह उठकर नहाती है, दिन में नहाती हैं, सांझ को नहाती है। किन्तु फिर भी उन्हें कोई साफ-सुथरा नहीं कह सकता। जैसे वह पानी एक चिकने घड़े पर गिरता है, फिसल जाता है।

पंडितजी बैठे पूजा कर रहे थे। एकाएक बाहर शोर मच उठा। पंडितजी की पूजा में व्याघात पड़ गया। शोर बढ़ता ही जा रहा था। कुछ समझ में नहीं आया। इसी समय कुछ लड़के उनकी छोटी बच्ची को उठाकर भीतर लाये। लड़कों की आकृति सहमी हुई थी। डरते-डरते लाकर उन्होंने उसे उनके सामने रख दिया।

पंडितजी ने देखा, बच्ची की नाक में खून बह रहा था। सारी देह नीली पड़ गई थी।

उन्होंने मर्मान्तक स्वर में पूछा—"क्या हुआ इसे ?"

कंठ अवरुद्ध हो गया, वे और कुछ भी नही कह सके।

एक लड़के ने सहमी हुई आवाज में कहा, "बरगद के नीचे झाड़ियों में से कोई सांप काट गया।" "काट गया ?" उन्होंने चीखकर पूछा।

लड़कों ने कोई उत्तर नहीं दिया। सबने सिर झुका लिया। इस कोलाहल को

सुनकर पंडितानी भीगे कपड़े पहने ही बाहर आ गईं और बच्ची की यह हालत देखकर उससे चिपट गईं और जोर-जोर से रोने लगीं।

पंडितजी किंकर्त्तव्यविमूढ़ से खड़े रहे। वे कुछ भी नहीं समझ सके कि उन्हें क्या करना चाहिए ?

और धीरे-धीरे अड़ोस-पड़ोस के अनेक किसान आ-आकर इकट्ठे होने लगे।

पंडितानी का करुण क्रंदन सबके हृदय को हिला देता है। ऐसा कौन-सा पाप किया था कि जिसके सामने उठना चाहिए था वही आज अपने सामने से उठा जा रहा है और हम चुपचाप देख रहे हैं।

पंडितजी सुनते थे और उनकी आंखों में कोई तरलता नहीं थी।

पहली बार उन्होंने बरगद की ओर आंखें उठाईं जैसे अपने किसी विराट शत्रु की ओर देखा हो। वे देर तक उसे घूरते रहे।

यही है वह पुरखों का दैत्य जो आज संतान को ही खा जाना चाहता है।

और पहली ही बार उन्होंने अनुभव किया कि उनके घर की भी कोई बचत नहीं।

इधर ही झुका आ रहा है। आज उनकी हवेली गिरेगी, कल करीम का मकान गिरेगा फिर बस्ती के सारे मकानों पर उल्लू बोलेंगे। और तब भी यह दैत्य का-सा बर-गद अपनी जटाओं के अंकुश भूमि में गाड़कर खड़ा रहेगा जैसे सारी जमीन इसी के बाप की है।

विक्षोभ से उनका गला रुंध गया। उन्होंने एक बार जोर से अपनी मुट्ठियां भींच लीं और देखा, पंडितानी का हृदय टुकड़े-टुकड़े होकर आंसुओं की राह बहा जा रहा था। उन्होंने बच्ची को गोद में धर लिया था और तरह-तरह के विलाप कर रही थी। रुदन की वह भयानक कठोरता उनके मन में ऐसे ही उतर गई जैसे सांप उनकी बच्ची को काटकर फिर उस पेड़ की खोखल में छिप गया होगा।

उन्होंने बड़ी देर तक निश्चय किया फिर धीरे से कहा—"रोने से क्या अब वह लौट आवेगी ?"

पंडितानी ने लाज से आज माथे पर घूंघट नहीं सरकाया क्योंकि इस समय वह बहू नहीं मां थीं।

लोगों ने पंखे बांधकर बच्ची को उस पर सुला दिया और पंडितानी चिल्ला उठीं—"धीरे बांधो मेरी बच्ची को, धीरे कि कहीं उसको लग न जाये।"

पंडितजी का हृदय भीतर ही भीतर कांप उठा और उनकी आंखों से आंसू की दो लाचार बूंदें धीरे से गालों पर बहती हुई भूमि पर टपककर उनके मन की अथाह वेदना को लिख गईं···

तीन

पंडितजी का निश्चय निश्चय था। करीम की राय तो पहले ही थी कि बरगद

काट दिया जाये। कौन-सा लाभ है उससे ? इधर बड़ी देह रखकर देता क्या है गूलर जो न खाने न उगलने के, फूले की-सी आंख न खूबसूरती की, न देखने की।

पंडितजी ने कहा, "इसी बरगद को मेरे पुरखों ने, आपके पुरखों ने अपना समझ कर पाला था। आशा की थी कि एक दिन इसकी छाया होगी। आसमान से होने वाले अनेक वारों से यह हमें बचायेगा। लेकिन भइया, करीम यही होना था क्या ?"

"कौन सुनेगा तुम्हारी पुकारों को पंडितजी !" करीम ने सोचते हुए कहा—"यह बरगद उतनी ही जान रखता है जितने फल-फूल सकें। इसे भला मतलब कि हम आप जी रहे है या मर गये। इसके तो कोई इन्सान के से कान हैं नहीं।"

"लेकिन," पंडितजी ने तड़पकर कहा—"दुनिया-भर के जहर को अपने आप में भर लेने के लिए इसकी छाती में जगह की कमी नहीं।"

करीम ने हंसकर कहा—"आप भी कैसी बातें करते हो ? जानते हो रात को कैसी नशीली हवा में सोना पड़ता है हमें ? और भैया, यह तो इस पेड़ की आदत है। जहां बोओगे वहीं जड़ फैलायेगा। कोई नहीं रोक सकता।"

"क्यों कैसे रोक सकता ? इसे मैं कटवा दूंगा।" पंडितजी ने विक्षुब्ध होकर कहा।

"तुम," करीम ने विस्मय से पूछा—"पंडित होकर पेड़ कटवा दोगे ? धरम-वरम सब छोड़ दोगे ?"

"धर्म," पंडितजी ने आसन बदलकर कहा—"धर्म का नाम न लेना करीम ! मेरी बच्ची का खून है इसके सिर पर। इस पर हत्या का दोष है। जाने कितनों के बच्चों को अभी और काटेगा ?···और कमबख्त का हौसला देखो। अब इसका जाल इतना फैल गया है कि हमारे ही घर को ढहा देना चाहता है। मेरे बाद तुम्हारी बारी है करीम···"

करीम ने हाथ उठाकर कहा—"अल्लाह, रहम कर। पंडितजी ! कहीं के न रहेंगे। इसे काटना ही पड़ेगा।"

पंडितजी को कुछ संतोष हुआ। मन की जलन पर कुछ शीतल लेप हुआ। तब एक आदमी तो साथ है। पुरखे तभी तक अच्छे हैं जब तक पितर हैं, पानी दे दिया, लेकर चले गये, यह क्या कि अपने ही बच्चों पर भूत बनकर सवार और रोज-रोज गंगा नहाने के खर्चे की धमकी दे रहे है। अरे अगर जिन्दा ही नही खावेंगे तो इन कमबख्तों को कौन चराएगा ?

पंडितजी उठ पड़े। घर आकर पंडितानी से कहा। उनकी आखों में आंसू और होंठों पर एक फीकी मुस्कराहट छा गई। किन्तु हृदय में एक शंका भीतर-ही-भीतर कांप उठी। फिर भी उन्होंने कुछ कहा नहीं।

गांव-भर में पेड़ से एक दहशत छा गई। बच्चों ने पेड़ के नीचे खेलना बन्द कर दिया। जैसे वह फूहड़ की तलैया का दूसरा भूत हो गया।

पेड़ के नीचे का मैदान नीरव हो गया। अब उसमें कभी-कभी कोई-कोई अकेली गिलहरी भागती हुई दिखाई देती है। और फिर शाखों में जाकर छिप जाती है। अब कोई मुसाफिर उसके नीचे नहीं लेटता। क्या जाने कब सांप आए और सोते में कान मंतर पढ़ जाये ?

पंडितजी का निश्चय गांव में एक अचरज फैलाता हुआ फैल गया। लोगों के हृदय में उनके साहस, उनके जीवन के प्रति एक अज्ञात श्रद्धा जाग्रत हो गई।

चार

मजदूर पेड़ काटने लगे। गांव के अनेक-अनेक लोग आते, देखते और इधर-उधर की बातें करके चले जाते। सचमुच अब पेड़ से प्रत्येक को एक-न-एक शिकायत थी जो आज तक किसी ने प्रकट नहीं की। आज सब ही को उस पेड़ से एक निहित घृणा थी। हमारे सीने पर ऐसा खड़ा था जैसे मूंग में मुदगर।

एकाएक जमींदार के कारिंदे ने कहा– "पंडितजी पा लागन।"

"खुश रहो भैया, खुश रहो।" पंडितजी ने कहा—"कहो कैसे आये ?"

"सरकार ने याद फरमाया है।"

"चलता हूं," पंडितजी उठ खड़े हुए।

"हूजूर," कारिन्दे ने कहा—"एक बात और है।"

"क्या बात है ?" पंडितजी ने भौं सिकोड़कर उत्सुकता से पूछा।

"सरकार पेड़ का काटना बन्द करवाना चाहिए।"

"पेड़ कटना क्यों ?" पंडितजी ने एकदम टकराकर गिरते हुए व्यक्ति की-सी चीख निकाली।

"हां सरकार।"

"नहीं हो सकता यह। पेड़ तो कटकर ही रहेगा। जमीन मेरी है, मालिक का इसमें क्या उजर है ?"

"सोच लीजिए पंडित !" कारिंदे ने आंखें मटकाकर कहा।

"सोच लिया है सब।" न जाने पंडितजी में इतना साहस कहां से आ गया।

सुनने वाले सहमे से खड़े रहे। कारिंदा चला गया। पंडितजी ने कहा–"काटो पेड़। यह तो कट कर ही रहेगा।"

मजदूर फिर काटने लगे। अचानक एक दर्दनाक चीख। "क्या हुआ ?" पंडितजी ने पुकारकर पूछा।

एक मजदूर शाख पर से नीचे टपक पड़ा। उसे सांप ने काट लिया था, वह मर रहा था। मजदूर कूद-कूदकर भागने लगे। पंडितजी ने चिल्लाकर कहा—"कहां जा रहे हो, आज इसकी एक-एक जड़ उखाड़कर फेंक दो वर्ना कल यह सारी बस्ती को वीरान बना देगा। डरो नहीं।" और पेड़ से मुड़कर कहा—"ओ राक्षस, तेरी एक-एक डाल में मौत का भीषण जहर है, आज मैं तेरी बोटी-बोटी काट डालूंगा।"

लोगों ने मजदूरों को घेर लिया था। वे कुछ नहीं समझ पा रहे थे। कोलाहल मचने लगा था।

एकाएक पंडितजी ने सुना— "देखा! तेरे पाप का फल। दूसरों को खाने लगा है। तूने धरम की जड़ पर वार किया है।"

पंडितजी चौंक उठे। उन्होंने कहा —"मालिक! इसने दो खून किए हैं।"

"खून इसने किए है कि तेरे पाप ने, तेरे पुरबले जनम के पाप ने?" जमींदार साहब ने कहा।

पंडितजी ने तड़पकर कहा —"और इसने हमारे घर की रोशनी बन्द कर दी है, इसने हमारे घर में अंधेरा कर दिया है, इसने अपने भयानक गड्ढों से हमें खंडहर बनाने का इरादा किया है, इसने हमारे बच्चों को डंसा है···मैं आज इसे काटे बिना नहीं रहूंगा।"

कहते हुए पंडित सालिगराम ने जमीन पर पड़ी कुल्हाड़ी को उठा लिया।

जमींदार साहब ने कहा —"देख, पागल न बन। देखता नहीं मेरे साथ कौन हैं?"

पंडितजी ने देखा। पुलिस के सिपाही थे। जमींदार साहब ने मुस्कराकर देखा। पंडितजी चिल्लाकर कहने लगे —"मालिक, जमीन मेरी है।"

"खामोश!" जमींदार ने चिल्लाकर उत्तर दिया —"कैसे है तेरी जमीन? जिस जमीन पर हमने दरबार किया है वह तेरी कहां है? आज तू उसे काट रहा है, जिसकी छाया में हमने राज किया है। कल तू हम पर हाथ उठावेगा!"

"मगर यह धरती बगावत कर रही है। वह मेरी हो गई है···!" पंडितजी ने कुल्हाड़ा उठाकर कहा—"मैं इसे जरूर काटूंगा···!"

जड़ पर कुल्हाड़ा पड़ते ही पंडितजी मूच्छित होकर गिर गए। उनके सिर पर जमीदार के गुर्गों के लट्ठ बज उठे।

और बरगद अपने चरणों पर बलि का रक्त फैलाये ऐसा खड़ा था जैसे अश्वमेध के उठते धुएं में एक दिन साम्राज्य की पिपासा से तृप्त समुद्रगुप्त हुआ होगा।

['कामना, '46]

गूंज

जब सांझ आ गई तो बिजलीघर में छुट्टी होने का वक्त आया और जब मनीजर साहब अपने कोट को पहनकर कमीज का कॉलर ऊपर कर रहे थे, हरिया अपने तन पर पड़ी गर्द और मैल को धोने के लिए नल पर जा बैठा। जब सूरज काफी उतर चला तो वह भी घर की तरफ चल पड़ा। संध्या की थकान और जवानी का नशा उसके दिल में विप्लव कर रहे थे।

बीड़ी जल चुकी थी। दूसरी बीड़ी निकालने को जेब में हाथ डाला, मगर वहां बीड़ी पाना ऐसा ही था जैसे अब किले में अकबर से मुलाकात हो जाना।

किले के सामने गोरे ठहाके लगा रहे थे। ऊपर यूनियन जैक उनकी सलामी पर थरथरा रहा था। शाम को उतार दिया जाएगा। यमुना की लहरों में युगान्तर से फर-फरी मच रही थी। संध्या की धूमिल वेला थी। अब किला बन्द ही होने वाला था। सामने से एक फकीर गाता हुआ चला जा रहा था। हरिया का ध्यान उस तरफ न गया, क्योंकि वह जानता था कि वह बूढ़ा सिर्फ एक खुदा-खुदा की रट लगायेगा, जिस खुदा पर विश्वास रखना भी वैसा ही था जैसे झोंपड़ी जल चुकने के बाद बुझा देने का हुक्म देकर नवाबी का ठांठ चलता हो।

कुछ विद्यार्थी चले जा रहे थे, जिनके दिल में गरीबी के लिए दर्द था, जो नियामती पूंजी के कपड़े पहने थे, मगर जिनके पैरों के नीचे की ज़मीन उनकी खुद की नहीं थी। वे पढ़े-लिखे थे मगर शोख इतने कि हरिया सिहर उठा। उनके बाद आईं नज़र बचाती, चुलबुलाती लड़कियां और उनके पीछे मध्यवर्ग का रुद्ध मस्तिष्क लिए, रुपए और काम की तबाही से अपने को सुकरात और ईसा मसीह समझनेवाले कालिज के मास्टर। हरिया चमक उठा, मगर उसका दिल कहने लगा—जे अकबर का किला है। जिसमें एक दिन नूरजहां के नाज पलते थे वहां ये लड़कियां और लड़के सच्चाई की ओट में जूआ खेलते हैं, और जहां मानसिंह जैसे रईस और बीरबल जैसे लायक सिर नवाए खड़े रहते थे वहां ये मामूली मास्टर सिर उठाकर चलते हैं!

फकीर गाता चला आ रहा था। उसकी आवाज़ यमुना की नीली और भीगी लहरों में एक वेदना भरती हुई उमड़ती चली आती थी। यह वह आवाज़ थी जिसके ओर-छोर आदमी की शानो-शौकत के शोर को छू-छूकर तड़पा रहे थे। किला अंधेरे में काला हो चला था। मोटरें लौट गई थीं, दरवाजा सूना हो गया था। भीतर कहीं सातों

समुन्दर के खुदाई फरिश्ते कबाब और शराब के बूते पर चक्के फांसते होंगे। जिन्हें अपने आराम के लुट जाने का डर है वे उनकी खाट के पाए बने हुए हैं, क्योंकि वे भूल गए हैं कि उन अमीरों के घर के बाहर भी एक दुनिया है। मगर उन्हें क्या पड़ी है कि उनके बंगले के बाहर कोई मर रहा है या वे निकलकर देखें। मर रहा है ? तो ऐसी गलती वह क्यों कर रहा है ?

सड़क पर मोड़ आया। आगे कुछ भिखारी बैठे थे। सामने मुर्दाघाट था, जिसके पास एक मन्दिर में बाबा गंजे सिरों के बल खड़े होकर ईश्वर की याद कर रहे थे। ये वे ही लोग थे जो कुछ महीने पहले घाट पर नहाती एक अकेली औरत के साथ ज्यादती करने को तैयार हो गए थे। दुनिया उन्हें धर्मी कहती थी और पैसेवाले उन्हें पैसा देते थे। तब एक पादरी आया था। कितना दयावान था !

और क्षण-भर में हरिया ठठाकर हंस पड़ा। उसके सामने फिर वे भूली हुई तस्वीरें हठात् नाचने लगी। उस दिन वह पादरी उसे अपने साथ ले गया था और कुछ दिन बाद वह औरत सचमुच साड़ी छोड़कर साया पहनने लगी थी। किसी ने कुछ नहीं कहा। औरत जवान थी और उसके रूखे चेहरे पर मदमाता जोबन किलकारिया मारने लगा था।

हरिया उसे एक विशेष दिलचस्पी से देखा करता था, क्योंकि कल शायद वह उसकी रोटी पर पल सकती थी और आज पैसा होने के कारण हरिया अधिक से अधिक उसका नौकर हो सकता था। लोग आते-जाते उसे हिकारत की निगाह से देखा करते थे और वह स्त्री उनको बदले में कभी स्नेह से नहीं देखती थी। गोरा पादरी उसे अत्यन्त वात्सल्य से पालता था।

वह स्त्री एक दिन सांझ के वक्त बादलों की तरफ देखती हुई कुछ सोच रही थी। किसी ने उसे पुकारा, "रूबी !"

हरिया हंसा था।

और उसके बाद पादरी और रूबी हाथ बांधकर दुआ मांग रहे थे।

बड़े दिन के रोज घंटियां टनटना रही थी। किले के बाहर की सड़क पर एक अजीब रौनक थी। हरिया ने अपार विस्मय से देखा था कि रूबी एक जवान अंग्रेज सोल्जर के साथ टहल रही थी, और जैसे हिन्दुस्तानियों के प्रति घोर घृणा ने उसे उस गोरे के साथ बांध दिया था।

हरिया सिहर उठा। उसके अनन्तर वह स्त्री एक नहीं, दो नहीं, अनेक गोरों के साथ कई-कई शाम दिखाई दी।

वह भिखारियों के बिलकुल पास आ चुका था। कुछ भिखारी थे और कुछ फेरी लगानेवाले। हरिया पास जाकर बोला, "कहो सा'ब, क्या खबर है ?" और सबसे बड़ी चीज़ उसे उनमें मिलाने की यह थी कि वह भी खुद उनमें से ही एक था और कुत्ता पहचान लेता है कि मालिक और दुश्मन में क्या फर्क है।

फकीर दूर हो चला था। हरिया को धर्म से नफरत थी। वह पलभर में उनमें

मिल गया और हाथों-हाथ चिलम उसके हत्थे भी चढ़ी। एक कह रहा था, "सुना भाई फिर, तो वे कालिज के लड़के थे। मेरे खयाल में होंगे रईसों के ही?"

दूसरा बोला, "जरूर भाई सा'ब! अमीरों-रईसों के न होते तो क्या इस गिरानी में वे कालिज में पढ़ते होते?"

"खैर, सुनो तो। मैं आज रोजे गया था ताज बीबी के, मीनार है नी वो सी जिस पै हज्जारों आदमी चढ़कै दुनिया देखें हैं, विसके किनारे तवायफां बैठी थीं। विधर से निकले वे कॉलिज के लौंडे, तुम्हारी कसम बड़े मनचले थे।"

"अजी मत पूछो," एक और बोल उठा।

"हां तो गबरनर सा'ब," कहने वाला अकड़ा, क्योंकि वह समझ रहा था कि वह कुछ ज्यादा पढ़ा-लिखा था, और खुद ही समझाकर बोला, "अबे याने लाट सा'ब ताज देखने आए थे ताज! तौ बिन कॉलेज के लौंडों के साथ लड़किनियां भी थी और दो-एक मास्टर भी थे। वे एक तरफां चल दिए और मैं भी विनके साथ निकलने को चला मगर वो तौ बिगड़ उट्ठे। तब तक तवायफें भी उठ खड़ी हुई। सिपाही मुझे देखकर बिगड़ा। तब मैं उन तवायफों के साथ विनका नौकर बनके जान बचाके आया। वे पढ़े-लिखे साथ नही लाए। भैया, जमाना है, जमाना। और लाट सा'ब के तो बड़े अजीब ठाट थे।"

हरिया ने सुना और वह समझने की कोशिश करने लगा, क्योंकि समझने पर और कोई वहां गौर ही न करता था। अगर कोई गरीब है तो वह बस गरीब है। कोई क्या करे? और बड़े आदमी अपने को वाकई खुदाई नूर का हकदार समझते हैं। मगर हरिया के दिमाग में एक बात गूंजने लगी जो वह खुद नही समझ पाया। आदमी आदमी को नही चाहता, बनती-बिगड़ती हर चीज़ पर लट्टू हो जाता है। पचीसों भूखे मर जाते हैं और कोई नहीं पूछता, मगर सिकन्दरे में मरे अकबर के लिए भीड़ इकट्ठी हो जाती है।

एक साधू, जो वहीं पड़ा था, नशे में बोला, "बच्चा, शंकर रटै, संकट कटै। बस भोला का भजन करौ, भव-सागर को पार करौ।"

हरिया समझ गया, क्योंकि इस बात को वह अरसे से सुनता चला आ रहा था। वह बोला, "बाबाजी महाराज! देख रहे हो मुझे कुछ सूना-सूना-सा लगता है न जाने क्यों···"

वह स्वयं अपनी बात पूरी नहीं कर सका, जैसे जो वह कह गया था वह उसने कभी नहीं कहा।

"ब्याह कर लो, ब्याह!" बाबा ठठाकर हंसा। उसका स्थूलकाय भस्म से रंगा शरीर हिल उठा। हरिया कुण्ठित हो गया। वह बोला, "देखो बाबा! सदियों से यह किला खड़ा है, और वर्षों से यह जमुना बह रही है। अनगिनत रईस बनकर बिगड़ गए, तब अन्धे परमात्मा ने हमें ही क्यों छोड़ दिया?"

"अरे क्या खबर है रे तुझे बच्चा! पहले जनम में तू क्या था और आगे क्या होगा—कुछ खबर है? अरे ब्राह्मण को आटा चाहिए थोड़ा और थोड़ा-सा नशा महादेव

में मिलने को।"

हरिया कहने लगा, "तो क्या तुम्हारा मतलब है, मैं भी साधू होकर दूसरों की दया पर कुत्तों की तरह पेट पालूं ? और मैं तो बामन भी नहीं, जे कैसी आफत है ?"

अगर कहीं बाबा सुन लें तो बस गजब ही हो जाय। मगर बाबा नशे में झूम गए थे। वे सुन ही न सके। फेरीवाला घीसा आगे बढ़के बोला, "समझके बोला करिएगा जनाब! पहुंचे हुए हैं साधूजी। अभी गुस्सा हो जाते तो खैर न थी। जे किसी से मांगने नहीं जाते हैं कहीं, ईसुर आगे रख जाता है इनके तो। इस बखत समाध में लगे हैं। समझे ? बड़े-बड़े बाच्छाह इनके पैरों पर सिर रखै हैं। हिटलर और पंजम जारज तो इनकी सलाह से ही सब काम चलतू करैं हैं। अरे इनकी एक हंसी में दुनिया लुट जाय, कोई डर नहीं। अभी बिस दिन सूआ कोली के बच्चा नही होवै था। साधूजी को बुलाया। मिन्टों में हमल धर दिया, मिन्टों में। इनके लिए बड़े से बड़ा, छोटे से छोटा, फरक नहीं है इनमें भाई सा'ब।"

हरिया प्रायश्चित्त-सा करता हुआ बोला, "अच्छा ? तो बड़ी गलती हुई। यार, कहीं नाराज तो नहीं हो गए ?"

करीमखां बटन बेचनेवाले बोले, "अमा, नाराज होना ये क्या जानें ? तुम भी रहे चौंघट ही यार। जे अल्ला के नूर हैं। कहीं जे ऐसे हम खिदमतगारों पै नाराज हो जायं तो समझ ली भया! अब काम नी चलने का।"

"बेसक, बेसक," घीसा ने दाद दी, "अरे इनकी बात नहीं, तकदीर है लाला, तकदीर!"

इसके बाद बाबा ने फिर आंखें खोल दीं और हरिया को भक्तिभाव से सामने नम्र पाया।

"बाबा," हाथ जोड़कर करीमखां बोले, "बीबी-बच्चे सब भूखे हैं।"

बाबा कड़ककर बोले, "साले! तेरी बीबी और बच्चों पर बज्जर टूटे। हरामी!"

"बाबा! बाबा! लो चिलम पियो," कहके किसी ने बढ़ा दी। बाबा पीने लगे। कुछ देर बाद बाबा बोले, "बेटा, आटा बचा के बेचना भी पुन्न है, पुन्न। इसमें गंगास्नान का फल मिलता है, समझे ? हमने बड़े-बड़े नसे किए हैं!"

करीमखां बोले, "मैंने भी बहुत होड़ बदी है बाबा!"

घीसा ने कहा, "लेकिन बाबा, कुछ मां-बाप का खयाल जरूर था···"

"तो क्या अब फिर हैं घीसासिंह। जब तक करीमखां के मां-बाप जिन्दा रहे, बंदा नशा करने से डरता था। मगर जब से वह गुजरे, तब से जो नशा पहले गालों को लगता न था, ऐसा लगा है कि···" और उसके मुंह पर एक हंसी खेल गई। दांतों के बड़े अवशेष ने चेहरे की और सब चीजें ढंक दीं। "समझे ग्यारा मील से एक रुपया पूरा टिका के इक्के में जाते थे और बोतल को कपड़े में बांधकर लाते थे। कहीं पकड़े जायं तो सजा हो जाय। फिर दो-दो दिन शराब की दूकान पर रहना, सुल्फे-गाजे के दम लगाना···"

घीसा ने काटकर कहा, "अबे गांजे की सरत मत बदियो हमसे···"

"तो गांजा न सही। और सुन तो ले। तू तो बच्चा है, बच्चा···"

हरिया चकरा गया, "इतना नसा !"

"अबे, तू रहा चौंघट का चौंघट ही। अबे, वाह बे गंवार! हम जानें दुनिया की रंगत। फिर वां से जाके सिनीमा में छः पैसे का टिकट ले के देखना···खूब मजे किए हैं यार, खूब! और बाबा की महर से···"

बाबा उठे और एक ओर चल दिए। अंधेरा झुक चला था, किन्तु चांद बगावत का दहकता तारा बनकर उठा आ रहा था जिसकी रोशनी चारों ओर फैल रही थी। हरिया उठा। उठते समय उसने सुना, घीसा कह रहा था, "आज ही तो जुमा है, देख साले के सात, बीवी के बत्तीस, बच्चों के बाईस और हरामी के हुए आठ। कुल हुए उनहत्तर। इसमें से गए बीस—उनिचास। लगा दीजो तू बिंदी पर और मैं हरूफ पर। रामबाण है। शर्तिया जीत। छनेगी अबके।"

हरिया चलते-चलते कुछ सोचने लगा। एकाएक उसे कुछ खयाल आया। जेब में देखा, चार पैसे पड़े थे। दो को अंगुलियों में पकड़ लिया, और धड़े के अड्डे की तरफ चल पड़ा।

रात सन्नाटे की जैसे अपनी एक सहेजी बात थी। पेड़-पत्ते, सड़क सब सो रहे थे। दूर जाड़े पर तैरते किले में बजते घंटों का स्वर गूंज उठा। हरिया ने गिना, सात बज चुके थे। उसे विचार आया, जल्दी यदि वह नहीं लौटा तो शायद हरचंदी दूकान ओढ़ा जाय और वह रातभर भूखा रहे। उसने पगडंडी पर चलना शुरू किया कि वह दो खादर पार की नहीं कि आ गया यमुना के पुल का मोड़। बस, वहीं खलीफा के डेरे से दूर ही कित्ता है। आनन-फानन का रास्ता है फिर तो।

हरिया तेज-तेज चलने लगा। सन्नाटे में उसने अपनी ही पगध्वनि सुनकर एक बार पीछे मुड़कर भी देखा। कोई नहीं था। वह 'बालम आय बसो मेरे मन में' गुनगुनाता हुआ चलने लगा। एकाएक उसने सुना, खादर के पीछे की तरफ कोई रो रहा था। हरिया एकाएक चौंक उठा। स्वर किसी स्त्री के रोने का था। इतनी रात गए कौन रो रही है यहां? वह कुछ निश्चय नहीं कर सका। उसने किस्सा जरूर सुना था कि शाहजादे कासिम पर चुड़ैल आशिक हो गई थी और बियाबान में उसका पीछा करती थी। अज्ञात आशंकाओं से उसका हृदय भर गया। कुछ देर वह चुपचाप खड़ा रहा। उसके बाद उसने सुना, कोई गा रहा था और रोने की वह आवाज धीमी होते-होते शून्य में खो गई। भयानक सन्नाटा छा गया। हरिया एकदम सिहर उठा। वह अभी कुछ निश्चय भी नहीं कर पाया था कि टीले के पीछे से 'क्वां, क्वां!' की ध्वनि गूंज उठी। इस रोने में न वेदना थी, न दिल फटने की-सी व्याकुलता। यह केवल एक पुकार थी···

हरिया टीले के पीछे की ओर मुड़ गया।

घास के ऊपर कपड़ों में लिपटा एक बच्चा पड़ा रो रहा था। हरिया उसके पास चला गया और डरते-डरते उसने देखा, बच्चे का रंग बिलकुल फक गोरा था, जैसे अंग्रेजों

के बच्चों का होता है। उसके हाथ-पैर सुडौल थे। बड़ा प्यारा था। टुम-टुम देखनेवाली वे आंखें बिलकुल काली थीं और बाल भी बिलकुल स्याह थे। हरिया कुछ भी तय नहीं कर सका कि वह बालक था किसका। एक सुदूर की झलक से लगता था जैसे वह किसी जान-पहचान के चेहरे से मिलता जरूर है। वह अपलक उस अभागे को देखता रहा जिसे कलंक लगने के भय से उसकी पत्थर-दिल मां जंगल में अकेला, असहाय छोड़ गई थी।

हरिया ने सुना, दूर फकीर गा रहा था। रात की निस्तब्धता में उस मरघट के पास से गुजरतों का दिल दहल-दहल उठता था।

जिसमें हुस्न की जल रही शमा,
वह हड्डियों का मजार है।
जो तुझ पर चढ़ रहा नशा,
वह बुझते दिन का खुमार है।

यमुना की रौद्र गड़-गड़ खादरों में से गूंज रही थी। हरिया देख रहा था। अकबर की छाया में भिखमंगे पड़े थे, जो न अकबर के थे और न कभी जिनका अकबर था। यह आगरा का विशाल नगर था, जिसमें वैभव की छाया दिन-दिन भीषण हो चली थी।

[मई '47 से पूर्व]

रोने का मोल

जब सांझ हो आई और अंधेरा आस्मान की ललाई को फीका करने लगा तब शहर की बिजली की बत्तियां जगमगा उठीं। दूकानदारों की पलकें ठंडी हवा पाकर कुछ क्षण को बोझिल-सी धूलि से ढक गईं। कोलाहल बढ़कर थमने लगा। सड़कें चलने लगीं और कोहरा अभी से 'चिल्ला' में सघन होने लगा।

लोग घरों के दरवाजे बन्द करने लगे। तभी एक बड़ा-सा ताकतवर कुत्ता गली में से निकलकर बीच सड़क पर रोने लगा। राहगीर चुपचाप चले जा रहे थे। किसी ने भी उससे कुछ नहीं कहा, केवल एकाध इक्केवाले ने उसे राह से हटाने को जोर से चाबुक की लकड़ी को पहिए में अटकाकर खड़खड़ा दिया। उसके निकल जाने पर कुत्ता फिर बीच में आकर रोने लगा।

दो मिनट बाद ही एक बड़ा-सा नुकीला पत्थर उसकी पीठ पर झल्लाकर आ गिरा। कुत्ता एक बार जोर से रोया और भूकता हुआ गली में मुड़ गया। फेंकनेवाले ने मकान की कोख में से हंसकर कहा, "भाग गया साला! इतना बड़ा बदन लेकर भी बिल्कुल बेकार और डरपोक है।"

पंडित श्रीनारायण ने उफनते हुए कहा, "इतने सड़क पर चलते हैं, कोई कुछ नहीं कहता। धर्म नहीं रहा, वर्ना दिनदहाड़े कहीं भला सड़क पर कुत्ता रोने दिया जाता है?"

बड़े लड़के गोविन्द ने कहा, "चाचा! इसकी तो गर्दन काट देनी चाहिए।"

छोटे मनोहर ने कुछ न समझकर कहा, "रो लेने दो उसे, उसी ने उस दिन मेहरा के घर मे उतरते चोर को पकड़वाया था।"

मां ने टोककर शीघ्रता से कहा, "नहीं रे, यह बुरा मौन है। यमदर्शन होने है। क्यों मुहल्ले में मारे है सबको?"

श्रीनारायण गरज पड़े, "मनोहर! अबकी कहियो।"

मनोहर उठकर गम्भीर हो गया। अंधेरा स्याह पड़ने लगा था। गोविन्द ने झटके से दरवाजा भेड़ दिया। अंधकार में से कुत्ते ने सिर घुमाकर इधर-उधर देखा। दरवाजा बन्द था। क्षणभर में ही वह सड़क पर आ गया और जोर से रो पड़ा और द्वार खुलने के पहले ही अंधकारमयी गली में विलीन हो गया।

आये दिन यही प्रोग्राम रहता। कुत्ते को भी एक आदत-सी पड़ गई थी कि सड़क

के बीच में डिक्टेटर की तरह आकर एक बार बीचोबीच आ खड़ा होता और जैसे जान-जानकर चिढ़ाने को रो देता। पंडित श्रीनारायण को उससे चिढ़ हो गई थी। आठ वर्ष बाद उनके घर में बच्चा आया था, सो भी जाता रहा। उस दिन अंधेरी रात थी, घटाएं छा रही थीं, तभी आकर सहसा पहले दिन यह कुत्ता रो पड़ा था। बच्चा इस असगुन के कारण चल बसा और कुत्ते के सिर घर-भर का टूटा और लुटा दिल एक दुश्मनी लेकर मंड़ गया। कुत्ता भी अपने रोजमर्रा के दुश्मनों को पहचान गया था और उनकी थोड़ी भी आहट पाते ही दौड़कर गली में छिप जाता।

उस दिन चौराहे पर सिपाही नहीं था और ट्रैफिक भी कुछ कम था। कुछ लोग आग जलाए ताप रहे थे। कुत्ता रोते-रोते उनके पास चला गया। किसी ने भी कुछ न कहा। भले आदमी नाराज होकर शर्माते-से चुपचाप चले गए। कुत्ता धीरे-धीरे पास के घूरे पर जाकर सो गया। रात हो आई थी। अगणित तारे आसमान में जलते अरमान लिए अपनी जिन्दगी की कशमकश में अपने को संभाले घूम रहे थे। आग से चारों ओर हिलती हुई रोशनी फैल रही थी। धुआं आसमान को गहरा बनाए जा रहा था।

इसी समय लोगों ने देखा, पंडितजी जोर-शोर से चले आ रहे थे। हाथ में एक लम्बा डण्डा था। लोग समझ गए, आज पंडितजी गजब करने ही घर से निकले हैं। बहुत से लोग स्वयं ही कुत्ते से नाराज थे, मगर अगुआ बनकर उसे मारने की हिम्मत कोई न करता था। आज कुत्ते को मारने को एक आदमी को देख कुछ तो चुप-से अपना काम करने लगे, कुछ उत्कण्ठित-से देखने लगे। हरा पेड़ काटने का साहस बहुत कम करते हैं, मगर पेड़ की कटी लकड़ी ले जाने को सब तैयार होते हैं। आग के पास बैठे लोगों के निकट जाकर सीधे शब्दों में पंडितजी ने पूछा, "कहां गया साला ? उसकी ऐसी-तैसी ! मजाक हो गया ! तुम लोगों ने इस आदमखाने को श्मशान-सा बना रखा है !"

युवक मजदूर उद्दण्ड-से निश्चिन्त बैठे तापते रहे। उनकी भुजाएं कन्धों से कुछ उठ गईं। नई रेल को देखकर जैसे हिन्दुस्तानी चौंककर उसे देवता मानने लगे थे, वैसे ही वृद्ध चिरंजी छाती निकालकर नम्रता से बोला. "सरकार बाबू ! खबर नहीं।"

पंडितजी को कुछ नहीं सूझा और वह चुपचाप घर लौट आए।

आधी रात को कुत्ता फिर सड़क पर रो पड़ा। पंडितजी की नींद खुल गई।

दूसरे दिन पंडितजी ने चुंगी में अर्जी दे दी और कुत्तों को गोली डालने भंगी आ गए। जब कोई कुत्ता न फंसा तो पंडितजी स्वयं कुत्तों के लिए बाहर निकल आए। बाहर आते ही उन्हें भंगियों ने घेर लिया। आज उन्हें इसकी भी परवाह नहीं थी। ब्राह्मण स्वार्थ के सामने धर्म को अपने अनुकूल बना लेता है।

जमादार ने पंडितजी को देखकर कहा, "सलाम पंडितजी।"

पंडितजी ने धीरे से कहा, "जियो-जियो।"

सहसा भंगियों ने जोर से कहा, "सलाम ठाकुरजी।"

पंडितजी के मुंह पर मुस्कराहट फैल गई।

सांझ आ गई, मगर कुत्ते पकड़ने की गाड़ी में एक भी कुत्ता नहीं घुसा। सबको गरीब अशिक्षितों ने अपने घरों में बन्द कर रखा था, जैसे गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में मर्दुमशुमारी गलत कराने को घरों में लोगों को छिपा दिया गया था। पंडितजी ने चिरंजी को लाल आंखों से देखा। सामने के किसी घर के पिछवाड़े से कुत्ते भूंक पड़े और जमादार ने रिपोर्ट में लिखा, "कोई कुत्ता सड़क पर न दिखा। बढ़ती तादाद की गलत रिपोर्ट दी गई लगती है। कुत्ते कहीं हैं जो भूकते हैं, आवाज आती है, लेकिन हैं कहां, यह पता नही चलता।"

एक सूखा मरियल कुत्ता सामने चल रहा था, मगर उसके गले में किसी ने अपना कपड़ा बांध दिया, जो पट्टे का काम दे रहा था। पंडितजी मन मसोसकर रह गए। उन्होंने पहचाना, यह चिरंजी की साफी की चीर थी। कुत्ता लाटसाहब बना हुआ था। मांग में सिन्दूर पड़ा, स्त्री को खाने-कमाने की चिन्ता नहीं रही; गले में चीर पड़ी, कुत्ता आवारा न रहकर घर का सदस्य हो गया। बाकायदा सड़क पर चहलकदमी कर रहा था, वल्कि एकाध बार पंडितजी को सूंघ भी गया।

सभा विर्सजित होने ही वाली थी कि एक मोटी कुतिया निकल ही आई। वह किसी की सम्पत्ति नहीं थी। भंगी ने प्रेम मे बढ़कर गोली डाली और कुतिया उसे निगल गई। लोग चुपचाप देखते रहे। उन्होंने आदमियों को घोड़ों मे कुचले जाते देखा था, फिर यह तो मामूली बात थी। उन्हें इस सरकार से बड़ी-बड़ी उम्मीदें थी। भंगियों ने मौज में कुतिया को ले जाना भी व्यर्थ समझा। खाली गाड़ी धकेलकर दफ्तर की तरफ गाते हुए वे चल पड़े।

रात ठंडी-सी इठलाकर ठहर गई। कुतिया के पेट में बच्चे थे। यही दुर्भाग्य की बात निकली। रातभर झाग डालकर कुतिया अनगिनत रोते कुत्तों के बीच में चल बसी।

दूसरे दिन किसी ने भी यह न कोसा कि कुत्ते रातभर रोए। सफेद कपड़े पहने बूढ़ी खत्रानियां बतख की चाल से मन्दिर में जब मिली तब एक ने हाथ मटकाकर कहा, "बनने को पंडित, काम ऐसे ? ग्याभन मरवा दी, तभी तो विसका लड़का···"

पास की बुढ़िया ने कहा, "ठीक है बुआ, ठीक है।"

पहली वृद्धा ने फिर कहा, "तो मैंने क्या गलत किया ? हत्या करावै है, हत्या !"

तीसरी ने कहा, "हम तो बस जे जानें, जो जैसी करनी करैगा, तैसी पायेगा।"

पंडितजी इस अकृतज्ञ मुहल्ले की सेवा से ऊब उठे। अजब कुतिया मरी।

कुत्ते रात-रात रोने लगे। और वह असली तक्षक अभी तक जिन्दा था। पहले मारते थे, अब वह भी नहीं कर सकते। कानों में अंगुली डालकर बैठे रहे। मुहल्ले की स्त्रियों में एक राजनीतिक की-सी हलचल व्यापी रही। स्वयं उनकी स्त्री ने कहा, "मैंने तो पहले ही मना किया···"

मगर फिर वह पंडितजी की आंखों के आगे बोल न सकी।

दिन बीत गए। मामला ठंडा पड़ गया, लेकिन पंडितजी पर से लोगों की श्रद्धा

उठ गई और रात में कुत्तों के भूंकने से बहुतों की नींद खराब होने लगी। फिर भी कोई रास्ता नहीं था।

लोग कहते, "इतना मोटा-तगड़ा होकर सिर्फ रोता है?"

और कुत्ता भूक पड़ता, मानो एक प्रश्न था कि क्या रोने के लिए भी आज्ञा चाहिए? कौन जानता है, किसको क्या दुख है! तब सड़क की धूल उड़ जाती, मानो उत्तर था कि दुखों को आकर कहो मत। यह किसने कहा कि सब तुम्हारे दुख के साथी होंगे?

फिर घूरे पर से उठ पूंछ दबाए अन्य कुत्तों में डरता-सा वही कुत्ता रो उठता। सब आवाजों से ऊपर ईश्वर की आवाज की तरह उसका गम्भीर निर्घोष गूंज उठता और मुहल्ला स्वर से भर जाता।

जाड़े की धूप किसी के ठंडे गाल पर बहे गर्म आंसू-सी बहकर फैल गई। अपनी गौख में धूप में बैठे पंडितजी भगवद्गीता पढ़ रहे थे। सहसा उन्होंने दिन में कुत्ते का रोना सुना। वह अन्दर ही अन्दर झुलस उठे। साथ ही उन्होंने देखा, दस-पांच मेहतर लट्ठ लिए कुत्ते के पीछे दौड़े चले आ रहे थे। क्षणभर में ही कुत्ते के सिर, बदन, पूंछ, टांग सब पर दनादन लट्ठ पड़ने लगे। पंडितजी इस मार का कारण नहीं समझ सके, किन्तु मार जारी थी। जब कुत्ते की आंखें बाहर निकल पड़ीं तब उसे नाली में फेंक, लट्ठ नचाते हुए मेहतर लौट गए। कुत्ता तड़पने लगा, ठंड से कांप भी रहा था। न जाने क्यों पंडितजी व्यथित हो गए।

कुत्ते ने रोने के लिए अन्तिम बार मुंह खोला, मगर वह अबकी रो न सका। उसमें दम नहीं बचा था।

[मई,'47 से पूर्व]

आवारा

भटियारखाने के दालान में भीड़ जमा थी। रफीक सोचता था, "कौन किसे तंग करता है? कौन किसे मुंह लगाता है?"

"कैसे?" कहकर हमीदा ने चिलम बढ़ा दी।

"तू पूछता है, कैसे? मेरी जान की कुछ खबर है तुझे? तन देख! मेरे जिस्म में दरारें पड़ गई है। और आज शाम हो चली है। आखिर भलमनसाहत भी कोई चीज ही तो है।"

"ठहर के बातचीत कीना करो भाई साहब," वह खांस उठा।

"क्यों नही? क्यों नही?" सबकी आवाज अंधेरे को गुंजा उठी। पर तारे नहीं सुन सकते।

"हम ना होते, तुम ना होते,
कौन कहां से आवन रे?"

"शायद कालू आ रहा है?"

"हां, मैं ही हूं भाईजान!"

"सोई तो मैंने कया। आवाज भी नहीं पहचानूंगा क्या मैं दर्दे जिगर की दवा की!"

"अबे नही, मेरी कसम?"

और एक और आ पहुचा। अब आवारों का एक झट्ट बैठा है।

"अबे, तो आज मेरे मुह मे खुशबू क्यों नी आरी है यार? कही उभक के चक्के-फक्के तो नही झांस गया?"

"मर गए!" बोला वह कालू, "यह देख मेरी जेब में क्या है?"

"तो दिल मे सटाके रखे हुए हो?"

"और नही? और बे रफीक, तू कैसे भिनक रिया है आज दिन? किस्सा-फिस्सा तो नही कर दीना?"

"और भाई तू क्या जाने? लो सांड़-सा डोलै है, न आगी, न पीछू; जहां मरे वहीं गड़ गए।" अमां, कुछ ध्यान दो! मजहब पै आओ! खुदा सबका वही है। और जो विसकी बनी लकीर मिटा दे विसे हम जानें। वह छाती ठोके, हम टांग तले निकल जायं।"

"अबे चल, रहने दे, फिर मौके पै कहेगा, हमें तो मुर्गा बनना ही ना आवै!"

"हां तो…"

"पहले मेरी सुन तो कहूं।"

"अच्छा, जे तै रही बोल ?"

"तो मैं यों कहूं कि मजहब-धरम क्या होवें माले ?"

"ऐ लो! सुन ली भई, कुछ आगे कहूं क्या ? तबीयत भर गई कि नहीं भाई सा'ब ?"

इतने में चन्दा बोल उठा, "अमैं, हटाओ भी कोल्हू के बैलो! रट लगा दी! यह ले यार कालू, दम खींच।"

"दम ? बढ़ा-बढ़ा इधर!" और कालू दम मारने लगा। और क्षणभर बाद ही बोल उठा, अबे वाह बे उल्लू के पठेरे! यह भी कोई दम में दम कहावे है ?"

और जेब से निकाल खोल पुड़िया बढ़ा ही दी मुलफे की, हाथों-हाथ।

"यारो जिन्दगी जीने का मजा है। क्या मिलेगा बीवी-बच्चों को ? भरम है धरम-वरम। खाओ, पिओ और कहो कि जो मजा है मस्ती है; हस्ती और दौलत के शिकंजे गम की दीवार है। न लेना, न देना। तुम सब गुलाम, हम आजाद है। नौकरी करोगे, जान जोखों पड़ेगी। करो मजूरी और मालिक भी मिन्टों में पैरों का तेल बन गया कि रखो-रखो, अल्लाह-अल्लाह और नहीं खैरमल्लाह! मानो तो मालों, अम्मा भी भर-भर दूध पिलायेंगी। मरद मरद, औरत औरत सबका बेड़ा चलेगा। बोल कैसी कही ? कल शाम से घुटवाऊं ? बूता है बाबू सा'ब, बूता है। खूब छानो, लगाओ दम, और जिसका दिमाग हो ठीक, आके बगल में हमारे पिया करे। कसम से कहो जवानी तो हरजाई, हम तो हमेशा जवान हैं। औरत जवान दस बच्चोंवाली, और मरद जवान तब तक जब तक वह मरद है। मियां दिल चाहिए, दिल ?"

और फिर कालू हंसा, उसकी हंसी में सब डूब चले।

"क्या मिलेगा कालू ? बुढ़ापे मे क्या करोगे ?"

"और नही, तुम तो कमा-कमाके बचा रहे हो न ? इतना ही कि बुढ़ापे में जब कुंवर कन्हैया सामने खेलेंगे तब सोने के पलना ही बिछवाओगे ? अरे बोतल हो और हो सामने माशूक, लौंडिया नही तो लौंडा ही सही। अमां, हुस्न और दौलत दो ही चीज है। एक तो पाओ, और जिनने दोनों पा ली…"

क्षणभर ठिठककर उसने देखा। फिर दबी जबान से बोला, "होंगे रईस घर के अपने। बेटा, एक-एक बिस्तर एक-एक जागीर है, एक-एक माशूक एक-एक खुदा है। तुम्हारी कसम, फुरकत के मजे ही कुछ और हैं। तुमने तो सिर्फ जूतियां खाना सीखा है। और मुझे देखो! है ?"

और वह दम खीचने लगा। अब शायद वाकई मजा आ रहा था जो चिलम जल उठी थी उसे पीकर जो एक दिलकश धुआं गुब्बारों को पैदा कर रहा था वह फैल उठा। रफीक ध्यान में था। उसका मुख भारी था। सांझ के जाने के साथ ही वह अपनी ग्लानि को भी चाहता था कि वह जहां से आई है वहीं चली जाय। लेकिन इससे पहले कि वह

लौटे, मिल के फाटक बन्द हो चुके थे। वह वेकार पिटा, रोगन छूटे-न-छूटे, वह क्या करे ? बड़े आदमी हैं जी,,बढ़-बढ़के बातें बनाना क्या उन्हीं के लिए सीखा है ?

वह गर्मी की ऋतु थी। चांद क्षीण-सा आसमान में चढ़ आया था। धुंधली भयद आशा सी किरणें घुल-घुल जा रही थीं। दूर न जाने कहां सल्मा-सितारों-से तारे जड़े थे, सामने की सफेद डौरियां भागती बिल्ली की पीठ-सी चमक रही थीं।

अब्दुल कहने लगा, "विस दिन वो गंगू हलवाई गिट्ठा-सा काला-सा है नी, वो बोला, 'मियांजी, पैसे नहीं आए !' मैंने कया, 'तो क्या कोई चोर-बदमाश हैं ? आ जाएंगे।' मगर माने सो वह उल्लू का बच्चा। मैंने भी जिन्नातों के नुस्खे सीख रखे हैं। जान बचाई किसी तरियां।"

हमीद बोला, "फिर कित्ते चलेंगे ?"

चन्दा आगे होकर बोला, "और साले ने लगाई चोंचपाट तो बना न दूंगा यार ? बनिया-बक्काल, हहहह···मेरा गुस्सा बड़ा बिकट है, भैया हहहह···"

अब रफीक की बारी आई। आगे सरककर कालू के साझे में आ बैठा।

"उड़े न यार ?"

"क्यों नहीं !"

और कुछ ही देर में दोनों बोतल गटगट करके पी गए। कुछ हंसी, कुछ फोश मजाक, कुछ हाथों और आंखों के अश्लील इशारे। नशा चढ़ने लगा, अंधेरा बढ़ने लगा। कालू में अब रफीक है, और रफीक में कालू। कालू और रफीक तन्न हुए। और कालू की तान छिड़ उठी—

"सरे बाजार बलमा···"

झुट्ट जो दूर-दूर तक-सा था, सरक-सरककर पास आ गया। एक लाश थी, कई गिद्ध थे। पहली चोंच डालना मना था। सब चारों तरफ योगियों-से मौन बैठे थे। जब गीत खत्म हो गया तो अब्दुल कहने लगा, "तो क्यों भाई रफीक ! तूने फिर करियां अपना किस्सा सुनाने को कया था न ? फिर आज न चले कपड़ों पै तेरा गज ?"

"मेरा गज ?" और भयंकर लुंगाड़ों के ठहाकों से बीभत्सता कुरूप हो उठी। न जाने आवारों के क्या-क्या मतलब भले आदमियों की एक-एक झिझकती आवाज में निकल आए।

रफीक के दिल में धुकधुकी हो रही थी। सोचते-सोचते वह सिहर उठा।

"दिल मर गया कसम से, दो संगी थे, एक बचा भी तो यार, अधमुआ होके। बला लगी न उस्ताद ? मरे दिल, मगर बदन को तो पेट की खातिर सलामी झुकानी ही होगी ?"

कालू सोचने की कोशिश कर रहा था, मगर नशे की अंगड़ाई ख्यालों के पैर ही नहीं जमने देती थी।

हमीदा ने मुंह में एक बीड़ा लगा आगे सरककर दियासलाई जलाई। अब इन लोगों के चेहरे नजर आने लगे। नाक, आंख और बाल ही इनकी विशेषता थी। किसी के गर्दन

तक लहराते घुंघराले बाल और किसी के पट्टे धंसके हुए गालों पर फब रहे थे। कोई फटा पाजामा और कोई तहमद पहने था।

“अबे नशा करना हम जानते हैं, हम,” कालू कहने लगा, “बोलो, कौन चलेगा ? कौन होगा हमारा चेला ? वह-वह चाट उड़वाऊं बेट्टा; इन आँखों की रोशनी यों ही नहीं पकाई है। जो सूरज की रोशनी में भी बन्द नहीं होने की, समझे ?” और हाथों से उसने एक अजीब अश्लील इशारा किया जो घृणित और घोर वासना से भरा था।

“यहां क्या मिलेगा उन्हें···”

और फिर निःस्तब्धता में भी उनके मुख से एक हंसी की क्षीण ध्वनि कूक उठी।

रफीक ने कहा, “उस्ताद हो तुम हमारी पाल्टी के। तुम मिल गए राजा, इतने दिनों के बाद हमें। इसी तरिये बैठक जमेगी कल से। ठीक है वे हमीदा ?”

“बिलकुल।”

“और क्या ?” बोला चन्दा लपककर, “इतना भी नहीं किया तो किया क्या फिर बोलो ?”

हां, तो क्या तय रही ?”

“वा वे जोरू के घुंघरू !” कहकर रफीक उठा। उस पर काफी नशा चढ़ आया था। वह गाने लगा—

“ओ मेरे राजा···”

और अट्टहासों से आकाश गरजता-गरजता गूंज उठा। मगर यह वह हंसी थी जिसका शोर बढ़ता चला जाता था, हर कोई अपने को बेकसूर समझे हुए था, मानो शोर अपने आप कहीं से उठ रहा हो। जब इस तरह काफी देर हो गई तो मजा जाता रहा। अब आनन्द की जगह चिड़चिड़ापन ले रहा था। इतने में उस ओर अंधेरे में बढ़ता एक आदमी वहां आ गया। लोग उसे देखकर चौंके, पर फिर सबने एक नया साहस इकट्ठा कर लिया।

वह आगंतुक बोला, “सालो ! मेरे पड़ोस में ये गुल ? अंतड़ियों की धज्जी-धज्जी उड़वा दूंगा मरदूदो, मैं सरकारी आदमी हूं। हरामी···”

वह और बकनेवाला था, मगर सुलेमान जो कि भटियारखाने का मालिक था, आगे बढ़कर बोला, “जमादार, यह ही दो पैसे रोज की आमदनी है। यह सब बाहर के लोग हैं। पैर छूता हू जमादार, अब अगर ऐसा फिर कभी होवे तो···”

जमादार ने जाने क्यों चुप रहना बेहतर समझा, क्योंकि इस वक्त गुण्डे उसकी तरफ जलती आंखों से घूर रहे थे। लेकिन फिर बोला, “रहेंगे मेरे पड़ोस में; और करेंगे हरामी अपनी वही बदमाशी !”

कालू उठा। उठते में लड़खड़ाया। जमादार के ठीक सिर पर जा खड़ा हुआ। घूंस तानने लगा। मगर सहसा मुंह देखकर चिल्ला उठा, “अबे, ये साला बुड्ढा है। मार दूंगा तो मर जायेगा।”

एक अजीब नया शोर मच उठा। सुलेमान हर कोशिश करता था, मगर कौन

माने ? आखिर जमादार चला गया। वह चुंगी में भंगियों का कभी जमादार था। अब पेंशन पाता था। ऐसा वाकया कोई नई बात न थी। जब शोर से गुण्डे थक गए तो कालू बोला, "रफीक !"

"हां, भई, उस्ताद !"

"चल, बाजार हो आएं।"

"हां, राजा !"

इन दोनों के जाते ही भीड़ छंट गई। रह गए सुलेमान, हमीदा चन्दा और अब्दुल। सुलेमान ने आंख मारी और हमीदा बगल की कोठरी का दरवाजा खटखटा उठा। सुलेमान उठकर बाहर चला। अब्दुल बोला, "लो, ये दो और एक तीन रुपए। हमने चन्दा किया है ! मामूली नहीं चाहिए।"

"एक नम्बर।" कहकर सुलेमान चला गया। थोड़ी देर बाद दरवाजा खुला। भीतर मद्धिम रोशनी थी। हमीदा ने अपने दोस्तों की तरफ देखा, आंखों में स्वीकृति मिली। घुमकर द्वार बन्द कर लिया। बाकी दोनों खामोश गिद्धों की तरह बैठे रहे। कुछ देर बाद जब हमीदा निकला तो बोला, "तुममें से एक जाओ।"

अब्दुल बोला, "कैसी है यार ?"

हमीदा हल्के से मुस्करा दिया। अब्दुल भीतर घुस चुका था।

रफीक के लम्बे-लम्बे घुंघराले बाल कन्धे तक फहराते थे। एक तेली सच्चा दोस्त था। इसीलिए एक दूसरे की दोस्ती से फायदा उठाना भी लाजमी हो गया था। रफीक जाते है। तेली दोस्त अंधेरी-सी गली में से चीख पड़ता है, "आओ बरखुरदार, आओ बादशा···" रफीक हाथ में एक साबुन की बट्टी लिए हुए हैं। अब तेली दोस्त फकीरा उनके सिर पर तेल डालकर मालिश करता है और रफीक अपनी बलिष्ठ देह को साधे अपने हरे तहमद को देख-देखकर गुनगुनाते है—

"हसरत उन गुंचों की
जो बिन खिले मुरझा गए।"

जब सिर चमक उठता है तो वह अंधेरी कोठरी में से एक टूटी मटकी निकाल लाता है और हाथ डालने पर एक दांत टूटी बूढ़ी कंघी निकल आती है। कंघी का रखना एक आवश्यक कार्य है, क्योंकि सब भले आदमी बाल काढ़ते है। जब फकीरा बाल काढ़ चुकता है तो रफीक कहता है, "ले, हाथ तो धो ले।" और साबुन की बट्टी बढ़ाते हुए कहता है, "यह न जाने कितने गन्दे बाल है !"

ऐसे बाल और चौड़ा सीना। गलमुच्छें और एक बनियान ढीलीढाली। हाथ में और गले मे एक-एक काला डोरा। वह अक्सर बाजार में जो गली के नुक्कड़ पर नल है वहां नहाता, चिल्ला-चिल्लाकर गाता और ऊपर अगर कोई तवायफ दीखती तो आवाजें कसता, चिल्ला-चिल्लाकर गाने गाता। चाय के प्याले धो-धोकर टांगता हुआ सामने की दूकान से बदरुद्दीन कहता, "क्या कहने हैं उस्ताद के !" और रफीक 'डू है वे, डी है वे !'

का घोर नाद करता, जिसको सुनकर आस-पास के दूकानदार खूब हंसते, तवायफें गौखों में बाहर निकल आतीं और लाज करतीं जिसको देखकर रफीक का बदन फड़फड़ाने लगता।

रात के साढ़े नौ बजे का वक्त था। कालू एक रेशमी कुरता और धोती पहने था। यह देखने को तगड़ा तो नहीं मालूम देता था, मगर था अव्वल दर्जे का फुर्तीला और ठग। बाजार जगमग कर रहा था। भीड़-भड़क्का, घोड़ा और गाड़ी। दोनों पीकर धुत्त हो रहे थे।

अब कोठे चमक रहे थे।

"अबे, चलै है बे कालू?" रफीक ने झूमते हुए कहा।

कालू सहसा तबले की थाप सुनकर चौंक उठा। तड़पकर बोला, "साले, तेरे बाप के पास भी इतना नामा है?"

ऊपर कहकहा लगा। कालू और रफीक आगे बढ़ गए। यह दूसरे बाजार की तरफ सड़क गई थी। संकरी-सी सड़क, मद्धिम-सी रोशनी। बाहर निकली हुई गौखें और उनमें बैठी हुई रंडियां। हर कोठे पर चढ़ने की सीढ़ी की बगल में ही एक-एक दूकान है। और ये दूकानें एक अड्डा हैं। इन्हीं में से एक दूकान पर जाकर कालू चीखा, "अबे लल्लन, ओ साले लल्लन!"

दूकानदार, जो कि पीनक में पड़ा था, बोला, "आओ जानी! आहा! कालू मास्टर है! आ जाओ राजा, भीतर आ जाओ, भीतर, डरो मत!"

"वाह बे!" कालू ने कहा, 'दिन-दहाड़े सो रहा है? आखिर कुछ तेरी दौलत मारी गई क्या?"

"अजी नहीं उस्ताद! आज वह ढब-ढब का मैच हुआ था न ट्रेनिंग कालिज की फिल्ट पर, सो मैं वहीं गया'वा था। अब तुम जानो इत्ता जाना, जित्ता ही आना, मैच देखे बिगैर भी कैसे रहता? दूकान बढ़ा दी थी शाम से पहले ही, अब अब लौटा तो मुन्नी बाई ने पानों के लिए दूकान खुलवा ही ली। खैर! मगर तुम तो बैठो।"

कालू अपने ही खयाल में था। रफीक को कुछ नहीं मालूम। नशा पूरा चढ़ चुका था। वह धीरे से जाकर दूकान पर लेट गया। कालू बोला, "अबे रफीक, चलना है कि नहीं?"

लल्लन ने इशारा किया, "सो रहा है।"

कालू चिढ़ गया, "साला हिजड़ा है। जरा-सी पीकर लेट गया।" फिर बोला, "मुन्नी ने अबके कौन-सा कोठा लिया है? हरामजादी कहां चली गई थी? निकाह करेगी निकाह।" और वह ठठाकर हंस पड़ा।

लल्लन बोला, "धीरे उस्ताद, धीरे। ऊपर रामू पहलवान बैठा है। एक आदमी और है उनके साथ।"

पलक मारते कालू जोर-जोर से रामू पहलवान और उसके साथी को मां, बहन, बेटी, बाप, भाई सबकी पच्चीसों गाली दे गया। गाली देता जाता था और देते-देते में

गढ़ता भी जाता था। गालियां सुनकर एक आदमी गौख पर निकल आया। उसके साथ थी एक निम्न श्रेणी की वेश्या, कुछ विश्रान्त-सी। चहल-पहल हो रही थी। कोठे पर का जवान कालू को देखकर सलामी झुकाकर बोला, "तस्लीमात, मिजाज तो अच्छे हैं ?"

कालू शाइस्ता होकर बोला, "इनायत है आपकी। दुआ है आपकी, सरकार हम किस लायक हैं ? कहिए, मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हूं ?"

अब ऊपर से पतली-सी आवाज आई। मुन्नी बोली, "कहिए, कुछ नाराज हैं क्या ?"

रामू अब ठठाकर हंस पड़ा। पास में सड़क पर एक सिपाही घूर रहा था। ये लोग सिपाही के दोस्त थे। यही वह जगह थी जहां सम्राट दरिद्रों में आ जाते हैं। कालू बोला, "बेट्टा आज अकड़ रहे हो ? यह याद नहीं है कि जिस ओहदे पर तुम आज पहुंचे हुए हो, विस पर तुम्हें पहुंचाया किसने है ? जिस प्याले पर तुम साले हरामखोर मुंह लगाए हुए हो वह मालूम है, मेरी जूठन है ?" और वह ठठाकर हंस पड़ा। सिपाही इधर-उधर घूमने लगा। लल्लन ऊंघ रहा था। रामू बोला, "क्यों रामा, चढ़ाये हुए हो क्या ?"

"अबे चढ़ाए हो तेरी मां···!" कालू को यह भी मालूम न पड़ा कि कोठे पर से कोई उतरा, वह कहता गया, "बेट्टा, भले आदमी बनकर रहो। नमक माना करो नमक !"

ऊपरवाला अखाड़े का पहलवान चिल्ला उठा, "बज्जी सरजा ! बज्जी सरजा !" और जैसे बिजली गिरी हो, कालू पर तड़ातड़ लट्ठ बज उठे। जितनी देर में सिपाही होश संभाले, लुच्चे गलियों में भागकर गायब हो चुके थे। केवल बेहोश घायल कालू पड़ा हुआ था। रफीक नशे में बेहोश था। रामू नीचे उतर आया। देखकर हंसा और फिर उठकर चला कलिया तांगेवाले के तवेले की तरफ। चिल्लाकर बोला, "जागता है बे कलिया ?"

"हां।" कलिया ने ऐंठकर बुड़बुड़ाते हुए कहा, "क्या है ?"

"तांगा जोत, मैंने कहा। कालू बेहोश है। अस्पताल ले चलना है।"

"अच्छा।" और वह बुड़बुड़ाता रहा। और वे अस्पताल पहुंच गए। रामू तांगे में बैठकर लौट आया और कहीं गायब हो गया।

घंटेभर बाद पट्टी-वट्टी बंधवाकर कालू ने जाकर सब्जीमंडी पर पानी पिया और काश्मीरी बाजारी की तरफ चल दिया। गर्मी के दिन थे। अभी रात कमसिन थी, इसलिए सड़क पर लोग निस्संकोच चल रहे थे। कुछ ही दूर चलकर कालू गरज उठा, "कलिया बे !"

"क्या है ?" कलिया ने मुड़कर कहा।

"रोक ले।"

तांगा रुक गया।

दो आदमी उतर पड़े—एक रामू, एक उसका साथी। कालू बोला, "जा, लल्लन से मेरी लकड़ी और दो और डंडे ले आ।"

करीब दस मिनट बाद युद्ध हुआ। कालू ने पहले डटकर गाली दी कि पीछे से मार गए साले ! बदमाश ! कायर ! और एकदम शाइस्ता होकर बोला, "आप लोगों

की इसके लिए मेहरबानी भाईजान !" और उसने पट्टी की तरफ इशारा किया। छोटा डंडा उसकी नियामत थी। हाथभर का डंडा लेकर वह सामने दोनों गुंडों के हाथ में लंबे-लंबे डंडे देकर तैयार था। सड़क साफ हो गई थी। अब लकड़ी चली। लोग चारों तरफ जगह छोड़कर खड़े हो गए थे। पूरे युद्ध में कालू दो डंडे कमर पर खा गया और आधे घंटे में वे दोनों सामने ही गिर पड़े। कालू भाग गया। लोग चलने लगे।

दूसरे दिन कालू खाना खा रहा था। दारोगाजी आ पहुंचे। उन्हें उसका घर मालूम रखना पड़ता था। कालू उस समय एक लड़के से कह रहा था, "अब वे दिन कहां रहे ? हमारे उस्ताद थे पूरे शाहंशाह। रईसों में उनकी उट्ठक-बैठक थी। ऐसे रईस नहीं कि दो आने का तेल सिर में डाला, दो लफ्ज अंग्रेजी के रटे और हो गए बाबू। हमारे उस्ताद ने खड़े-खड़े सराफा लुटवा दिया और एक पैसा न लिया। उन्हें कोठों पर से बुलाती थी, वे कभी न गए, हुआ तो नीचे खड़े-खड़े गाना सुना और जुआ कराया तो हज्जारों का, मगर नाल का रुपया अपने अखाड़ेवालों को बांट दिया वह बात और थी।"

कालू एक पानवाले का बेटा था। मां मर चुकी थी। एक बहन थी। बाप रोज सुबह-शाम भंग पीता। लड़का सोहबत में पड़ गया। बाप ने किवाड़ उढ़का दिए। लड़के ने पहले तो उसे मारा और घर छोड़ दिया। एक बुढ़िया को काकी बना लिया। धोखा देकर उसके रुपए मार दिए। और जब बुढ़िया मर गई तो विमान निकलवाया, फूल सोरों भिजवाए, बामन जिमाए, और फिर चौकी करा दी। फिर फक्कड़ हो गया। जूआ खेलना शुरू किया। खूब हारा। दो बार पकड़ा जाकर जेल की हवा खा आया। एक दफा बाप ने आकर पैरों पर सिर रखकर कहा, "एक ही बहन है तेरी, उसका ब्याह करना है तो बाप को धक्का देकर निकाल दिया, लेकिन रात को न जाने कहां से रुपया लेकर पहुंचा और बाप ने जब मुंह पर थूक दिया तो पैरों पर सिर रखकर रुपया दे दिया। बहन का ब्याह हो गया। अच्छा घर था। पटवारी का बेटा, मिडिल पास। और बाप फिर पान की दूकान पर जा बैठा। बेटा हर पन्द्रह दिन बाद बदलता रहता।

दारोगाजी ने आवाज दी, "पंडितजी !"

कालू ने लड़के से कहा, "देख तो बे ! कौन है ?"

लड़के ने आकर कहा, "दारोगा है—दामोदरसिंह।"

"ले आ ! ले आ !"

दारोगाजी भीतर आ गए।

"आज्ञा महाराज," कालू ने कहा, "आओ पहले खाना खा लो।"

दारोगाजी खाना खाने लगे। जब खा चुके तो बोले, "पंडितजी ! आपको कोतवाल साहब ने याद फरमाया है।"

"आप मुझे गिरफ्तार करेंगे ?" कालू ने पानी पीते हुए पूछा।

"जी नहीं, सिर्फ याद किया है।"

"तो चलिए।"

कोतवाल साहब ने तपाक से हाथ मिलाया। बोले, "पंडितजी, आप शरीफ

आदमी हैं। क्यों इन गुण्डों के मुंह लगते हैं?"

"जी हां," कालू बोला, "मैं भी यही सोचता हूं। मगर देखिये···" उसने पट्टी खोल दी। "कायरों ने पीछे से हमला किया और सच कहता हूं कोतवाल साहब, सालों का कोई जोड़ नहीं बचा है, जो टूटा न हो। अंग-अंग ढीले हो गए हैं।" कोतवाल साहब ठठाकर हंसे। हाथ मिले और कालू लौट आया। लौटते वक्त उसने सुना, कोतवाल साहब गरज रहे थे, "सालो, अगर शहर कोतवाल बदमाश और उल्लू का पट्ठा है, तो फिर शरीफ कौन है?"

दस कदम चला ही था कि देखा, सामने से रफीक आ रहा है। कालू हंसा और गले मिल बोला, "अरे, कल रात सो गया तू?"

रफीक की नजर पट्टी पर पड़ी। बोला, "यह क्या उस्ताद? किसने किया यह? मुझे बताओ। खून पी लूं साले का!"

इतने में एक छंटा-छंटाया गुण्डा आकर कालू से कुछ कह गया। दोनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा। रफीक ने चौंककर पूछा, "तो तुम हो क्या उस्ताद?"

कालू मुस्करा उठा।

"मैं?" वह बोला, "मैं खुफिया पुलिस का सिपाही हूं।"

"तो बताया क्यों नहीं इतने दिन तक?"

"कहना नहीं किसी से। छिपे रहने में मजा ही और है। और वैसे तो कपड़ों के नीचे सभी नंगे हैं।"

वह हंसा और रफीक भी।

गर्मी बीत चली थी। दोपहर से ही बादल छा गए। सावन की काली-काली कस्तूरी-सी घटाएं छहर उठती थीं। हरियाली यमुना की गहरे कछारों को ढंके हुए श्यामला-सी जगमगा रही थी। यमुना के गंदले गम्भीर बहते पानी में कोई बड़ी नैया खेयी जा रही थी। उसमें से मल्लाहों का करुण किन्तु भारी स्वर—

"अरे जुलुम की मस्ती छाई
दो-दो मन के बीच मनवां"

लहरियों को छूता पतवारों के कलरव में एक साम्य पैदा कर रहा था। दूर मरघट में किसी साधु की धूनी लपटें बिखराकर जल रही थी। कच्चा पथ जाकर जोगेसर महादेव के मंदिर पर ठहरता था, इसके पीछे ही बस्ती थी। सेठों की बड़ी-बड़ी हवेलियां यहां सिर उठाए खड़ी थीं। सड़क गन्दी थी। किसी के नाम पर छोड़ा गया कोई सांड़ अपनी मर्जी से मस्त कढ़ियल घूम रहा था। कोई मारवाड़िन गहनों से लदी सड़क के किनारे ही बैठी घूंघट काढ़े, मगर छाती खोले, बच्चे को दूध पिला रही थी। बनियान और धोती पहने बूरेवालों के यहां मैले-कुचैले मजदूर 'हेइसा, हेइसा' का तुमुल साम्यमय शब्द गुंजाते बूरा कूट रहे थे। आगे रंगीन लिपे घर, जिन पर लाल गेरू में 'जै शिव' और 'सदा सत्य बोलो' लिखा था, अपनी जंगलेदार गौखों की रंगीन चटक और बड़े फाटकों के कारण कुछ

विचित्र लग रहे थे। दूकानों पर बैठे आदमियों का सबसे बड़ा भाग अधिकांश में उनकी तोंद है। बगल में ही लल्लन ने पान की चलती-फिरती दूकान ठेले पर लगाई है। बांसों पर चीनी औरतों की अधनंगी तस्वीरें हैं और बीच-बीच में सिगरेट की पन्नी चिपकी है। लाल कत्थे में रंगा कपड़ा बिलकुल गीला है, जिस पर दो बड़े चमकते पीतल के भिगौने हैं। एक में केवल पानी है, दूसरे में पानी में डूबे हुए पान। यहां श्रीकृष्णजी की शेर पर बैठी तस्वीर है और चीरहरण का चित्र भद्दा और अश्लील होते हुए भी काफी सजावट के साथ लटकती लालटेन के पास ही टंगा है।

गिलौरी लेकर कालू ने कहा, "चलो बस, अब जोड़ बैठी ही होगी।"

लल्लन, आज माथे पर चन्दन लगा है जिसके, कत्थे की मोटी कूची फेरते हुए बोला, "उस्ताद, यह साले रस्ते कित्ते गन्दे हैं? कहने को सेठ है, मगर देखो तो गद्दी के साथ कैसी कीच है? अब चले क्या मौक करने?"

झेंपते हुए चन्दा ने कहा, "मौक-वौक क्या, जरा नफरी है। आज वो, विसका नाम दंगल है।"

"और तेरा,का का भी मेला है? बड़ी पिवलक है। ओफ्फो! क्या कहीं कुम्भ लगेगा?"

"बिकरी के दिन हैं उस्ताद! यह गिलौरी, वह चवन्नी?"

"अजी," लल्लन ने ठंडी सांस भरके कहा, "अब वह दिन कहां रहे? तुम्हारी जान की कसम, जब से ब्याह किया है, सत्यानास हो गया है। मगर अब वो मजे कहां कि विन दिनों जीभ लजीज चीजों से तर थी, कानों से इतर की खुशबू की गमगमाट! अपनी बाई मुन्नी। अब तो कुछ सूरत उतर गई है विसकी। अच्छी थी बिचारी। हमसे तो उसने कुछ आसा नहीं की। अजी, बखत-बखत का फेर है। बखत ही नहीं रहा तो क्या? आई-गई बात है। ब्याह हुआ था सा'ब हमारा। उस्ताज नहीं ही माने। ले गए हमें विसके घर। अरे देखा, तो उदास थी। पूछा कि तैंने क्यों अच्छी-भली सूरत पै बट्टा लगा लिया? कह तो तुझे ऐसी फिकर क्या है? अजी, एक ही बात कही विसने। बोली, 'निकाह करने वाली थी। मगर वो मुआ रुपया लेकर ही चम्पत हुआ।' मैंने कया, 'तो क्या कोई बहुत बड़ी बात है! रुपया तो हाथ का मैल है भैया! फूल क्यों मुरझा गया?' आंखें डबडबा आईं विसकी। बोली, 'तुम्हारा तो घर बस गया? अजी, म्हारे सर की कसम, मैं जानूं औरत के आंसू में कित्ता जोर होवै है? दिल टूक-टूक हो गया, चन्दा टूक-टूक! मैंने कया, 'तू भोली है, दुनिया धोखेबाज है। जो सरीफ बनकर रहे भी तो उसे कौन रहने दे? रांड रंडापा तब काटै जब रंडुआ काटन देय।' वो, बोई दिखा दूं तुम्हें, सेठ हरीमल ने रख छोड़ी है सो बेड़नी है। कोई चूं तो कर जाय? मगर भैया, जे सब रुपए का खेल है। लाला गट्टूराम ने सट्टे में हज्जारों कमाए और कल विसका नाम लछमन की जोड में गिरफ्तार कर लिया गया। इन्साफ तो दुनिया से उठ ही गया। मैंने विसे समझाया। कया, 'तू पुस्तैनी है। मैं जानूं तेरे बराबर घर की बहू-बेटी न निकलेगी, मगर अपनी-अपनी तगदीर है। तगदीर पहली चीज है, पत्थर की लकीर है। समझी? क्या

बिगड़ गया तेरा ?' मैं यों कहूं भैया, कि ये जलकटों के आंसू यों ही जायेंगे ?"

इसी समय पास में बड़ी जोर से शंखध्वनि हुई। ध्वनि उठी और गूंज हवा में रह गई। उसके बाद तुमुल कोलाहल हो उठा। अब शंखध्वनि और कोलाहल दोनों साथ-साथ उठे। सागर की लहरों-सी बहती भीड़, गर्जन-सा कोलाहल। कालू और चन्दा भीड़ में चल दिए।

अखाड़ों में जोड़ हो रहा था। कुश्ती डट रही थी। कालू ने देखा, किसी-किसी ठौर पर पढ़े-लिखे इस भीड़ में से कुश्ती की बानगी देख रहे थे। एक ओर शौकीन अफसर लोग बैठे थे।

काला पहलवान अड़ा हुआ था। पंजाबी पहलवान उछल रहा था। डटकर हो रही थी। खम ठोकने की आवाज बीच-बीच में गूंज उठती थी।

एक अफसर कह रहा था, "जिविस्को और गामा की कुश्ती के सामने यह कोई चीज नहीं। मगर साहब देखिए, गंवारों और गुण्डों में कैसी चहल-पहल है ?"

दूसरे ने कहा, "आप एक संगीत-सम्मेलन कराइए और रातभर बैठे रहिए, मजाल है कोई भूले से भी आ जाय ? हां, होने दीजिए रास या नौटंकी, फिर देखिए।"

इस बीच एक और ने कहा, "खयाल यह है गिल्ली-डण्डा, कबड्डी वगैरह को भी क्यों न बढ़ावा दिया जाय ? आखिर हैं तो यही अपने हिन्दुस्तानी खेल !"

बाबू लोग मुस्करा उठे।

काला पहलवान कुछ भी टस-से-मस नहीं हुआ था। कोलाहल बढ़ ही रहा था। 'मार दिया', 'उठा लिया', 'शाबाश' आदि की चोटभरी आवाजें गूज उठती थीं।

"काला मार लेगा।"

"पंजाबी भी कम नहीं है। जोड़ बैठी है। याद है वो हुमनबानो ? औरत थी गजब की लड़ाका। सालिगराम को वह पछाड़ा था..."

"अजी, भली कही। हमें सब खबर है। रुपया पहले दे देती थी। दूसरा आप-आप जानके पछड़ जाता था। देखा था कि नहीं, रामू ने दे मारा ? आनन-फानन, देर भी नहीं लगी। रो दी थी कि मूंड़ीकाटे, तेरे मुंह में कीड़े पड़ें..."

"रुपया भी ले गया, दे गया दगा ? भई, वह आदमी था..."

बड़ी जोर का कोलाहल उठा। पंजाबी ने काले को उठा लिया और हवा में घुमाने लगा। मगर काले ने गर्दन में अड़ान दी। पंजाबी गिरा। काले ने कैंची मारी। तपाक से बच गया। सनसनी फैल गई। पारा चढ़ने लगा। न जाने काले ने धीरे से कैसे एक बार घुटना मारा कि पंजाबी चित हो गया। कोई सैकड़ों आदमी अखाड़े में टूट पड़े। काला हाथों-हाथ उठ गया। कलक्टर साहब ने रूमाल से मुंह पोंछा। आंखों से शाबाशी दी। पुलिस ने डण्डे मारकर भीड़ को पीछे हटाया। मुदा पंजाबी देह का ही भारी-भरकम था। भला विसमें दम भी था ? काले ने चौंसठ अखाड़े किए हैं ! कोई मैदान हारा नहीं। बड़ा कप काले ने जीत लिया। अखाड़ा सर रहा।

कालू और चन्दा तितर-बितर होती भीड़ में चल दिए। यमुना के किनारे

किचर-मिचर हो गए। घाट-बेघाट घिर गए।

जुग्गी मिस्सर का जत्था तैराकी के लिए डंका बजाकर आया था। बीरू तैराक पर उस्ताद को नाज था। वह कहा करते थे, 'जो बदन जवानी में मेरा था सोई कुछ-कुछ बीरू का है। पर तब जो खूराक हम खाते थे वह इस बेचारे को कहां मिलेगी? बड़ा सा'ब था, उसके बड़ी-बड़ी मूंछें थीं। आजकल के जनखे अंग्रेजों-सा नहीं। सेठ नन्हूमल पै बड़ा महरबान। जोड़ीदार बग्गी आती थी। विस पर भारी-भरकम थे, सो सेठ विसके संग बैठा करते। हमें तो अपना बच्चा मानता था। सेठजी विसकी महर से रायसाहब हो गए। तुम्हारी कसम, जान तो हथेली पै थी। घी खाया, दूध पिया, दिनभर तूंबी पर हाथ रहे। फिर तो तूबी भी छोड़ दी थी। उधर विसेसर, इधर जोगेसर। पांच मील हैं, दो हाथ का रस्ता था। जवानी दिवानी थी। रग्गो खलीफा की सुपारी बंटी थी। खटीकों ने पगड़ी दी। रतजगा हुआ। रग्गो की टोली बड़ी गानेवाली। आया था चकमक करता वो सुनार का मनोहर। डटी रात-रात-भर। रग्गो ने जो बल खाके तान उठाई, भगत वैसी नही देखी। रग्गो मार ले गए। विन रग्गो का हम पै साया था। घुटती थी जब दूधिया तब हमारा अलग हिस्सा। हम विनके खामुलखामों में थे। अब देखें, बीरू कुछ नाम करै!"

बीरू का बदन नजर लग जाय ऐसा था। दूधवाले भोलू की बहू घूघट में से उसे देख मुस्करा उठती थी। और एक दिन बोली, 'बड़ा ठोम दूध पिया है तुमने लालाजी?' और हंसी। बीरू भोला-भाला, कुछ नही समझा। उस्ताद से आकर कहा तो उस्ताद सोचते रहे, फिर गरज उठे, "खबरदार, जो आज से वहां गया! इन बच्चों के-से पुट्ठों पर जालिम निगाह पड़ गई होगी चुड़ैल की। अबे देख, यह बदन भी ऐसे ही उजड़ा था। हमने अपने उस्ताद की नही मानी। पठान के मारे सिलाजीत धरे रह गए। बरबाद हो जाय ये सोने की काया। बदन का राजा बना रहे। बेटा, देख, उसकी बातों में न आइयो। मेरी बात मान, तेरे अखाड़े की मिट्टी चन्दन हो जायेगी। मगर भइया, ये जवानी है, बड़ों की कहन पै न चलोगे तो बसे-बसाए राज उजड़ जायेंगे।"

और दूसरे दिन सुबह उठते ही उस्ताद ने बीरू का लंगोट देखा और पीठ ठोंक-कर बोले, "बेटा, मेरा असीरबाद है। तू फतह करेगा। यह माया मृगनैनी है। मगर बचा रह। जाल है वो। बंगाले का जादूगर, जो लगड़ी सांड़नी पै आया था, वह तक मार दिया था आनन्दी ने। तू तो अभी बच्चा है। कहीं किसी डायन की बिसैली आँख न पड़ जाय तुझ पर!" और अपने हाथ से उसके गले में गंडा बांधा था जिस पर जलालबुखारी के बूढ़े मजाविर ने तीन फूंक मारी थी।

कालू उत्सुक था। आज उसी बीरू की बानगी देखनी थी। कल ही उस्ताद के एक नए पट्ठे ने वहां मरघट के पास जो छतरी है उसके तले बैठने वाली पागल बुढ़िया के हाथ से छुआ तावीज उस के हाथ पर बांधा था। उस छतरी के पास कोई नहीं जा सकता। मट्टो पहलवान ऐंठा था। जरा-जरा ही भूत ने छोड़ा। हरखू सुन आया था अपने कानों से, खम ठोंककर कोई टूट पड़ा। अब मट्टो हवा में हाथ-पैर चला रहे हैं। भूत ने

कहा, "जा, भाग जा, वर्ना तेरी भी एड़ियां उल्टी कर दूंगा।"

मट्टो दिलेर था। 'हनुमान चालीसा' का जप करता-करता भागा। पुरानी छतरी है। अंग्रेजी में उस पर कुछ लिखा भी है। एक बार दो आदमी पकड़े गए, पत्थर निकालते। कहते हैं, सरकार ने उन पर जुर्माना किया। बुढ़िया करामाती है। बैठी रहती है वहीं। और कोई पास नहीं जा सकता, ईंटों के मारे सिर फोड़ दे। कइयों की खोपड़ी तड़ाक दी। बीरू की तो तकदीर है जो बिसके हाथ का छुआ मिला। कहा था, "अब ले जा, देख, कहीं महरी का साया न पड़े।"

पट्ठे ने गर्व से कहा, "मैंने बचाके बांधा है।"

उस्ताद ने पीठ ठोंकी।

"नाम नहीं डूबे, समझे बेटा, जान चली जाय।" बीरू चुप रहा, मगर सीना गज-भर का लग रहा था। चेलों ने आंख फाड़कर देखा, मगर उस्ताद ने छाती चूमी और कहा, 'यों न देखो, कहीं मेरे छौने को तुम्हारी कड़ी नजर न लग जाय।"

उधर से आवाज आई, "नाईपुर के केड़े का भला।" इधर से पुकार हुई, "उस्ताद के अखाड़े का पूरा।" जोड़ बैठी। इधर बीरू, उधर रंभू। वह भी सुनी देह का जवान। तूंबियों की भीड़ घिरी। दोनों ने पहले अपने-अपने उस्तादों के चरण छुए और पानी में दोनों ने हाथ मिलाए और तैरना शुरू किया। बड़ी भारी भीड़ थी। कालू देखता रहा। चन्दा भीड़ के कारण एक पेड़ पर चढ़ गया था। मांझियों का गीत उठता रहा। बीरू तीर-सा लग रहा था। वह भरी जमना, पिछड़ गया रंभू। उस्ताद ने आंखों को हथेली से ढांककर, फिर माथे पर धरकर देखा। पट्ठों से कहा, "लगे आवाज।" और पट्ठे चिल्लाए, "उस्ताद के अखाड़े का पूरा।" दूसरी आवाज उठी, 'जै जमना माता की।

बीरू लौट रहा था। अखाड़े की जीत रही। बीरू के कन्धों को चूमा। धोती पहनाकर बीरू के लंगोट को उतरवाया और खुद निचोड़कर एक पट्ठे के कन्धे पर धरा। फतह इनकी रही। उस्ताद का नाम हो गया। नाईपुरवालों का निशान छीन लिया। गजरों में लदे, ढोल-ताशों के तुमुल रव में उस्ताद और बीरू का प्रायः एक जुलूस-सा लौटने लगा।

कालू भी चल पड़ा। गजब का शोर था। पूंगीवाला, फिरकी घुमाता, पी-पी-पी मचा रहा था। और पापड़वाला मैले-कुचैले कपड़े पहने 'पापड़वाला, पापड़वालाऽऽ' चीख रहा था। बीरू को पट्ठे कन्धों पर उठाए लिए जा रहे थे।

यह सर्वहारा का आनन्द-दिवस था। कालू और चन्दा प्रसन्नमन लौट रहे थे। चन्दा बराबर बीरू की प्रशंसा के पुल बांध रहा था। कालू हर्षित-सा सुनता रहा।

भटियारखाने की भीतरी कोठरी में एक मन्दा दिया जल रहा था। उसकी लौ हिल रही थी और दीवारों पर सामने बैठे हुओं की वीभत्स छाया खेल रही थी। कालू के सामने बोतल रखी था। वह कह रहा था, "ग्वालियर के भयानक खड्ड, जिसमें फौजों की फौजें छिप सकती हैं विसमें रहता था वह डाकू।"

रफीक ने पूछा, "वही पटियालेवाले बीरू-मलारू ?"

"वोई," कालू ने कहा, "वोई। सरकार ने एक-एक हजार का इनाम निकाला था। फिर दो किया फिर तीन किया। पांच खून किए थे बीरू ने, सात मलारू ने। बस बनियों को लूटना, गरीबों को बांटना। बेण्या रियासत है छोटी-सी, वां का साहू एक मारवाड़ी है, विसै लूटा। गांव के ठाकुरों की जमीन कर्ज में दबा-दबाकर, कलट्टर को रिश्वत दे-देकर साह सिरमौर हो गया था विसका नाम। दो दिन पहले गंगू ने खबर दी। रुपया-गहना नटनी के कुएं पर पहुंचा देना, नही तो गांव आग की भट्टी हो जायेगा। साह ने सुना, सुन के हंसा। कोतवाल को तार दिया। सिपाही तैनात हुए। रात के बारह-एक तक बन्दूक भर-भर लोग जागते, फिर दूसरा पहरा लगता। अबके किसना जाट ने कहा आकर कि 'साहजी। हाते मे घुसकर जमाई राजा पैर धुलायेंगे। तैयार रहना।' जितनी देर मे साह संभले, सिर से उतार ले गया पगड़ी जो साह की दो पुश्तों की इज्जत थी। हुई रात। उस दिन सिर्फ बीरू था और आठ डाकू और थे। एक-एक आदमी को बांध दिया। कोतवाल डर के मारे पखाने में घुस गया। साह भुस मे छिपे थे। साह की लुगाई डर के मारे दौड़ी। बीरू ने पहचाना। यही वह छोकरी थी जो साह बन्दूक के जोर से कास्तकार के घर मे दिन-दहाड़े गांव के देखते-देखते पालकी में ले आए थे। बीरू ने कहा, 'राड, रोती क्यों है ? कौन तुझे छुए है ?' एक औरत नही छुई। जो लुगाइयां गहने पहने थीं, वे पहने रहने दिए। मगर बाकी एक-एक चीज सांड़नी पै लदवाके ले गए। 'जै भवानी की !' और बन्दूक धड़ाधड़ धाय-धांय। विस दिन बीरू ने तीन खून किए।"

सुननेवालों के चेहरों पर आतंक छाया हुआ था। रफीक ने कहा, "ओफ्फो ! तब तो बिलकुल शेर का बच्चा था।"

सुलेमान बोल उठा, "तांतिया और सुल्ताना का-सा हो गया ?"

कालू बोला, "मगर क्या दिल था विसका ! मेरी लगी ड्यूटी कि विसे गिरफ्तार किया जाय। सुनते ही कान खड़े हो गए। मगर सहर मे तुम्हारी हमने भी कुछ बेकार जिन्दगी का हुनर नही खोया। बंटा गांव में हम भी विन्ही मे जा मिले। मलारू ने आंखों को देखकर कहा, 'तेरी आंखों मे डोरा नहीं है। खा भवानी की कसम कि मां-बहनों पै निगाह न डालेगा। अमीर से लूटैगा, एक चौथाई गिरोह का, एक चौथाई गरीबों को और बाकी अपने लिए रखेगा। और जिस दिन तू दगा देगा, सजा पायेगा।' जे कहकै मुझ पै विनने बन्दूक तान दी। हिम्मत करके मैंने कसम खाई। मगर मैं तो पकड़वाने गया था विसे। बड़े-बड़े डाके किए। एक डरावने नाले के नीचे सुरंग खोद के विसमे उसने हथियार रखे थे। एक बार मलारू ने तय किया, कण्ठामल के वां चलेंगे। विसकी आलीशान कोठी थी। बगल में बड़ का एक बड़ा पेड़ था। विस पै एक झण्डा था। विसे मैंने रात ही चढ़के दाएं हाथ को झुका दिया।

रफीक ने कहा, "फिर ?"

कालू कहता गया, "आलीशान हवेली पै रात को बारह बजे शंख बजा। 'भवानी मैया की जै' से गांव जाग गया। और फिर चली गोलियां। पुलिस ने घेरा डाल दिया।

अंग्रेज अफसर था। सात सौ बन्दूकदार सिपाही थे। ढाई घन्टे धड़ाधड़ गोलियां चलीं। एक के बाद एक डाकू गिरता गया। कान बहरे हो-हो जाते थे। औरतों और बच्चों की दहशत-भरी आवाज दिल दहला रही थी। गांव के लोग छिपे पड़े थे। बढ़ने की हिम्मत नहीं पड़ती थी विनकी। मैंने देखा, सलारू चिल्लाया, 'बीरू ! मां भवानी की···!' दम बचे डाकुओं ने आवाज उठाई, 'जय !' बीरू ने कहा, 'यों नहीं। अब जिन्दे नहीं पकड़े जायेंगे।' सलारू ने कहा, 'लगे !' फिर गोलियां चलीं। सात बचे, फिर तीन, फिर सलारू और बीरू बस दो रह गए। धांय-धांय में सिपाही गोलियां चलाते ऊपर चढ़ पड़े। सलारू ने कहा, 'मां भवानी, जो कमी रह गई वो क्षमा करियो।' बीरू ने सलारू के, सलारू ने बीरू के सीने से अपनी-अपनी बन्दूक साधकर एक-दूसरे की तरफ देखा और मुस्कराए। अंग्रेज अफसर ने देखा, दोनों बन्दूकें एक साथ चलीं और एक धांय के साथ दोनों कटे पेड़ की तरह गिर गए। मेरी आंखों में आंसू आ गए। पुआल में छिपा मैं देख रहा था। बाहर निकला। गोरे को सलाम दी। बोला, " 'हम टुमसे बहौट खुश है।' "

वह कुछ देर रुका और फिर कहने लगा, "सरकार ने विस गोरे को एस० पी० बना दिया।"

रफीक ने जल्दी से पूछा, "क्या चीज ? क्या बना दिया ?"

"अबे, सुप्रिनटेंड; समझा ? कोतवाल को बादशाह का बिल्ला मिला। तीन-तीन हजार का इनाम सिपाहियों में बांटा गया और कालू पंडत को क्या मिला कि तुम्हारा काम तो अच्छा है, मगर ऐनियात नहीं दिखाया तुमने। डाकू पकड़ने में सिपाही बहुत मारे गए।"

कालू ने देखा, सब उदास बैठे थे। हमीदा बोला, "तुमने दगा की विस के साथ ? ऐसे बहादुर को पकड़वा दिया ? रोटी तुम्हें नहीं मिल रई थी कि विन तीन हज्जार पै रपट पड़े ? तुम अल्ला को भूल गए जो ऊपर बैठ कर इन्साफ करता है।"

रफीक हंसा, "खुदा-वुदा नहीं। लेकिन तुमने ऐसे दिलेर को मरवा दिया ! मरते दम तक वे मुस्कराए थे ?"

कालू से सिर झुकाकर उत्तर दिया, "हां यार, वे तो मरने के बाद भी ऐसे डरा-वने निडर थे कि मैं तो देखके कांप गया। और नतीजा यह निकला कि कालू पंडत ने स्तीफा दे दिया और वो मंजूर भी हो गया है। अब कालू सरकारी नौकर नहो, तुम जैसा ही हो गया है।"

बात खत्म होने के साथ ही बोतल खोलनी शुरू कर दी। आगे बढ़कर सुलेमान रोटियां रख गया। कालू ने रोटी का कौर तोड़कर कहा, "पहले हिन्दू-मुस्लिम झगड़े में हम थोड़ा-सा पैसा पाकर लड़े थे। डाकू का धरम भवानी है, रफीक ! मैं हिन्दू, तू मुसलमान, मगर दिल एक है तो आ जा ··"

रफीक बढ़कर खाने लगा। हमीदा बोतल से मुंह हटाकर बीड़ी का लच्छेदार धुआं फेंक रह था। छल्ले उस धुंधले अंधेरे में बनकर घूमते और फिर अपने आप कांपते-

मंडराते हुए फैल जाते।

झाड़ियों से घिरी चामड़, जिसमें एक कोने में कुछ कोठरियां थीं। उन्हीं में से एक में दांव लग रहे थे। कोठरी में सीलन थी। एक दरवाजा था जो भिड़ा हुआ था। बीच में दरी बिछी हुई थी। कालू ने कुछ वजनी गालियां देते हुए कौड़ियां फेंकी और बोल उठा, "ले बेट्टा, पौ!"

दूसरी ओर वाले ने कहा, "पंजतन।"

पैर के नीचे से दबे निकालकर सामने सरका दिए। पक्के हाथ ने उन्हें चुपचाप उठाया और कालू के पैर के नीचे दबा दिया। सुलही हो रही थी। नाल का डिब्बा पास में रखा था।

दरवाजे के पास उस्ताद (तैराक) बैठे सुलफे का दम लगा रहे थे। उनकी चिलम में से फूंक खिंचते वक्त एक झल्ल निकल आती थी और फिर उसके बुझ जाने पर धुआं उनकी नाक, मुंह सबमें एक साथ निकलने लगता था। उस्ताद कुछ देर खांसते थे और फिर आंखों में आए आंसू धोती उठाकर पोंछ लेते जिससे उनकी सूखी जांघें दिखाई दे जातीं। उनकी बगल में एक सिपाही बैठा था जो अपनी अलग बीड़ी सुलगाकर पी रहा था। नशा उसे पसन्द नहीं था। उस्ताद कहने लगे, "खेलते काप्तैन तो हम भी दिखाते हाथ।"

भीतर से आवाज आई, "कबूतर की आंख।" और किसी ने किसी को गन्दी गालियां देकर कहा, "अट्ठे ले दो।" और अंटी में कुछ लगाते हुए हमीदा बाहर आ गया। था चामड़ में, किन्तु वह समाज की उस श्रेणी में थे जहां सस्ते और हानिकारक मनोरंजन में भेदों की समाप्ति हो जाती है।

हमीदा ने बढ़कर सिपाही से कहा, "कहो जमादार, क्या हुक्म है? बोलो।" और चार आने चुपके से उसकी जेब में डाल दिए। वह कहता गया, "तुम्हारे ठाट हैं सा'ब! आफत तो हमारी है। सरकारी आदमी हो। दस पै कब्जा है। बीस पै जोर है।"

चन्दा बैठा देख रहा था। अब के छक्के पर उसने जोर मारा। निकाली अंटी से दुअन्नी। उसने झटके से हाथ बढ़ाया। अट्ठा था, हार बैठा।

उस्ताद की आंखों पर एक चमक-सी खेल गई।

"अबे तो," सिपाही ने कहा, "तुझे क्या मिर्चें लग रही है? ले यह बीड़ी, ले न! लगा न दो दम, वर्ना उस्ताद की चिलम तो है ही।"

उस्ताद ने कहा, "जे तो अपनी-अपनी किस्मत है। हां-हां, ले चिलम···"

हमीदा चिलम में दम मारने लगा। भीतर से किसी ने दरवाजा खोल दिया। सिपाही ने घूमकर देखा और बोला, "अबे बोल दे छक्का।"

"छक्का!" आवाज हुई और "वाह जमादार, मार लिया. क्या कहने हैं! यह दांव पूरा तुम्हारा रहा।"

जमादार ने हंसते-हंसते अपनी मेहनत का पैसा जेब में सरका लिया। राख में से

धुआं उठने लगा। कालू ने कहा, "अबे, देख तो विधर क्या हो रहा है ?"

एक छोटा-सा लौंडा आंच ठीक करने लगा। चिलम-बीड़ी की जरूरतों के लिए एक कण्डा राख मे दबा रखा था। उसी में से धुआं उठ रहा था।

कालू ने लौंडे के हाथ पर चार पैसे रख दिए। लौंडा लपककर बाहर निकला। सिपाही बोला, "अबे, किधर चला ?"

उस्ताद ने तिरछी नजरों में सिपाही की बेडोरा आंखों को देखा और एकदम रुख बदलकर बोले, "अबे लौंडे, किधर ? इधर आ, जमादार को सलाम कर।"

लड़का पास आ गया। उसकी मुट्ठी में पैसे थे। उस्ताद ने मुट्ठी खोलकर एक पैसा निकालकर कहा, "जा, जमादार के लिए डबल का पान तो लगवा ला।"

जमादार ने कहा, "तमाकू भी अलग ले आइयो।"

लड़के ने जमादार के सिर पर खून के रंग की लाल पगड़ी देखी और वह धीरे-धीरे चला गया।

उस्ताद की चिलम में दम मारते-मारते हमीदा कहने लगा, "उस्ताद ! एक बारी चुन्ननखां के यां वही मुन्नी के अट्टे के पिछवाड़े खेल हुआ था। विसमें एक बबुआ आ गया। जे कालू ही ले आया था। कया था, छापेखाने में काम करते है। फिर मेरे कान में कया कि इसकी जेब में पैंतीस रुपये हैं। तब क्या था ! चिड़िया देखके बन्दा आगू खिसक के बैठा। साला सौक करने चला था। रफीक को भेज के मुन्नी को बुलवाया और विसकी बगल में बिठाल दिया। फिर क्या था, पैंतीस के पैंतीसों हार गया। बड़ा रोया। तब पाँच रुपये वापिस दिए। विन दिनों जे ही जमादार थे विस हल्के में। हम तो इन्ही की महर पै खेले हैं। और कसम से इनके हल्के बाहर कदी गए हों तो सूअर खाया हो मैंने। चार रुपए इन्हीं की भेंट दी। लेकिन तकदीर तो विसकी अड़ियल थी। दरवाजे के बाहर निकलते ही किसी ने विसकी जेब ही काट ली। तब मुन्नी ने विसे दो-तीन रुपए दिए। अजी, बड़ी अच्छी औरत है।"

"बड़ी !" सिपाही ने आंखें नटेरकर कहा, "हमें तो उसने गैर नही समझा। और भाई, कौन नही लेता ? ऐसा पारसा कौन है, बोलो ? सेठ रतनचन्द, रामलाल, हरीदास, तीन अड्डे तो मुझे खबर हैं हज्जारों का अलदा-बलदा है। नाल भी गड़ती है, पर कोई पकड़ा नही जाता। क्यों ? दो-दो हज्जार कोतवाल सा'ब के हर महीने बिना मांगे पहुंच जाते है। उन्हें क्या कमी है ? हमारी तो तनखा ही कम है। बीवी है, बच्चे है, पूरा कैसे पड़े ? यों तुम्हारा भी सौक पूरा हो जाता है। हमें क्या गरज कि किसी से कुछ कहने जाएं ?"

उस्ताद ने कहा, "ठीक है, ठीक है।"

इतने में लौंडा पान लेकर लौट आया। सिपाही ने पान खा लिया और पीले दातों से उसे भद्दी तरह से चबाने लगा।

उस्ताद कहने लगे, "मांगपत्ता हमने अखाड़े में खूब खेली। जब शुबहा हुआ, एक कोने में पत्ते सब मिट्टी के नीचे दबा दिए और लगे जोर करने। अजी भैया, कोई फल्लास

खेला है तुममें से ? मैंने कया, सेठ नन्हूमल के तल्ले हम खेले कि साली कोई डर की बात नहीं। वहां कौन आ सकै था ? बड़ी मुश्किलों से सीखा था वो खेल। तुम क्या सीख सको विसै ? अंग्रेजी का खेल है। हमारे सेठ को विस गोरे ने एक और अंग्रेजी का जूआ सिखाया था, मगर सेठजी विसै खुलेआम खेलैं थे, कोई डर-खौफ का नामोनिशान नही।"

हमीदा ने टोका, "जूआ न होगा।"

"अजी !" उस्ताद चिढ़े-से बोले, "कौल-कौल कहें थे। दांव भी लगें थे, और विसकी ऐसी-तैसी, मुझे ऐसा पत्थर-अकल समझ लिया तुमने कि जूआ भी नही पहचान सकूंगा ?"

"नही, नही, जे मतलब नही है मेरा उस्ताद। तुम तो खिचने लगे और लो चिलम पियो," और चिलम बढ़ाकर हमीदा हंसने लगा। सिपाही ने फिर मुड़कर देखा और कहा "हमीदा, यार बीड़ी पिलवा।"

"अभी लो जमादार," लपककर भीतर गया, और रफीक के नाड़े में बंधा बटुआ खींचकर बीड़ी निकाली, हालांकि बिना बोले, बाएं हाथ से रफीक कान मे लगी बीड़ी की तरफ इशारा कर रहा था। बाहर आकर हमीदा ने कहा, "जमादार, आंच पै सुलगा लाऊं ?"

जमादार इस समय लाल पगड़ी उतार विश्राम के लिए टांग फैला चुका था। उसकी चुटिया दिखाई दे रही थी। बोला, "हां-हां, कसम से दियासलाई है मेरे पास, ले आओ, ले आओ, तुमसे जलेगी नही ठीक से।" उस्ताद मुस्कराए, जैसे चलो, कम-से-कम इतना तो है। हमीदा समझ गया। समझदार खुद सुलगाकर बीड़ी पीने लगा।

कालू ने आखिर आवाज दी, "पौ बेट्टा !" और फिर पैसे गिनता हुआ उठा। कहता जा रहा था, "अबे, इन हाथों मे हमने बड़े-बड़े करतब किए हैं। बकरियां नहीं चराई हैं। समझे ? पहले टांगें चूमो हमारी, तब सीखोगे, चलै है बे चन्दा ? रफीक ! उठ बे !"

चन्दा और रफीक उठ खड़े हुए और तीनों सिपाही के पास खड़े हुए कालू ने बगलों मे झांककर कहा, "कसम से जमादार, कुछ ठोस रकम हाथ न लगने पाई। ले अबके तो रहम कर," कहकर पांच का नोट बढ़ाया। सिपाही पुराना घाघ था। हंसके बोला, "पडत, तू बडा फर्जी है।"

"नही, बस जमादार, अब न बोलना, और तू तो अपना पुराना साथी है," और तीन रुपए और बढ़ा दिए।

"क्यों बे चन्दा, कहां चला ?" सिपाही ने कहा।

कालू हंस पड़ा, "साला बुढ़िया से तेरह लाया था, सब गंवा दिए। खेलता है, जानै कुछ नही। यहां तीन के तेरह कर दें···"

उस्ताद हंसे। बोले, "तैंने बड़े मठा दुघारे है ?"

सब ठठाकर हंस पड़े। भीतर अभी जूआ हो रहा था। अब्दुल की आवाज आ रही थी, "अट्ठा।"

"नहीं है।"

"नहीं कैसे है, साले ! छूके उल्टी कर दी कौड़ी ! तेरी···"

फिर उधर से कुछ भारी-भरकम चिढ़ानेवाली गालियां चलीं जिनका सम्बन्ध अधिकांश एक दूसरे के मां-बाप से था और खेल उठ गया। बड़ा शोर मचाते हुए जुआरी लड़ते हुए बाहर निकल आए। उस्ताद ने बीच-बचाव किया, मगर नगाड़े की आवाज में तूती की कौन सुनता ? अब उस्ताद बूढ़े हो गए थे। उनमें जोर न रहा था। सामने बड़े नाले को मेहतर साफ कर रहे थे। एक आदमी सड़ी कीचड़ को निकाल-निकालकर बाहर इकट्ठा करता जा रहा था। उनमें से किसीने मुड़कर भी न देखा। वे सब जानते थे। भीड़ आती देखकर सिपाही सिर पर पगड़ी धरके चामड़ के पीछे की तरफ चल दिया, उधर ही जिधर कुम्हारों के छोटे-छोटे कुल्हड़ और मटकों से भरे घर थे और गधों की बेहद लीद ने रास्ता गन्दा कर रखा था।

जब वह चला गया, अब्दुल ने कहा, "खूब छकाया सालों को। नहीं तो उल्टे उस्तरे से मूड़ देता।'

सब ठठाकर हंस पड़े।

कालू, चन्दा और रफीक चल पड़े। रास्ते में कोई जवान औरत घूंघट काढ़े लोटा लिए शायद दिशा-मैदान को जा रही थी। तीनों ने उसे एक साथ देखा। तीनों पर शैतानी नशा छा रहा था। कालू की तान छिड़ उठी—

"सैंया बरजोरी···"

और फिर स्वर ऊंचा उठता गया—

"छिपाऊं कहां जोबना···"

औरत ने मुड़कर चुपचाप छिपी नजरों से देखा और उसकी चाल में एक नया उत्ताप, नई गति, नई थिरकन आ गई जैसे गड्ढे में भरे गन्दे पानी में कंकड़ डालते ही लहरियां हाथ पसारकर कांप उठती हैं, जैसे वे गोल-गोल चक्करदार लहरें किनारा तोड़ देना चाहती हैं।

कालू ने एकदम आवाज दी, "वह मारा !"

रफीक "शाबाश ! शाबाश !" करके दाद देने लगा।

तीनों चले जा रहे थे।

आस्मान में काली घटाएं घुमड़ रही थी। सुदूर पेड़ पर मनोहर छाया फरफरा रही थी। उस समस्त वातावरण ने अपरूप ढंग से उनको अधिक चंचल और सतृष्ण बना दिया। हृदय में पशु की-सी वासना भर गई, जैसे जांघ से जांघ रगड़ने में शरीर में एक पाशविक वासना, एक भयंकर ताप छा जाता है जो शायद ही कुछ सोच पाता हो !

लकड़ी के काले मैले अनगढ़-से दरवाजे के सामने एक हट्टा-कट्टा तेलिया कुम्मैद गुण्डा बैठा-बैठा मैले दांतों से पान चबा रहा था। उसके दांतों के बीच की जगह काली और लाल थी। मौके पर वही पैसे लेता और दंगा-फसाद होने पर अपने आप जैसा सूझता वैसा ही इन्साफ करता। भीतर एक कोठरी थी, उसके सामने एक दालान था,

जिसके दो तरफ दो बरामदे थे और एक कोठा था। कोठे में बड़े-बड़े मटकों और हंडियों में ताड़ी भरी धरी थी। उसके सामने ही एक पत्थर की पटिया के पीछे से एक मैली दाढ़ी वाला व्यक्ति पूछता था, "क्या लोगे ?"

गाहक कहता, "अद्धा।"

एक स्याही के रंग का खूंखार आदमी हंड़िया उठाता और बाहर हाथ बढ़ा देता। ताड़ी की बदबू से अंधकार की धूमिल छाया में गन्दगी तीव्र हो उठती, किन्तु उन सबको आदत थी, जैसे ब्राह्मण को गोमूत्र पीने की होती है। हल्ला-गुल्ला साधारण बात थी। बीच में कुछ बेड़नियों का जमघट था। कालू, रफीक और चन्दा जब पहुंचे तब ताड़ी का बाजार गर्म था। कालू पटिया के पास चला गया और पैसे निकालकर बोला, "अद्धा !"

मैली दाढ़ीवाले की आंखों में परिचय का भाव आ गया और कठोरता में सौम्यता की एक तरल चमक कांप उठी।

"आहा ! कालू बर्खुदार हैं ! इधर कहां थे इतने दिनों से ?"

कालू चीखा, "अबे, उठा साले हंड़िया। बढ़ा दे ! बड़ा आया पूछनेवाला। अपनी घर में जाकर पूछियो। समझा ?"

दाढ़ीवाला ठठाकर हंस पड़ा। बोला, "ताज्जुब है, वहां से लौट आए ? बेट्टा ! सच कह, किसकी शागिर्दी में था ?"

कालू को एक स्याह हाथ में हंड़िया अपनी ओर आती दिखाई दी।

कालू ने कहा, "अच्छा ? कोयला छाप भी मौजूद हैं ? कहो माशूक, अच्छे तो हो ?"

काला अहमद हंसा। उसके दांत बिजली की तरह मुंह में चमक उठे। कालू तपाक से बोला, "बस, तेरी एक अदा यही तो है। एक बार कह दे कि हमने तेरे घर छोड़ फकीर होने की खबर सुन ली है।"

अहमद जोर से हंस पड़ा। बोला, "तेरे सात खून माफ है।"

"बस, यही चाहिए ! हम तो टुकड़ों पर पलनेवाले गुलाम।"

पीछे से रेला आया। कालू हाथ में हंड़िया लिए मुश्किल से पटिया से टकराता-टकराता बचा। गालियां देता हुआ जब वह बाहर निकला, चन्दा हंसता हुआ उसके पास आया और बोला, "अबे, चल। तुझे मजा दिखाऊं।"

दोनों चलकर बरामदे में पहुंचे। वहां से देखने लगे। एक आदमी मुंह के बल नशे में पड़ा था। उसकी अंटी खुली पड़ी थी। उसकी बची शराब रफीक पीकर झूम रहा था और एक बेड़नी के गले में हाथ डाल रखा था। नशा चढ़ आया था और हाथ कांप रहे थे। कान की बीड़ी टेढ़ी होकर खिसक रही थी। बेड़नी गा रही थी। उसका स्वर फटा था, गुफाओं के पत्थरों-सा अनगढ़, कहीं-कहीं खुरदुरा। कानों पर तेल से बेहद चुपड़े चिकने हुए बाल, जिनमें गटापार्चे की पिनें, कानों में बालियां, नाक में चौड़े फूल का लौंग, सस्ती कुर्ती, सस्ती रेशमी साड़ी, पैरों में छम-छम चांदी के गहने, हाथों में बजने

वाली चूड़ियां, पैरों मे घुंघरू, माथे पर सुहाग-बिन्दी, हाथ-पैरों पर मेंहदी, होंठों पर आलता और आंखों में कज्जल; उसके बाद वह छका और थका जोबन, अदा, नजाकत का स्वांग, नजर का तीर···

रफीक झूम रहा था। उसने उसका हाथ पकड़ लिया और लड़खड़ाता-सा बोला, "माड्डाला, माड्डाला···" बेड़नी हंस दी और गाने लगी। न जाने रफीक मे क्या धुन जगी कि वह भी गाने लगा—

"जानी तेरा राज है,
बन्दा गुलाम है।"

बेड़नी मुस्कराई और उससे चिपटकर बैठ गई। वह गा रही थी और अजीब कला से अपनी कमर बैठे ही बैठे लट्टू की तरह चला रही थी। रफीक भी सुर में सुर मिलाने लगा। बेड़नी ने उसकी जेब में चुपचाप अपना तेज हाथ डाला और टटोलने पर जब उसे एक पैसा न मिला तो तपाक से खड़ी हो, आंख नचाकर बोली, "ऐ चल मर्दुए! अपना बाप फूंकके आया है यहां!'

लेकिन रफीक नशे में था, वह गाता रहा।

इसी समय एक औरत बड़ी जोर से चीख उठी। कुछ लोग इकट्ठे हो गए। और एक झूमते शराबी की तरफ दिखाकर चिल्लाने लगी, "मुआ! अपनी अम्मा समझकर आया था यहां? मुंडीकाटे!' और शराबी बहुत ही गन्दी गालियां दे रहा था। उसके मुंह से बेहद बदबू सड़ान-सी भर रही थी। लोग हंसने लगे। वह रोने लगी। कोलाहल बहुत बढ़ गया। तब दरवाजे पर बैठा हट्टा-कट्टा व्यक्ति वहां आया। उसे देखकर औरत और जोर से रोने लगी। लोगों में एक हैरत-सी पैदा हो गई। गुण्डा आगे बढ़ा। उसने कठोर स्वर में पूछा, "क्या है अश्वा?"

अश्वा ने अपना हाथ उसकी तरफ कर दिया। उस पर इतनी जोर से नोंचने का निशान था कि नील पड़ गया था। गुण्डे को आव सूझा न ताव। उसने लपककर पड़े हुए शराबी के दो करारी लातें मार दीं। शराबी कराहकर झूम गया। दरवाजे पर भीड़ इकट्ठी हो गई थी। गुण्डा लौट गया और एक शराबी उस पहले के पास से पड़ा एक जूता उठाकर उसकी चांद पर धीरे-धीरे मारने लगा। थोड़ी देर में दोनों एक दूसरे से भिड़े बेहोश हो गए।

कालू और चन्दा बैठ गए और पीने लगे। चन्दा पर नशा बहुत जल्दी चढ़ गया। वह एक बेड़नी को देखकर गालियां देने लगा। उसने कोई बुरा न माना, उल्टे मुस्कराकर कहा, "चल मुए!"

चन्दा और बकने लगा। वह वापस आ गई। कालू ने उसे अपने पास खींच लिया। चन्दा बोला, "इ-इधर आ···मे-मेरे पास···"

कालू ने खींचकर उसके एक चपत दी और चन्दा रोने लगा, "हाय मुझे मार डाला, मुझे मार डाला···"

कालू ने बेड़नी को मदमाती आंखों से देखा। औरत ने दिल ही दिल में महसूस

किया कि है कोई भारी पत्थर, यों हा न बह सकेगा। हटकर बैठ गई। कालू पर नशा कम चढता था, क्योंकि उसे पीने की बहुत आदत थी। आबकारी के सिपाहियों से उसकी दोस्ती थी। वे ठर्रे की बोतल खोलते थे, यह चुल्लू से पी जाता था।

कालू ने कुल्हड़ मे मुंह लगाया और अपनी अंटी से अठन्नी निकालकर उसके सामने धर दी। वह मुस्कराई और फिर पास आ गई। कालू ने उसके मुंह मे कुल्हड़ लगा दिया। औरत ने समझा, अच्छा आसामी है, ऐसी चिड़िया से बिगाड़ नही करनी चाहिए। वह धीरे से सब पी गई। उस पर पीते ही नशा चढ़ा। पुरानी ताड़ी थी। वह झूमने लगी और उसने कालू के गले मे हाथ डाल दिए। कालू मुस्कराया। एक कुल्हड़ और भरा। आधा खुद पिया, आधा उसे पिला दिया। औरत बेहोश हो गई। कालू ने उसे बेहोश चन्दा के ऊपर ढकेल दिया। दोनों बोरों की तरह पड़े थे। चन्दा के मुह मे झाग निकल रहे थे। उसकी आंखे ऐसे खुली थी जैसे किसी प्यासे कुत्ते की। कालू ने फुर्ती से उसके कपड़ों को टटोला। अचानक उसे ध्यान आया। उसने जल्दी मे उसकी अंटी टटोली, झटका दिया। साड़ी खुल गई। सब पैसे निकल आए। कोई चार रुपये की रकम थी। कालू ने उसे अंटी में लगाया और दूसरी तरफ गानेवाले शराबियों की टोली मे खिसक गया। वहां कुछ मजदूर और रिक्शा खीचनेवाले बैठे पी रहे थे।

शराब मन की वासना बढ़ाती है, स्वभाव को उद्दंड बनाती है, किन्तु क्रियाशक्ति को छीन लेना उसका पहला काम है। रिक्शावालों के बदन मे पसीने की बेहद बू आ रही थी। क्षणभर कालू का जी मिचला गया। कालू भी गाने लगा। अपनी-अपनी हंड़ियां पकड़े सब झूम रहे थे। जिसकी जो तबीयत आती थी, बकने लगता था। एक रिक्शावाले ने दमे के मरीज की तरह खांसा और अरररर करके बड़ी जोर से कै की। उसकी बदबू से सबका सिर चक्कर खाने लगा। कै करनेवाला थक गया और उस जोर के लगने से उसे एक चक्कर-सा आया जिससे उसने कै पर ही अपना सिर टेक दिया। मक्खियां उसके चारों ओर भिनभिनाती रहीं। कुछ देर बाद ही इधर-उधर दो-एक लालटेनें जला दी गईं। एक बेड़नी ने देखा कि दो आदमी बेहोश पड़े हैं—एक मर्द, एक औरत। औरत को बेहोश देखकर उसे कुतूहल हुआ। उसने गौर से देखा। स्त्री प्राय: नंगी थी। आफतों से बचने को बेड़नी चुपचाप खिसक गई और भीड़ में जाकर नाचने लगी। वह नृत्य केवल अश्लील अंग-चालन था। गुण्डों ने उसे घेर लिया। वह हंसकर आंख मार देती। भयंकर कोलाहल उठ खड़ा होता।

उधर कुछ शराबियों ने उस अधनंगी बेहोश औरत का पता पाया। स्त्री का मुंह टेढ़ा हो गया था। उन्होंने भी उसे होश में लाना आवश्यक समझा और नतीजे में सब उसे घेरकर शोर करने लगे। इतने में वही काला हट्टा-कट्टा आदमी आया और एकदम उसने भीड़ को चीरकर घुसकर देखा। लाजवाब हकीम उस समय आपस में लड़ रहे थे। औरत नंगी पड़ी थी। उसे वे सब भूल गए थे। काले गुण्डे ने कोई अजीब बात नहीं देखी। उसने अपना डण्डा घुमाया। भीड़ तितर-बितर हो गई। उसने एक हाथ से स्त्री को उठा लिया। पटिया के सामने लिटाकर दाढ़ीवाले व्यक्ति से नीबू मांगकर उसके मुंह

में निचोड़ा। होंठ हिले। फिर एक नींबू और। औरत ने अलसाकर आंखें खोल दीं। एकदम चौंककर वह उठ बैठी और रोनी सूरत से बोली, "हाय, मेरे कपड़े !"

मुस्कराकर काले गुंडे ने बाएं हाथ से उस पर कपड़े फेंक दिए। औरत पटिया के पीछे जाकर साड़ी बांधने लगी। अहमद उसे छेड़ने लगा और वह अपने चार रुपयों के लिए चिल्ला-चिल्लाकर सारे शराबियों को गन्दी-गन्दी गालियां देती रही।

कालू ने देखा, चन्दा और रफीक दोनों बेहोश पड़े थे। उसने झुककर कहा, "चलै है बे चन्दा ?"

चन्दा ने जोर से कै की।

कालू जब पैसे चुकाकर बाहर निकला, सिनेमा का पहला शो खत्म हो चुका था। दूसरा शुरू होने में थोड़ी ही देर थी। 'इन्दर सभा' नामक चित्र आया था। दर्जों के हिसाब से साढ़े चार आनेवाला टिकट बाहर ही मिलता था। एक हाथ-भर घुस सके केवल इतना ही एक छेद था, जिसके अन्दर से फुर्ती से मगर शोर से घबराया हुआ कोई टिकट बेच रहा था। टिकटघर की खिड़की का जंगला पकड़े तीन आदमी झूल रहे थे। उनके बदन पर कपड़ा नहीं था। केवल लंगोट पहने थे। टिकट पाने की भीड़ में कपड़े का साबुत बच जाना जरा मुश्किल-सा ही काम था। कुछ लोग नाराज थे और मां-बहनों के शरीर का जायज-नाजायज वर्णन करके अपनी कमजोरी पर झल्ला रहे थे।

यह शहर का पुराना हॉल था। पहले इसीमें पारसी थियेटर होता था। तब बहुत से पंखों को सीध में बांधकर लटकाया जाता था और दो पहलवान उन्हें ऊंघते हुए नंगे बदन खींचा करते थे। फिर एक दिन बिजली के पंखे लग गए। तब वे लोग निकाल दिए गए। छः-सात नाम बदलकर भी यह सिनेमा हॉल अब तक चल रहा था। शहर का सबसे ज्यादा चिल्लाकर प्रचार करनेवाला बाहर गरज रहा था, "इंदर सभा! इंदर सभा! दूसरा शो शुरू होगा ! तीसरा हफ्ता, तीसरा हफ्ता !"

टिकट खरीदकर कालू ने पान लेते हुए देखा, एक अच्छी शक्ल का लड़का पानवाले की दूकान पर चढ़ा बैठा था। पानवाले ने कहा, "क्यों बे, घर नहीं गया ?"

लड़के ने कहा, "अभी जा रिया हूं उस्ताद !"

पानवाला काम में लग गया। लड़के ने खांसा और कालू ने उसके मुंह से आती शराब की तीखी गन्ध सूंघी। पान खाकर आंख मिलते ही कालू ने उसकी तरफ आंख मार दी और लड़का मुस्कराया। कालू बीड़ी सुलगाकर भीतर दाखिल हो गया।

हॉल पुराने कायदे का बना हुआ था। इसमें सीढ़ियां थीं। जो जितना रुपया दे सकेगा वह समाज की उतनी ही ऊंची सीढ़ी पर बैठ सकेगा। अपनी क्लास में कालू ने देखा, बेहद भीड़ थी। कोई एक ओर बैठा 'तेल मालीस, मालीस तेल' वाले से सिर में मालिश करवा रहा था। पान, सिगरेट, मिठाई आदि बेचनेवाले ऐसे चिल्ला रहे थे जैसे किसी स्टेशन पर।

खेल शुरू होने के बाद दो आदमियों में झगड़ा हो गया। झगड़ा जगह के पीछे

था। ऊपर के दर्जे में से किसीने केले का छिलका डाल दिया था जिसकी वजह से एक छोटा मुंह बड़ी बातें उगल रहा था। एक तरफ से सीटी बजने की आवाज आई और ध्वनि पूरे हॉल में गूंज गई। किसीने चिल्लाकर कहा, "खामोश!" और न मालूम किसको चुप करने सब 'खामोश-खामोश' चिल्लाने लगे।

हॉल में सहसा उजाला हो गया। पुरानी मशीन थी। रील टूट गई। इस पर आपरेटर पर बीसियों गालियों के फूल बरसाए गए।

जब पर्दे पर अप्सराएं आईं तो कुछ मनचलों ने उन्हें आवाज देकर बुलाया भी, मगर वे न आईं। लोग आपस में धीरे-धीरे बातचीत करते और जब आवाज तेज हो जाती सब चिल्लाते, 'खामोश!'

ऊंची क्लासवाले इन बातों को देख-देखकर हंसी से लोट-पोट हो रहे थे। एक ने कहा, "कला की कद्र तो इनसे मीलों दूर है। सिनेमा भी कला का एक उत्कृष्ट रूप है।"

दूसरे ने कहा, "जन-समाज को हमें वैज्ञानिक रूप से शिक्षित करना है, न कि उनका मजाक उड़ाना।"

"जी हां!" पहले ने कहा, "खुशी के वक्त ताली पीटना और नाच देखकर हाय-हाय करना कला की ही परख है।"

दूसरे ने टोककर कहा, "आप जरा सोचिए तो। ये लोग हृदय के बड़े भावुक होते हैं। एक ही क्षण को इन पर असर होता है, बाद को दिमाग रोटी-पानी के सवाल में लग जाता है। जिस संस्कृति का ह्रासप्राप्त रूप हमें सिनेमा में मिलता है वह मध्यवर्ग के बिगड़े स्वप्नों का मानसिक व्यभिचार है।"

"तो फिर, धूधड़ाम बने। यह लोग तो उसे ही पसन्द करते है।"

"आप समझे नहीं," दूसरे ने फिर कहा, "हमें वर्ग-संघर्ष की सामूहिक चेतना दिखाने का प्रयत्न करना चाहिए।"

किसी और ने कहा, "माशा अल्लाह! तो आप यहां स्पेशल क्लास में क्यों बैठे हैं? जाइए, वही तशरीफ ले जाइए और दीगरे नसीहत शुरू कीजिए।"

सब ठठाकर हंस पड़े। बात दब गई।

किसीने कालू से पूछा, "क्यों भाई सा'ब जे एक्ट्रेस हैं न, इनका पेशा क्या है?"

कालू ने सरलता से कह दिया, "रंडी है जे सब। और क्या? आजकल कोई-कोई अच्छे घरों की आवें तो हैं, मगर पत थोड़े ही रखा जाए!"

"सो तो है ही। लो, बीड़ी पियो भाई सा'ब!" उस सूखे से व्यक्ति ने कहा।

बीड़ियां सुलग उठीं। कालू ने ही पूछा, "कहां के हो तुम? घर-बार किधर है?"

"मैं मुन्सिफ साहब का नौकर हूं। आज बड़े भैयाजी ने विलायत से लौटने की खुशी में दो रुपए दिए थे, सो मैंने सोची, जरा तफरी कर आऊं। वर्ना बाल-बच्चों और नौकरी से फुर्सत कहां?"

कालू ने देखा, इस आदमी को किसी तफरी के लिए गुंजायश नहीं है। उसे उस पर दया आई। उसकी ओर देखा और पूछा, "कै बच्चे हैं, भाई ?"

"सात।" सूखे जबड़ों में बड़े-बड़े दांत चमक उठे, "हमारे सरकार कहते हैं, सिनेमा-अनेमा देखना गुण्डों का काम है।"

कालू ने कहा, "हिश ! वो ऊपर बाबू लोग बैठे हैं, वो क्या सब गुण्डे हैं ?"

वह आदमी अपनी गलती महसूस कर उठा। इण्टरवैल की रोशनी जली। मुसिफ साहब को देख वह और सकुचा गया। थोड़ी देर बाद उसने अपने आप कहा, "हम तो यों ही बिता देंगे। क्या है ! परमात्मा की इच्छा है। इतना दम ही कहां है भाई सा'ब, रोज-रोज वड़े भैया विलायत से थोड़े ही लौटते है ?"

कालू ने सोचा, इसके पीछे वजन है। सात और एक आठ। यह अकेला चलाने वाला। वह आदमी पिसा पड़ा था, जिसके मामूली अरमान भी कुचल गए थे।

खेल समाप्त हुआ। भीड़ एकदम बाहर निकलने लगी। खूब धक्का-मुक्की होने लगी। भीड़ में से किसीने कहा, 'चलै वे पंजाबिन के यां ?'

"कहां ?"

"वहीं ! नारंगियोंवाली गली में !"

दोनों भीड़ में मिल गए। कालू भी गली की ओर चल पड़ा।

जहां दो बड़े बाजार मिलते है उनके बीच में एक गली है जिस पर एक फाटक चढ़ा है। कालू परिचित पगों से उसमें घुस गया। दोनों ओर के घर किचर-पिचर बने हुए थे। छोटे-छोटे दरवाजे, ऊपर पुरानी-सी मैली गौखें। बेहद तंग गली और दोनों ओर खुलनेवाले पाखानों के कारण बेहद बदबूदार। अंधेरा छा रहा था। किसी-किसी जगह से कबाब की गन्ध आ रही थी। एक ओर कोने पर ही एक कसाई की दूकान थी जिसमें दिन में बड़े-बड़े कच्चे गोश्त के लौंदे लटके रहते थे और आदमी सिर पर मांसभरी डलिया लेकर झुक झल से चलते थे।

कालू बढ़ा ही था कि उसके कानों में आवाज आई। भीतर कोई लड़की रो रही थी।

एक कठोर स्वर की डांट सुनाई दी, "नहीं करेगी ? तेरा बाप तुझे खिलाएगा यहां ?"

लड़की ने रोते-रोते कहा, "तूने ही तो कहा था कि तुझसे व्याह कर लूंगा ?"

"रखा तो तुझे ठीक ही है, मगर तू माने कब ?"

"नहीं, मैं नही करूंगी।" लड़की ने दृढ़ स्वर में कहा।

आदमी हंसा। बोला, "हाय पारसा ! तू क्यों मानने लगी ?" और एक तड़ाक चांटे की आवाज आई। लड़की जोर से रो उठी। आदमी ने कहा, "मुंह बन्द कर ले साली का !"

फिर एक धींगा-मुश्ती हुई—फिर तड़ातड़ लात, घूंसे और चांटों की आवाज में रोने का घुटा-सा स्वर मिल गया।

आदमी ने कहा, "अरी तू तो क्या, मैंने पच्चीसियों ठीक कर लीं। पुलिस, कांगरेस सब धरे रह गए। लेआ वे मिर्चें! भर दो दोनों मिलकर।"

घुटते स्वर में करुण चीत्कार फूट निकले, जैसे भयानक वेदना से बेजबान पशु आर्तनाद करता हो। लड़की के 'हाय, मर गई' पर आदमी का कठोर हास्य-स्वर पैशाचिक प्रतिध्वनि बनकर फैल गया।

"बांध के पटक दो साली को! नहीं करेगी!"

एक दूसरा स्वर सुनाई दिया, "उस्ताद, बड़ी जलन हो रही होगी। खोल दूं?"

"चुप बे हिजड़े! भला बताओ! वैसे ठीक हो जाएगी? पहले तो बड़ी-बड़ी बातें कर रहा था। अब लगा रें-रें करने। साले, सोचके देख, पेट कैसे भरेगा? और यह अगर यही न करेगी तो फिर औरत करेगी क्या?"

इसके बाद किसीने खांसा। यह बात कालू की समझ में ठीक नहीं बैठी। मन ही मन उसने कहा, "साले, हरामखोर, आवारे, गुण्डे! खुद तो मेहनत करते नहीं, लुगाई की कमाई खाएंगे!" दो बदबूदार आदमी उसके पास से निकल गए। एक अधेड़ औरत ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "बाबूजी, सौक करोगे?"

कालू ने अंधेरे में भी देख लिया कि वह प्रायः बूढ़ी थी। उसने हंसकर कहा, "माई, क्या कहा?"

औरत चेतकर बोली, "ऐसी-वैसी मत समझियो मुझे। हम भी खानदानी हैं।"

कालू फिर हंस दिया। तब वह उसे गालियां देने लगी। कालू हाथ छुड़ाकर चल दिया। एक आदमी ने रोककर कहा, "लालाजी! पंजाबिन आई है एक। एक नम्बर! देखो तो आसमान की चिड़िया, सूघो तो गुलाब का फूल!"

कालू ने कहा, "चलो!"

दोनों एक गन्दे मकान के द्वार पर ठहर गए। द्वार खटखटाते ही एक बूढ़ी औरत निकल आई और बिना पूछे ही कालू का हाथ पकड़कर भीतर ले गई। इसी समय दो आदमी भीतर से निकले और चले गए। कालू ने देखा, इस पौरी के बाद सकरा दालान था। उसके पीछे एक छोटी-सी कोठरी थी।

बुढ़िया ने कहा, "बाबू आओ।"

कालू ठिठका। बुढ़िया बोली, "बाबू, एक रुपया!"

"झूठी बात!"

"तो तुम्ही बोल दो। हम जिरह नहीं करती, नया माल है। इतना खयाल रहे।"

"छः आने।" कालू ने कहा।

"और मेरे?" बुढ़िया ने पूछा।

"दो आने।"

दलाल ने आगे बढ़कर पूछा, "लालाजी, मेरे?"

"दो आने।"

जब कालू चुकाकर बढ़ने लगा, बुढ़िया ने कहा, "लौट आओ, फिर न कहोगे।"

कालू ने कदम उठाया। दलाल ने कहा, "अब रहने दे। आज कई हो गए।"

कालू अंधेरे में रुक गया। बुढ़िया ने कहा, "तू रहने दे। कुछ दिन में कोई न पूछेगा। यह तो जितनी नारंगी निचोड़ोगे, उतना ही रस निकलेगा।"

"लेकिन यों तो रस ही न बचेगा।"

"उठाके बाहर फेंक देंगे तब।"

कालू ने कोठरी में घुसकर देखा, एक धुंधली रोशनी से घिरा छोटा दीया जल रहा था। एक जवान औरत थकी-मांदी बिस्तर पर पड़ी थी। औरत में एक भयानक सुस्ती थी। उसका मुंह पीला पड़ गया था।

जब कालू चलने लगा, औरत का पीलापन कांपने लगा। उसके होंठ थरथरा उठे। उसने कहा, "बाबू! कुछ मुझे भी मिल जाय। उसमें से बुढ़िया कुछ न देगी।"

कालू ने पूछा, "क्या लेगी?"

"दूध के लिए छः पैसे।"

कालू से पैसे लेकर उसने कहा, "बाबू! परमातमा तुम्हें भागमान करे। आज किसीने भी कुछ नही दिया। सब कहते थे, 'बाहर दे दिया'। आज बहुत हाथ-पांव टूट रहे हैं। क्या करूं! पहले ही बता देती, मगर फिर कौन देता? इन छः मे भी दो तो बुढ़िया ले लेगी। मैं अब बहुत नहीं जिऊंगी। बाबू, मुझे माफी देना। अपने लिए मैंने तुम्हें भी बरबाद कर दिया। मैं किसीको मुंह दिखाने जोग नही रही। उफ, कितनी तकलीफ है। मालूम नही, मरती क्यों नहीं? न दवा, न दारू, उल्टे वही काम, गन्दा काम! हाय परमातमा, खूब बदला लिया तूने। कैसी भयानक बीमारी···"

"बीमारी?" कालू चीख उठा। भय से उसका स्वर विह्वल हो गया।

"हां, बाबू, वही।" औरत रो पड़ी। कालू को एक चक्कर-सा आया और वह सिर पकड़कर वहीं बैठ गया। औरत रोती रही।

इस समय भी पूंजीवाद ईश्वर की खोज में लीन था, यह सभ्यता की छाया थी।

]मई '47 से पूर्व]

दिवालिए

(इस कहानी के पात्र कल्पित हैं। किन्तु फिर भी जो वास्तविकता की छाया मैंने ली है, वह काफी भिन्न है उससे, जिसका मैंने प्रतिबिम्ब लिया है। अतः मेरा मतलब न किसी का अपमान करना है, न और कुछ। मैं उनका कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मुझे कण मात्र दिए जिससे मैंने यह गिलास भर लिया है। अपनी कहानी को सूत्रबद्ध करने को मैंने केवल कल्पना से काम लिया है। मैं क्षमाप्रार्थी हूं।)

एक सिलसिले से सबके सब बेवकूफ, एक से एक टक्कर के, मगर सबको जाने क्यों प्रत्येक पग पर ठोकर खाकर भी यही प्रतीत होता कि सबका अपने-अपने क्षेत्र में अत्यन्त उज्ज्वल भविष्य है। और यह भविष्य की छलना ही उन्हें डूब मरने से बचाए हुई थी। एक बड़ी-सी खुरदुरी मेजपोश से ढंकी मेज के एक तरफ रखी भारी-सी कुर्सी पर वह बैठते जो उदास-से गम्भीर रहते, बहुत कम बोलते, लेकिन व्यर्थ ही प्रत्येक को उनसे राय लेने की आदत पड़ गई थी। वह कभी किसी बात का हल नहीं निकाल पाते, क्योंकि अपनी ही जिन्दगी का वह कभी भी हल नहीं निकाल सके। लोग उनसे प्रभावित रहते, उन्हें 'उस्ताद' कहते और वह फौरन उस्तादी कायम रखने के लिए चाय का आर्डर देते। मेजबान फिर भी गिट्टे रमेश को बनना पड़ता, क्योंकि प्याले उठाकर उस्ताद हरेक के सामने रखने के लिए उठ खड़े हों, यह किसी के भी मस्तिष्क में नहीं आ सकता था। रमेश इतनी जोर से हंसता कि हवा कांपने लगती। ऐसा लगता कि ऊपर से छत फट जाएगी। चाय प्यालों में अपने-आप थरथराने लगती और पास-पड़ोस के लोग इस पर मन-ही-मन खफा होते। किन्तु कहता कोई कुछ नहीं, क्योंकि कॉलिज के विद्यार्थी जरा दूर रहें, इसी में अपना भला है। उस्ताद ने एक दिन रमेश से कहा भी, तब उसने चश्मे में से ढूंढ़ते हुए कहा कि अगर तुम्हें उज्र हो तो मैं अपनी आदत सुधारूं, वर्ना मैं किसी की परवाह नहीं करता। उस्ताद ने कहा, "मुझे तो कोई उज्र नहीं। तुम्हारे हंसने-रोने से मुझे कोई फर्क ही नहीं लगता।" उस्ताद की तरफ रमेश ने ऐसे देखा जैसे क्यों सा'ब ? इसी बीच मनोहर ने अपना प्याला सबसे पहले उठा लिया। कुछ देर बाद सब चाय पीने लगे। मनोहर ने अपने बालों पर हाथ फेरा। ऐसा लगता था जैसे वह अपना दिमाग टटोल रहा था।

रमेश ने कहा, "दिन में एक बार हंसना एक डॉक्टर को दूर रखता है, मैं पांच बार हंसता हूं···"

पतली आवाज में सांवले-से जैगोपाल ने कहा, "यानी तुम पांच डॉक्टरों को दूर रखते हो?" मुर्गी की तरह रमेश फूलकर झेंप गए। उन्होंने काली टोपी उतारकर जेब में रख ली। चाय पीते हुए सुड़क-सुड़क की आवाज करने लगे।

कौल अपने दांतों को खोलकर मुस्कराने लगा। वह देखने में प्रायः सुन्दर ही था जिसको देखकर मनोहर चौकन्ना-सा इधर-उधर गर्दन हिलाकर अपने नीचे के बड़े होंठ पर बीड़ी जमा लेता जैसे कोई फैली हथेली पर झाड़ू की सीक रख देता है। यदि माचिस कोई दे देता तो ठीक, अन्यथा वह तब तक प्रतीक्षा करता जब तक कोई माचिस न निकाले या अपनी सिगरेट निःशेष करके फेंके। मनोहर कुछ देर बाद मुंह में लगी बुझी-बुझाई बीड़ी को होंठों के इस कोने से उस कोने तक पहुंचाता, ऊंट की तरह जीभ फिराता, फिर हंसना जैसे वह एक सत्ता की घुटन थी जो इस लम्बाई में चौड़ाई मिला देने की कशमकश थी।

उस्ताद एक बार मनोहर की तरफ से हंसते, एक बार रमेश की तरफ से, फिर अपनी स्वाभाविक लाचार खामोशी में डूब जाते और दोनों टेसुओं में मुंहजबानी लड़ाई होने लगती। रमेश इतनी जोर से हंसता कि जैगोपाल घबराकर मेज पर बैठ जाता और ऐसे देखता जैसे बच्चे हैं, बच्चे!

इसी समय फतहचन्द साइकिल रखकर सीना निकाले आ खड़े होते। उनकी आंखों को देखकर लगता, जैसे कबूतर नशे में ऊंघ रहा हो। किन्तु उन्हें यह स्वीकार करने में सदा आपत्ति रहती थी। ऐसे मौकों पर दिल ही दिल वह अपनी असली और काल्पनिक प्रेमिकाओं के नाम दुहरा लेते, फिर घूरते। उनका निष्प्रभ चेहरा कुछ अजीब-सा लगता और जेंगरे की तरह होंठों पर जीभ फेरकर वह आधे समझे, आधे नासमझे-से, आंखों पर हाथ रखकर, सिर हिलाते हुए हंसते जैसे वह चीख रहे हों। इस पर वह अपनी कमानीदार भवों को चढ़ाकर ऐसे देखते जैसे माफी मांग रहे हों। और फिर सन्नाटा मार जाते जैसे कछुआ गर्दन भीतर करके चुनौती देता है कि अब कर लो, क्या करते हो?

मनोहर सदा यही शिकायत किया करता कि वह बीमार है। कोई उसकी परवाह नहीं करता। मां उसे फूटी आंखों नहीं देख सकती। जब से बीवी आई है, एक नई मुसीबत खड़ी हो गई है। क्या करूं, क्या न करूं? भाई साहब! जब गुर्दा ही खराब है तो कोई क्या कर सकता है? किसी को भी यकीन नहीं होता। तभी कौल मिठाई मंगाता। मनोहर कहता, "मिठाई से कोई नुकसान नहीं होता।"

यही था उनके जीवन का वह पहलू जो वे सब मिलकर उपजा पाते थे। सब एक-दूसरे पर विश्वास करते थे, एक-दूसरे पर हंसते थे। झूठे वायदे करके एक-दूसरे से पैसे लेते थे।

और रेस्तरां चल रहा था जैसे कोई बियाबान में लुटे हुए मुसाफिरों का एक

लुटा हुआ कारवां ठहर गया हो और वे सब उदास-से एक-दूसरे पर आश्रित हों···

● ●

सांझ हो गई। रेस्तरां में सब बातें कर रहे थे। केवल एक आदमी अनुपस्थित था जिसकी कमी सबको खटक रही थी। उसके होने से जो मस्ती उमड़ती है वह और कोई पैदा नहीं कर सकता।

जैगोपाल चुपचाप बैठा था। लोगों को उससे यही शिकायत थी कि वह अपने को कुछ समझता था। उस्ताद कहते थे, "तुम लोग समझते-असमझते तो हो नही। वह भी अपने ठीक ही है।"

रमेश ने कहा, "उस्ताद ! पढ़ाई नहीं होती, क्या किया जाय ?"

कौल ने हंसकर कहा, "बात तो यार बिलकुल ठीक है। इधर कुछ दिन से मौसम ही कुछ खराब हो गया है।"

उस्ताद ने कहा, "तो क्या पढ़ाई भी कोई मौसमी फल-वल है ?"

फतहचन्द कुछ सोच रहा था। उसने कहा, "आज मनोहर कहां गया है ? रोज तो वह इस वक्त यहीं मिलता था।"

रमेश बोल उठा, "अजी, यह भी कोई पूछने की बात है ? आजकल उसकी बीवी लौट आई है।"

फतहचन्द बोले, "बेशक ! बेशक ! समझ गए ! समझ गए !"

जैगोपाल खामोश बैठे थे। उन्होंने कहा, "लेकिन वह तो बीमार है ?"

रमेश आदत के मुताबिक बड़ी जोर से हंसा और बोला, "जी !"

कोई भी इस बात को नहीं समझा। इसी समय एक फौजी नए सेकंड लेफ्टिनेट के साथ मनोहर ने प्रवेश किया। सब लोगों ने उत्सुकतापूर्वक मुड़कर देखा। मनोहर ने कुर्सी की ओर इशारा करते हुए कहा, "बैठिए। यही हमारा रेस्तरां, घर, जो कुछ चाहिए, समझिए। आप तो नाम सुनकर एकदम फड़क उठे थे। कहिए, अब आपकी क्या राय है ?"

सेकंड लेफ्टिनेंट बैठ गया। अभी हाल ही में कमीशन मिला था। उसमें से अकड़ की गन्ध निकल रही थी जिसको सूंघकर उन लोगों का जी मिचलाने लगा। फतहचन्द ने मनोहर की ओर घूरकर देखा जैसे उस फौजी को लाकर उसने कोई घोर अपराध किया हो। मनोहर ने चुपचाप उसे चुप रहने का इशारा किया। उसने कहा, "मेरे दोस्त हैं, पहले साथ पढ़ते थे, अब कमीशन ले लिया है। आपका नाम है मिस्टर कपूर और आप है हमारे उस्ताद, एम० ए० में पढ़ते है।"

दोनों ने धीरज से हाथ मिलाए, कुछ ही देर में वे लोग इधर-उधर की बातें करने लगे। उस्ताद ने चाय का आर्डर दे दिया। सेकंड लेफ्टिनेंट कपूर कहने लगे, "आप लोग किसी अच्छे रेस्तरां में क्यों नही बैठते ? यह जगह तो काफी गन्दी है।"

उस्ताद मन ही मन कुढ़ गए। उन्होने कहा, "बात यह है कि हम जो खाते-पीते हैं वह हमें कभी लगता नही, इसलिए हम कभी इसकी फिक्र भी नही करते कि क्या करें,

क्या न करें ?"

कपूर हंसा। इसके बाद लोगों ने उससे फौज पर सवाल करने शुरू कर दिए और उसने झूठ बोलना शुरू कर दिया। एकाएक रमेश ने टोककर पूछा, "क्यों कपूर साहब ! लड़ाई के बाद आपका क्या करने का इरादा है ?"

सवाल बड़ा बेढंगा था, बल्कि एक तरह से बदतमीजी थी। नए अफसर का चेहरा फक पड़ गया। उसने इधर-उधर देखा। रेस्तरां की मैली दीवारों से उसकी दृष्टि उदास होकर टकरा गई। जीवन का मोल केवल रुपया था। लड़ाई के बाद का भीषण चित्र कदाचित् उसके नयनों के सामने खेल गया।

इसी समय रेस्तरां का 'बॉय' चाय रख गया। वे लोग पीने लगे। रमेश का प्रश्न अब हवा में उड़ गया था।

जब वह लफ्टिनेंट चला गया, जैगोपाल हंसा। एक-एक करके सब हंसे। उनको सन्तोष था कि वह लड़ाई के बाद निकाल दिया जाएगा, जबकि वे पढ़-लिखकर तब तक बहुत बड़े आदमी बन जायेंगे।

फतहचन्द ने कहा, "मनोहर ! तुझे क्या है ? कभी तू नब्ज दिखाता है, कभी जिगर। आखिर तेरा मर्ज क्या है ?"

मनोहर ने कहा, "मर्ज ? मर्ज तो अजीब है। अगर वह समझ में आ जाय तो फिर बात ही क्या है ? मगर बात तो यही है कि कोई पकड़ नहीं पाता। पारसाल राशनिंग में नौकरी की थी, तभी से तबीयत खराब रहने लगी। इस साल सोचा था, कालिज में दाखिला करा लूं, मगर हिम्मत नहीं पड़ती। फीस कैसे देता ?"

जैगोपाल ने अमीरी से पूछा, "तो क्या प्राइवेट बैठने का इरादा है ?"

"हां," मनोहर ने कंधे उचकाकर कहा, "और क्या ?"

बात आई-गई, खत्म हो गई, किन्तु किसी को भी चैन नहीं था। जाने क्यों सबके दिल में बेचैनी कशमश कर रही थी। सांझ के सूरज की छाया में जब हर पेड़ की छाया बहुत लम्बी-लम्बी लेट जाती है, तब पेड़ में से एक अजीब मर्मर निकलने लगती है। यही उनकी आशाओं का रूप था।

उस्ताद चुप बैठे रहे। कमरा फिर सन्नाटे में डूब गया। वे कभी-कभी एक-दूसरे की तरफ देखते, फिर व्यर्थ मुस्काते या सिगरेट के छल्ले फेंककर उन्हें देखते रहते या फिर छल्ले में से छल्ला निकालते रहते।

वह सन्नाटा उनके किसी भी वार्तालाप से अधिक सजीव था, क्योंकि उसमें अतृप्त विषाद था, यह न अवसाद था, न हर्ष। एक चक्कर, दूसरा चक्कर, तीसरा चक्कर, एक-दूसरे में से फंसना, निकलना और हाथ फैलाकर शून्य में निरुपाय-सा लय हो जाना।

••

उस्ताद ने आकर अपनी साइकिल रखी और भीतर घुसे। उन्हें देखकर कौल कुछ सकपका गया।

उस्ताद ने उसे तीखी दृष्टि से देखकर कहा, "कहां जा रहे हो?"

"अभी आया, उस्ताद! जरा काम है।"

"जल्दी आ जाओगे?" उस्ताद ने बैठते हुए पूछा।

"अभी-अभी।" कहता हुआ कौल चला गया। उसके चले जाने पर उस्ताद सन्देह से इधर-उधर टहलने लगे। उन्होंने सुना बहुत कुछ था, मगर अभी किसी नतीजे पर नहीं पहुंच पाए थे। मुमकिन है, वैसा ही हो। यही उम्र भी है। लेकिन अपने व्यक्तिगत अनुभव के कारण वह सदैव सबको उस पथ पर न चलने की ही सलाह दिया करते थे। उसी समय उन्होंने किसी का अट्टहास सुना। वह बैठ गए और दरवाजे की ओर उन्होंने अपनी पीठ कर ली। हंसता हुआ रमेश भीतर घुसने लगा कि रेस्तरांवाले ने उसका नाम लिया। आवाज सुनकर रमेश रुक गया। रेस्तरांवाले ने रूखे स्वर से कहा, "बाबूजी! आज से हिसाब रुका समझो। मैं और बढ़ाना नहीं चाहता।"

"क्यों?" रमेश क्रोध और अपमान से फूल गया। ऐसा लगा जैसे वह हिचकी भरकर रो देगा।

रेस्तरांवाला बड़बड़ाने लगा, "सा'ब, कहां से लाएं? वैसे तो आप भी यही कहें कि गरीबों को बड़ी तकलीफ है। हम भी कहीं लड़ाई के काम में होते तो धेली ऊपर रुपया रोज कमा लाते। मगर अब तो बूढ़े हो गए। अपनी तकदीर ही खराब है। जैसे हो इसी पर गुजर करनी है। आप तो सब खुद समझ सके हैं?"

रमेश निरुत्तर हो गया। फतहचन्द तब तक भीतर उस्ताद के पास जा चुका था। जैगोपाल बड़ा सुन रहा था।

रमेश ने उसकी ओर देखा। जैगोपाल ने इशारा किया जैसे वाकई बहुत बुरी बात है। सबके बीच में टोकना सरासर बदमाशी है। रमेश ने कहा, "अच्छा जल्दी ही होगी।"

रेस्तरांवाले ने असन्तुष्ट स्वर में कहा, "अब आप ही सोच लीजिए। हमारा काम तो कहना है। वैसे तो हमने कभी हुक्म-उदूली की नहीं।"

रमेश चुप हो गया। उस्ताद ने उसके मुंह पर हवाइयां उड़ते देखकर पूछा, "यह आज नए रंग कैसे? हम तो समझे थे कि एक यह कौल ही फंसा है! लेकिन आज तो तुम भी कुछ उड़े-उड़े से नजर आ रहे हो? किसी से आंख लड़ गई?"

जैगोपाल ने कहा, "उस्ताद! आज इन पर जरा चोट हो गई। कर्जा मांग रहा था। भला बताओ, पैसे मांगता है? हमारे पास नहीं है, तभी तो नहीं देते। होते तो क्या न दे देते?"

सब लोग हंस दिए। अज्ञातवास के पाण्डव कभी-कभी ऐसे ही मन बहला लेते थे। किन्तु रमेश ने भारी स्वर से कहा, "भाई यार! हम तो अब कल से गायब।"

"क्यों? क्यों?" उस्ताद ने कहा, "ऐसी भी क्या बात है? आज नहीं कल ही कह दो। कोई हमेशा तो तंग रहोगे नहीं। फिर आना-जाना छोड़ने पर क्यों उतारू हो?"

रमेश ने कुछ नहीं कहा। वह कुछ सोचने लगा। फिर उसने ऐसे सांस ली जैसे कहीं कोई पार नहीं था। अंग्रेज भले ही समुद्र के मालिक होंगे, वह तो किसी भी हालत में नहीं था।

एकाएक सब लोग चौंक गए। द्वार पर लुटा हुआ-सा मनोहर खड़ा था। उसके होंठों के बीच में अब भी बीड़ी कांप रही थी और सलाम-दुआ के पहले वह हाथ बढ़ाकर माचिस मांग रहा था।

उस्ताद ने जोर-शोर से कहा, "यार, भीतर आओ न! बाहर खड़े क्या कर रहे हो?"

मनोहर आकर गमगीन-सा एक कुर्सी पर बैठ गया। सबने उत्सुकता से देखा और फतहचन्द ने पूछा, "क्या हुआ, यार?"

"कुछ नहीं!" मनोहर ने मुस्कराकर होंठों पर जीभ फेरी। उस्ताद ने देखा और उसके लिए चाय मंगाई। बॉय फौरन रख गया। मनोहर चाय पीने लगा। उस्ताद ने कहा, "बताओ भी यार! आखिर हुआ क्या?"

"अरे यार!" मनोहर ने बालों पर हाथ फेरते हुए कहा, "हुआ क्या? वही हुआ जो होना था।"

"यानी?"

"यार, जरा सिगरेट देना," मनोहर ने मुड़कर जैगोपाल की जलती सिगरेट लेकर अपनी बीड़ी सुलगाई और धुआं छोड़कर बोला, "आज बीवी से झगड़ा हो गया।"

"क्यों? क्यों?" सबने चौंककर पूछा।

"यार, एक बात हो तो कहूं? रोज-रोज की फर्माइशों से मैं तो तंग आ गया। इधर बीमारी बढ़ती जा रही है।"

"तो अब?"

मनोहर ने बीच में फतहचन्द की तरफ देखकर कहा, "यार, एक प्याला और पिलवा दे।"

फतहचन्द ने इधर-उधर देखा। मनोहर कह उठा, "नहीं, आप एक प्याले में गरीब हो जायेंगे।"

फतहचन्द को निरुत्तर होकर चाय मंगवानी पड़ी।

मनोहर ने कहा, "थैंक यू पार्टनर! आजकल मैं अस्पताल जा रहा हूं। पेट फूल जाता है। डॉक्टरी की विभिन्न प्रणालियां हैं। कोई कहता है, जिगर बढ़ा है; कोई कहता है, हाजमा खराब है।"

"तो तुम्हें है क्या?" कहते हुए कौल ने प्रवेश किया। वह इस समय परेशान और बदहवास-सा था। किन्तु उस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

"मुझे है क्या?" मनोहर ने कहा, "भूख बिलकुल नहीं लगती। यहां जो सात-आठ प्याले चाय पीता हूं उसके अलावा बहुत कम खाता हूं।"

उस्ताद मुस्कराए। किन्तु उन्होंने कुछ कहा नहीं।

मनोहर कहता गया, "जरा डॉक्टरों को फीस देनी थी। इसलिए किसी तरह घर में लड़-झगड़कर पन्द्रह रुपये लाया हूं।"

रमेश ने सहसा सिर उठाकर कहा, "यार, तो तुम डॉक्टरों को बाद में भी दे सकते हो। मुझे दे दो। दो-चार रोज बाद तुम्हारा इंतजाम हो जाएगा।"

मनोहर एकाएक सकपका गया। फिर एकदम बोला, "पार्टनर! यह कैसे हो सकता है? डॉक्टरों से आज वायदा कर दिया है।"

रमेश चुप हो गया। मनोहर ने घिघियाते हुए कहा, "पार्टनर, तुम्हीं बताओ। मैं क्या करूं? तुम तो मेरी हालत जानते ही हो। क्या बताऊं, घर से लाचार हूं।"

"तो वहां रहोगे कहां?" जैगोपाल ने भौं तानकर पूछा।

"जनरल वार्ड में, और कहां?" मनोहर ने निर्दोष उत्तर दिया। जैगोपाल के होठों पर व्यग्य की सांपिन एक बार कांपी और फिर पेट में उतर गई।

मनोहर उस्ताद से एक सिगरेट मांगकर पीने लगा।

जब फतहचन्द, जैगोपाल और रमेश जाने लगे, कौल भी उनके साथ बाहर चला गया। मनोहर ने जेब से दो नोट निकालकर कहा, "उस्ताद? बड़ी कठिनाई से ये रुपये लाया हूं। भला बताओ, डॉक्टर की फीस देना जरूरी है या नहीं?"

उस्ताद ने केवल सिर हिला दिया। मनोहर सन्तुष्ट हो गया। उसने उठकर कहा, "तो शायद मिलेंगे। उम्मीद है, आओगे अस्पताल में देखने। यार, वहां तो मुफ्त सन्तरे भी मिलते है। आना, खिलाएंगे!"

उस्ताद हंस दिए। मनोहर चला गया। कौल ने लौटकर कहा, "उस्ताद! हमें क्या मालूम था कि मनोहर का डॉक्टर रेस्तरांवाला है जिसकी फीस वह बाहर चुका रहे थे। खूब झांसा दिया अपनी मां को। मुझे यही चीज नापसन्द है।"

वह कुर्सी पर बैठ गया। उस्ताद कुहनी मेज पर टेककर हथेलियों पर गालों को जमाकर उसे घूरने लगे।

जब सब चले गए, कौल ने देखा, उस्ताद उसकी ओर देख रहे थे। वह कुछ भी न बोला और चुपचाप ऊपर की तरफ देखता रहा। इधर कुछ दिन से वह बराबर घबराया हुआ रहता था। उसके सुन्दर मुख पर चिन्ता की गहरी रेखा खिची रहती। उस्ताद ने जब सुना तब उसे दुख-भरे गीत गाते हुए सुना। कभी वह गाता—

"अब न सहारा कोई बाकी···" या फिर फिल्म के दुख और दर्द से भरे गाने जिसमें प्यार की तड़पन छटपटाती-सी लम्बे-लम्बे निःश्वास भरती रहती। कुछ देर तक सन्नाटा रहा। अन्त में उस्ताद ने ही कहा, "भाई, आखिर बात क्या है? कुछ हमें भी तो सुनाओ। अगर वक्त-बेवक्त हमीं काम न आए तो फिर दोस्त किस बात के?"

कौल ने आंखों को तिरछा करके कहा, "अरे उस्ताद! कोई बात हो तो कहूं, और जो कोई बात ही न हो तो?"

उस्ताद हस पड़े। बोले, "अजी, यह झांसे किसी और को देना। यहां जिन्दगी ही इसमें गुजार दी है। न होती तो क्या यहीं पड़े मिलते? आज अपने यार-दोस्त तमाम

ऊंची-ऊंची जगह लग गए हैं। शादियां हो गई हैं। म्यां, अभी तक तो हमारे भी दो बच्चे होते। मगर क्या बताएं ? अपनी-अपनी किस्मत है ! लेकिन तुम्हें इस नई जवानी में क्या ऐसा सदमा पहुंचा कि ऊंह-ऊंह कर रहे हो ?"

कौल के निष्प्रभ मलिन चेहरे पर उदासी छा गई। वह एकटक उस्ताद की तरफ देखता रहा।

उस्ताद ने फिर हंसकर कहा, "जी, मेरी उम्र तो अब सोलह बरस की नहीं रही कि आप आंखों से ही मुझे लूट जायें। आखिर मकसद क्या है आपका ? मैंने सुना है, आप इश्क में पड गए हैं ?"

कौल ने एकाएक पूछा, "आपसे किसने कहा ?"

"अजी, हम उड़ती चिड़िया के पर गिन लें, तुम पूछ रहे हो, किसने कहा ? क्यों ? मिस गेरिम पर आपकी आंख नहीं लगी ? मुझे पूरा-पूरा हाल मालूम है।"

हालांकि मालूम उन्हें कुछ न था, इतनी बड़ी बात उन्होंने सिर्फ अपने कयास पर कही थी। लेकिन कौल व्याकुल हो गया। वह कहने लगा, "उस्ताद ! गजब हो रहा है, कुछ समझ में नहीं आता, क्या करूं ? साली पहले तो बड़ी हंस-हंसकर बातें करती थी, जैसे दुनिया में अगर हूं तो मैं ही हूं जिससे उसका दोस्ताना हो। लेकिन एक बार मैं जब घर से रुपये लेकर आया था रेस्तरां का हिसाब चुकाने, सोचा, एक साड़ी ही दे दूं। वह दी है, तब से कनई आंखें फेर गई है।"

उस्ताद ठठाकर हंस पड़े। बोले, "हम तो पहले ही कहते थे कि म्यां, इश्क मे कुछ नही रखा। कुछ दिन बाद सड़क पर बैठने की नौबत आ जायेगी, मगर तुम भला कब माननेवाले ! तुम्हारा तो ख्याल था कि कोई न कोई जरूर फंसेगी। और मैंने सुना है, तुम्हारी कॉलिज में हाजिरी भी कुछ कम हैं ?"

"हां, है तो।" कौल ने अपराधी के स्वर में स्वीकार किया।

"इम्तहान मे बैठ जाने देंगे ?" उस्ताद ने शंकित स्वर में पूछा।

कौल ने मुस्कराकर कहा, "शायद ! लेकिन मुझे उम्मीद तो है।"

"चलो, अच्छा है।" उस्ताद ने मांस छोड़कर कहा, "हमने तो पहले ही कहा था कि इश्क करना हो तो अपने दर्जे की लड़की से करो जिसमें पढ़ाई का वक्त बरबाद न हो, उल्टे पूरी-की-पूरी हाजिरी बने रहें।"

यह कहकर उस्ताद फिर हंसे और बोले, "तो यार, गम किसका है ? वह न सही और सही, और न सही और सही। आज रात क्या कोई जवानी सदा के लिए छोड़ रही है तुम्हें ? कालिज का प्रेम क्या ? प्रेम तो कैसा भी क्या ? औरतों को तुम रहस्य-रहस्य बनाते जाओ, यह न देखो कि वह जिसे तुम अदा और लाज कहते हो वह उनकी मजबूरी और कायरपन है। लेकिन तुम क्यों मानने लगे ?"

कौल ने धीरे से कहा, "मगर मैं तो और ही बात से घबरा रहा हूं ?"

"वह क्या ?" उस्ताद ने मेज पर कुहनियां टेककर पूछा।

"जब से रमेश का हिसाब बहुत बढ़ गया है, इस रेस्तरांवाले का दिमाग ही कुछ

का कुछ हो गया है। हरेक पर शुबहा करता है। मुझे तीन दफे टोक चुका है।'

"तो यार," 'उस्ताद ने कहा, "हिसाब तो मेरा भी बहुत बढ़ चुका है, मगर मांगता नहीं।"

"आज न सही," कौल ने जेब में हाथ डालते हुए कहा, "कल तुम्हारा भी नम्बर आएगा। आखिर चुकाना तो पड़ेगा ही, मगर मैं डर रहा हूं, कहीं घर न पहुंच जाय। पहली बार बाबूजी ने चुकाते हुए इससे कहा था कि आयन्दा इसे मत देना। मगर तुम्हारे कहने से यह दे तो रहा है। अब बताओ, क्या किया जाए ? मुझे तो बिलकुल चैन नहीं। मैं तो सोच रहा हूं, घर छोड़कर भाग जाऊं।"

उस्ताद हंसे। बोले, "शाबाश ! इसमें तुम्हारा और हमारा दोनों का नाम खूब रोशन होगा।"

"तो फिर करूं भी क्या, उस्ताद ? सिगरेट भी कम पीता हूं। डबलवाली तो पी नहीं जाती। पहले डेढ़वाली पीता था, अब वह दो की मिलती है। पहले जितनी चाय अब भी पीता हूं, मगर अब दो आने का प्याला आता है, पहले एक आना लगता था। हर चीज महंगी, हर चीज महंगी। तुम्हीं बताओ, मैं कोई फिजूलखर्ची करता हूं ? सुननेवाले तो यही कहते है कि रईसी दिखाओगे तो यही होगा।"

उस्ताद सोचने लगे। कौल ने उन्हें चुप देखकर कहा, "एक काम कहूं ? करोगे ?"

"क्या ?" उस्ताद ने माथे मे बल डालकर पूछा।

"मैं तुमसे कहता हूं उस्ताद, तुम्हारे सिवा मै किसी पर यकीन भी नहीं करता। जाने क्यों शुरू से ही मेरा विश्वास है कि इस पूरी मित्र-मण्डली में सब मुंह देखे के यार हैं, आराम के साथी हैं।" इतना कहकर वह चुप हो गया और उसने उस्ताद की तरफ देखा। उस्ताद किसी पशोपेश में पड़े थे। कौल मन ही मन मुस्कराया।

"अगर तुम मुझे···" कौल ने कहा, "आज पचास रुपये दे दो तो सब काम चल जाए।"

उस्ताद ने कहा, "लेकिन मुझे तो फीस देनी है इम्तहान की। परसों तक नहीं दी जाएगी तो फिर इम्तहान नही दे सकूंगा। फिर मां बीमार हैं, उनके लिए दवा भी नही ले गया। इसी वजह से कि अगर दवा न दी गई तो कोई बात नहीं, मगर फीस तो जानी ही चाहिए। आखिरकार फाइनल है, अब के निकल गए तो कुछ रुकावट नहीं, वर्ना इतने दिन की पढ़ाई बेकार हो जाऊंगी।"

"यार, तुम भी ऐसी बातें कर रहे हो ? तुम समझते हो, मैं तुम्हारे रुपए खा जाएगा ?"

उस्ताद ने देखा, उसकी आंखें पनीली हो गई थी। उन्होंने कहा, "कौल ! मैं तुम पर अविश्वास करता हूं, ऐसा सोचकर तुम अपनी कमजोरी दिखा रहे हो। मगर तुम जानते हो फीस का मामला है।"

"अरे तो उस्ताद ! तुम समझते हो, मुझे इसकी फिक्र नहीं है कि तुम अगर

फीस नही दे पाओगे तो इम्तहान नहीं दे सकोगे ? कैसे भी हो, परसों तक तो इन्तजाम करना ही पड़ेगा।"

उस्ताद ने अपनी जेब से नोट निकालकर गिने— कुल सत्तर थे। पचास रुपए कौल को दिए और बीस अपनी जेब में रख लिए। कौल ने गद्गद होकर उनकी तरफ देखा। उस्ताद का हृदय आज प्रसन्न था। मन ही मन वह मुस्कराए। वह दोस्त क्या जो मौके पर काम न आए! भर्तृहरि मूर्ख था जो कहता था कि दोस्त को धनुष की तरह होना चाहिए कि मौके पर झुक जाय और चोट करे दुश्मन पर। अरे दोस्त वह जो इज्जत में खाक बनकर नहीं, इन्सान बनकर रहे।

उन्होंने स्नेह से कौल की ओर देखा। कौल ने कहा, "अब देखना, रुपया मेरे हाथ में देखते ही मेरी खुशामद करेगा।" उस्ताद मुस्करा दिए।

जैगोपाल कहने लगा, "मनोहर की बीमारी सिर्फ एक बहाना है।"

उस्ताद चौंक उठे। उन्होंने कहा, "यह कैसे मालूम हुआ ?"

जैगोपाल की बात सुनकर फतहचन्द ने कुर्सी आगे खिसकाई और घूरने लगा। उसकी दृष्टि में न उत्सुकता थी, न जीवन।

जैगोपाल कहता रहा, "कमजोर आदमी है, नौकरी मिलती नही। इसलिए बीमारी की आड़ मे अपनी निर्बलता को छिपाता है। अगर वह बीमार न रहे तो शायद जिन्दा भी नही रह सकता।"

और वह यह कहकर हंस पड़ा। फतहचन्द ने कहा, "कम से कम वहां अस्पताल में मुफ्त की मिलती होगी और कोई कहने-सुननेवाला भी नहीं है।"

उस्ताद हंस दिए। जैगोपाल ने फिर कहा, "मैं अस्पताल गया था। मैंने देखा, वह चुपचाप पड़ा इधर-उधर आती-जाती नर्सों को अतृप्त आंखों से देख रहा था।"

फतहचन्द ने कहा, "नर्सों पर नजर पड़ी है जनाब की। बीवी आई तब से खुद तो सम्हलते नहीं, अब उधर भी ? नर्सों को तो रुपये की जरूरत है, वर्ना हिन्दुस्तानियों को वे जरा कम मुंह लगाती हैं।"

उस्ताद ने इधर-उधर देखा। उनका जी नही लगा। उन्होंने पूछा, "रमेश क्यों नहीं आया ?"

"हिसाब जो बढ़ गया है!" और वह एक भद्दी हंसी हंसा।

"तो तुम उसे रुपये दे दो न कुछ ?" उस्ताद ने कहा।

"तो तुम ही क्यों नहीं दे देते ?" जैगोपाल ने व्यंग्य से पूछा।

"मेरे पास होते तो दे देता। कल ही फीस के रुपयों में से मैंने कौल को रुपए दे दिए, वर्ना मौके पर मैं काम न आता ?"

जैगोपाल चुप हो गया। वह कुछ भी निश्चित नहीं कर सका। उस्ताद उसको पैनी नजर से काटते रहे।

फतहचन्द ने टोककर कहा, "नहीं उस्ताद! यह बात गलत है। मैं इसमें विश्वास नहीं करता। रुपए देना, सो भी इस तरह, मैं तो इसे ठीक नहीं समझता, न ऐसा कर

सकता हूं। तुम्हीं बताओ, आजकल कोई इतना अमीर है कि एकदम ऐसी चोट खा सकने का खतरा मोल ले ?"

उस्ताद ने सुना और समझा। वह उसकी ओर देखते रहे। फतहचन्द ने गम्भीर होकर कहा, "मान लीजिए, वह आपको रुपए नहीं देता..."

"खैर !" उस्ताद ने काट दिया, "यह तो सोचना ही गलत है।"

फतहचन्द ने कहा, "वह तो हो सकता है। मगर मैं एक बात कहता हूं। देखिए, आजकल जमाना ऐसा खराब है कि यह नहीं जान सकते कि कौन कब किसके चूना दे जाएगा।"

उस्ताद ने कहा, "भलमनसाहत भी तो कोई चीज होती है ?"

"होती होगी !" फतहचन्द ने अविश्वास से कहा।

"हां," जैगोपाल ने असंदिग्ध स्वर से कहा, "फतह की बात भी ठीक ही समझनी चाहिए। रुपए-पैसे का ऐसा हिसाब रखना ठीक नहीं होता। और भाई ! बड़े आदमियों के यह खेल हम लोगों को खेलना भी नहीं चाहिए। इन बातों से एक-एक बात चुभती है, एक-एक मिनट पर मनमुटाव होता है और फिर जलालत की गन्ध आने लगती है।"

उस्ताद चुप हो गए। वह मन ही मन सब कुछ समझ गए थे। यही लोग थे जिनको उन्होंने जी खोलकर चाय और सिगरेटें पिलाई थीं। तब इनके पास कोई सिद्धान्त नहीं था। आज मौके पर सब पैगम्बर बने बैठे हैं ! उन्होंने कहा, "खैर ! देखा जाएगा ! लेकिन आजकल कौल दिखाई नहीं दिया। पूछो तो बॉय से। आया था क्या ?"

जैगोपाल ने बॉय को बुलाया। उसने कहा, "कौल साहब आए थे ?"

"जी नहीं !" बॉय ने उत्तर दिया।

"आज आए ही नहीं ?" फतहचन्द ने पूछा।

"जी नहीं, आज वह आए ही नहीं।" बॉय ने ऊबकर उत्तर दिया।

"अच्छा जाओ !" सुनकर वह चला गया और बाहर धूप में बैठकर कुछ गुनगुनाने लगा और कटोरदान खोलकर चने की रोटियां निकालकर खाने लगा। तब तक फतहचन्द के चेहरे पर एक मुस्कान आई और ऐसे चली गई जैसे कॉलिज की चंचल लडकी जान-बूझकर सिर से पल्ला गिराकर फिर ओढ़ लेती है। उसने एक बार गर्व से इधर-उधर देखा।

जैगोपाल उठ खड़ा हुआ।

फतहचन्द ने कहा, "अच्छा, तो मैं चलूं उस्ताद ! आज जरा गांव जाना चाहता हूं। एक रिश्ते की चाची मर गई है। उसकी जमीन है। रिश्ते के लोग हड़प लेंगे। इसी से जाना पड़ रहा है।"

जैगोपाल ने कहा, "तो चलो ! मैं भी जरा डाकखाने होता हुआ जाऊंगा उधर से। आज एक खत डाल रहा हूं घर। जाने क्यों अबके बड़े मियां ने मनी आर्डर भेजने में इतनी देर कर दी ?"

दोनों चले गए। उस्ताद फिर भी बैठे रहे। थोड़ी देर बाद कुछ विचार आया, उठे और कौल के घर की तरफ चल दिए। रास्ते में खयाल आया, कहीं ओछा न समझें कि आज नहीं देखा तो पीछे ही चले आए। सोच लिया : कहेंगे, कोई कह रहा था कि कौल बीमार हो गया है। तब तो उल्टे ही अहसान मानेगा।

दरवाजा खटखटाया। एक बच्चे ने निकलकर पूछा, "क्या है ?"

"कौल है ?" उन्होंने मुस्कराकर पूछा।

"वह तो सुबह से ही कहीं चले गए हैं।"

जाने क्यों उस्ताद को लगा कि यह जवाब बच्चे को रटा दिया गया है। कुछ नहीं कहा। बच्चा उनकी ओर बड़ी-बड़ी अबोध आंखों से देखता रहा। जब उस्ताद कौल के घर से लौटे, दिमाग मे एक भयानक सुस्ती थी। शंका का पक्षी अपने पर फड़-फड़ाने लगा था। क्या बात है ? आखिर वह गया कहां ? पहले तो कहता था कि तुमसे मिले बिना मुझे एक क्षण चैन नहीं मिलता। कहीं इसी वजह से तो गायब नहीं हो गया ?

उस्ताद सुस्त-से बैठ गए। गला चटक रहा था। उन्होंने आवाज दी, "बॉय ! एक प्याला चाय !"

सिर उठाकर जब उन्होंने देखा, सामने रेस्तरांवाला खड़ा था। उसके मुख पर कठोरता थी। बेपानी आंखों को देख उन्हें उस पर गुस्सा-सा आया।

"क्या है ?" उन्होंने दृढ़ता से पूछा।

"सरकार ! अब तो सुनवाई हो जाए।"

"क्यों, इतनी जल्दी क्या है ?"

"जल्दी!" रेस्तरांवाला उद्दंडता से बोला, "रुपया-रुपया करके हम गुजारा करते हैं और आपने कह दिया बाबूजी जल्दी !" व्यंग्य उसके मुंह पर खेल गया। उस्ताद उसको देख विक्षुब्ध हो गए। इन लोगों के चेहरों पर जो यह तुलनात्मक भाव रहता है, यही उन्हें नापसन्द था। जब हम लोग ही परेशान हैं तब इन लोगों का और भी बुरा होना आवश्यक है। इस समय इन लोगों में यह एक नई बात आ गई है कि अपने को हम लोगों के बराबर समझने लगे हैं।

"अच्छा, देखा जाएगा !" उन्होंने दृष्टि हटाकर कहा। रेस्तरांवाला कुछ देर आशा में खड़ा रहा, फिर धीरे-धीरे चला गया।

उस्ताद ने सुना, वह बुड़बुड़ा रहा था, "खाते बखत तो खा जाएं और जब हिसाब बढ़ जाय तब हुलिया तंग है।"

इच्छा हुई कि उठकर दो चांटे मार दें, किन्तु फिर दब गए। मनुष्य कितना ही ताकतवर हो, जब उसके पास पैसा न हो, वह वास्तव में बहुत निर्बल होता है। रुपये के बिना संसारी की आत्मा की सारी शक्ति खत्म हो जाती है। वह व्याकुल-सा खीझने लगता है, किन्तु उस समय भी किसी को उस पर ध्यान देने की फुर्सत नहीं मिलती।

उस्ताद के भीतर अपमान का विक्षोभ धधक रहा था।

रात के दस बजे थे। उस्ताद चुपचाप अपनी भारी कुर्सी पर बैठे थे जैसे उनका

सब कुछ लुट चुका था और संसार में उनका कहीं भी कुछ शेष न था। उनसे अच्छे आज वे मजदूर थे जो रोज दो-ढाई रुपये कमाते थे। उनकी एकमात्र बूढ़ी मां भी ज्वर से विह्वल हो, खाट पर पड़ी, घर पर कराह-कराहकर जीवन के लिए लड़ रही होंगी। आज पांच दिन से उनको वह कोई दवा नहीं पहुंचा रहे थे। क्या बुरे हैं वे दर्जी जो लड़ाई के कारण तीन-चार रुपए रोज पैदा करते थे। लड़ाई में सबने अपने-अपने घर भरे थे। एक वह थे जो कुछ भी प्राप्त नहीं कर सके। आज उनकी फीस जाने का अन्तिम दिन था। युनिवर्सिटी के क्लर्क ने चार रुपए रिश्वत के वादे पर इतनी दया दिखाई थी कि यदि वह रात को भी उसके घर जाकर फीस दे आएं तो कल सुबह उनका भी नाम वह फेहरिस्त पर चढ़ाकर भेज देगा, किन्तु कौल अभी तक नहीं आया था।

आज उनके पास कोई भी न था। फतहचन्द गांव चला गया था। जैगोपाल एकदम रूखा था। रमेश ने आना छोड़ दिया था। मनोहर अस्पताल में पड़ा था; और आज अन्तिम आशा भी टूट गई थी। अब कोई राह न थी। घर मे अंधेरा पड़ा होगा। मिट्टी का तेल नही मिलता। वह खुद घर पर जौ-चने की रोटी बनाते थे, क्योंकि गेहूं खरीदना उनके वश की बात न थी। अपना पुराना कोट उनके शरीर पर अब भी था। कम-से-कम वह तो अभी उन्हीं के पास था। किताबें तो मांगकर भी पढ़ सकते थे। लिखने के लिए कागज नहीं मिलता, न सही। पुरानी रद्दी पर लिखकर काम चला लेंगे। इतना ही क्या कम था कि वह अभी तक पढ़ रहे थे। लेकिन फीस दाखिल करना आज रात को ही आवश्यक है। उसके बाद कुछ नहीं हो सकता। वह यदि आज रात तक फीस नही पहुंचा देते हैं, तो फिर कोई चारा नही। यह पूरा साल बरबाद जाएगा। इतने दिन तक जो वह पढ़े हैं, व्यर्थ हो जाएगा।

उस्ताद उठकर टहलने लगे। मन में विचार आया, व्यर्थ ही वह इन आदर्शों में पड़े रहे। कम से कम उन्हें कौल से ऐसी आशा न थी। उसे वह सदा अपना छोटा भाई समझते आए थे। आज उसी ने ऐसा प्रहार किया कि जो पेड़ किसी तरह तूफान मे अपना सिर उठाए था उसकी जड़ें ही कट गई !

उस्ताद सिहर उठे। उन्होंने हाथ बाँधकर इधर-उधर देखा। सामने वही छोटा-सा दिया जल रहा था। रेस्तरांवाला उसकी तरफ अब एक शंका से देखता था। उसकी दृष्टि का वह तीखापन उनमें विष की तरह जलन मचा देता। सच ही है। कब तक वह चुप रह सकेगा ? उसको भी तो खर्चा चाहिए। इस गिरानी में शराफत का दांव खेलना क्या उसी की किस्मत में बदा है ? उन्हें उसे अस्सी रुपए चुकाने हैं।

आकुल होकर उन्होंने ऊपर देखा। आसमान में तारे घूम रहे थे। वही तारे जिनके बारे में उन्होंने कल तक बात की थी कि मनुष्य एक दिन इतना सभ्य हो जाएगा कि वह उन तारों पर पहुंच जाएगा। लेकिन तारे बहुत दूर हैं।

मन छटपटा उठा। भाड़ में जाएं तारे। आज यह पृथ्वी ही इतनी भारी हो गई है कि तारों का स्वप्न भी एक अभिशाप हो गया है। उन्होंने दृष्टि हटा ली।

किसी ने भीतर ही भीतर कहा, व्यर्थ की शान में क्या रखा है ? क्यों न कहीं

लड़ाई की क्लर्की कर लें ? कम-से-कम पेट तो भरेगा। मां की दवा-दारू तो हो सकेगी। फीस तो अब नहीं जा सकती। इसकी तो उम्मीद करना बेकार है।

कल उनका कॉलिज के रजिस्टर से कट जाएगा। आज तक वह विद्यार्थी हैं, कल वह आवारा कहलाएंगे।

उस्ताद को एक कंपकंपी-सी आई। उन्होंने बाहर झांका। सड़क पर कुहरा छा गया था। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। अंधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं देता था। वह विक्षुब्ध होकर कुर्सी पर बैठ गए और फिर सोचने लगे।

चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा नज़र आता था। उन्हें झुकना पड़ेगा। झुकना! हिन्दुस्तान में झुकता कौन नहीं ? जो हजार-हजार तनख्वाह पाते हैं वे क्या सिर उठा सकते हैं ? सभी अपना पेट भरने की फिक्र में रहते हैं। जिसके पास ज्यादा पैसा हुआ वही शरीफ कहलाने लगा। ज़माना उसकी इज्जत करता है। जिसके पास पैसा है वही काम-काजी है। दस आदमी उसकी प्रशंसा करते हैं। और उनके पास वही नहीं है जिससे कोई उनकी तरफ देखे। उन्होंने अनेक वर्ष इस कॉलिज में बिताए हैं। आज जब लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे ? उन्होंने सदा दूसरों को यह दिखाया है कि उनके पास धन की कोई कमी नहीं। उन्होंने ट्यूशन किए तो इसलिए कि जमाना उन्हें खूब खर्च करने के लिए कमाने वाला समझे। पहले भाई देते थे, किंतु जब से उन्होंने ब्याह किया है, साफ जवाब दे दिया है कि उन्हें पढ़ना छोड़कर नौकरी करनी चाहिए। दुनिया-भर के लड़के कमाई कर रहे हैं। लड़ाई के बाद पढ़ाई-वढ़ाई देखी जाएगी। आखिर इस महंगाई में वह अपनी गिरस्ती संभालेंगे या ऐसे कामों में पैसा खर्च करेंगे ? पढ़ाई एक ऐश है, खाना जरूरत है।

उस्ताद की कुछ भी समझ में नहीं आया। वह फिर उठ खड़े हुए। कहां हैं वे दोस्त, जो उन्हें ढाढ़स बंधाते थे ? कहां हैं वे जो उनके बोलने के पहले उनकी तरफ से जवाब देने को तैयार रहते थे ? आज कहीं कोई नहीं है।

हवा का एक ठंडा झोंका भीतर घुस आया। उनके पुराने कोट को भेदकर ठंड उनकी खाल से टकरा गई। वह कांप उठे। कॉलर बंद कर दिया। जी में आया, एक गर्म-गर्म प्याला चाय का मंगाकर पिएं। आदत के मुताबिक सोचते ही आर्डर देना चाहा। मगर खुला मुह खुला का खुला रह गया। जैसे किसी ने पीछे से गर्दन कसकर भींच दी। जो कगार कट चुका है उसको कौन रोक सकता है ? कौन मूर्ख होगा जो भंवर में अपनी नैया डाल देगा ? किस मुंह से वह आर्डर दें और वह चाय लाए ? उस जख्म में चाकू घुमड़ने से दुगुनी तकलीफ होगी जो ठीक जिगर के ऊपर हुआ है।

चाय नहीं आई। ठंड बढ़ती रही। आसमान से कुहरा बरसता रहा। उस्ताद कुर्सी पर बैठे रहे।

घर जाकर भी क्या होगा ? उस अंधेरे में क्या होगा जाकर ? लेकिन मां जो तड़प रही होगी, जिसने इतने दिन खून का पसीना करके उन्हें पाला था। जिसके जीवन पर उसका दारोमदार था। जिसके भविष्य की आशा पर उसने अपना सारा ईंधन

आग में डाल दिया था। और आज वह हड़िया भी कच्ची ही निकलेगी तो उसका क्या हाल होगा ? कैसे संभालेगी अपने टुकड़े-टुकड़े होते अरमानों को वह अरक्षणीया ? क्या बड़े भाई की ठोकर काफी नहीं थी उसका चिरसंचित दुलार चूर-चूर कर देने को ?

उस्ताद मुंह छिपाकर एक बार रो-से उठे। किन्तु फिर साहस करके सिर उठाया।

इसी समय उन्होंने सुना, रेस्तरांवाले से कोई बाहर बात कर रहा था। वह सुनने लगे। ऐसा लगा जैसे किसी ने उनका नाम लिया हो, जैसे कोई उन्हीं के बारे में पूछ रहा हो। क्यों न वह स्वयं बाहर जाकर देख लें ? क्या ठीक है, बात वही हो। मुमकिन है, कौल आया हो और उनके बारे में पूछ रहा हो। ऐसा न हो कि रेस्तरांवाले इस डर से बैठेंगे तो फिर चाय मांगेंगे और लाचार होकर पिलानी पड़ेगी, हिसाब बढ़ेगा ही, उसे टाल दें कि भीतर कोई नहीं है। कहीं ऐसा हुआ तो उल्टे वहीं वह डाटेगा और नवाबी बीच में यही कहेगा कि आप कमीन तो जमाने को कमीन समझते हैं। उन्हें मन ही मन इतना सोच-विचार करने पर अफसोस हुआ। व्यर्थ ही इन्होंने उस पर सन्देह किया। दोस्त ऐसी बातों में धोखा नहीं देते।

शर्मिन्दा-से बाहर आए और इधर-उधर देखा। रेस्तरांवाले से बात करने वाला जा चुका था। अकेला बैठा वह अंगीठी पर खांस रहा था और खांसने के बीच-बीच में बुड़बुड़ाता जा रहा था। यह उसकी आदत थी। उस्ताद जानते थे। फिर भी एक बार विश्वास करने के लिए उन्होंने पूछा, "क्यों जी, यहां कौन आया था ? कौन बात कर रहा था ?"

"एक आया था बाबू, चला गया।" एक टालू उत्तर को सुनकर उन्होंने फिर पूछा, "अरे ! कौन, कौल साहब आए थे ?"

रेस्तरांवाले ने कठोर स्वर में कहा, "न कौल आए, न बौल।"

और उस्ताद ने उसकी धीमी होती बड़बड़ाहट भी सुनी, "अजी, इन चकमों में क्या रखा है, पहले तो उड़ा दिए, अब दूसरों से मांगते फिर रहे हैं।"

उस्ताद धम्म से कुर्सी पर गिर गए। रेस्तरांवाला फिर भी बड़बड़ाता रहा, "और कौल ही कौल दे गए हैं ? पचास से तो ऊपर है, यहां डबल तक नहीं चुकाया··· परमात्मा की मर्जी है···सता लो जितना सता सको···वह भी एक-एक को देखेगा।···"

हवा का झोंका दीये को बुझा गया। वह अंधेरे में रह गए।

[मई '47 से पूर्व]

देवदासी

उस समय मन्दिर निर्जन हो चुका था। निस्तब्धता सनसना रही थी। बाहर घोर अन्धकार था। आकाश में बिजली कड़क रही थी। उस युवक ने तलवार को टेका और उठ खड़ा हुआ। भीतर सब काम कर चुकने पर पुजारी ने सोचा कि अब शीघ्र ही उसे प्रतिमा के चरणों पर शीश रखकर सोने जाना चाहिए।

पल्लव-राज के इस विशाल मन्दिर में कामाक्षी का यह भव्य स्वरूप देखने के लिए दक्षिणापथ के अनेक भागों से लोग आकर एकत्रित होते थे। तीन सौ वर्ष पहले सात-वाहनों के अन्त पर सम्राट् विष्णुगोप ने पल्लव साम्राज्य को स्वतन्त्र कर दिया था। उनके उत्तराधिकारी आज कदम्बों और गांगेयों के भी प्रभु थे। पेलार नदी के पास काञ्ची का भव्य नगर भुवन-विख्यात था। राजप्रासाद के विराट् अलिन्दों में दिन में अगरू-धूम जलता, रात्रि में दीपाधारों से प्रकाश जगमगाता। बाजार-हाट में सुदूर जावा-सुमात्रा के व्यापारी आ-आकर बैठते। समुद्र-तीर पर अनेक सफेद पाल वाले जहाज खड़े रहते, प्रकाश-स्तम्भों से रात को किरणें फूट-फूटकर अथाह सागर की चंचल जलराशि पर खेल उठतीं। महेन्द्र के समान विक्रमी सम्राट् सिंहविष्णु के चरणों पर आज प्राचीन चोल और पाण्ड्य के रत्नजटित मुकुट रखे थे, चालुक्य राज ने मैत्री का कर बढ़ा दिया था। सम्राट् सिंहविष्णु युवावस्था को आज से अनेक वर्ष पहले पार कर चुके थे। राजकुमार महेन्द्रवर्मा की सन्त अप्यारस्वामी के प्रति श्रद्धा होना प्रजा में प्रसिद्ध हो चुका था। क्योंकि वह पिता की आज्ञा के बिना ही नगर के ईशान कोण में शैव मन्दिर बनवा रहे थे।

पुजारी रत्नगिरि ने इधर-उधर देख भक्ति से प्रतिमा को प्रणाम किया और सोने चला गया। प्रायः आधी रात बीत गई। आकाश में बादल गरज रहे थे। मन्दिर का विशाल प्रांगण पानी से भीग गया था। उसी समय बिजली बड़े वेग से कड़क उठी। मंदिर का विशाल गोपुर अन्धकार में एक बार चमक उठा। युवक तलवार लिये कुछ देर खड़ा रहा, फिर बाह्य परिवेष्टि को लांघकर भीतर अलिन्द में आ गया। वह एक स्तम्भ के पीछे हो गया और अन्धकार में कुछ देखने का प्रयत्न करने लगा।

किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर धीरे से कहा—"आ गए रंगभद्र?"

रंगभद्र ने मुड़कर कहा "तुम बुलाओ और मैं न आता रुक्मिणी! देवदासी का कहना तो भगवान् भी नहीं टाल सकते फिर मैं तो साधारण मनुष्य हूं।"

"तुम सचमुच बड़े साहसी हो कुमार !" देवदासी ने धीरे से कहा। युवक ने उसका यह दीर्घ निःश्वास भी सुना। उसने उद्वेग से उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—"रुक्मिणी, मैं कब तक तुम्हारी अवहेलना में तड़पता रहूंगा ? कब तक मैं उस भविष्य के सागर में लहरों की दया पर अपना पोत भटकाता रहूंगा ? आज प्रायः एक वर्ष बीत गया। अब मुझे फिर सिंहल लौट जाना होगा। अब के मैं सिंहल के बहुमूल्य मोती काशी भेजने का व्यापार करना चाहता हूं। चलोगी मेरे साथ ?"

देवदासी ने कुछ नहीं कहा। वह चुपचाप देखती रही। युवक ने फिर कहा—"सुन्दरी, तुम किस चिन्ता में डूब गयी हो ? धन की कमी नहीं, धर्म की कमी नहीं, अधिकार की कमी नहीं, प्रेम की कमी नहीं, और तुम रूपशालिनी हो तो फिर मुझे रूप की कमी नहीं—फिर तुम्हें कौन-सी चिन्ता खाये जा रही है ?"

देवदासी कांप उठी। उसने धीरे से कहा—"धीरे कुमार, धीरे, कहीं देवता न सुन ले। मैं जाती हूं।"

वह सचमुच एकदम चली गयी और युवक के कण्ठ में उसका स्वर अटककर रह गया।

मन्दिर का विशाल अलिन्द सूना हो गया। युवक लौट चला।

दो

दूसरे दिन पुजारी ने पूजा समाप्त करके बाह्य प्रवेशद्वार के पास आकर देखा, सूर्य्यमणि भक्ति से नमस्कार कर रही थी। उसने गद्गद होकर उसे आशीर्वाद दिया। सूर्य्यमणि के श्याम मुख पर उस स्वर्ण मुकुट की हल्की प्रभा छिटककर उसे किंचित् हरिनाभ बना रही थी। उसके सफेद चीनांशुकों में वह सुघर अंग-संगठन किसी चतुर शिल्पी की कला का अद्भुत प्रमाण लगता था। रत्नों और आभूषणों से लदी वह कुमारी, मानसरोवर के मांसल इन्दीवर-सी पुलक उठी। उसके विशाल नयनों की कोरों में शतदल के कांपते दलों की लालिमा, चपल चितवन की विद्युत-वाहिनी तृष्णा को सहला देती थी। उसने कहा—"देव, आप आजकल मुझे कभी रामायण नहीं सुनाते ! पहले तो आपका स्वर गूंजता था। रुक्मिणी नृत्य करती थी। समस्त मंदिर गूंज उठता था। माता कामाक्षी की प्रतिमा के अधरों पर मुस्कान छा जाती थी···।"

"बेटी," पुजारी ने मन्दस्मित से कहा—"रत्नगिरि तो तत्पर है, किन्तु तू जब से राजमाता की सेवा में जाने लगी है तब से तुझे देव-सेवा का समय ही कहां मिलता है ? अब तो तू सेनापति के पुत्र धनंजय की पत्नी होने जा रही है न ?"

"हां, भगवन् !" सूर्य्यमणि ने अपने पांव के अंगूठे को लाज से देखते हुए कहा, "लेकिन मैं आज रामायण सुने बिना नहीं जाऊंगी।"

"अरे, तेरा हठ नहीं गया, पगली !" रत्नगिरि ने हर्षित होते हुए कहा और फिर उसने आवाज दी—'रुक्मिणी !"

रुक्मिणी स्तम्भ के पीछे से निकलकर आ गयी।

वृद्ध पुजारी ने कहा—"बेटी, सूर्य्यमणि रामायण सुनना चाहती है।"

"ओह," रुक्मिणी ने पुलकते हुए कहा—"मुझसे ही क्यों न कह दिया? अभी लो।"

कुछ ही देर बाद उस अलिन्द में लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। सूर्य्यमणि ने देखा, धनंजय भी खड़ा है।

वृद्ध रत्नगिरी ने स्वस्तिवाचन किया और मृदंग पर थाप पड़ी। उधर देवदासी रुक्मिणी का नूपुर बज उठा। ट्रिम-ट्रिम के उस अप्रतिहत नाद पर यौवन से स्फीत कमल-चरण का मंथर चलन-स्तम्भों से टकराकर समस्त अंतराल में कांप उठा। युवक धनंजय के नयन गड़ गए। देवदासी आज मेनका-सा नृत्य कर रही थी। रत्नगिरि गाने लगे। उनके गम्भीर स्वर से लोगों के हृदयों में एक पवित्र भावना छा गयी। नर्त्तकी के अंग-चालन का मादक उल्लास धनंजय की धमनी-धमनी में डोल उठा। सूर्य्यमणि ने एकाएक दृष्टि उठाकर देखा, धनंजय मन्त्रमुग्ध-सा लोलुप दृष्टि से देवदासी के उच्छृंखल यौवन को खा रहा था। वह चंचल हो गयी। शंका और ईर्ष्या ने उसके हृदय पर आघात किया। देवदासी नृत्य करती रही, रत्नगिरि गाता रहा और सूर्य्यमणि ने देखा, धनंजय के पास गयी। धनंजय ने उसे मुड़कर भी नहीं देखा। सूर्य्यमणि के लिए समस्त सौन्दर्य विष हो गया। वह एकाएक चिल्ला उठी—"रोक दो यह नृत्य! यह नृत्य रोक दो! नहीं, नहीं, यह नृत्य नहीं है···!"

देवदासी विभोर होकर नाच रही थी। एकाएक उसके पैर ठिठक गए, जैसे किसी ने उस पर वज्र का आघात किया हो। उसने देखा, सूर्य्यमणि उसे ज्वलन्त नेत्रों से देख रही थी। रत्नगिरि गाना रोककर उठ खड़ा हुआ। एकत्रित जनसमुदाय कोलाहल करने लगा।

देवदासी क्रोध से फुंकार उठी—"देवदासी का अपमान करना देवता का अपमान करना है मूर्ख लड़की! यदि तेरे हृदय में पाप है तो तू मन्दिर छोड़कर चली जा।"

इससे पहले कि रत्नगिरि कुछ कहे, रुक्मिणी परिक्रमा की ओर चल पड़ी। उन्मत्त सा धनंजय उसके पीछे चल दिया। सूर्य्यमणि कटे वृक्ष-सी भूमि पर गिरकर रोने लगी। समुदाय तितर-बितर होने लगा। रत्नगिरि कुछ भी नहीं समझा। इस प्रकार अकारण व्याघात से उसका चित्त सूर्य्यमणि से उदासीन हो गया। वह उठकर भीतर चला गया। सूर्य्यमणि स्तम्भ के किनारे रोती रही।

तीन

वृद्ध सिन्धुनाद कवि था। सूर्य्यमणि उसकी एकमात्र पुत्री थी। जब वह गाता था साम्राज्य का बड़े-से-बड़ा कठोर हृदय सेना का उच्च पदाधिकारी झूम उठता था। उसके गीतों को आज पल्लव ही नहीं, चोल और पाण्ड्य के घर-घर की स्त्रियां गाती, पुरुष मुग्ध होकर सुनते और सम्राट् सिंहविष्णु उसे अपने भाई के समान प्यार करते। देवदासियां उसके गीतों पर जिस तन्मयता से नृत्य करती उसे देखकर लगता जैसे वह सचमुच देवकन्या हों। उसके गीतों की प्रवहमान लय प्राची से पश्चिम तक गगन में

अनन्त वर्णों से भरी नीलिमा की छाया-सी कांपती रहती और प्रेम और करुणा का वह स्रोत कहीं भी समाप्त नहीं होता, कहीं भी जैसे विश्रांति को आवास न मिलता।

सिन्धुनाद इस समय वीणा के तारों पर उंगलियां फेरकर यौवन के खोये हुए स्वर का उत्ताप ढूंढ़ रहे थे। उनके शरीर पर बहुमूल्य रेशम मन्द-मन्द वायु में फहरा रहा था। उनके प्रकोष्ठ की दीवारों पर सुदूर ताम्रलिप्ति के प्रसिद्ध चित्रकारों ने अद्भुत चित्र अंकित किए थे। स्फटिक के स्तम्भों पर दीपों का झिलमिल प्रकाश प्रतिध्वनित हो रहा था जैसे बादलों में बिजली चमक रही थी। मादक सुरभिवाही समीर जब अगरु-धूम की कबरी खोलकर नृत्य करने लगता था तो दीवारों पर छायाएं मुद्रा बनाने लगतीं और वीणा के करुण स्वर रुमझुम करते वायु की लहर-लहर पर गा उठते।

सिन्धुनाद इस समय दमयन्ती का विलाप गा रहे थे। उनकी यह कविता अजर-अमर हो जाएगी। आज उनके भाव सीमा में नहीं थे। नल चला गया है। दमयन्ती पेड़-पेड़ से पूछ रही है, मृग-मृगी कातर होकर रो पड़े हैं, आकाश में प्रतिपदा का चंद्र उग आया है, सघन वनस्पति पर उसकी विलोल-मुखरा किरणें कांप रही हैं जैसे सागर पर फेन कांप रहे हों, जैसे श्यामा सुंदरी के कर्णफूलों की आभा से कपोलों पर प्रकाश रण-रण करता अवगुण्ठन खींच रहा हो।

सिन्धुनाद तन्मय होकर विभोर हो गए। एकाएक भारी-भारी श्वास लेती सूर्य्यमणि ने प्रवेश किया और चुपचाप पास बैठकर सुनने लगी।

दमयन्ती उस समय आकाश के तारों से पुकार-पुकार कर पूछ रही थी—"हे नील असीम के बुद्बुदो! हे अनंत कबरी के शीशफूलो! कहां है वह मेरे हृदय की एक-मात्र सांत्वना?"

सूर्य्यमणि रो उठी। वृद्ध का स्वप्न टूट गया। गीत के आवर्त्तों में पड़कर सूर्य्यमणि के टूटे प्यार की भग्न नौका भटके खाने लगी। वह पिता की गोद में सिर रखकर रोने लगी। वृद्ध ने एक हाथ से वीणा को हटा दिया और फिर उसने कहा—"क्या हुआ वत्से?" पहले उसने समझा शायद गीत को सुनकर रो रही है। सूर्य्यमणि ने कुछ नहीं कहा। वह रोती रही। उसके मुख की पत्रलेखा बिगड़ गयी। वृद्ध ने उसका सिर उठाया। वेदना से उसका मुख कातर हो उठा था। वृद्ध का हृदय विह्वल हो उठा। उसने कहा - "पुत्री, तुझे किस बात का शोक है? मैंने आज तक कभी तेरी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया। आज तक तू ही जीवन का एकमात्र सहारा रही है। फिर तेरे नयनों में यह व्याकुल अश्रु किसलिए? करुण रात्रि की भांति तेरे इन पंकज-दलों पर यह नीहार-कण क्यों?"

सूर्य्यमणि ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह रोती रही। उस समय कवि को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे साक्षात कामाक्षी आज स्खलित कण्ठ से उच्छ्वासरुद्ध-सी आर्त्तमना सिसक उठी थी। उसके नयनों में आंसू छा गए। देर तक दोनों कुछ न बोले। सिन्धुनाद अपनी पुत्री के सिर पर हाथ फेरते रहे, जैसे उन्होंने कविता को सहला दिया था। सूर्य्यमणि के सघन सुचिक्कण केशों पर वृद्ध का वात्सल्य से भरा आर्द्र श्वास ऊष्मा से

भरकर बिखर गया। सूर्य्यमणि का हृदय उद्वेग से बारंबार ठोकर खाकर गिर जाता और आंसू बह-बह आते।

वृद्ध ने आंदोलित होकर कहा—"सूर्य्ये, कह न ? क्या कष्ट है तुझे, जो पावस की नदी की भांति तेरे आंसू अज्ञातवास करने निकले जा रहे है ?"

सूर्य्यमणि ने सिर उठाया। आंखों में आंसू चमक रहे थे, जैसे हीरक के चषक में वारुणी छलक रही थी। डबडबाते अश्रु प्रभात के उज्ज्वल प्रकाश के समान कांप रहे थे अथवा जैसे सीप में मोती जगमगा उठे हों।

"सूर्य्यमणि," वृद्ध ने फिर कहा—"पल्लव के इस समुद्र पर्यंत साम्राज्य में मैं तेरे अतिरिक्त किसी को भी इतना भाग्यशाली नही गिनता था। आज तेरी आंखों में यह अश्रु क्यों ? सिन्धुनाद ने वही किया जो तूने चाहा। जिसके लिए राजकुमारियां लालायित थी उस कामदेव के सदृश लावण्य-मनोहर धनंजय की तू पत्नी होने वाली है फिर तुझे कैसा दुःख ?"

सूर्य्यमणि ने धीरे से कहा—"पिता, वह मेरी उपेक्षा कर रहा है। आज देवमंदिर में एक साधारण नर्त्तकी के पीछे पागल-सा घूम रहा था। मैं हृदय की साक्षी करके कहती हूं, उसने मुझे एक बार भी मुड़कर नही देखा।"

"यह नही हो सकता सूर्य्यमणि, यह नही हो सकता।" वृद्ध सिन्धुनाद उठ खड़े हुए। "किन्तु," उन्होंने कहा—"प्रेम में बल नही चल सकता। मैं जानता हूं, धनजय युवक है। यौवन प्रेम के अतिरिक्त लोभ में भी पड़ सकता है। किन्तु बल-प्रयोग भी तो नहीं किया जा सकता। मैं उसे समझाऊंगा पुत्री, इतनी व्याकुल न हो ?"

"नहीं," पिता से उच्छ्वसित सूर्य्यमणि ने कहा—"नर्तकी मुझसे भी सुन्दर है। उसका रंग तुहिन-सा श्वेत, कमल-सा लालिम, रेशम-सा चिकना है और सागर-सा गंभीर रूप है। उसमें अनावृत यौवन है, मादकता में वह मेनका जैसी है। उसके नयनों में त्रिभुवन कांपते हैं, मेखला की प्रभा से उसकी मन्द-मन्द गति में भुवनमोहिनी वशीकरण की शक्ति आ जाती है। उसकी कोमल बाहु जब नृत्य करने में लचकती है, तब स्वर्ग का सुख जैसे तुला पर टंग जाता है। उसके केशों की सुरभि से देवमंदिर कमल-वन की भांति सुगन्धित रहता है, उसकी मांसल गरिमा पर चीनांशुक ऐसे दिखाई देता है जैसे शरद् के प्रसन्न आकाश में धवल स्वर्ण-गंगा का मुखरित प्रवाह हो···।"

सिन्धुनाद हठात् बोल उठे—"सूर्य्यमणि, वह कौन है ?"

सूर्य्यमणि ने पराजित स्वर में कहा—"पिता, वह देवदासी रुक्मिणी है।"

"देवदासी रुक्मिणी !" उनके मुख से आश्चर्य से निकल गया।

"हां, पुजारी रत्नगिरि की पुत्री रुक्मिणी।"

"ओह !" कहकर कवि सिंधुनाद बैठ गए जैसे एकाएक चलते-चलते महानद थम जाय और समस्त लहरों का कलकल नाद क्षण-भर के लिए रोककर स्तब्ध हो जाय। उन्होंने कहा—"सूर्य्यमणि, तू जा। मुझे सोचने दे।"

सूर्य्यमणि चकित-सी लौट आयी। वृद्ध सिंधुनाद को कुछ भी नही सूझा। वह

चुपचाप वैसे ही बैठे शून्य दृष्टि से सामने जलते दीपाधार में कांपती शिखाओं को देखते रहे।

चार

रात्रि के निरावरण नीलाकाश में सहस्रों नक्षत्र टिमटिमाने लगे। पुजारी रत्नगिरि सोच में पड़ गया। उसके वृद्ध मुख पर चिंता की रेखाएं खिंच आयीं। कुछ देर वह टहलता रहा। वृद्ध सिन्धुनाद ने कहा—"तुम जानते हो रत्नगिरि, सब कुछ जानते हो। पर देवदासी के प्रति धनंजय का हृदय आकर्षित है यह तुम भी नहीं जानते, मुझे इसका विस्मय है।"

"तुम भी वृद्ध हो गए हो सिन्धुनाद ! जीवन भर जिसने अटूट विश्वामित्र सा दर्प कभी नीचा नहीं होने दिया, जिसके पवित्र जीवन से संसार विस्मित हो उठा था, जिसके सामने सम्राट सिंहविष्णु एक साधारण नागरिक की भांति सिर झुकाकर खड़ा रहता है उसकी बात पर तुम सन्देह कर रहे हो ? जिसने तुम्हारे जीवन के महानतम पाप को छिपाने के लिए अपने युग-युग के संचित तप और यश को ठुकरा दिया, जिसने ब्रह्मचारी होकर भी केवल तुम्हारी मित्रता के लिए रुक्मिणी को अपनी पुत्री कहकर प्रसिद्ध कर दिया, उसकी बात पर तुम अविश्वास कर रहे हो ?"

सिन्धुनाद ने कम्पित कण्ठ से कहा—"मित्र, यह तुम क्या कह रहे हो ?"

रत्नगिरि ने कहा—"तुम मेरे बाल्य-सखा ही नहीं, गुरुभाई हो। तुम कवि हो। सौन्दर्य को छलना ही तुम्हारे अन्तस्तल की अन्तिम प्रेरणा है। जिस दिन तुमने राजकुमारी इंदिरा को देखा था उसी दिन मैंने तुमसे कहा था कि तुम भूल कर रहे हो। किन्तु तुमने कुछ भी नहीं सुना। आज से बीस बरस पहले जब तुम रुक्मिणी को गोद में लेकर आए थे मैंने उसे बिना हिचकिचाए गोद में उठा लिया था। राजकुमारी इंदिरा आज राजमाता इंदिरा है। आज संसार उसके पुण्य की गाथा गा रहा है। वह नहीं जानती कि उसका पाप आज भी जीवित है। उससे कह चुका हूं कि रुक्मिणी मर चुकी है। किन्तु सिन्धुनाद, आज जब वह पाप मानव-सत्ता के परम पुण्य के रूप में मुझे एकमात्र सान्त्वना दे रहा है, तुम उस पर लाञ्छन लगा रहे हो ? रुक्मिणी की पवित्रता तुषारधौत शतदल के समान है, देवता में उसकी भक्ति सुमेरु के समान है। उसने अपना तन-मन-धन देवता की सेवा में अर्पित कर दिया है। वह मनुष्य से प्रेम कर सकती है। मैं उसे नहीं दे सकता। देवी कामाक्षी की शपथ है, मैं उसे नहीं दे सकता।"

"तब तो सूर्यमणि रो-रो कर मर जाएगी ?" सिन्धुनाद ने करुण स्वर में कहा—"बोलो रत्नगिरि, मेरा इस संसार में और कौन है ? किसलिए मैं इतनी माया-ममता को परवश सा आज भी सहेजे बैठा हूं। यश नहीं चाहिए, धन नहीं चाहिए। सांसारिक भोगों से मैं तृप्त हो चुका हूं। देवदासी रुक्मिणी को कुछ दिन के लिए तुम छिपा नहीं सकते ? धनंजय उसके पीछे पागल हो रहा है। यदि यह दीपशिखा उसके सामने रहेगी तो वह शलभ की भांति परिभ्रमण करके अपने पंख जला लेगा। देवदासी से कभी भी उसका

विवाह नहीं हो सकता। फिर सूर्य्यमणि के जीवन पर आघात किसलिए ?"

रत्नगिरि गम्भीर स्वर से चिल्ला उठा—"सिन्धुनाद, रुक्मिणी भी तुम्हारी पुत्री है। क्या तुम एक पुत्री के लिए दूसरी का अहित करना चाहते हो ? जब संसार में तुम्हें राजकुमारी इंदिरा से बढ़कर कुछ भी नहीं था उस समय रुक्मिणी ही तुम्हारी संतान थी। क्या अब तुमको उससे तनिक भी स्नेह नहीं ? क्या संसार के नियमों में तुम्हारा हृदय इतना कायर हो गया है कि यदि संसार नहीं कह सकता तो तुम भी उसे पुत्री नहीं मान सकते ?"

सिन्धुनाद उद्भ्रांत से इधर-उधर घूमने लगे। उनके मुख पर आशंका कांप रही थी। वे दो पाषाणों के बीच भिच गए थे। उन्होंने मुड़कर कहा "तो रत्नगिरि, देवदासी को मुझे दे दो। मैं साम्राज्य के नियमों को ठोकर मार कर, देवता का अपमान करके अपने प्राणों का मोह छोड़कर उसे अपनी पुत्री घोषित करूंगा और उसका कहीं विवाह कर दूंगा।"

रत्नगिरि ने धीरे से कहा—"यह नहीं हो सकता सिन्धुनाद !"

"तुम डरते हो रत्नगिरि ?" सिन्धुनाद ने आगे बढ़कर कहा—"राजमाता इंदिरा का सतीत्व डूब जायेगा ? पांड्य, चोल और चालुक्य देशों में पल्लवराज के कुटुम्ब की निन्दा के गीत गाए जाएंगे ? सिन्धुनाद का पाप प्रकट हो जाएगा ? रत्नगिरि की घोर मिथ्या सूर्य की तरह जगमगा उठेगी, इसलिए ?"

"नहीं," रत्नगिरि ने कहा—"रुक्मिणी फिर से पाप में लिप्त नहीं हो सकती। वह देवता को निष्काम रूप से अर्पित हो चुकी है। वह लौटाई नहीं जा सकती। उसका जीवन धर्म का एक महान् छंद है, उसको अपौरुषेय कहकर ही गाया जाता है। वह कोई साधारण हाटों में नाचनेवाली स्त्री नहीं है, वह कलाओं में पारंगत होकर पुरुषों से पुष्कल के लिए विलास करनेवाली गणिका नहीं है, वह उत्सर्ग कर चुकी है अपना स्त्रीत्व, अपना मातृत्व, आजन्म कुमारी रहने के लिए। वह नहीं लौट सकती। वह देवता की सम्पत्ति है। सिन्धुनाद, तुम कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भेद नहीं समझ पा रहे हो। तभी तुम कविता का प्रथम चरण प्रेम भूल गए हो। जाओ, लौट जाओ। देवदासी तुम सबसे अस्पृश्य आकाश मन्दाकिनी का कमल है। उसे तुम नहीं पा सकते ?"

सिन्धुनाद आर्त्त-से बैठ गए। उनसे कुछ भी नहीं कहा गया। उन्हें चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा छाता हुआ दिखने लगा। उनके सामने सूर्य्यमणि का आतुर स्वरूप बार-बार घूम गया, जो उनकी प्रतीक्षा करती होगी, जिसे कुछ नहीं मालूम कि रुक्मिणी उसी की बहिन है। जिस पिता की कीर्ति से आज पल्लव साम्राज्य में स्थित सरस्वती का अचल श्वेत से भी अधिक उज्ज्वल हो उठा था, उसी का पाप वह कैसे सुन सकेगी। कैसे सह सकेगी वह यह घोर अंधकार की गाथा ?"

वह कुछ भी नहीं सोच सके। एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर वे मंदिर से बाहर चले गए और बाहर खड़े स्वर्ण रथ पर आ बैठे। सारथि ने रथ हांक दिया। वृद्ध सिन्धुनाद की आंखों में आंसू भर आए। उनके हृदय में आंधी चल रही थी।

पांच

रात्रि के घनघोर अंधकार में एक छाया-सी चलने लगी। दूसरी ओर से दूसरी छाया का अंगचालन हुआ। एक ने दूसरे के पास आकर कहा, "कौन ? रंगभद्र, तुम आ गए ?"

"हां देवी !" रंगभद्र ने धीरे से कहा—"क्या तुम तत्पर हो ?"

रुक्मिणी ने कुछ नहीं कहा। रंगभद्र बोला— "देवी ! वहां तुम्हारा मान तब हो सकता है जब तुम अर्घ्य के फूल के समान अपनी गंध स्वयं नहीं पहचान पाओगी। तुम्हारी मनुष्यता के हनन पर तुम्हारा यह स्वर्ग है। किन्तु क्या तुम्हारे हृदय में कोई कोमलता शेष नहीं है ? क्या केवल पाषाण हो ? किन्तु कामाक्षी के मंदिरों में प्रस्तर गाते हैं, प्राचीरें बोलती हैं। एक तुम हो जो अपने जीवन को देव-सेवा की छलना में बिताए जा रही हो। कभी किसी से पल-दो पल प्रेम की बात नहीं, तुम तो स्त्रीत्व के प्रारम्भिक चिह्न तक भूल गयी हो। किसलिए यह सब रुक्मिणी ?"

"देवता के लिए रंगभद्र। क्या यह सब त्याग करना मेरे लिए पाप नहीं होगा ?"

"पाप ?" रंगभद्र ने हंसकर कहा—"पाप यह नहीं है कि जीते-जागते मनुष्य को एक कठपुतली बना दिया है ? उससे उसकी दृष्टि छीनकर दूसरों को लूटने के लिए उसे नयन दे दिए हैं, उससे उसके हृदय का अपहरण करके उसे दूसरों के हृदयों पर दस्युवृत्ति करने के लिए छोड़ दिया है ? यदि मनुष्य को झूठे प्रलोभन देकर उसे मनुष्य नहीं रहने दिया तो इससे बढ़कर और कौन-सा पुण्य होगा ?"

"रंगभद्र ! पिताजी ने तो देव-सेवा को संसार का सबसे बड़ा सुख बताया है। फिर तुम क्या कह रहे हो ? मैं तुम्हारे मुख से पाप को बोलता हुआ सुनकर कांप उठती हूं। किन्तु न जाने क्यों तुम जो कहते हो वह अचानक ही मेरे हृदय पर आघात कर उठता है। मैं नहीं जानती तुम मुझे इतने अच्छे क्यों लगते हो ?"

रंगभद्र का मुख प्रफुल्लित हो गया और उसने कहा—"रुक्मिणी, वह स्त्री नहीं जो अपने प्रेमी के आलिंगन में बद्ध होकर विभोर नहीं हो सकती, जो आंखों में आंखें खोकर एक बार कलकण्ठ से उसे अपना स्वामी कहने को उद्यत नहीं हो सकती। कहां है तुम्हारे जीवन की नीरव हाहाकार करती वेदना का अन्त, कुमारी ? जिस देवता के पीछे तुम पागल हो रही हो, क्या कभी उसने तुम्हारे हृदय पर हाथ रखकर उसकी धड़कन को सुना ? क्या वसंत के मलयानिल में पुंसकोकिल की कुहू सुनकर कभी तुम्हारे हृदय में हूक नहीं उठी ? बोलो देवदासी ! यदि प्रेम पाप है तो किसलिए कालिदास का नाम आज प्रात:स्मरणीय है ? यदि प्रेम पाप है तो तुम्हें क्यों आजीवन देवता से प्रेम रखने का दुरभिमान सिखाया गया है ?"

देवदासी सोच में पड़ गयी। रंगभद्र उन्मत्त-सा कहता रहा—"क्या यह माधवी रजनी की अनन्त सुलगन शून्य में केवल हाहा खाने के लिए है ? तुम्हारा यह अनिन्दित रूप, जिसको आज संसार उपेक्षा से भयावह गर्त में डाले बेसुध है, किसलिए यौवन की

भुजाएं फैलाकर हृदय में उतरता चला जाता है ? पल्लव साम्राज्य की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी नहीं जानती कि यौवन क्या है ? नहीं है ज्वालामुखियों में वह ताप, नहीं है आकाश के नक्षत्रों में वह रूप जो तुम्हारे श्वास में है, जो तुम्हारे नयनों में है ! कांची की कुल नारियों का गर्व रूप तुम्हारी अनन्त रूपराशि के सामने धूल के तुल्य है देवी !"

देवदासी ने कहा —"यही तो सेनापति तनय धनंजय कहते थे।"

"धनंजय ?" रंगभद्र ने कांपते स्वर मे पूछा —"क्या वह आया था ? तुम्हें कल मिला ?"

देवदासी ने सिर उठाकर कहा —"कल दिन में नृत्य हुआ था। सूर्य्यमणि ने अचानक नृत्य रोक दिया। उससे रोषित होकर मैं भीतर चली गयी। पीछे-पीछे ही वह भी आ गया।"

"फिर ?" धनंजय ने आशंकित होकर पूछा।

"फिर वह कहने लगे—सुन्दरी, तुम्हारे सामने सूर्य्यमणि कुछ भी नही है। मैं उसे तनिक भी नही चाहता। मैं तो तुमसे प्रेम करता हूं। संसार में मेरी कोई अभिलाषा नही, केवल तुमको प्राप्त करना चाहता हूं।"

रंगभद्र ने उत्सुक होकर आवेग मे पूछा—"और देवदासी, तुमने क्या कहा ?"

रुक्मिणी ने उत्तर दिया—"और देवदासी ने क्या कहा यह भी जानना चाहते हो ? मैंने कहा—तुम मूर्ख ही नही पतित हो, एक देवदासी से तुम्हें ऐसी बात करते लज्जा नही आती ? क्या तुम अपने को राजवंश का उच्चारित करने का साहस करते हो ? क्या तुम्हारे वाक्यों में भीषण हलाहल है जिससे देवमन्दिर की ईंट-ईंट मूर्छित होती जा रही है। तुम नारायण की पवित्र विभूति को अपमानित करने का दुस्साहस कर रहे हो ? जिससे तुम बात कर रहे हो वह साधारण स्त्री नहीं, एक देवदासी है।"

उसका श्वास फूल गया। वह चुप हो गयी। रंगभद्र मन्त्रमुग्ध-सा उसकी ओर देख रहा था। उसने कहा—"धन्य हो तुम देवदासी ! तुम प्रेम करना जानती हो। किन्तु जिस पाषाण को तुम जीवन का सर्वस्व बनाती हो वह आत्मा का हनन है। मनुष्य की चरम शांति शुष्क ज्ञान नहीं, भक्ति है। वह भक्ति नही जिसमें त्याग का दम्भ हो देवदासी ! मैं तुम्हें व्यर्थ ही यह जीवन नष्ट नहीं करने दूंगा। कहो रुक्मिणी, तुम मुझसे प्रेम करती हो।"

रुक्मिणी ने कुछ नही कहा। अंधकार मे ही उसके हाथ ने रंगभद्र के दृढ़ हाथ को पकड़ लिया। रंगभद्र ने उसे अपने पास खींच लिया। दोनों देर तक एक-दूसरे की आंखों में झांकते रहे। रंगभद्र ने धीरे से कहा —"तुम्हारे चरणों पर जीवन का समस्त वैभव उठाकर भिक्षा मांगेगा। तुम्हारे पांव मेरे हृदय पर चलेंगे। तुम पल्लव साम्राज्य की सबसे बड़ी धनवती, सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी, सबसे अधिक भाग्यशालिनी स्त्री होगी रुक्मिणी। असमय का वह वैराग्य जैनियों को शोभा दे सकता है। जो अपने शरीर को कष्ट देना ही जीवन का निर्वाण समझने की भूल करते हैं। तुम वैकुण्ठ की लक्ष्मी हो। काशी में मोती बेचकर मैं दक्षिणापथ का सबसे धनवान व्यक्ति हो जाऊंगा। भूल

जाओ यह परिमित सीमाओं के बन्धनों को अंतिम सत्य समझने की कल्मषभरी छलना। तुम देवदासी नहीं हो, नारी हो। स्त्रीत्व का अधिकार तुमसे कोई नहीं छीन सकता।"

देवदासी का हृदय धड़क उठा। उसका कण्ठ वाष्पस्फीत हो गया। अन्धकार में दूर, बहुत दूर कुछ हल्के तारे टिमटिमा रहे थे। और कुछ नहीं। विशाल प्रांगण, दीर्घ स्तम्भ, वक्राकार अलिंद-द्वार सब अन्धकार में एक हो गये थे। निर्जनता से चारों ओर वायु कोलाहल-सा मचा रही थी। देवदासी की आशंका मन ही मन भयभीत हो गयी। उसने अपना हाथ रंगभद्र के वक्ष पर रख दिया और विभोर-सी खड़ी रही। रंगभद्र ने कहा—"परसों मैं सिंहलद्वीप जा रहा हूं। प्रतिज्ञा करो कि तुम मेरे साथ पोत पर आरूढ़ होकर मेरी अर्द्धांगिनी के रूप में चलोगी। परसों काञ्ची के देव मन्दिर में महोत्सव होगा। उस दिन लोग अपने-अपने काम में संलग्न होंगे। किसी को भी अधिक चिंता नहीं होगी। हम तुम परिक्रमा के पीछे वाली पुष्करिणी के पास मिलेंगे और तुम निर्भीक, पाप की भावना से हीन मेरे साथ चली चलोगी, क्योंकि तुम मुझसे प्रेम करती हो।"

देवदासी ने अपना सिर रंगभद्र के सुदृढ़ वक्षस्थल पर टेक दिया। उसकी आंखें बन्द हो गईं और मुंह से धीरे से उच्छ्वसित हुआ—"मैं प्रतिज्ञा करती हूं रंगभद्र, मैं चलूंगी। तुमने मेरी नीरवता में जो वीणा बजायी है उससे मेरा रन्ध्र-रन्ध्र गूंज रहा है। मैं अवश्य चलूंगी।"

छः

रंगभद्र ने अंधकार में केशों को चूम लिया। देवदासी लाज से मुस्करा उठी।

राजमाता इन्दिरा उद्यान-मन्दिर में विष्णु के चरणों पर सहस्र शतदल कमलों का धीरे-धीरे विसर्जन कर रही थी। उनका हृदय पवित्र और स्निग्ध था। जब वे पूजा समाप्त करके उठी तो उन्होंने देखा, सूर्य्यमणि उदास-सी सामने खड़ी थी। राजमाता के मुख पर करुण प्रभा फैल गयी। उन्होंने कहा—"सूर्य्यमणि, आज तू इतनी उदास क्यों लगती है? श्याम मेघ की तरलच्छाया आज तेरे नयनों में आश्रयहीना-सी क्यों कांप रही है? आज तू निदाघ के कानन की भांति क्यों यह दीर्घ निःश्वास छोड़ रही है? सिकता पर चंचल क्रीड़ा करने वाली लहर के समान तेरी स्मित आज एकदम ही कहां लुप्त हो गयी?"

सूर्य्यमणि ने सिर झुका लिया। राजमाता ने स्नेह से फिर कहा—"महाकवि की तनया को ऐसी कौन-सी पीड़ा व्याकुल कर उठी है? बोल बेटी!"

सूर्य्यमणि ने कहा—"कुछ नहीं माता, ऐसे ही आज कुछ चित्त में अनबूझ-सी ग्लानि छा गयी थी।"

राजमाता चुप हो गयी। उन्हें याद आया कि एक दिन वह भी सिन्धुनाद के प्रेम में ऐसी ही व्याकुल हो उठी थी। आज बीस वर्ष बीत गये। वह अब चालीस वर्ष की थीं। सिन्धुनाद पचास से ऊपर था।

उन्होंने मन ही मन अपने उस पाप को भूलने के लिए नारायण का स्मरण किया। हृदय निर्मल हो गया। आज वे राजमाता थीं। उनके पवित्र आचरणों पर दक्षिणापथ को गर्व हो सकता था। उनके पति ने अपार विक्रम से चोलराज के दांत खट्टे कर दिए थे। सम्राट सिंहविष्णु ने तभी से विधवा को अपने संरक्षण में ले लिया था। उन्होंने कहा —"सूर्य्यमणि, तेरा विवाह कब का निश्चित हुआ है ?"

सूर्य्यमणि ने मुंह फेरकर उत्तर दिया - "बसन्त पंचमी को"—और वह वहां से चली गयी।

एक दासी ने झुककर कहा—"महाकवि आये हैं देवी !"

"महाकवि !" राजमाता ने विस्मय से सिर उठाकर पूछा।

"हां देवी !" दासी ने सिर झुकाकर उत्तर दिया।

"उनको उद्यान में ही ले आओ।"

दासी चली गयी। राजमाता शंकित होकर इधर-उधर घूमने लगीं। उनका हृदय भीतर-ही-भीतर कांप उठा। आज वह उस व्यक्ति को बीस वर्ष बाद फिर देखेंगी जिसकी स्मृति भी उनके जीवन का एक महान् पाप है।

इसी समय वृद्ध सिन्धुनाद ने दासी के साथ प्रवेश किया। राजमाता इन्दिरा ने आगे बढ़कर उनका स्वागत दिया। एक सगमर्मर की चौकी पर सिन्धुनाद बैठ गये। दासी चली गयी। राजमाता ने दृष्टि उठाकर देखा और फिर उनका शीश झुक गया। सिन्धुनाद के नयनों में आज वही चमक थी जो बीस वर्ष पहले उनके सर्वनाश का कारण बन गयी थी। उन्होंने सारंगपाणि का मन-ही-मन फिर स्मरण किया और कहा —"कवि, आज आपने कैसे कष्ट किया ?"

सिन्धुनाद ने धीरे-धीरे कहना प्रारम्भ किया—"एक दिन अनेक वर्ष पहले हम-तुम इसी उद्यान में अपना सब खो बैठे थे। किन्तु उस दिन भी तुमने मुझे अपना सब कुछ दिया था। आज मैं फिर तुमसे तुम्हारा सब कुछ मांगने आया हूं।"

राजमाता ने कहा—"कवि, मैं कुछ भी नहीं समझी। तुम मुझसे क्या लेना चाहते हो ? सूर्य्यमणि के लिए मैंने स्वयं धनंजय जैसा उपयुक्त वर खोज दिया है फिर और तुम मुझसे क्या मांगना चाहते हो ?"

सिन्धुनाद ने कहा—"देवी, धनजय एक देवदासी की ओर आकृष्ट हो गया है। वह सूर्य्यमणि की उपेक्षा कर रहा है।"

राजमाता निष्प्रभ हंसी हंस उठीं। उन्होंने कहा—"तो इतने मर्माहत क्यों हो कवि ! एक बात कहूं, बुरा तो न मानोगे ?"

"नहीं देवी, आज मैं सभी कुछ सुनूंगा।"

"तो सिन्धुनाद," राजमाता ने कहा—"देव-सेवा के लिए अर्पित इन सहस्रों बालिकाओं के जीवन में और एक साधारण गणिका के जीवन में भेद ही क्या है ? साम्राज्य का धर्म भले ही इसे स्वीकार न करे, किन्तु जिन सामन्तों के यहां नगर की प्रजा की ललनाएं कुछ दिन दासी बनने आती हैं और अपने यौवन की भेंट देकर लौट जाती है,

उन सामन्तों के यहां क्या देवदासियां वेश्या ही नहीं होती ? क्षमा करो कवि, दिन में वे देव-सेवा करती हैं, रात को छिपकर पुरुष-सेवा ! कवि, यौवन कभी भी सत्पथ पर नहीं चल सकता। उसकी ठोकर से विक्षत उंगलियों का रक्त सदा के लिये पथ पर छूट जाता है। फिर तुम्हें इतनी चिन्ता क्यों ? कौन है वह देवदासी जो धनंजय के रूप की अवहेलना कर सकेगी ? कौन है वह साधारण नर्तकी जो धनंजय के बल और यश के अंक में सब कुछ खोल न देगी ? दो दिन की यह भूख मिटा लेने दो उन्हें। जब हमारा समय था तब हम भी तो पीछे नहीं हटे। धनंजय का यह लोभ एक आलिंगन में प्रवाहित हो जाएगा और पुरुष के लिए तो कोई पवित्रता नहीं, वह तो अनेक स्त्रियों में मत्त गजराज की भांति क्रीड़ा कर सकता है। वसन्त पंचमी को यदि वह सूर्य्यमणि के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा न करे, पुजारी फिर से पुरुषत्व भाग्य का उन्माद न गुंजा दें तो आकर इस पापिनी से जो मन आए कहना--जो विवाह के पहले माता हो चुकी थी किन्तु जिसके छल से आज भी साम्राज्य उसकी पवित्रता के सम्मुख वैदेही और अनसूया को तुच्छ समझने लगा है। बोलो सिन्धुनाद, नारी का मोल ही क्या है ? पुरुषों के हाथों में खेलने वाली कठपुतली। पुरुष भूमि पर मरता है, वह आकाश को चूमने का प्रयत्न करती है। यहाँ तो है सब से बड़ी दासी गृहस्वामिनी का रूप, जिसकी सत्ता अपने आप में कुछ नहीं !"

"देवी !" सिन्धुनाद ने क्षुब्ध होकर कहा--"बीस वर्ष पहले मैंने कहा था मर्यादाओं का संकोच जीवन की वास्तविकता नहीं है। आओ हम तुम इस देश को छोड़कर कहीं चले जाएं। किन्तु तुमने स्वीकार नहीं किया।"

"लेकिन कवि," राजमाता ने कहा—"पाप तो मिट गया, पाप की स्मृति अवश्य हृदय में चुभती है। किन्तु कभी-कभी जब तुम्हारी कविता पढ़ती हूं तब लगता है कि वह पाप नहीं था, यह परवश जीवन सबसे बड़ा पाप है।"

"पाप ! देवि'," सिन्धुनाद ने कहा—"मेरे-तुम्हारे जीवन का पाप ही आज फिर इस समस्त वैभव को भस्म कर देना चाहता है। मैं इसी से कांप रहा हूं। तुम देवदासी को साधारण वेश्या कहने तक में नहीं झिझकीं, तो सुनो कि जिस साधारण नर्त्तकी की पवित्रता को रुंदते देखकर भी तुम्हारा गर्व कुण्ठित नहीं होता वह तुम्हारी औरस पुत्री है। सूर्य्यमणि तुम्हारे प्रेमी की पुत्री है, किन्तु देवदासी रुक्मिणी तुम्हारी पुत्री है, तुम्हारे यौवन-तरु का प्रथम पुष्प है, तुम्हारे जीवन-सागर में प्रतिविम्बित होने वाली प्रथम बालारुण की दीप्ती है।"

राजमाता ने कांपते हुए कहा—"किन्तु रत्नगिरि ने तो मुझसे कहा था, वह मर चुकी है।"

"रत्नगिरि नहीं जानता था कि एक दिन बलशाली साम्राज्य के एक विशाल-स्तम्भ सेनापति का पुत्र उसके पीछे व्याकुल हो उठेगा। सहस्रों देवदासियों के बीच उसने उसे छिपा दिया था। किन्तु यदि धनंजय उसकी पवित्रता को अपनी उच्छृंखलता से विध्वस्त करेगा तो रत्नगिरि उसे कभी भी नहीं सह सकेगा। उसने कठोर तप में

अपना जीवन बिताया है। उसने दूसरों की भूलों को सरल चित्त से क्षमा किया है। उसे रुक्मिणी से पुत्री का-सा स्नेह हो गया है। जिसने आजन्म अखण्ड स्फटिक जैसा धवल ब्रह्म तेजस् अपने चारों ओर प्रकाशित किया है, वह क्रोध से पल्लव साम्राज्य को खण्ड-खण्ड कर देगा। राजमाता, वह वैभव और सुख की इन दीवारों की नींव में पलते पाप को समूल उखाड़कर फेंक देगा। उसके दुर्वासा के-से अग्नि-क्रोध को ठण्डा कर सके ऐसा साहस, ऐसी पवित्रता किसमें है? प्रजा क्या कहेगी? देवता की पवित्र सम्पत्ति पर वह कभी पदाघात नहीं सह सकेगा। राजमाता, मेरा मन भय से कांप उठता है।"

राजमाता सिहरकर खड़ी हो गई। उन्होंने कहा—"कवि, चलो। मैं रत्नगिरि से मिलना चाहती हूं। देवदासी मेरी पुत्री है। उसे मैं अपने पास ले आऊंगी। वह मेरे शरीर का संचय है। रत्नगिरि माता की आज्ञा की उपेक्षा नहीं करेगा। मेरे वक्षस्थल में एक स्नेह कांप रहा है। मेरी पुत्री भुवन-सुन्दरी है? वह मेरी है? मैं उसे देखना चाहती हूं, कवि।"

सिन्धुनाद उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—"रत्नगिरि पाषाण है देवी! उसके हृदय में एक सोता है और वह केवल देवदासी रुक्मिणी के लिए है। वह उसकी पवित्रता पर मुग्ध है। जिस दिन उसे उसमें अपवित्रता की गन्ध आयेगी वह अपने हाथ से उसका वध करके देव-प्रतिमा के चरणों पर उसे समर्पित करके आत्मघात कर लेगा। आत्मघात का पाप भी उसके सामने देवता के प्रति विश्वासघात की तुलना मे कुछ नहीं। वह कठोर तपस्वी है, ममता के झूठे आवरण से उसकी आंखें कभी नहीं चौंधतीं। आज जो माता बनकर जा रही हो वह तुम्हारे मातृ-स्नेह को ठुकरा देगा। वह पूछेगा, कहां था यह प्रेम उस दिन जब सद्यःजात शिशु को स्तन से लगाने के स्थान पर तुमने रातोंरात बाहर कर दिया था। एक राजकुमारी को तुमने पाप बना दिया और जब मैंने पाप को भगवान् की छाया बना दिया है तुम फिर उसे अपवित्र करना चाहती हो।"

राजमाता ने कहा—"फिर क्या होगा कवि?"

सिन्धुनाद ने कहा—"रथ बाहर खड़ा है देवी, चलिए।"

राजमाता ने आवाज दी—"नीला!"

दासी ने आकर शीश झुकाया।

राजमाता ने कहा—"शीघ्र ही रथ तैयार कराओ।"

"जो आज्ञा" कहकर दासी चली गयी।

थोड़ी देर बाद राजमार्ग पर दो बहुमूल्य रथ दौड़ने लगे। एक पर महाकवि थे, दूसरे पर राजमाता। रथ राजमन्दिर के बाहर रुक गये। दोनों उतर पड़े।

जब वे भीतर पहुंचे, उन्होंने देखा, रत्नगिरि सूर्य्यमणि के सिर पर हाथ रखकर कह रहा है—"पुत्री, यह संसार अत्यन्त कुटिल है। सत्य का उन्मीलन आज के सं ार में प्रलय का सूत्रपात हो जाएगा। मैं मुझे बताना नहीं चाहता। किन्तु तू पवित्र है। तेरी पवित्रता की रक्षा करना, तुझे सत्यपथ पर चलाना, तेरे जीवन को श्रेष्ठ और मनोहर बनाना मेरा कर्त्तव्य है। मैं तेरी सदा सहायता करूंगा। तेरे सुखों के लिए मैं कुछ

भी उठा नहीं रखूंगा। तुझे डरने का कोई कारण नहीं। धनंजय को लाचार होकर तुझ से प्रेम ही नहीं पवित्र परिणय करना होगा। महोत्सव के बाद मैं देवदासी रुक्मिणी को साथ लेकर काशी चला जाऊंगा। मैं तुझे अपने ब्रह्मणत्व की साक्षी देकर शपथ लेता हूं।"

राजमाता ने दौड़कर रोते हुए पुजारी के चरण पकड़ लिए। सिन्धुनाद गद्गद-से रोने लगे। सूर्य्यमणि कुछ भी नहीं समझी।

अविचलित स्वर में रत्नगिरि ने कहा—"परमों राजमाता! परमों कवि! कल महोत्सव है। अंतिम बार कल मैं कामाक्षी की अपने हाथों से पूजा करूंगा। कल मैं अपने जीवन के सारे पापों के लिए समस्त शक्ति से देवता के चरणों पर क्षमा मांगूगा। मैं जीवन की इस लुकाछिपी से ऊब गया हूं कवि! मैं कहीं दूर चला जाना चाहता हूं। अपराध का सबसे बड़ा प्रतिदान ब्राह्मण की क्षमा है। ब्राह्मण वह नहीं है जो अपनी पवित्रता को स्वर्ण और राजमद के सामने बलि दे दे, ब्राह्मण वह है जो पाप को पुण्य बना दे, पुण्य को साक्षात् नारायण बना दे। उठो राजमाता, उठो! राजमाता को यदि एक पुजारी के चरणों पर लोग देखेंगे तो विस्मय करेंगे।"

राजमाता के मुख से निकला—"तुम मनुष्य नहीं हो रत्नगिरि! तुम देवता हो।"

रत्नगिरि ने कहा—"नहीं राजमाता! मैं केवल देवता का एक पुजारी मात्र हूं।"

सूर्य्यमणि आश्चर्यचकित-सी देखती रही। पुजारी मुस्करा रहा था।

सात

राजमन्दिर की शोभा आज अनुपम थी। द्वार-द्वार पर आम्रपल्लव बांधे गये थे। स्थान-स्थान पर घट स्थापित करके केले के मासगर्भा वृक्ष लगाये गये थे। समस्त मन्दिर गन्ध से सुवासित था। सम्राट सिंहविष्णु आज अपने पूरे वैभव के साथ आये थे। एक ऊंचे मण्डप में उनका स्वर्ण सिंहासन दमक रहा था। कुमारपादीय युवराजों के बाद यथायोग्य आसनों पर सामन्तगण आकर बैठ रहे थे। कुलीन स्त्रियां एक ओर एकत्रित हो रही थीं। राजकुमार महेन्द्रवर्मा चुपचाप अपने आसन पर बैठे आते-जाते मनुष्यों को देख रहे थे। श्याम-सुन्दरियों की किलकारियां गवाक्षों में से झंकारती वायु के साथ बाहर निकल जातीं और उनके अंगचालन पर विभिन्न आभूषणों की मधुर ध्वनि फूट निकलती। योद्धाओं के भारी चरणों से आहत चमकती भूमि विक्षुब्ध हो उठती और उनके हास्य-तरल स्वरों में मादकता विलोल छाया बनकर प्रभा से दीप्त दंत-पंक्तियों में छिप जाती। मेखलाओं की मंदिम-मंदिम क्वणन-ध्वनि यौवन की द्रिमिक-द्रिमिक हुंकार बनकर चंदन-लेपित स्तनों के उभार के डुलन पर ताल दे रहती थी।

एक विराट् स्तम्भ के पीछे देवदासी रुक्मिणी प्रतीक्षा कर रही थी। रंगभद्र पास आ गया। देवदासी ने कहा—"नृत्य के बाद मैं भीतर जाकर पहले वस्त्र बदलूंगी फिर पुष्करिणी के पास जाऊंगी। तुम प्रायः एक प्रहर के बाद वहां पहुंच जाना। क्या सब

तैयार है ?'

रंगभद्र ने धीरे से कहा —"तुम्हें चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं देवी ! पेलार नदी पर श्रेष्ठि रंगभद्र के अमूल्य वस्तुओं से भरे चौबीस पोत खड़े हैं। बस हमारे पहुंचने का विलम्ब है। कल हम स्वतन्त्र होंगे।"

"अच्छा, अब मैं जाती हूं।" और वह भीतर चली गई। रंगभद्र कुछ देर वहीं खड़ा रहा और फिर भीड़ में मिल गया। प्रसाधन प्रायः समाप्त हो चुका था। बाहर वाद्य आदि लिए सब स्थान सज्जित करके गायक आ गए थे। नृत्य प्रारम्भ होने वाला था। सब सामने के पट की ओर देख रहे थे। धीरे-धीरे यवनिका उठने लगी। जनसमुदाय स्तब्ध होकर देखने लगा।

अनन्य सुन्दरी देवदासी को देखकर सबके नयन चकाचौंध हो गये। वह साक्षात् उर्वशी-सी अंगचालन कर रही थी। मृदंग का निर्घोष प्रतिध्वनित हो उठा। नर्तकी की नूपुर ध्वनि का मधुर प्रवाह सुनकर सभा चित्रलिखित-सी देखती रही। आज वह अद्भुत नृत्य कर रही थी। उसके अंग-अंग मे मदन हुंकार रहा था, रति-कोमल कण्ठ में अपना अजस्र रूप बहाये दे रही थी। उसके प्रवाल से अधरों पर उन्माद की मोहक गन्ध तड़प रही थी। उसके विशाल नितम्बों को देखकर महादेव का सहस्रों वर्षों का तप आज हाथ खोलकर चिल्ला उठा था।

एकाएक नूपुर मिलकर बज उठे। नृत्य तीव्र गतिमय हो गया। सभा स्तम्भित-सी बैठी रह गयी। उन्होंने देवदासी को देखा जैसे प्रलय के अनन्त वसुंधरा बाहर आ रही थी। मृगमद का टीका उसके स्निग्ध वर्ण पर स्वर्ण की भांति दमक रहा था।

आज नृत्य में विभोर वह हीरक की किरन उस मणिकुट्टिम रंगमंच पर ऐसे डोल रही थी जैसे शिव के ललाट पर चन्द्र की स्निग्ध रश्मि कैलास के शिखरों पर आलोड़ित हो रही हो, जैसे वीणा पर उंगलियां द्रुतगति से झंकारमुखर होकर तन्मय हो गयी हों ! उसका उन्नत वक्षस्थल यौवन का अपराजित गर्व बनकर, अपनी पीवर मांसल सुकोमलता में चंदन से लिप्त ऐसा लग रहा था ज्यों युगचंद्र पर चांदनी बार-बार झूम-झूमकर अपने आपको भूल जाती हो। वह इस प्रकार अपनी मादकता में अपने आप खो गयी जैसे मन्दाकिनी में परिमल खाकर कलकण्ठ निनादित कूजन में राजहंसिनी स्वयं अपने आपको भूलकर मृदुल लहरियों में अपने रेशम-सदृश पंखों को खोलकर क्रीड़ा करने लगती है। क्षण-भर को प्रतीत होने लगा मानो नर्त्तकी के साथ समस्त वसुमति आज स्वर्ग की ओर उड़ जायेगी। और भारालस वासना का यह मन्दिर उत्साह वारुणी की झूम में अपना अनन्त विसर्जन कर देगा।

नृत्य रुक गया। सब अविश्वास से चारों ओर देख उठे। सम्राट सिंहविष्णु ने गद्गद होकर कहा—"पुजारी, तुम धन्य हो। देवदासी तुम्हारी पुत्री है ?"

"हां सम्राट् !" पुजारी ने गर्व से सिर झुका लिया।

राजमाता इन्दिरा और महाकवि सिन्धुनाद के नयनों में आनन्द के अश्रु छा गये। सूर्य्यमणि भयार्त्त-सी मौन बैठी रही। देवदासी ने एक बार देवता को झुककर प्रणाम

किया और गर्व से सिर उठा लिया। उस समय उसके मुख पर स्वर्गीय आभा खेल उठी। रंगभद्र हर्षित होकर देखता रहा। धनंजय अपने स्थान से उठ गया और अंधकार में कहीं खो गया।

सम्राट् ने फिर कहा—"कवि, रुक्मिणी पर पल्लव को अभिमान है। क्या तुम्हारे हृदय में इस रूप को देखकर सरस्वती का संगीत नहीं उमड़ता?"

सिन्धुनाद ने कहा—"मेरा कवित्व रूप की इस अपार राशि को देखकर विक्षुब्ध हो उठा है। मैं असमर्थ हूं।"

मन्थर गति से चलती देवदासी ने प्रांगण पार करके, बाह्य परिक्रमा को लांघकर भीतरी परिक्रमा में पांव रखा। उसी समय उसने सुना—"सुन्दरी।"

उसके पांव ठिठक गये। उसके सामने ही धनंजय खड़ा था। उसके नयनों से वासना ने अवगुण्ठन हटा दिया। वह लोलुप दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था।

देवदासी ने कहा—"क्या है सेनापति तनय?" धनंजय मन्त्रमुग्ध-सा उसे देखता रहा। देवदासी ने फिर कहा—"क्या है कुमार? आप क्यों मुझे निष्कारण घूर रहे हैं?"

धनंजय ने उच्छ्वसित स्वर में कहा—"देवी, मैं तुम्हें प्यार करता हूं।"

"धनंजय!" देवदासी हुंकार उठी। बाहर प्रांगण में उस समय कोई कलकण्ठ से प्रेम का मनोहर और करुण गीत गा रहा था। धनंजय फिर भी देखता रहा। देवदासी ने आगे चलने को पग उठाया। नूपुर बज उठा। धनंजय को लगा जैसे रति का विजयी डमरू आकाश, वसुन्धरा और पाताल में एक घोष भरता हुआ गूंज उठा। वह पागल हो उठा। और धनंजय ने आगे बढ़कर उसके कन्धों को पकड़ लिया। देवदासी क्रुद्ध-सी चिल्ला उठी—"धनंजय, तुम दुस्साहस कर रहे हो।"

धनंजय व्याकुल होकर बोला—"रुक्मिणी, तुम भूल रही हो। मैं तुम्हारी पवित्रता से धोखा नहीं खा सकता। मैंने तुम्हें उस युवक से छिप-छिपकर बातें करते देखा है। मेरे हृदय में आग जल रही है। आज तुम्हारे नृत्य ने हविष्य डालकर उसे धक्का दिया है। सुन्दरी, आज मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता।"

देवदासी कांप उठी। उसने कहा—"तुम पागल हो गए हो धनंजय! मैं तुमसे भीख मांगती हूं। मुझे छोड़ दो।"

किन्तु धनंजय हंस उठा। उसने उसे खींचकर अपनी छाती से लगाकर उसके सुन्दर मुख को चूम लिया। देवदासी क्रोध से उसके मुंह पर हाथ से आघात कर उठी। विक्षुब्ध धनंजय को एक धक्का मारकर भागने लगी। धनंजय उसे पीछे से पकड़कर चिल्ला उठा—"मैं तुझे नहीं जाने दूंगा स्त्री! तुझे मेरी प्यास बुझानी ही होगी। धनंजय आज तक कभी स्त्री से अपमानित नहीं हुआ।"

"नहीं! नहीं! नीच पशु! मैं चिल्ला-चिल्लाकर सम्राट को बुला दूंगी, तू मुझ पर बलात्कार नहीं कर सकता।"

धनंजय ने हंसकर कहा—"तो तू चिल्लाकर ही देख ले।"

देवदासी के मुंह खोलते ही उसकी कठोर उंगलियों ने उसकी कोमल ग्रीवा को

कस लिया और वह दाबते हुए कहने लगा—"चिल्ला! जितनी शक्ति हो उतना चिल्ला! चिल्ला-चिल्लाकर आकाश सिर पर उठा ले। देखें कौन तेरी रक्षा के लिए आता है।"

धनंजय ने उन्माद में भरकर पूरी शक्ति से उसका गला दबा दिया। अपने बोलने में वह रुक्मिणी का आर्त्तस्वर नहीं सुन सका। देवदासी का शरीर झूल गया। धनंजय ने अपने हाथ खींच लिए। देवदासी का मृत शरीर पृथ्वी पर धड़ाम से गिर गया। धनंजय व्याकुल-सा देखता रहा। भय से उसका शरीर जड़ हो गया। यह उसने क्या किया?

इसी समय एक कठोर स्वर सुनाई दिया—"धनंजय, तूने स्त्री की हत्या की है? क्योंकि वह तेरे प्रलोभन में नहीं फंस सकी? कुलांगार?"

धनंजय कांप उठा। उसने मुड़कर देखा। पुजारी रत्नगिरि द्वार पर खड़ा था। धनंजय लड़खड़ा उठा। रत्नगिरि ने हंसकर कहा—"भूल गया अपना समस्त बल और वैभव के अत्याचार का बर्बर रूप? स्त्री की हत्या करके भागना चाहता है? तू एक देवदासी की पवित्रता को कलुषित करना चाहता था क्योंकि तुझे सेनापति का पुत्र होने का गर्व था। तेरी शक्ति के सामने देवता का अपमान एक साधारण वस्तु है? तेरे बल के सामने एक पवित्र नारी का सतीत्व कुछ भी नहीं? धिक्कार है ऐसे वैभव को, धिक्कार है ऐसे साम्राज्य को! ब्राह्मण तुझे शाप देता है···"

किन्तु एकाएक पुजारी की जिह्वा रुक गई। मस्तिष्क में तीन बार कुछ चोट कर उठा। पुजारी ने कहा—"मैं सूर्य्यमणि को वचन दे चुका हूं पापी। जा भाग जा। अन्यथा अभी यहां भीड़ हो जाएगी और तू पकड़ा जाएगा। तूने अनेक हृदयों का सर्वनाश कर दिया है। किन्तु तेरे लिए जैसे युद्धभूमि में यश के लिए अनेक हत्या करना है वैसे ही एक यह भी सही। वहां तू अनेक स्त्रियों को धन और भूमि के लिए विधवा बनाता, यहां तूने ब्राह्मण और देवता की सम्पत्ति पर पदाघात किया है।"

धनंजय वज्राहत-सा खड़ा रहा। पुजारी ने उसे धकेलकर बाहर कर दिया। उसने पास जाकर देखा, देवदासी की आंखें उलट गई थी, जिह्वा बाहर निकल आयी थी। धनंजय ने पीछे से उसका गला घोंट दिया था। तभी उसके नयनों में कोई चिह्न नहीं था।

कैसा कठोर होगा उसका हृदय जो इस फूल-सी बालिका की हत्या कर सका? सूर्य्यमणि एक हत्यारे से विवाह करेगी? और वह देखता रहेगा किन्तु राजमाता का मान, सिन्धुनाद की उज्ज्वल देदीप्यमान कीर्ति!

वृद्ध शव पर रो उठा। उसने कहा—"उन्हें क्षमा कर दे रुक्मिणी! सिन्धुनाद तेरा पिता है, राजमाता इन्दिरा तेरी माता है, सूर्य्यमणि तेरे पिता की पुत्री है और मैं सूर्य्यमणि को वचद दे चुका हूं। तू बिल्कुल पवित्र है। आकाश की शरद पूर्णिमा की ज्योत्स्ना से भी अधिक श्वेत! उन्हें क्षमा कर पुत्री! मैंने तुझे बचपन से पाला था, और वैराग्य मैंने तेरे कारण त्याग दिया। क्षमा कर रुक्मिणी! ब्राह्मण, देवता और देवदासी को सब कुछ खोकर भी क्षमा करना चाहिए पुत्री!"

उसने देवदासी के शरीर को स्पर्श करके ऊपर हाथ करके कहा—"देवता, नारायण, कामाक्षी ! देवदासी को स्वर्ग में बुला लो। वह बिल्कुल पवित्र है।" पुजारी उठा। उसने अपने आंसू पोंछ लिए और बाहर निकल आया। बाहर कोई वीणा बजा रहा था। रत्नगिरि ने कहा—'मैंने देवदासी की हत्या की है। मैंने देवदासी रुक्मिणी का गला घोंट कर मार डाला है। भीतर परिक्रमा के पास उसका शव पड़ा है।"

गीत रुक गया। वीणा की सिसक बन्द हो गई। महासम्राट सिंहविष्णु हठात् उठ खड़े हुए। उनके उठते ही समस्त सभा हड़बड़ा कर खड़ी हो गई। चारों ओर निस्तब्धता छा गयी। प्रांगण का बिल्लौर का मध्य भाग एक उदासीनता और किंकर्त्तव्यविमूढ़ता से स्तब्ध हो गया। महोत्सव रुक गया। स्त्रियों के आभूषण चुप हो गए, पुरुषों के नयन विस्मय से खुल गए। प्राचीन राजमन्दिर की विशाल प्राचीरें विक्षुब्ध हो गयीं।

कुछ देर तक सब चुपचाप देखते रहे। सम्राट ने कहा—"कौन ? वही जिसने अभी-अभी अप्सराओं का-सा नृत्य किया था ?"

"हां, वही सम्राट !" रत्नगिरि ने दूर से उत्तर दिया और प्रांगण की ओर बढ़ चला।

चारों ओर कोलाहल मच उठा—"पुजारी रत्नगिरि ने अपनी पुत्री की हत्या कर दी ? ब्राह्मण होकर उसने पवित्र देवता की सम्पत्ति को मार डाला, जन्म से जिसे उसने पाला उसी पर हाथ उठाया ? उसने निरपराधिनी स्त्री का ध्वंस कर दिया ? ब्राह्मण ने आज यह घोर अपराध किया ? रत्नगिरि ने पल्लव के गौरव-वृक्ष को फल और फूलों से लदा देखकर भी कुठार चला दिया।" प्रांगण में आकर अकेला रत्नगिरि सुनता रहा। उसको चारों ओर से सम्राट, राजकुमार, सामन्तों, नागरिकों, कुलीन ललनाओं और जनसमुदाय ने घेर लिया। सब कुछ-न-कुछ उसके विरुद्ध कह रहे थे। सम्राट् कुछ सोच रहे थे। किसी को भी विश्वास न था। पुजारी रत्नगिरि साम्राज्य का सबसे पवित्र ब्राह्मण था। चारों ओर से प्रश्नों की भरमार होती रही। जनसमुदाय विक्षुब्ध होकर उसे धिक्कार रहा था। सामन्तों की भृकुटि खिंच गयी थी। सब उसे क्रुद्ध दृष्टि से, घृणा से व्याकुल होकर देख रहे थे। किन्तु पुजारी रत्नगिरि निर्भीक खड़ा रहा। रंगभद्र ने उसके पास जाकर कहा—"पुजारी ! तुमने रुक्मिणी को मार डाला ? तुमने उसके मनुष्य होने के प्रयत्न को देखकर उसका वध कर दिया ? ब्राह्मण ! तुम युग-युग तक गौरव की यातना भोगोगे। तुमने एक मनुष्य को पशु बनाना चाहा था, और जब उसने मनुष्य होने का प्रयत्न किया तुमने उसे कुचल दिया ? क्योंकि वह मेरे साथ भागनेवाली थी ?" राजकुमार महेन्द्रवर्मा ने आगे बढ़कर कहा—"ब्राह्मण होने से तुम अवध्य हो पुजारी। किन्तु ब्राह्मण आज तक पशुबलि देते थे, तुमने नरमेध किया है। मैं आज उस धर्म के नाम पर पूछता हूं क्या वैष्णव-भक्ति में पिता पुत्री की हत्या करके नहीं मर सकता ?" रंगभद्र की ओर दिखाकर सम्राट सिंहविष्णु ने कहा—"यदि यह युवक सत्य कहता है तो पुजारी का कोई दोष नहीं। उसने देवता की सम्पत्ति को अपवित्र

होते देखकर उसका ध्वंस करके पवित्र भागवत धर्म की रक्षा कर दी। रत्नगिरि ! बोलो, कहो, देवदासी अनाचारिणी थी।"

रत्नगिरि ने अविचलित स्वर से कहा—"यह युवक झूठ बोलता है। मैंने इसे कभी भी उससे बात करते नहीं देखा। देवदासी सदा अकलुष, पवित्र और पुण्य से भी मधुर थी। उसकी आत्मा प्रभात के नीहार की भांति उज्ज्वल कल्मषहीन थी।"

सम्राट सिंहविष्णु ने क्रोध से कहा—"तब तू ब्राह्मण नहीं है रत्नगिरि, तू चाण्डाल है। अपनी पुत्री को निष्कारण मारकर तू पत्थर की तरह मेरे सामने खड़ा है। राजकुमार महेन्द्रवर्मा सच कहता है कि ब्राह्मण को अबध्य कहना धर्म का सबसे बड़ा दुराचार है।"

रत्नगिरि ने कहा—"सम्राट, रत्नगिरि पुत्री की हत्या करके अब ब्राह्मण नहीं रहा। वह हत्यारा है।"

इसी समय राजमाता धीरे-धीरे रत्नगिरि के सम्मुख आ खड़ी हुई। उनकी आंखों में अश्रु छा रहे थे जिनमें वात्सल्य और भय मिश्रित घृणा चमक रही थी। उन्होंने कहा—"पुजारी, सच कहो, पुत्री को तुमने ही मारा है ?"

पुजारी ने कुछ जवाब नहीं दिया। राजमाता फूट-फूटकर रो उठीं। उनका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो रहा था। उन्होंने कहा—"तुम रक्षक नहीं हो, तुम हिंस्र पशु हो। जन्म से तुमने उसे पाला, फिर क्या इसी अन्त का तुमने उसके लिए निर्णय किया था ? पैदा होते ही क्यों न मार दिया पिशाच ? स्वर्ग की उस अमूल्य पवित्र प्रतिमा का तुमने अन्त कर दिया, तुम्हें क्या मालूम मेरे हृदय की वेदना···"

उनका कण्ठ रुंध गया। पुजारी ने उनकी ओर देखा। वह रोती-रोती पीछे हट गयीं। आगे आकर कवि सिन्धुनाद ने कहा—"पुजारी, यह तुमने क्या किया ? सच कहो, तुमने यह हत्या क्यों की ? तुम तो उसे काशी लेकर जा रहे थे ! रत्नगिरि, तुमने क्या यही मित्रता दिखाई है ? आजीवन पवित्र रहे हो तुम ? तुमने स्त्री-हत्या ही नहीं की, तुमने देवदासी की हत्या की है ! ब्राह्मण होने के कारण तुम्हारी हत्या नहीं की जा सकती, क्या इसी से तुमने ऐसा किया ? आज तक तो तुमने कभी अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं किया ? क्या देवदासी पापिनी थी ?"

उस समय रत्नगिरि ने दृढ़ स्वर में कहा—"नहीं कवि।"

सिन्धुनाद की आंखों में आंसू छा गए। उसने धीरे से कहा—"तुमने सबसे बड़ा पाप किया है। तुमने अनेक हृदयों पर ठोकर मारकर चूर कर दिया है। तुम मेरे मित्र हो। रत्नगिरि, क्या तुम अब जीवन भर अपने इस भीषण पाप की ज्वाला में जीवित ही नहीं मर जाओगे ? कैसे सह सकोगे यह सब ब्राह्मण ? किन्तु तुम अब सब कुछ सहोगे वज्र-हृदय ! तुमने हत्या की है। तुमने विश्वासघात किया है। तुमने इस वृद्ध का हृदय बिल्कुल ध्वस्त कर दिया है। क्या चिता की भस्म को अपने पापी नयनों से घूर रहे हो ? रत्नगिरि, यह तुमने क्या किया ?"

पुजारी ने नीचे का होंठ दांत से काट लिया और चुपचाप खड़ा रहा।

सम्राट सिंहविष्णु ने कहा—"ब्राह्मण को राजमन्दिर से बाहर निकाल दो, उसको पल्लव साम्राज्य से निर्वासित कर दो। मैं आज्ञा देता हूं कि पल्लव का एक भी नागरिक, सैनिक अथवा जो कोई भी हो ब्राह्मण को एक मुट्ठी अन्न न दे, एक बूंद पानी न दे और इसके पाप से पूर्ण मुख को देखकर चिल्ला उठे—नारायण ! नारायण !!"

समस्त समुदाय पुकार उठा—"नारायण ! नारायण !!"

सम्राट सिंहविष्णु ने फिर कहा —"मन्दिर को यज्ञ से पवित्र करना होगा। यहां ब्राह्मण के वेश में चाण्डाल रहता था। इसे निकाल दो।"

रत्नगिरि धीरे से मन्दिर के बाहर निकल गया। सहस्रों हृदय एक स्वर मे उसे धिक्कार उठे।

आठ

उम ममय मन्दिर निर्जन हो चुका था। निस्तब्धता सनसना रही थी। नागरिक ममुदाय अपने-अपने घरों को लौट चुका था। दीप बुझ चुके थे। घोर नीरवता छा रही थी। स्तम्भ के महारे खड़े युवक की तन्द्रा टूट गयी। वह धीरे-धीरे बाहर आया और पेलार नदी की ओर चल पड़ा।

प्रभात का मधुर प्रकाश सिकता पर डोलने लगा। धीवरों की वंशी की करुण लहरियां सिन्धु-मिलन के लिए अधीर ऊर्म्मियों पर फहरने लगीं। सहसा युवक ने पोत पर चढ़कर पुकारा—"कदम्ब !" सेवक ने झुककर कहा—"प्रभु ?"

"हमारे पास कितने पोत हैं ?" युवक ने अविचलित स्वर से पूछा।

"चौबीस, प्रभु !" मेवक ने विनीत उत्तर दिया।

"उनकी सम्पत्ति बांट दो कदम्ब ! कांची की भूखी प्रजा को वह सब दान कर दो।"

"प्रभु !" कदम्ब ने विस्मय से कहा।

"विस्मय न हो कदम्ब ! आज महाश्रेष्ठी रंगभद्र प्राणों का व्यापार करने सिंहल जा रहा है। जिस मोती को खोजने वह महासमुद्र में गोता मारने जा रहा था, वह उमे भीषण से भीषण समुद्र का मन्थन करके भी अब नहीं मिल सकता।"

"प्रभु !" सेवक ने फिर निवेदन किया—"स्वामी का चित्त आज कुछ अस्थिर है।"

"नहीं कदम्ब ! रंगभद्र अब कभी विचलित नहीं हो सकता। जिस धन को मैं आज एकत्रित करने जा रहा था आज उसी धन और अधिकार के मद ने मुझे आमरण जीवित ही जलने का महान् वरदान दिया है। रंगभद्र कभी भी अब कांची की अभिशप्त नगरी को नहीं लौटेगा। पल्लव साम्राज्य का यह भीषण नरमेध आज पाषाणों के चरणों को अपने रक्त से रंग चुका है। मैं इससे घृणा करता हूं कदम्ब ! मैं इससे जी भरकर घृणा करता हूं।"

कदम्ब चला गया। युवक थोड़ी देर तक खड़ा रहा और फिर सहसा ही पुकार उठा—"मांझी, पोत को बहने दो।"

कठोर मांसपेशियों वाले नाविकों की पतवारों ने अथाह नदी की लहरों को काटना प्रारम्भ किया। फेन उठाकर पोत के किनारे पर छीटे मारने लगे। अकेला पोत सागर की ओर बह चला। निराधार, अनन्त जलराशि पर डगमगाता, कांपता, भयभीत होता। पाल हवा से भरकर फैल गये। उज्ज्वल प्रकाश लहरों पर भागने लगा। तीर दूर छूट गए। पोत की गति तीव्र होने लगी।

रंगभद्र एक बार जोर से हंस उठा और फिर सिर थामकर अर्द्धमूर्छित-सा बैठ गया। वह न जाने कौन-सा मोती ढूंढ़ने जा रहा था! चारों ओर महानद का ऊर्म्मि-जाल अट्टहास कर उठता था और ऊर्जस्वित प्रतिध्वनि आकाश में मंडराने लगती थी।

प्रवाह पर पोत मन्थर गति से बहा जा रहा था। दूर-सुदूर केवल जलराशि के अतिरिक्त आज चारों ओर कहीं भी कुछ न था। क्षितिज जैसे सन्निपात में कुछ मर्मर कर रहे थे, और रंगभद्र बैठा रहा, बैठा रहा, विश्रांत पराजित, विध्वस्त···अवसाद का टूटा हुआ स्तम्भ···अभिलाषाओं की धधकती भस्म का उन्माद···!

[मई '47 से पूर्व]

अनुवर्त्तिनी

वृद्ध कौत्सुभ ने उद्वेलित होकर पूछा—"अरे क्या हुआ कुछ मुझे भी बताओ ? अरे कोई कुछ बताता क्यों नहीं ?"

"कौन ? कौत्सुभ भिक्षु तुम हो ?" संघस्थविर ने चलते-चलते रुक कर कहा—"आज विजनतीरा के संघ का नाम फिर से चमक उठा है।"

पास खड़े युवक भिक्षु अनागारिक ने चिल्लाकर कहा—"मेधावी आनन्द भिक्षु विजयी हुए हैं। उनकी अद्भुत वाक्शक्ति, प्रचुर प्रमाण, अकाट्य तर्क से बालनाथ की समस्त योगसिद्धि ऐसे उड़ गयी जैसे खर के सिर से सींग।"

"आनन्द जीत गये ?" वृद्ध ने गद्‌गद होकर कहा—"जीत गये आनन्द ! भगवान्, तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए ! संघस्थविर, आर्य्यसंघ का नाम अमर है।"

संघस्थविर ने कहा "आनन्द पर संघ को गर्व है भिक्षु कौत्सुभ! वह मेरा शिष्य है। वह प्रकाण्ड मेधावी है। जिस समय आनन्द बोलने को खड़ा हुआ एक ओर वज्रयान के महासुखवादी सिद्ध, दूसरी ओर गोरक्ष के अनुयायी योगी बैठे थे। उन्होंने बहुत-कुछ कहा। सिद्धों ने प्रज्ञा और उपाय को बखेर दिया। शून्य, विज्ञान और महासुख के विवेचन से जनसभा को मन्त्रमुग्ध कर दिया। ध्यानी बुद्धों, बोधिसत्त्वों, युगनद्ध स्वरूपों से उन्होंने सबकुछ एकदम सिर से उतार देना चाहा। इन पतितों में कुछ जो शैव हो गये हैं, उन्होंने भी बहुत कुछ प्रमाणित करने का प्रयत्न किया किन्तु न मञ्जुमतन्त्र काम आया, न साधना ही। वे केवल अशिक्षित मूर्खों को परास्त कर सकते हैं। आनन्द ने जब बोलना प्रारम्भ किया एकदम नीरवता छा गयी। उसने कहा—अन्तस्साधना, अन्तस्साधना का मार्ग बाह्याडम्बर नहीं है। तुम शरीर को कष्ट देकर समझते हो कि आत्मा पवित्र हो रही है ? तुम गुणी के स्थान पर गुण का प्रयोग न करके क्रिया-व्यापार को सूक्ष्म और स्थूल में विभाजित करने का प्रयत्न करते हो ? भिक्षु कौत्सुभ, उस समय सभा में ऐसा कोलाहल मचा जैसे किसी ने समुद्र का मन्थन कर दिया हो। आनन्द फिर भी बोलता रहा। मैंने उसे वेदान्ती माधव मिश्र से भी शास्त्रार्थ करते देखा है। किन्तु नहीं, भिक्षु, वह कुछ भी नहीं था। आज तो ऐसा खण्डन किया उसने कि मुझे महाप्रभु के प्रथम शिष्य आनन्द की आभा उसके चारों ओर फूटती हुई दिखायी दी। मुझे आनन्द पर गर्व है; आर्य्यसंघ को कृतज्ञ होना पड़ेगा उसका। उसने आज गौतम के नाम पर कलंक नहीं आने दिया।"

वृद्ध कौत्सुभ ने आनन्द से विह्वल होकर कहा—"संघस्थविर, गौतम के इन बननेवाले अनुयायियों ने कितने भयानक पाप किये हैं। आज जबकि सब जगह से प्रायः हीनयान मिट गया है विजनतीरा के संघ में हम अब भी पवित्र हैं। आर्य्यावर्त्त को विदेशियों ने सहस्रों वर्षों से विच्छिन्न कर दिया है। विभिन्नधर्मा आज धर्म की ओट में अनाचार फैला रहे हैं। कहते हैं सुदूर सागरतीर पर पश्चिम में यवन विजयी होकर अब अपने धर्म का बलपूर्वक प्रचार करने लगे हैं। उत्तर से अनेक अभियान करके भी उनका बल अभी ठण्डा नहीं हुआ। राजपुत्र परस्पर युद्ध कर रहे हैं। गौनम को लोग भूलते जा रहे हैं। प्राचीनावीति कहकर जनसमाज सब कुछ खोता जा रहा है। आर्य्य, आर्य्यावर्त्त में लोग एक-दूसरे को अब आर्य्य भी नहीं कहते।"

संघस्थविर ने कहा—"वृद्ध भिक्षु, गौतम का आशीर्वाद चाहिए। सबकुछ प्राप्त होगा। खोया हुआ लौट आयेगा। आज जो प्रशस्त ललाट उठ रहा है उससे फिर से राजा और प्रजा बौद्ध होंगे। चक्रवर्ती सम्राटों की छत्रछाया में आर्यावर्त्त फिर से बौद्धों का केन्द्र हो जाएगा। वह देखो भिक्षु आनंद आ गया।"

तभी आनंद ने आकर प्रणाम किया। कौत्सुभ ने गद्गद होकर आशीर्वाद दिया—"वत्स, तुम्हारी सदा जय हो!"

"महापंडित बौद्ध भिक्षु के रहते मुझे कोई भय नहीं," आनंद ने नम्र होकर कहा। संघस्थविर मुस्करा दिये।

दो

उन दिनों आर्यावर्त्त की शक्ति विभिन्न सामंतों के हाथ खंड-खंड होकर उच्छृंखल हो उठी थी। पश्चिम के कुछ साधु आकर अपने अनोखे उपदेश देते फिरते थे। नित्य ही गोरखपंथी और भैरवी साधुओं का उनसे समागम होना और साथ हो बैठ कर खाते, साथ ही मदिरा पीते, समझ मे न आने वाली बातें कहते और प्रजा उनसे भयभीत होकर बात-बात में उनके सामने सिर झुका देती। देश में तीन ही वर्ग प्रधान थे। एक प्रजा, दूसरा राजवंशीव समुदाय, तीसरे यह साधु जो व्यक्तिगत महानिर्वाण की खोज मे पागल हो रहे थे। भैरवी चक्रों और हठयोगियों की समाधियों को लोग सुनते और श्रद्धा करते थे। दुर्दमनीय गिरि-कन्दराओं में युवक बैठ कर बलि देते, उनकी धूनी की लपट आकाश को चूमने लगती और उस उन्माद में वे स्त्रियों की योनि-पूजा करते। दर्शन और अभ्यास के इस अंधकारमूल वितंडावाद में आर्य संस्कृति की जड़ें हिल रही थीं। दक्षिण में उस प्रबल शक्ति से दिग्विजयी शंकर का गंभीर गर्जन उठा था कि बौद्ध धर्म लड़खड़ा गया था। यवनों के आक्रमण की दिन पर दिन आशंका बढ़ती जा रही थी। अपार धन-राशि लिये बौद्धों के संघाराम नगर के बाहर भविष्य की काली छाया में कांपते हुए अब भी कनिष्क और अशोक के भग्न स्तूपों में तथागत का नाम मात्र दुहरा लेते थे।

विजनतीरा नदी के किनारे ऊंघता हुआ वह संघ संध्या की डूबती छायाओं में रंग-बिरंगा बहुत मनोहर सा दिख रहा था। बाहर ही विशाल फाटक पर प्रस्तर मूर्त्तियां

समय को देखकर स्तब्ध हो गयी थीं। मानो उन्होंने उसे निर्भय होकर काट दिया था। अधेड़ आयु के संघस्थविर बौद्ध भिक्षु बाहर खड़े कुछ सोच रहे थे। उनके पास ही आनंद भिक्षु खड़ा था।

"बात में उसकी कुछ सार अवश्य है आनंद"—कहते हुए बौद्ध भिक्षु ने आनंद की ओर देखा।

"आप सोच सकते हैं ऐसा आर्य ? मुझे तो कुछ समझ नहीं पड़ता। वज्रयान की यह अद्भुत पिपासा मुझे कभी संतुष्ट नहीं कर सकी। शून्य को विभाज्य रूप देने में क्या हम अन्तरात्मा को धोखा नहीं देते ?"—आनंद ने आकाश की ओर देखते हुए कहा। संघस्थविर मौन रहे। आनंद ने फिर कहा—"देव, प्रच्छन्न बौद्ध के मिथ्या प्रचार में अनेक ब्राह्मणों को नये-नये उपाय सूझने लगे हैं। नगर में एक यवन आया है जो उल्टी-सीधी बातें कहता फिरता है। वह तो सिद्धों में भी बढ़ गया है। मैं कुछ समझ नहीं पाता।"

उसकी उत्तेजना देखकर संघस्थविर हंस दिये। उन्होंने कहा—"आनंद, तुम अभी युवक हो।"

आनंद बिल्कुल नहीं समझा। उसके सोने के से दहकते रंग पर काषाय का वर्ण प्रफुल्लित हो रहा था। कठोर संयम से उसका मुख दमदमाता था जिस पर सौम्य क्षमा का आर्य मौन उसे बहुत मनोहारी बना देता था। एकाएक उसने एक सुन्दरी को अपनी ओर आते देखा। आनंद ने कहा, "देव, कोई स्त्री यहां आ रही है।"

संघस्थविर ने देखा। स्त्री ने आकर प्रणाम किया।

संघस्थविर ने पूछा—"शुभे, तुम कौन हो ? यहां किसलिए आई हो ?"

"दीक्षा लेने आयी हूं प्रभु। मैं विधवा हूं"—स्त्री ने उत्तर दिया।

"गौतम के संघ में स्त्रियों की गणना अधिक होती जा रही है, आर्य्ये ! तुम भिक्षुणी होकर क्या करोगी ?"

"मैं अपने वैधव्य का अन्धकार संयम के महाप्रभात में हीरे की तरह चमकता हुआ देखना चाहती हूं प्रभु।"

"नारी !"—संघस्थविर के नयनों में एक कठोरता छा गयी—"तुम मुण्डित-केश अलंकारविहीन कर दी जाओगी।"

"शिरोधार्य्य।"

संघस्थविर ने आनन्द की ओर देखा। आनन्द का कुन्दन-सा मुख गम्भीर था। वह स्त्री की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहा था। स्त्री का प्रस्फुटित यौवन मचल रहा था, जैसे नदी उफनकर बह जाना चाहती थी। उसके नीले दुकूल पर वह सफेद कञ्चुक कालिन्दी पर कांपते कमलों की भांति था जिसे छू-छूकर समीरण अङ्गड़ाई भर रहा था। स्त्री ने आनन्द को देखकर सिर झुका लिया।

संघस्थविर ने कहा—"वत्स आनन्द, भिक्षु कौत्सुभ के पास ले जाकर इसे दीक्षा दो।"

आनन्द ने आज्ञा को सिर झुकाकर स्वीकार कर लिया। स्त्री उसके पीछे-पीछे

चलने लगी। आनन्द ने मुड़कर पूछा—"आर्य्ये, तुम्हारा नाम ?"

स्त्री ने कहा—"देव, मेरा नाम नन्दिनी है।"

"किसकी पुत्री हो ?"

"मेरे पिता स्वर्ग चले गये। मेरा पालन मेरी माता ने ही किया है। किन्तु जब वे भी चल बसीं, संसार में मेरा कोई भी सहारा नहीं रहा, तब मैं गौतम की शरण में आयी हूं।"

भिक्षु की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। उसने फिर पूछा—"आर्य्ये, क्या तुम्हारे पति के सम्बन्धियों ने भी तुम्हें संघ मे सम्मिलित होने की स्वीकृति दे दी है ?"

स्त्री ने उत्तर दिया—"आर्य्य, नन्दिनी ने अपने पति का मुख भी नहीं देखा। जब वह छोटी थी तभी उसका विवाह एक दस वर्ष के बालक के साथ कर दिया गया था। माता तब पाटलिपुत्र में थी। एक दिन श्रेष्ठि सुदत्त के घर से लौटते समय सुना कि मेरे पति के घर कुछ दस्युओं ने आक्रमण किया और तभी मेरे पति चले गये। कहते हैं उस दस वर्ष के बालक की वहीं हत्या कर दी गयी। मां ने तभी से मुझे विधवा कहा है। उच्च कुल की मर्यादा पालने का मैंने अपनी माता को उसकी मृत्युशैया पर हाथ रखकर वचन दिया है।

आनन्द भिक्षु विचार-मग्न हो गया। जैसे उसका हृदय किसी घोर चिन्ता में डूब गया। जब दोनों भग्न स्तूप के पार सरोवर के तीर पर पहुचे उन्होने देखा, नेत्रहीन वृद्ध कौत्सुभ कुछ गा रहा था। आनन्द ने सुना, वह अश्वघोष के बुद्ध-गृहत्याग के महावैराग्य के गीत गा रहा था। उसका हृदय एकदम शान्त हो गया।

उसने प्रणाम करके कहा—"आर्य्य, संघस्थविर ने देवी नन्दिनी को प्रव्रज्या ग्रहण करने को आपके पास भेजा है।"

वृद्ध ने कहा—"कौन ? नन्दिनी ? शुभे, मेरे पास आओ।"

वृद्ध ने स्नेह से कहा—"यह केश नहीं रहेंगे, यह अलंकार नहीं रहेंगे। न चन्दन लगा सकोगी, न अङ्गराग, आलक्तक, न कानों मे कुसुम खोंस सकोगी, न···"

नन्दिनी ने कांपते स्वर में कहा—"भिक्षु, मैं तो अब भी यह सब नहीं कर सकती। मैं विधवा हूं।"

"किन्तु मन वश में रख सकोगी ?"

"प्रयत्न करूंगी भगवन् !"

वृद्ध हंसा। उसने कहा—"आर्य्ये, गौतम ने कहा था कि स्त्रियां संघ में आकर संघ की आयु घटा रही हैं, किन्तु जो भगवान् बुद्ध नहीं रोक सके वह मैं अन्धा, आंख से ही नहीं मन से भी, कैसे रोक सकता हूं ? आओ, मैं तुम्हें प्रव्रज्या ग्रहण कराऊंगा : आज से तुम अनुवर्त्तिनी हो। बुद्धं शरणं धम्मं शरणं, सघं शरणं गच्छामि !"

नन्दिनी ने नम्रता से शीश नत कर लिया। आनन्द चुपचाप देखता रहा। सन्ध्या के धूमिल वसन गहरे हो चुके थे।

तीन

आकाश में नारंगी उजाला फैलने लगा। उन्मत्त समीरण नन्दिनी के मुख पर बज उठा। उसने अपने उड़ते काषाय को हाथ से थाम लिया।

अन्धे भिक्षु कौत्सुभ की पुकार गूंज उठी—"अनुवर्त्तिनी!"

"आयी बाबा"—कहते हुए नन्दिनी ने पास जाकर उसकी लाठी को थाम लिया।

भिक्षु ने कहा—"अनुवर्त्तिनी, संघ का वातावरण तुझे कैसा लगता है बेटी?"

अनुवर्त्तिनी ने कहा—"देव, मेरा हृदय शान्त है, मेरी भावनाएं स्थिर हैं और मेरा चित्त अकलुष है।"

वृद्ध ने प्रसन्न होकर कहा—"भगवान् बुद्ध तेरी रक्षा करें!"

अनुवर्त्तिनी उसके पास से चल पड़ी। स्तूप के पीछे भूमि पर कुछ लकीरें खींचकर आनन्द भिक्षु गणना कर रहा था। उसके विशाल मस्तक पर चिन्ता की हल्की लहर सिकता पर मानो अपनी पदरेख छोड़ गयी थी। अनुवर्त्तिनी उसे देखकर रुक गयी। आनन्द अपने आप कह उठा—"यदि गणना सत्य है तो संघ का ध्वंस अब दूर नहीं है। नालन्दा का जो भी ज्ञान अब तक सुरक्षित रह सका है उसका अन्त होने में विलम्ब नहीं रहा।"

अनुवर्त्तिनी ने आगे बढ़कर कहा—"आर्य्य, सघ का ध्वंस! क्या कह रहे हैं आप?"

"मैं झूठ नहीं कहता अनुवर्त्तिनी"—भिक्षु आनन्द ने अपने दीप्त मुख को उसकी ओर मोड़कर कहा, "गणना, नागार्जुन की विद्या कभी मिथ्या नहीं हो सकती।"

"गणना?" अनुवर्त्तिनी ने शङ्कित स्वर में पूछा, "आप मेरा भविष्य बता सकेंगे?"

आनन्द भिक्षु ने उसे बैठने का संकेत करके कहा—"अपना बायां हाथ दिखाओ।"

नन्दिनी बायां हाथ फैलाकर बैठ गयी। एकाएक हाथ पर से दृष्टि उठा कर उसके मुख पर गड़ाते हुए आनन्द ने कहा—"आर्य्ये, तुम तो विधवा नहीं हो। फिर यह कैसा छल?"

नन्दिनी कांप उठी। उसने करुण स्वर मे कहा—"आर्य्य, उपहास भी तो इतना निर्दय!"

आनन्द भिक्षु ने गम्भीर स्वर में कहा—"आर्य्ये, भिक्षु आनन्द स्त्री तो क्या पुरुष से भी उपहास नही करता। वह अनेक मेधावियों को दिन में दीपक जलाकर परास्त कर चुका है। किन्तु तुम विधवा नही हो। मैं गौतम को शपथ खाकर कहता हूं कि यदि गणना सत्य है, सामुद्रिक शास्त्र सत्य है, तो तुम विधवा नहीं हो।"

नन्दिनी कुछ भी नहीं सोच सकी। वह उठकर खड़ी हो गयी। एक बार उसने आकाश की ओर शून्य दृष्टि से देखा। आनन्द भिक्षु ने देखा जैसे नीले आकाश में नवीन शतदलों की स्थिर निर्वात सृष्टि-सी हो गयी। नन्दिनी चिन्तामग्न चल पड़ी।

संघस्थविर ध्यान में मग्न बैठे थे। उनका पका हुआ शरीर ताम्रवर्ण का हो गया था। नन्दिनी सामने जाकर श्रद्धा से शीश नत कर बैठ रही। जब संघस्थविर बुद्ध भिक्षु के नयन खुले उन्होंने देखा, नन्दिनी सम्मुख ही प्रणाम कर रही थी। संघस्थविर देर तक देखते रहे। आज उनके हृदय में कामनाओं के वृक्ष के न जाने कहां से पत्ते निकलकर खड़-खड़ा उठे। उन्होंने मन-ही-मन त्रिपिटक का स्मरण किया। नन्दिनी ने कहा—"आर्य्य, चित्त का विकार दूर करने का संयम इतना दुख क्यों देता है जब उसका परिणाम केवल पवित्र शान्ति और सुख है?"

संघस्थविर ने कहा —"वत्से, संघर्ष से जन्म होता है। मनुष्य जैसे करवट बदल कर ही नींद में पूरा विश्राम पाता है और वह करवट उसे एक श्रम-सी प्रतीत होती है इसी प्रकार दुख हमें केवल दिखायी देता है। इस दुख की निवृत्ति ही मन की वास्तविक शान्ति है।"

नन्दिनी ने फिर कहा—"देव, मनुष्य के जीवन की चरम सात्विक वृत्ति क्या है?"

संघस्थविर ने विचलित स्वर को दबाते हुए कहा—"सम्यक् ज्ञान का सम्यक् क्रिया से सम्यक् मिलन कराना ही जीवन को सुचारु पथ पर अग्रसर करना है।"

नन्दिनी उठ गयी। संघस्थविर ने फिर ध्यान लगाने का प्रयत्न किया, किन्तु वे असफल रहे। उन्होंने एक बार चारों ओर देखा और फिर कांप उठे। दूर नन्दिनी सिर झुकाये चली जा रही थी।

चार

सन्ध्या के धूमिल अन्धकार में चैत्यों पर दीपक जलने लगे। तथागत की विराट् सौम्य मूर्त्ति के सम्मुख अनेक दीपाधारों में आलोक पुंजीभूत होकर जगमगा उठा। अगरुधूम की कांपती लहरें स्नायवित कम्पन में झूमने लगी, घण्टे और शङ्ख बजने लगे।

संघाराम के एक प्रकोष्ठ में संघस्थविर बुद्धभिक्षु बैठे कुछ ध्यान कर रहे थे। धुंधला दीपक जैसे सिर उठाकर अन्धकार को देख-देखकर सिहर उठता था। एक ओर तालपत्र पर लिखी पुस्तकें रखी थी। बुद्धभिक्षु का हृदय आज कुछ अस्थिर था। कई बार प्रयत्न करने पर भी वह ध्यान नही लगा सके। उन्होंने देखा, दूर उपसिकाएं चली जा रही थीं। वे गौर से देखने लगे। अन्त में उन्होंने देखा, प्रशान्त गम्भीर नन्दिनी धीरे-धीरे चल रही थी। भिक्षुणी होकर भी उसकी चाल की मादकता कम नही हुई थी, क्योंकि यौवन के दो दुर्ग अपने वैभव के उफान में मंथर आवाहन में झूम उठते थे। उसके मांसल शरीर से प्रभा फूट रही थी। एक क्षण के लिए संघस्थविर के हृदय में एक चौधियानी ज्वाला सुलग उठी।

उन्होंने उठकर बाहर बैठे भिक्षु को बुलाकर कहा—"जाओ, भिक्षु आनन्द को बुला लाओ।"

भिक्षु चला गया। संघस्थविर व्याकुल-से घूमने लगे। उनकी छाया दीवारों पर

कांपने लगी। थोड़ी देर बाद भिक्षु आनन्द ने आकर प्रणाम किया।

संघस्थविर ने बिना उत्तर दिये पुकारा—"आनन्द !"

"देव !" आनन्द ने नम्र स्वर में कहा।

संघस्थविर शान्त हो गये; उन्होंने कहा—"वत्स, आर्य्यसंघ को नित्य चुनौतियाँ दी जा रही हैं। तक्षशिला से खबर आयी है कि अनेक भिक्षुओं ने चीवर त्याग दिया। वे लोग अपनी प्रसन्नता से स्मार्त शैव हो गये हैं। ऐसे समय में हमें क्या करना चाहिए? संघ को किमी प्रकार बचाना होगा। भगवान् गौतम के अनुयायी आज अपने अन्तःकरण के सम्मुख भयानक से भयानक पाप करते नहीं हिचकते।"

भिक्षु आनन्द ने देखा, संघस्थविर व्याकुल हो उठे थे। उमने कहा—"आर्य्य, मैं दम वर्ष की आयु से ही माता-पिता से छीन लिया गया था। मुझे नहीं मालूम मेरे माता-पिना हैं या नहीं। श्रेष्ठि धनदत्त ने मुझे गोद लिया था। तब से मैं संघ के लिए दान कर दिया गया हूं। आज मुझे संघ में रहते हुए चौदह वर्ष वीत गए हैं। मैंने विद्याओं का मन्थन किया है। आपने अपने हाथ से मुझे ज्ञान का नवनीत खिलाया है। आज तक आपने बड़े-बड़े वैष्णव, शैव अथवा विभिन्नधर्मा से हंमते हुए मुझे शास्त्रार्थ करने भेजा था। आपके विश्वाम का प्रबल श्वाम ही मेरे प्रतिद्वन्द्वी की टिमटिमाती दीपशिखा को बुझा देता था और दीपक की निर्जीव धूमराशि को उठते देख कर मब हंम देते थे। आर्य्यसंघ के प्रबल चालक यदि शत्रु को देख भय से कांप उठेंगे तो आर्य्यावर्त मे वह आग लगेगी कि गौनम का प्रत्येक अनुयायी, प्रत्येक मठ भस्म में मिल जाएगा। क्षमा करें देव, मैंने विजनतीरा के प्रबुद्ध संघाराम के महायशम्वी, आयु मे अधिक ज्ञानी, प्रकाण्ड मेधावी मौम्य, सत्यवादी, संयमी, संघस्थविर बुद्धभिक्षु को कभी भी चलती हवा में कांपते पत्ते की तरह नहीं देखा था।"

"भिक्षु···!" संघस्थविर चीख उठे। किन्तु आनन्द कहता गया गया, "भिक्षु के तन का ध्वंम एक प्राकृतिक नियम है, किन्तु मन का ध्वंम एक अनाचार है, मार के अन्धकार की विजय है।"

संघस्थविर ने कुछ नही कहा। वह बाहर देखने लगे। उपासिकाएं लौट रही थीं। संघस्थविर की दृष्टि कहीं अटक गई। आनन्द ने देखा—वह अनुवर्त्तिनी थी। नन्दिनी ने एक बार भगवान बुद्ध की महान् मूर्त्ति को मिर झुकाकर प्रणाम किया और फिर उपासिकाओं में मिल गई जैसे अगरुधूम की लहरें आपम में घुल-मिल जाती है।

आनन्द मन-ही-मन उन्मत्त-मा हिल उठा। आज उमके मस्तिष्क में एक नया प्रहार हो रहा था। नन्दिनी! भिक्षु के संयम का सारा ममत्व क्षण-भर उपेक्षा की ठोकर से निर्जीव-सा पीछे हट गया। चौबीस बरम का वह रुका हुआ यौवन थपेड़े मारकर अन्तस्तल के किसी कोने में पुकार उठा। संघस्थविर की व्याकुल दृष्टि में वह तृष्णा देखकर आनन्द का मन विक्षुब्ध हो उठा।

उसने कहा—"आर्य्य !"

संघस्थविर ने धीरे से कहा—"वत्स !"

"आनन्द ने धीरे से कहा—"भगवन् ! आपका हृदय···"

संघस्थविर एकाएक मुड़कर खड़े हो गए। उन्होंने आनन्द को कठोरता से देखा। किंतु आनन्द ने बिना हिचकिचाए कहा—"देव, प्रलोभन ही प्रकाश का क्षय है।"

"तुम मुझे शिक्षा दे रहे हो बालक ?" संघस्थविर ने चौंककर कहा।

"प्रभु, मैं बालक हूं !" आनन्द ने झुककर कहा।

संघस्थविर क्षण-भर मौन रहे। फिर उन्होंने ही कहा—"आनन्द, तुम जाओ। मुझे सोचने दो। संघ की रक्षा करनी होगी। शत्रु बढ़ते जा रहे हैं।"

आनन्द ने कहा—"आर्य्य, मनुष्य अपने भीतर के शत्रु से सबसे अधिक भय खाता है, क्योंकि पतवार टूट जाने पर कोई नाव जल को नहीं काट सकती, वह केवल लहरों की दया पर झटके खाती है।"

और वह उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही तेजी से बाहर चला गया। संघस्थविर उद्भ्रान्त-से, मोहाकुल-से जड़ीभूत बैठे शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देखते रहे। द्वार में से नीला अन्धकार, उस पर तारे···सब कांप रहे थे। संघस्थविर ने विचलित होकर आंखों को बन्द कर लिया।

पांच

मेघों का गम्भीर गर्जन रात्रि की सनसनाती निस्तब्धता में व्याप गया और देर तक संघाराम गूंजता रहा। संघस्थविर व्याकुल-से प्रकोष्ठ में टहलने लगे। दीपक हवा से बुझ गया। उन्हें कुछ भी ज्ञात न हुआ।

मन ने कहा—'बुद्धभिक्षु तुमको क्या हुआ ? तुम जीवन के आदर्श को इतना नीचे गिरा गए ? मैं समझता था, अनुवर्त्तिनी के मोह-जाल में साधारण भिक्षु कुरंग की तरह हतचेत होकर फंस जाएगा किन्तु भदन्त बुद्धभिक्षु ?'

किन्तु तभी कोई कह उठा —कमल को पाने के लिए कीचड़ में पांव देना क्या कोई पाप है ?

संघस्थविर बैठ गए। लोभ गम्भीर भाव से हंसने लगा।

संघस्थविर फिसला है किन्तु यह संभलेगा भी, क्योंकि गौतम का आशीर्वाद यही पुकार रहा है। किन्तु रोग तो साधारण नहीं है। मृत्यु ही एकमात्र उपाय है।

संघस्थविर मुस्करा उठे।

'और जो यह समझते हैं कि आकर्षण पाप है वह अपने आपको धोखा देते हैं। लेकिन मैं नन्दिनी से प्रेम कर सकता हूं ?' संघस्थविर जोर से कह उठे। स्वर वर्षा की ध्वनि में गिड़गिड़ाने लगा। वह और उत्तेजित होकर कह उठे—'मनुष्य करने को क्या नहीं कर सकता ? क्या नन्दिनी मेरी नहीं हो सकती ? हो सकती है, हो सकती है !'

पाप की विकराल छाया समस्त नदी पर छा कर बाढ़ ले आयी। और संघस्थविर उन्माद में भर कर प्रकृति की अभिसार-लीला में अट्टहास कर उठे। प्रकोष्ठ का अंग-

प्रत्यंग गूंज उठा और प्रतिध्वनि करता अन्धकार भी हंसने लगा, अट्टहास करने लगा। कुछ देर को वह सब कुछ भूल गए। उन्होंने मौन होकर सुना, स्वर अब भी गूंज रहा था। उनकी आंखों के सामने से नन्दिनी का रूप चल उठा। वे विशाल नयन जिनके कोनों में लाज भरी अंगड़ाई लेती ललाई मांसल कमलों-सी पंखुड़ी खोलकर आलोक फैला देती थी उन्हें अन्धकार में मानो देखने लगे। वह मादक विह्वल अंगस्पर्श का सुख उन्हें विष से भर गया। बिजली कौंध उठी।

किन्तु, संघस्थविर ने कहा—बुद्धभिक्षु ने भी कभी प्रेम किया था? काषाय में वैराग्य है प्रेम नहीं। प्रेम है किन्तु सूर्य के प्रकाश-सा। ऐसी अनुवर्त्तिनी के स्थान करोड़ों अनुवर्त्तियों को अपनाने का, पथ-प्रदर्शित करने का भार उन पर आर्य्यसंघ ने डाला है।

संघस्थविर फिर हंस पड़े।

मैं अपने को धोखा दे रहा हूं। चाहे मोह, चाहे वासना, चाहे पाप, अथवा कुछ भी हो बुद्धभिक्षु एक नारी के मांसल पयोधरों को देखकर व्याकुल हो उठा है। इस नश्वर अणुभाण्ड की एक मनोहर स्वर्गिक कल्पना!

संघस्थविर फिर उद्भ्रान्त-से घूमने लगे। उन्होंने कहा—'कब तक अपने को बहलाओगे भिक्षु? तुम नन्दिनी के मोह में फंस गए हो, किन्तु तुम्हारा दम्भ तुम्हें भीतर-ही-भीतर खा रहा है। सत्य सत्य ही है, और यदि सत्य को झुठलाया जा सकता है तब भी सत्य का एक रूप दूसरे रूप से ढंका नही जा सकता।' संघस्थविर चुप हो गए। उन्होंने चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा। अन्धकार ठण्ड से सिसक रहा था। बिना सांस लिये नभ से जलधर अविराम मूसलाधार वर्षा कर रहे थे। पृथ्वी पर से छींटें उछल रही थीं। कभी-कभी बिजली चमक जाती थी। प्रकोष्ठ में भी सीलन थी। ठण्डी हवा के झोंके भीतर घुस-घुस आते थे। उनमें एक चिपकनापन था।

एकाएक वासना ने अवगुण्ठन खींचकर कहा—नन्दिनी का सौन्दर्य बुद्धभिक्षु को प्रिय नहीं, उसका वह मादक यौवन प्रिय नहीं। उसे चाहिए केवल नन्दिनी।

पुराने संयम ने मुंह फेर कर पूछा—'तब किसलिए भिक्षु?'

'क्योंकि मन उसे चाहता है।'

'और किसी उपासिका को नहीं चाहता? नारी के प्रति लोभ? आलिंगन की मादक तृष्णा, पल-भर शरीर से शरीर सटाकर ऊष्मा में झूम जाना, त्याग के शव पर चुम्बन करना, यही सब तुम्हारी प्यास है भदन्त बुद्धभिक्षु? माता के गर्भ से जन्म लिया था अनजाने। विद्या पढ़ी, विवाह किया। अनिंद्य सुन्दरी पत्नी का स्वर्गवास होने पर शारीरिक विश्व की मोहजड़ित नश्वरता देखकर तुम यौवन में अपने आप भिक्षु बने थे। उसके बाद आज तक तुम स्त्री को भूले रहे। फिर आज इतने वर्ष बाद यह आग क्यों धधक उठी जिसके कसले धूम्र से संघ घुटकर मर जायगा? आज तुम में यह प्यास क्यों जाग उठी?'

संघस्थविर ने देखा, सामने मार खड़ा था। पीछे गौतम का हाथ अभय दे रहा था।

बिजली कड़कने लगी। विष अमृत बनकर कण्ठ में उतर गया। प्रकाश सो रहा था, हलचल सो रही थी। संघस्थविर पुकार उठे—'बुद्धं शरणं, धम्मं शरणं, संघ शरणं गच्छामि।'

अन्धकार निर्मल हो गया। पाप की भीषण प्राचीर ढह गई। संघस्थविर चौंक उठे, 'यह वह क्या सोच रहे थे? क्या कहते समस्त आर्य्यसंघ के भिक्षु कि बुद्धभिक्षु एक नारी के अंक में धंस जाने के लिए सब कुछ भूल गया जैसे कीड़ा अन्धकार में घुस जाता है। यह वह क्या कर रहे थे? इस वृद्धावस्था में यह किस जन्म का पाप अचेतन बनकर उन्हें पतन के महाखड्ड में लिए जा रहा था?'

वे उठे और बुद्ध के मन्दिर की ओर चले। पानी में उनका शरीर बिल्कुल भीग गया। उन्होंने प्रतिमा के चरणों पर सिर टेक दिया और कहने लगे: 'भगवान्, मेरे पाप के कारण संघ पर कोई दोष नहीं आए। मैंने अनजाने ही यह पाप किया है। आपके आशीर्वाद से मैंने वृद्धावस्था को महाकलंक से बचा लिया है भगवान्! एक दिन आपने यौवन में मार को पराजित किया था आज उसी शक्ति, उसी सत्य का वरदान मुझे भी दो निर्विकार···!'

संघस्थविर रो उठे जैसे आज उनका हृदय पाषाणों को भेदकर बाहर आ जाने के लिए घोर संघर्ष कर रहा था।

आकाश में बादल गरजते रहे। संघाराम निस्तब्ध-सा सो रहा था। हवा के तेज झोंकों में पानी छहर जाता था और अन्धकार में तड़पने लगता था।

छः

प्रभात की शीतल वेला में बादल फटने लगे और नीला आकाश बीच में से झांकने लगा जैसे आज प्रकृति की उदासीनता को बढ़ाने के लिए ही भोर ने वस्त्र धारण किए थे। शीतल वायु बलहीन-सी चल रही थी। दूर क्षितिज पर प्रकाश फूट रहा था।

अन्धा भिक्षु कौत्सुभ चैत्य में से निकलकर पुकार उठा—"नन्दिनी!"

नित्य की भांति उसे आज दूर ही से उत्तर नहीं मिला। नन्दिनी ने धीरे से पास आकर कहा—"बाबा!"

"हां वत्से!" स्नेह से अन्धा वृद्ध उसके सिर को छूने के लिए टटोलने लगा। अनुवर्त्तिनी झुक गई। कोई कुछ न बोला। वृद्ध ने ही कहा—"अनुवर्त्तिनी, मुझे तड़ाग तक ले चलोगी?"

"क्यों नहीं ले चलूंगी?" खिन्नता से नन्दिनी ने उत्तर दिया।

अनुवर्त्तिनी आज कुछ अपने को भूली-सी थी। आज उसके हृदय में अज्ञात आशंका हो रही थी। होंठ जुड़े थे, आंखों में उदासी झांक रही थी।

वृद्ध बोला—"अनुवर्त्तिनी!"

"भिक्षु!" अनुवर्त्तिनी ने कहा।

"तू आज उदास-सी लगती है मुझे। क्या आज सूर्य्य नित्य की भांति पूर्व से नहीं उग रहा ? नित्य तो इतनी बातें करती थी कि मैं सुनते-सुनते थककर तुझे चुप करने का पथ खोजता था और आज तू बिल्कुल मौन है। इसका कारण क्या है ?"

"कुछ तो नहीं। क्या प्रत्येक वस्तु का कारण होना आवश्यक है ?" अनुवर्त्तिनी ने कहा।

"प्रत्येक क्रिया के परिणाम का मूल हेतु कारण ही है नन्दिनी। अनेक कारणों से अनेक कार्य होना अथवा इसके विपरीत भी सापेक्ष संसर्ग का ही आवश्यकीय रूप है।"

"क्या होगा कहकर भी ?" अनुवर्त्तिनी दबी हुई-सी कह उठी।

"कहो न ?" वृद्ध ने आग्रह किया।

"बाबा ! आनन्द भिक्षु ने कहा था कि संघ के ध्वंस के दिन निकट आ रहे हैं।"

"यदि आ ही रहे हैं तो कौन रोक सकता है पगली ? भविष्य तो अपने हाथों में नहीं है।"

"और मुझे ज्योतिषी के मुख पर एक भय की रेखा दिखाई दी थी।"

"किसके ? भय ? क्यों ?" वृद्ध चौंककर कई प्रश्न एकसाथ पूछ बैठा।

शान्ति से नन्दिनी ने कहा—"आनन्द भिक्षु ने मुझे बताया था और कहा था अदृष्ट यही कहता है।"

"किससे ?" वृद्ध ने फिर पूछा।

"यह तो उन्होंने नहीं बताया," अनभिज्ञ नन्दिनी ने उत्तर दिया। वृद्ध चुप हो गया मानो किसी गहरी चिन्ता में था। उसका ऐसा भाव देखकर अनुवर्त्तिनी बोल उठी, "तुम ऐसे चुप क्यों हो गए ?"

"मेरा हृदय किसी अज्ञात प्रेरणा से दहल रहा है।" वृद्ध ने अपनी सफेद पुतली घुमाते हुए कहा। अनुवर्त्तिनी उस स्थान की निर्जनता तथा बीभत्सता देखकर भयभीत हो गई। उसने वृद्ध का हाथ पकड़कर कहा—"चलो यहां से, मुझे डर लगता है।"

"डर की क्या बात है ? सत्य और शान्ति हमारे साथ हैं। गौतम का वरदहस्त हमारे शीश पर है। मार अपना कुछ नहीं कर सकता। तुम्हारे हृदय में कोई मोह तो नहीं है ?" वृद्ध बात करते-करते सहसा पूछ बैठा।

"हां है," अनुवर्त्तिनी झेंपती हुई बोली।

"क्या है ?" वृद्ध ने अविचल भाव से पूछा।

"भिक्षु आनन्द ने कहा था कि मैं विधवा नहीं हूं। तभी से मेरे हृदय में एक तृष्णा एक स्वप्न की मादक छलना-सी जाग उठी है।"

"अनुवर्त्तिनी !" वृद्ध ने गम्भीर होकर कहा—"तुमने मेरा उपदेश नहीं माना। तुम निर्मम नहीं हुई।"

अनुवर्त्तिनी चौंक पड़ी। यह वह क्या प्रगट कर गई ! उससे कुछ भी नहीं बोला गया। वृद्ध ने फिर कहा—"अनुवर्त्तिनी, गौतम को साक्षी करके कहो कि तुम उस कल्पित मनुष्य की मृगमरीचिका में नहीं भटकोगी। आनन्द भिक्षु की गणना मिथ्या नहीं हो

सकती, किन्तु क्या तुम वैधव्य के बल पर भिक्षुणी हो ? क्या पति प्राप्त होने पर तुम लौट जाओगी ? गौतम को समर्पित होकर तुम एक साधारण मनुष्य के पीछे भागोगी ? कहो अनुवर्त्तिनी, तुम इस चांचल्य का प्रायश्चित करोगी ?"

"करूंगी भिक्षु !" मन्त्रमुग्ध अनुवर्त्तिनी ने उत्तर दिया। वह लाज से गड़ी जा रही थी।

"अनुवर्त्तिनी, आज मैं तुम्हें एक बात बताऊं, सुनोगी ?" वृद्ध ने पूछा।

"कहो न ?" नन्दिनी नम्र होकर बोली।

"अनुवर्त्तिनी," वृद्ध बोलने लगा, "तुमने संघ में एक हलचल मचा दी है। संघ का प्राण मानो माया में लिप्त हो चुका है। तथापि तुम भी फिसली हो। फिर आर्य्यसंघ के मान की रक्षा क्या यह अन्धा करेगा ?"

वृद्ध अधिकाधिक चिन्तामग्न और गम्भीर होता जा रहा था। वह कहता गया, "मानव के लिए राष्ट्र बदलेगा। अनुवर्त्तिनी, यह मेरी भविष्यवाणी है। तुमको अपना स्वार्थ त्यागना पड़ेगा। तुम्हारा सुहाग कुछ नहीं। तुम्हारे लिए पुरुष कुछ क्षण के लिए एक घिनौना भेड़िया है। तुम उस पर से अपनी आसक्ति हटा लो। तुम महोल्लास के नीचे काषाय ग्रहण कर चुकी हो। फिर तुममें यह अहंकार क्यों ? तुममें यह मादकता कैसे बची रह गई ? तुम गौतम की पवित्र अनुवर्त्तिनी आज एक साधारण पुरुष की अनुवर्त्तिनी होने जा रही हो ? क्या यह संघ के लिए लज्जाजनक बात नहीं ? क्या तुम अपने को सत् चिन्तन, सत् कर्म्म करने वाली समझती हो ? अनुवर्त्तिनी, फिर कहो कि तुम चंचल नहीं हुई हो। तुम भिक्षुणी हो। तुम्हें गौतम के आठों उपदेश जीवन में पालन करने के लिए याद हैं। तुम गिरतों को उबारोगी। तुम गौतम पर पूरा-पूरा विश्वास रखोगी और तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा का पूरा-पूरा ध्यान रहेगा।"

वृद्ध चुप हो गया। हवा में वृक्षों के पत्ते खड़खड़ा उठे। अनुवर्त्तिनी अपराधिनी की भांति देखती रही। वह कुछ भी बोलने का साहस न कर सकी। वृद्ध ने फिर कहा—"अनुवर्त्तिनी एक बार गौतम की शरण में आओ।"

अनुवर्त्तिनी कांपते स्वर में साहस करके बोली—"बुद्धं शरणं, धम्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि।"

वृद्ध हंस पड़ा। बोला—"आया न साहस ? अच्छा जो मैंने कहा उसे भी स्वीकार करो। तब संघ पर यह भयानक आघात न होगा।"

अनुवर्त्तिनी ने साहस बटोरा। नीचे देखती हुई स्थिर स्वर में जो वृद्ध ने कहलाया धीरे-धीरे दोहरा गई।

वृद्ध ने कहा—"बस इतना ही काफी है।" और वह चिल्ला पड़ा—"तथागत ! तुम्हारे अनुवर्त्ती और अनुयायी तुम्हें भूलते जा रहे हैं, उन्हें जगाओ भगवान् !"

और वृद्ध बड़ी भयंकरता से चीख उठा—"बुद्धं शरणं, धम्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि !" मानो आज वह अकेला ही आर्य्यसंघ का प्रतिनिधि बनकर बौद्ध धर्म और संघ की शरण में जा रहा था। अनुवर्त्तिनी मुंह फाड़े अवाक् और भयभीत-सी उसे देख

रही थी। शब्द अभी भी गूंज रहे थे।

वृद्ध ने पहले जैसे स्वर से कहा - "चलो।" अनुवर्त्तिनी ने उसका हाथ पकड़ लिया। प्रकृति में फिर भी नित्य का-सा जीवन नहीं था। आज मानो अदृष्ट की ऊष्मा चारों ओर तीव्र वेग से फैल रही थी। एकाएक अनुवर्त्तिनी बड़बड़ा उठी—"बुद्धं शरणं, धम्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि।" वृद्ध हंस पड़ा। अनुवर्त्तिनी का हृदय मंज गया, उत्फुल्ल हो गया, पवित्र हो गया। उसने देखा - वृद्ध गम्भीर था।

उस समय भिक्षु जल्दी-जल्दी अपना काम समाप्त करके महाविहार की ओर जा रहे थे। अनुवर्त्तिनी और वृद्ध भी उधर ही चल दिए।

सात

संघस्थविर ने सिर उठाकर पूछा "आनन्द भिक्षु, कहो क्या कहते हो?"

आनन्द ने निष्प्रभ मुख से कहा -- "आर्य्य, मैं संघ का त्याग करने आया हूं?"

"त्याग!" संघस्थविर चौंककर उठ खड़े हो गए--"तुम भिक्षु आनन्द संघ का त्याग करने आए हो? तुम चीवर उतारकर फेंक दोगे। चौदह वर्ष से जिसे मैंने भिक्षु होकर भी पिता की ममता से पाला है वही तुम आज मुझसे कहने की धृष्टता कर रहे हो कि तुम वासनाओं से पराजित होकर यह चीवर फाड़कर फेंक दोगे। जिसकी शान्ति से आज आर्य्यावर्त्त, दक्षिणापथ, चीन, यवद्वीप, सारा संसार एक सूत्र में बंध गया है; सहस्रों जीवन जिसकी पवित्रता की छाया में सार्थक हो गए हैं, उसी की गरिमा को ठुकरा कर तुम मार के सामने हतभाग-से रो रहे हो?"

"संघस्थविर!" आनन्द का मुख सुन्दर हो उठा—"मैं गृहस्थ का जीवन व्यतीत करना चाहता हूं। मैं कोई पाप तो नहीं कर रहा। भिक्षु गृहस्थ हो सकता है, गृहस्थ से फिर भिक्षु हो सकता है।"

"नहीं आनन्द," संघस्थविर ने फिर कहा --"आज आर्य्यावर्त के प्रकाण्ड मेधावी विजनतीरा के संघाराम को सिर झुकाते हैं। आनन्द भिक्षु एक साधारण व्यक्ति नहीं। वह बुद्धभिक्षु का शिष्य, अनेक विद्वानों को परास्त कर चुका है। उसके कठोर विवाद धर्म्मकीर्त्ति के-से उज्ज्वल और अकाट्य प्रमाण हैं। आर्य्यसंघ के चारों ओर विपत्ति के बादल घिर रहे हैं। राजा अपना नहीं है। ब्राह्मणों का प्रहार दिन-पर-दिन प्रबल होता जा रहा है। सिद्धों का प्रजा पर प्रभाव बढ़ता जा रहा है। चारों ओर भयानक बातें सुनाई देती हैं। बर्बर यवनों का आक्रमण प्रायः होता रहता है। ब्राह्मणों ने जो विष फैलाया है वह धीरे-धीरे हमारी भक्त प्रजा में व्याप्त होता जा रहा है। बर्बर यवनों ने पुरुषपुर, तक्षशिला और अनेक बौद्धविहारों को भस्मीभूत कर दिया है। आनन्द भिक्षु, तुम चले जाओगे तो आर्य्यसंघ की रक्षा क्या मैं अकेला करूंगा? मैं जानना चाहता हूं कि तुम स्त्री पर इतने आसक्त क्यों हो गए।"

आनन्द निर्विकार-सा खड़ा रहा। वह बोला—"भदन्त, मैं जीवन में आज रूप और मोह से पराजित हो गया हूं। मैंने कभी भी जो नहीं देखा उसे आज देखना चाहता

हूं प्रभो ! यदि आर्य्यसंघ एक व्यक्ति पर निर्भर है तो वह अधिक जीवित नहीं रह सकता ।"

"भिक्षु !" संघस्थविर चीख उठे—"तुम संघ का अपमान कर रहे हो ।"

"नहीं भिक्षु !"

"तुमने मुझे भिक्षु कहा है ?"

आनन्द हंस पड़ा—"अभिमान को ठेस पहुंची है आर्य्य ! आज आप साधारण भिक्षु नहीं रहे न ? किन्तु मनुष्य सबसे ऊपर है। उसका सुख हम मठों और विहारों में बन्दी नहीं कर सकते ।"

संघस्थविर ने आगे बढ़कर कहा—"आनन्द, तुम स्त्री के आलिंगन को सुख कहते हो, तुम्हें लज्जा नही आती ?"

"लज्जा ?" आनन्द ने निर्भीक स्वर से कहा—"आर्य्य, क्या यशोधरा पाप है ? क्या राहुल का जन्महेतु पाप है ? मैं पूछता हूं आज क्या मातृगौरव पाप है ? नहीं, संघ-स्थविर ! यौवन भिक्षु होकर रहने की आयु नहीं है ।"

"पापात्मा," संघस्थविर ने कहा—"तुझे नारी के स्तनों में आज जीवन का स्वर्ग दिख रहा है ? तुझे उन बड़ी-बड़ी आंखों में जो अमृत दिख रहा है ? वह वास्तव में विष है। यौवन समाप्त हो जाएगा, बल क्षीण हो जाएगा किन्तु आत्मा का ध्वंस होने पर तू कुत्तों की तरह तड़प कर मर जाएगा ।"

"संघस्थविर," आनन्द ने गम्भीर होकर कहा—"यदि यौवन पाप है तो प्रकृति ने उसे बनाया ही क्यों ? व्यवहार और प्रकृति का सम्बन्ध अटूट है । यह एक क्षण अपना इतना कठोर सत्य लिए है कि कोई भी उसे झुठा नहीं सकता । मैं जाना चाहता हूं ।"

संघस्थविर क्रुद्ध हो उठे । उन्होंने फूत्कार किया, "तुम नही जा सकते ।"

"क्यों ?" आनन्द का स्वर खिंच गया ।

"श्रेष्ठि धनदत्त ने तुम्हें पालित पुत्र के रूप में संघ को अपने समस्त धन के साथ दान किया है। यदि तुम्हें मैं छोड़ भी दूं तो भी श्रेष्ठि धनदत्त नहीं छोड़ेगा ।" और वह कठोरता से हंस उठे ।

आनन्द ने विक्षुब्ध होकर कहा—"तब मैं एक असहाय दस वर्ष का बालक था। कुछ भी नहीं जानता था। श्रेष्ठि धनदत्त ने जिस हाथ से मेरे मुख में अन्न डाला था, उसी हाथ से मेरे जीवन का सारा सुख-हर्ष छीन लिया था। मेरी बलि पर निर्वाण की चाह करके क्या वह अपनी तृष्णा से मुक्त हो सकेगा ? संघस्थविर, मैं मनुष्य हूं बलि का बकरा नहीं जो किसी के दान को स्वीकार करके धन की तरह निर्जीव-सा अपना सिर झुका दूं। मैं अस्वीकार करता हूं। मैं किसी का पशु नहीं हूं ।"

"नराधम," संघस्थविर चिल्ला उठे—"आर्य्यसंघ तुझे कभी भी क्षमा नहीं करेगा। राजा को विवश होकर न्याय की ओर झुकना पड़ेगा। तू संघ नहीं छोड़ सकता ।"

"न्याय ?" आनन्द के होंठों पर विद्रूप खेल उठा—"मनुष्य को पशु बना देना आपका न्याय है ! यदि यही आपकी गरिमा का यश है, तो आर्य्यसंघ टुकड़े-टुकड़े

हो जाएगा। गौतम के अन्तिम पगचिह्न तक पवित्र आर्य्य-भूमि से मिट जायेंगे।"

"चुप रहो!" संघस्थविर हांफ उठे।

"मैं निश्चय ही जाऊंगा वृद्धभिक्षु! तुम मुझे कारागार में रखवा सकते हो, तुम मुझे भागने से रोक सकते हो; किन्तु मुझे भिक्षु के रूप में नही रख सकते।"

क्रोध से संघस्थविर उसकी ओर बढ़ने लगे। उनकी मुट्ठियां बंध गयीं। आनन्द भिक्षु कहता रहा—"मैं चला जाऊंगा, मेरे साथ ही नन्दिनी जाएगी।"

"नन्दिनी!" संघस्थविर के मुंह से अकस्मात् निकल गया। उनके हाथ खुल गये। वह व्याकुल-से पूछ उठे—"नन्दिनी जाएगी?"

आनन्द ठठाकर हंस पड़ा। वह कहने लगा—"क्यों, संघस्थविर? नारी पाप है, आलिंगन विष है? और नन्दिनी का नाम आते ही आप कैसे इतने व्याकुल हो उठे! नन्दिनी जाएगी। मैं जानता हूं आप उस पर आसक्त है। आप अपना सारा बल लगाकर भी उसे नहीं रोक सकते।"

संघस्थविर लौट गए। प्रकोष्ठ की दीवार की ओर मुह करके उन्होंने कहा—"आनन्द, नन्दिनी ए। आग है, वह सघ को भस्म कर देगी। उसे जाना ही होगा।"

आनन्द उत्फुल्ल-सा पुकार उठा—"संघस्थविर की जय हो! उन्होंने आज एक सत्य कहा है क्योंकि उनके अभिमान के पख उस प्रखर ज्वाला मे झुलस गए है।"

सघस्थविर ने कुछ नही कहा। वह वैसे ही उसकी ओर पीठ करके खड़े रहे। आनन्द भिक्षु ने देखा, वह जैसे बिल्कुल थक गए थे। संघस्थविर वही भूमि पर पराजित-से बैठ गए। उनके चरणों के नीचे मेधावियों का ज्ञान तालपत्रों पर लिखा पड़ा था। किन्तु वे चुप थे। किसी विकराल छाया ने उनके स्वर को अवरुद्ध कर दिया। भय और क्रोध से वह हाथों मे मुंह छिपा कर लेट गए। आनन्द चला गया।

आठ

अनुवर्त्तिनी विशाल स्तम्भ के सहारे खड़ी होकर आरती के बाद इधर-उधर देखने लगी। भिक्षुगण अपने-अपने कार्य में मग्न थे। अगरुधूम की गन्ध से वायुमण्डल महक रहा था। उसी समय आनन्द भिक्षु ने उत्तेजित आवेश में प्रवेश किया और नन्दिनी से कहा—"शुभे, मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूं।"

नन्दिनी ने कहा—"मुझसे?"

और वह विस्मित-सी उसके साथ चल पड़ी। भग्न स्तूप के चारों ओर घास उग रही थी। दोनों वही बैठ गए। आनन्द का श्वास फूल रहा था। उसने एक बार चारों ओर देखा और कहा—"नन्दिनी, आज जो कुछ मैं तुमसे कह रहा हूं तुम्हारा जीवन, यौवन और भविष्य सब कुछ उसी पर निर्भर है।"

नन्दिनी चकित हो गयी। उसने कहा—"आर्य्य, ऐसी क्या बात है मैं भी तो सुनूं।"

आनन्द भिक्षु ने निर्भीक स्वर से कहा—"देवी, मैं तुम्हारा पति हूं।"

अनुर्वत्तिनी किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी बैठी रही। फिर एकाएक उसकी भृकुटि तन गई। वह कठोर स्वर से बोली—"भिक्षु, तुम एक विधवा का नहीं एक उपासिका का अपमान कर रहे हो।"

आनन्द फिर भी नहीं चौंका। उसने कहा—"अकाल वैधव्य की यह छलना तुम्हारा एक घोर अज्ञान है जिसके कारण तुम पर्वत से उतरने का मार्ग न पाकर ऊपर से लुढ़कने के लिए तैयार हो गयी हो।"

अनुर्वत्तिनी क्रोध से चिल्ला उठी—"तुम पागल हो गए हो भिक्षु!"

आनन्द ने धैर्य से कहा—"आर्य्यसंघ की कोई स्त्री तब तक उपासिका नहीं हो सकती जब तक उसका पति उसे आज्ञा नहीं दे दे।"

"और आप," अनुर्वत्तिनी चिढ़कर कह उठी—"धनदत्त के पालित पुत्र, जो संघ को दान कर दिए गए हैं, आज्ञा देने योग्य कब से हो गए?"

"अनुर्वत्तिनी, मैं विद्रोही हूं।" आनन्द ने व्याकुल होकर कहा।

अनुर्वत्तिनी पागल की तरह हंस उठी। उसने कहा—"भिक्षु, तुम मुझे पागल बना रहे हो? क्या मैं सचमुच इतनी सुन्दर हूं कि आर्य्यसंघ का मेधावी आनन्द भिक्षु सब कुछ त्यागकर मुझे प्राप्त करने के लिए इतना बड़ा असत्य गढ़ रहा है? मेरी माता का नाम तो बताओ भिक्षु?"

आनन्द ने उसे तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा—"तुम्हारी माता का नाम चन्द्रभागा था, तुम्हारे पिता का अवलोकितेश्वर; और मेरे पिता का नाम चन्द्रसेन था, मेरी माता का विजनवती। दस वर्ष की आयु पर मुझे दस्यु पकड़कर ले गए थे। उन्होंने मेरे माता-पिता की हत्या कर दी थी। श्रेष्ठि धनदत्त ने मुझे एक दिन जाह्नवी के तट पर पाया था। तुम्हारे माता-पिता का पुराना मित्र श्रेष्ठि सुदत्त मेरे पिता का भी पुराना मित्र था। और सुनना चाहती हो?—कि तुम्हारे पिता जब उज्जयिनी से लौटकर मणिभद्र के यहां गए थे तभी उन्होंने मेरा तुमसे विवाह किया था, क्योंकि अवलोकितेश्वर चन्द्रसेन के साथ-साथ बालीद्वीप में व्यापार करना चाहते थे; तुम्हारी माता···"

"भिक्षु," अनुर्वत्तिनी सिर पकड़कर रोने लगी—"मै नहीं जानती मैं क्या करूं। भिक्षु, तुम, तुम मेरे···? नहीं, नहीं।" फिर वह चुप हो ऊपर देखकर कह उठी—"क्या तुमने गणना से ही सब नहीं जान लिया?"

"नहीं नन्दिनी," स्नेह से आनन्द कह उठा—"गणना से नाम नहीं निकलता। और यदि वह भी सुनना चाहती हो जो एक दस वर्ष तक का बालक याद रख सकता है तो वह भी सुनो?"

अनुर्वत्तिनी थकित-सी बैठी रही। आनन्द कहने लगा—"चलो नन्दिनी, संघ में हम साथ-साथ नहीं रह सकते। संघ कहता है यौवन पाप है, प्रेम पाप है; किन्तु मैं इस सबका त्याग नहीं कर सकता। मेरा जीवन एक शुष्क नीरस पेड़ का ठूंठ-मात्र बनकर नहीं रह सकता। आज जो घटा छायी है वह मेरी अपनी है। वर्षों से तुमने मेरी प्रतीक्षा की है, दुःखों से पराजित होकर तुमने अपनी हार को भाग्य की जय बनाकर सिर झुका दिया

है। देखो, यह भी एक दिन है कि तुम्हारा खोया हुआ कोष आज तुम्हारे सामने आया है नन्दिनी ! हम तुम, तुम हम, और किसी से कुछ नहीं। संसार का बड़े-से-बड़ा वैभव तुम्हारे चरणों पर न्यौछावर है। आओ चलें। जिस पति के लिए रो-रोकर तुमने, तुम्हारी माता ने आंखें खोयी हैं आज वह अचानक ही तुम्हारे जीवन के सुख-स्वर्ग के द्वार खोलने की तुमसे भीख मांग रहा है।"

अनुर्वात्तनी ने देखा, आनन्द के मुख पर अद्भुत रूप आतुर हो उठा था। वह देखती रही। उसने कहा---"तुम ? तुम मेरे देवता हो किन्तु आर्य्यसंघ के लोग क्या कहेंगे ? क्या वे इसपर विश्वास करेंगे ? नहीं भिक्षु, जब इतनी बीत गयी तो अब कितना सुख है जिसके लिए यह रूप ढंक दिया जाए।"

"रूप ?" आनन्द ने कहा—"यह परवशता का रूप चाहे कुछ हो मन का सौन्दर्य नहीं है, क्योंकि इसमें सत्य के लिए संघर्ष करने की शक्ति नहीं रही है। क्या तुम कह सकती हो कि तुम पुरुष से घृणा करती हो ? क्या यह अथाह सौन्दर्य लेकर तुम केवल पत्थरों से टकराकर हाहाकार-मात्र करने के लिए हो ?"

अनुर्वात्तनी कांप उठी। उसने कहा---"तथागत, मेरी रक्षा करो। मैं नारी हूं कुछ भी नहीं समझता।"

आनन्द खिन्न-सा बोला —"नन्दिनी, तुम पागल हो। तुम भय से जड़ हो गयी हो।" वह खड़ा हो गया।

अनुर्वात्तनी ने धीरे से कहा--"नहीं भिक्षु, मैं गौतम की उपासिका हूं। तुम रूप और यौवन के मद में जीवन के उच्च आदर्शों को भूलकर फिर से कीचड़ में पांव देना चाहते हो। मैं पवित्र उपासिका तन और मन से गौतम की शपथ खाकर संघ के लिए अपना समर्पण कर चुकी हूं। मैं कहीं नहीं जाऊंगी।"

आनन्द ने सुना। पांव लड़खड़ा गए। वह मूर्छित होकर गिर गया। अनुर्वात्तनी चीख उठी। गोद में आनन्द का सिर रखकर वह किसी भी स्त्री की भांति व्यजन करने लगी। जब उसने सिर उठाकर देखा, सामने संघस्थविर बुद्धभिक्षु खड़े क्रोध से कांप रहे थे। उनका मुख काला और विकृत हो रहा था।

नौ

सन्ध्या बीत चली। बादलों के कारण गहन अन्धकार छा गया। आज संघ में एक काटनेवाली उदासी सबके हृदय में शंका उत्पन्न कर रही थी। हवा चल रही थी। संघ का सिंहद्वार बन्द कर दिया गया। चर्राकर पट मिल गए। अन्धकार की छाया डरावनी होकर प्रांगण में फैल गई। उस उत्कट नीरव में एक असह्यता थी जो मन मिचला रही थी।

सब भिक्षु इकट्ठे हो रहे थे। संघस्थविर ने घोषणा की थी कि आज एक प्रमुख प्रश्न पर विचार करना है। सब गम्भीर और उत्सुक थे। एक ओर उपासिकाएं बैठी थीं।

अनुवर्त्तिनी चुपचाप एक ओर बैठी थी। आज वह डरी हुई, धैर्यहीन, भिक्षु-तेज से भ्रष्ट-सी दिखाई दे रही थी। आनन्द भिक्षु निष्प्रभ-सा अनुवर्त्तिनी को एकटक देख रहा था।

एकाएक अन्धा वृद्ध कौत्सुभ बोला —"संघस्थविर, आज इस समय इस मन्त्रणा की क्या आवश्यकता है ? क्या कारण है उदासीनता का ?"

संघस्थविर गम्भीर होकर बोल पड़े—"भिक्षु, इस पैशाचिक अन्धकार का कारण केवल नन्दिनी है।"

नन्दिनी चौंक पड़ी। वह उठ खड़ी हुई और संघस्थविर ने देखा, वह क्रोध से कांप रही थी। वे कहने लगे—"आर्य्य भिक्षु-समुदाय सुने ! गौतम के सिद्धान्तों को मानकर चलनेवाले इन भिक्षुओं का जीवन सदा आदर्श रहा है। उसमें कोई कलुष की छाया भी नहीं। फिर क्या कारण है कि संघ के भिक्षुओं के हृदय से वैराग्य हटता जा रहा है ? क्या कारण है कि मेधावी आज बुद्धिहीन, वीर्यहीन, तेजहीन, नरककालों का भार उठाये मानव जीवन के अभिशाप बनकर महापाप के विष को फैला रहे हैं ? इस सबका कारण एक है। वह है केवल नन्दिनी का आगमन। क्या आज से पहले भी कभी संघ में यह तामसी निर्जनता फैली थी ?"

एकत्रित भिक्षु समुदाय चुपचाप बैठा रहा। वे लोग नन्दिनी की ओर देख रहे थे। संघस्थविर गम्भीर थे। कभी-कभी उनके अधरों की कोर फड़कने लगती थीं, किन्तु धूमिल दीपों के प्रकाश में कोई उसे नहीं देख पाया। अनुवर्त्तिनी जड़-सी खड़ी पृथ्वी की ओर देख रही थी। संघस्थविर ने एक बार भी उसकी ओर नहीं देखा।

संघस्थविर ने फिर कहा—"अमिताभ के चरणों की शपथ खाकर कहो, क्या मैं झूठ कहता हूं ?"

एकत्रित भिक्षु हिल उठे। फुसफुसाहट तीव्र होने लगी। शब्द सुनायी दे गया—"नहीं, आप ठीक कहते हैं।"

भिक्षु समुदाय फिर चुप हो गया। उत्तेजित आनन्द ने उठकर आगे बढ़कर कहा—"माननीय भिक्षुगण ! आर्य्य उपासिकाओ ! भदन्त संघस्थविर ! मैं पूछता हूं क्या मनुष्य के लिए अपने आपको धोखा देना आवश्यक है ?"

सबके सब चौंक पड़े। संघस्थविर एक बार विचलित हो गए, किन्तु उन्होंने शीघ्र ही अपने को वश में करके कहा—"भिक्षु आनन्द, तुम पर मार ने सरलता से विजय प्राप्त कर ली है।"

"नहीं आर्य्य," आनन्द कड़क उठा—"आप औरों को धोखा दे सकते हैं किन्तु आनन्द भिक्षु को कोई धोखा नहीं दे सकता। आप सोचकर बोलें। नन्दिनी यदि संघ के अपवाद का कारण मान ली गई है तब तथागत के अनुवर्त्ती जो इस संघ में रहते हैं वे सब पशु हैं—नृशंस नहीं, बलि-पशु, कुत्ते जो पूंछ दबाये खड़े रहते हैं। क्या गौतम की अनुवर्त्तिनी, आर्य्य भिक्षुणी उपासिका का इस प्रकार अपमान करना संघ की मूल शक्ति और तेज का अपमान करना नहीं है ? भगवान् तथागत···"

संघस्थविर घृणा से अपना नीचे का होंठ दबाते हुए हंस पड़े। उन्होंने कहा—

"भिक्षु आनन्द, तुम नारी के मोह में फंस गए हो विवेकहीन !"

समस्त समुदाय विवेकहीन शब्द का उच्चारण करता ठठाकर हंस पड़ा। उस हंसी में आनन्द भिक्षु की पुकार डूब गयी। अन्धा वृद्ध कौत्सुभ चुप था। वह कुछ भी चेष्टा नहीं कर रहा था। समुदाय की हंसी गूंज-गूंजकर बढ़ रही थी।

अनुवर्त्तिनी ने देखा, अन्धकारमय श्मशान में कंकाल अट्टहास करके ताण्डव का आयोजन कर रहे थे। वह कांप गयी। भीरु नारी डर गयी।

आनन्द साहस करके आगे बढ़ा—"संघस्थविर, आप अपना मोह मुझ पर क्यों मढ़ रहे हैं ?"

"मैं ?" संघस्थविर ने हंसकर कहा—"गौतम के इस पवित्र संघ की शपथ करके कहो कि तुम नन्दिनी पर आसक्त नहीं हुए हो ?"

आनन्द भिक्षु सकुचा गया। बोला—"आर्य्य, यह संघ पवित्र नहीं रहा।"

संघस्थविर ने गरजकर कहा—"आर्य्य भिक्षु समुदाय सुने ! आनन्द भिक्षु संघ को अपवित्र कहते हैं।"

एक भिक्षु ने उठकर कहा—"आनन्द भिक्षु अपने पथ से गिर गए हैं।"

आनन्द भिक्षु ने सिर झुका लिया। समस्त समुदाय फिर जोर से हंस पड़ा।

संघस्थविर ने कहा—"भिक्षु आनन्द को दण्ड मिलेगा। किन्तु अनुवर्त्तिनी को संघ से निकाल दिया जाए।"

नन्दिनी अब तक चुपचाप सब देखती रही थी। अब वह आगे बढ़कर आंखों में आंसू भरे बड़ी सौम्यता से बोली—"संघस्थविर !"

संघस्थविर ने कठोरता से कहा—"नारी, यह लीला अभिशाप है। पवित्र गौतम के अनुवर्त्तियों को तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं। आग की चिनगारी को कोई घर में नहीं रखता।"

नन्दिनी ने तड़पकर कहा—"तो क्या संघ में मनुष्य नहीं तिनकों का ही ढेर है।"

संघस्थविर क्षणभर को चुप हो गये। उन्होंने कहा—"तुम आग से भयानक पाप से भी निर्भीकमना हो।"

अनुवर्त्तिनी चिल्ला उठी—"संघस्थविर, आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है।"

"मुझे तुम्हारे उपदेशों की कोई आवश्यकता नहीं है।" संघस्थविर ने उत्तर दिया। "तो मैं," नन्दिनी सारा बल लगाकर संघ को कंपाती हुई बोली—"आर्य्यसंघ को पाप की आग में भस्म होता हुआ ही देखूंगी। एक उपासिका का अपमान करना खेल नहीं। बुद्ध, धर्म्म और संघ की समस्त शक्ति एकसाथ महाध्वंस की इन बर्बर पीड़ाओं के विरुद्ध उठ खड़ी होगी। आप गौतम के अनुयायी बनते हैं ? आप बिना कारण ही मेरा अपमान कर रहे हैं।"

नन्दिनी का मुंह लाल हो गया था। उसका शरीर थरथर कांप रहा था। भिक्षु क्रोध से विह्वल हो उठे थे। संघस्थविर कुटिलता से हंस पड़े। बोले—"आर्य्य भिक्षु

समुदाय सुने ! यह नारी क्या कह रही है । क्या हम इन बन्दरघुड़कियों से भयभीत होकर पराजित हो जायं ?"

समस्त समुदाय अट्टहास कर उठा ।

नन्दिनी कांपती हुई बोली—"नीच संघस्थविर तुम···"

"संघस्थविर और नीच ?" किसी ने कड़ककर कहा—"निकलो नारी संघ से···"

समस्त समुदाय नन्दिनी की ओर मुड़ गया । नन्दिनी दोनों हाथ खोलकर पुकार उठी—"आनन्द, कहां हो तुम ? आनन्द ?"

किन्तु आनन्द के बढ़ने के पहले ही भिक्षुओं ने उसे संघस्थविर के इंगित मे पकड़ लिया था । वह व्यर्थ ही छूटने के लिए बल करने लगा ।

बादल गरजने लगे । घटाटोप अन्धकार छाया हुआ था । राह नहीं सूझ रही थी । बिजली कड़ककर भयंकरता बढ़ाती हुई आकाश में महान विलोड़न कर रही थी । भिक्षु नन्दिनी को धकेलकर बाहर ले चले । आनन्द चिल्ला उठा—'नन्दिनी ! प्रिये !"

भिक्षुओं ने दांतों से जीभ काट ली । वे बोल उठे, "आनन्द भिक्षु, शान्तं पापं ! शान्तं पापं !"

भिक्षुओं ने नन्दिनी को बाहर निकालकर द्वार बन्द कर लिया । भीमकाय द्वार चर्रा पड़ा ।

इसी समय संघ में से भिक्षुओं ने कहीं अश्वों की टापें जल्दी-जल्दी खटखट कर बजती हुई सुनी । बिजली चमक रही थी । आकाश हाहाकार कर रहा था । और जब कुछ क्षण बाद अन्धे कौत्सुभ ने कहा—"नन्दिनी सचमुच गई क्या ?"—तो कोई संघ के सिंहद्वार पर तड़ातड़ लोहे के घनों का प्रहार कर रहा था । बाहर कोलाहल के ऊपर भिक्षुओं ने दग-दग-दग करके वृक्षों के काटने का भयंकर रोपित शब्द उन्मत्त होकर गूंजते हुए सुना । अस्त्रों की झंकृति महाकालानल के प्रकाश-सी वहां व्याप्त हो गयी । भिक्षु कांप उठे । लौह-घनों का रव मानो वज्र पर वज्र का तुमुल प्रहार था । उस गम्भीर, विकट निर्घोष को सुनकर भिक्षुओं का हृदय दहल गया । वे एक दूसरे का मुंह देखने लगे । बिजली आकाश से प्रलय के डमरु के समान कड़ककर कहीं दूर पर गिरी । बादल आपस में टकरा गये । गम्भीर मूसलाधार वर्षा होने लगी । अन्धकार दूना हो गया ।

घोर शब्द करता सिंहद्वार अर्राकर टूट गया । आक्रमणकारियों का स्वर घोर कोलाहल करता दिग्दिगन्त को बधिर कर उठा । घोड़े दौड़ने लगे । बादल आकाश में गरजते हुए हाहाकार कर उठे ।

दस

अन्धकार में कुछ कराहें आस्मान से टकरा रही हैं । संघाराम के बाहर के भाग में स्तूप के पास अनेक घोड़े हिनहिनाकर पृथ्वी रौंद रहे हैं । जगह-जगह से लपटें उठकर

हाहा खा रही हैं। प्रांगण में स्थान-स्थान पर शव पड़े हैं जिनके रक्त से समस्त प्रस्तर भीग गये हैं। बुद्धि की प्रतिमा खण्डित होकर भूलुण्ठित पड़ी है। तालपत्रों के जलने की चिरांध व्याप्त हो रही है। शस्त्रों की खड़खड़ाहट से अब भी आकाश गूज रहा है।

कठोर सैनिकों के शरीरों पर ऊन के वस्त्र कभी-कभी उनके साथ चलती उल्काओं के प्रकाश में चमक उठते हैं जिसे देखकर संघाराम की प्राचीन दीवारें स्तब्ध-सी छाया बनकर कांप उठती हैं। यवन सैनिक कहीं-कहीं बैठकर एकमाथ खा-पी रहे हैं जिन्हें देखकर उनके एक-आध साथी भारतीय नाक सिकोड़ रहे हैं। तब कोई यवन सैनिक कहता है—"हमारे देश में भेद नहीं होता। हम सब मुसलमान भाई-भाई हैं। कोई ऊंच-नीच नहीं है।"

भारतीय इसे समझ नहीं पाता। सैनिकों की बर्बरता में उनकी एकता एक शक्ति-सी लगती है। तभी आते दिन ने बादलों के वस्त्रों को उजाले के हाथ से एक ओर हटा दिया। नीला आकाश झांकने लगा। धीरे-धीरे भोर हो गयी। एक प्रकोष्ठ में बहुमूल्य कालीन पर एक यवन बैठा है जिसके चारों ओर अनेक सैनिक खड़े हैं। मदिरा की गन्ध उस प्रकोष्ठ से निकल-निकलकर बाहर अलिंद में भी फैल रही है।

यवनराज ने उठते हुए अपने साथ के एक भारतीय क्षत्रिय से कहा—"क्यों, उस अनिंद्य सुन्दरी का क्या हुआ? कल रात अंधेरे में वह व्यर्थ ही घायल हो गयी। बच तो जाएगी? बहुत सुन्दर है वह।"

एक सैनिक यवन ने कहा—"जी, वह पागल हो गयी है।"

यवनराज हंस पड़े। उन्होंने कहा—"हिन्दू स्त्री तो बात-बात पर पागल हो जाती है। किन्तु," उसने मुड़कर क्षत्रिय से कहा—"मेघराज, तुम स्त्रियों को गेरुए पहनाकर साधू बना देते हो? तुम यौवन का रस नहीं लेते? हमारे देश में ऐसी स्त्रिया आंखों में पलती हैं। अद्‌भुत है तुम्हारा देश।"

मेघराज ने सिर झुका लिया। सब बाहर आ गये। प्रांगण में नन्दिनी को लिए दो यवन सैनिक खड़े थे। उन्होंने यवनराज को प्रणाम किया और जयध्वनि की।

हठात् नन्दिनी बल करके उनसे छूट गयी और रोती हुई सामने ही पड़े एक शव से लिपटकर रोने लगी।

यवनराज ने देखा, वह एक भिक्षु का शव था। उसके सुन्दर मुख पर तलवारों के घाव थे। उसने इधर-उधर देखा। नन्दिनी रोते-रोते कहने लगी—"तुम्हें छोड़कर चली गयी थी देव! तुम्हारा कहा मैंने नहीं माना स्वामी! मुझे क्षमा करो।"

यवनराज ने मुड़कर क्षत्रिय मेघराज से कहा—"यह स्त्री क्या कह रही है?"

मेघराज ने कहा—"सर्दार! यह स्त्री कुलटा है, कोई वेश्या है अथवा अना-चारिणी है। यह इस संघ का कोई भिक्षु है। इस भिक्षुणी का इससे कुछ अनुचित सम्बन्ध रहा होगा, क्योंकि भिक्षुणी किसी भी पुरुष की पत्नी बनकर नहीं रहती।"

"ओह!" यवनराज ठठाकर हंस पड़े, "हमारी शबनम से भी सुन्दर है ये! तुम्हारे देश में स्त्री पत्नीत्व भी त्याग देती है। यह सुन्दर युवक सिर मुंड़ाकर क्या करता

था यहां ? भगवान् का भजन ? हमारे यहां तो ऐसा नहीं होता ।"

नन्दिनी एकाएक चिल्ला उठी—"स्वामी, मैं तुम्हारी ही पत्नी हूं, मैं अब कहीं नहीं जाऊंगी तुम्हें छोड़कर, मुझे क्षमा करो आनन्द···"

एक यवन ने प्रवेश करके कहा—"सरदार, अपार रत्नराशि इस मंदिर से मिली है।"

"अपार !" यवनराज का मुख विस्फारित हो गया। उन्होंने कहा—"मेघराज, तुम्हारे देश में मंदिरों के आदमी बड़े लोभी होते है। हमारे देश में तो ऐसा नहीं होता। इतने धन का यहां ये लोग क्या करते हैं जब खाते-पीते भी नहीं ?"

और वह हस पड़े। अचानक उनकी दृष्टि फिरी। उन्होंने देखा, भिक्षु के शव पर स्त्री निष्प्राण-सी पड़ी थी, जैसे इस आलिंगन से उन्हें संसार की कोई भी शक्ति अलग करने में असमर्थ थी। उनके मुंह से केवल इतना निकला—"तुम्हारा देश तो केवल अद्भुत ही है मेघराज ! यहां तो स्त्रियां बोलते-बोलते मर जाती हैं ?"

मेघराज ने फिर सिर झुका लिया। उस समय बाहर जयध्वनि हो रही थी।

× × ×

होश आने पर ध्वंस और मुर्दों के ढेर में से एक अंधा घायल वृद्ध आदत के मुताबिक चिल्ला उठा—"अनुवर्त्तिनी, पानी···"

किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। वृद्ध ने पहले से भी अधिक जोर से गला सुखाते हुए चीख लगायी—"अनुवर्त्तिनी ई ई ई···"

अंतिम अक्षर को खंडहर की ईटें भी पुकार उठीं। टूटा ध्वस्त संघाराम चिल्ला उठा, किन्तु फिर भी कोई उत्तर नही मिला।

वृद्ध कौस्तुभ वही तड़पने लगा। आसपास के वातावरण से शब्द का अजस्र प्रवाह हो रहा था—'अनुवर्त्तिनी ई ई ई···' मानो उस 'ई' का कही भी अंत नहीं था।

['47 से पूर्व]

काई

पति का चुनाव करने के लिए दुनिया की आम बातों को जानने की जरूरत होती है। डॉक्टर लक्ष्मण का यह कहना सुधा को बहुत जंचा। डॉक्टर लक्ष्मण अभी अपनी प्रैक्टिस जमाने की ही कोशिश कर रहे थे। उनको अक्सर शिकायत रहती थी कि वे इंग्लैंड नहीं जा सके। लड़ाई ने उनके सब अरमानों को एक धांय में, एक गरज से बिल्कुल नेस्तनाबूद कर दिया था। और अब वह कहते, समाज का सुधार करना पुरुषों के हाथ में उतना नहीं है जितना स्त्रियों के। स्त्रियों की अंगरेजी अच्छी होनी चाहिए। जैसे हंसने की बजाय मुस्कराने से औरतों की खूबसूरती में चार चांद लग जाते हैं, हिन्दी की बजाय अंगरेज़ी में वही काम निकलता है।

वे कहा करते--"आज हिन्दुस्तान में जो ज्वार आया है उसमें नारी ने भी अपनी चूड़ियों में बेड़ियों की झनकार सुनी है। यह समझना भूल है कि वह आदम और हव्वा की तरह ईश्वर की पहली रचना है, वह भी क्रमागत विकास का एक स्वरूप है।" फिर वे जोश में आकर कहते, "नारी को एक देवी समझना है, एक राक्षसी। ठाकुर ने उसे अर्द्धनारी-अर्द्धस्वर्गीय माना है। नारी के मुंह पर एक हंसी रहती है लेकिन भीतर एक अंधड़ और रहस्य। वह आज तक नहीं समझी जा सकी।"

और नतीजा निकालकर वे कहते थे--"आदमी बेवकूफ है, औरत पागल।"

इसको सुनकर सब अचरज से देखते थे और सब हंसते थे, लेकिन डॉक्टर अपने विचारों पर दृढ़ थे।

सुधा ने डॉक्टर को परले सिरे का पहुंचा हुआ माना और अंगरेजी का अखबार पढ़ने लगी। एक से शुरू किया और नौबत यहां तक पहुंची कि लायब्रेरी में जाकर वक्त को पूरा करने के लिए दर्जनों पर नजर गिरने लगी।

पब्लिक पार्क के बायीं तरफ के अर्द्धचन्द्रकार पेड़ों के पीछे पीले रंग के उस पुराने जमाने के गिरजे-जैसे पुस्तकालय में उसके आने-जाने से पहले के मुकाबिले में रौनक बढ़ गयी।

सुधा पढ़ती, और फिर शब्दों से लड़ती। पहले ही दिन चलते वक्त लायब्रेरियन ने नम्र शब्दों में निवेदन किया--"कृपया अखबारों में निशान न लगाया कीजिए। आपको अपनी पसन्द दूसरों पर जताने की इच्छा हो तो मुझे मुंहज़बानी बता दिया करें।

हो सकता है जो खबर या बात आप बहुत महत्वपूर्ण समझें वह वास्तव में ऐसी न हो।"

सुधा ने आंखों को संकुचित करके घूरा और "माफ कीजिए, मुझे मालूम नहीं था" कहकर अपना चमड़े का बैग उठा लिया और बाहर चली आयी।

किन्तु अखबारों का पढ़ना जारी रहा। डॉक्टर लक्ष्मण अपनी राय बताते हुए कहते कि रूमानिया का तेल ही इस लड़ाई का असली कारण है। न रूमानिया में तेल होता न हिटलर ऑस्ट्रिया पर हमला करता, न अंगरेजों से निकल जाने पर रूस जोर देता।

"तेल!" वह गम्भीर होकर कहते—"तेल दुनिया की एक नायाब चीज है। जो चीज चिकनी हो या आग पकड़ ले वही तेल है। तेल कई तरह का होता है, मगर तेल नहीं तो कुछ भी नहीं। तेल से ही दुनिया चलती है, तेल ही से आपका बदन काम करता है..."

तब इन्टर की विद्यार्थिनी सुधा मन में विस्मय करती कि डॉक्टर कहां से बात शुरू करता है और कहां उसका अन्त होगा यह कोई नहीं समझ पाता, लेकिन ऊपर से कहती—"डॉक्टर, तेल न कहिए सत् कहिए तो कुछ हर्ज होगा?"

"नहीं; लेकिन," डॉक्टर ने बात काटकर कहा—"सत् तो स्वयं कोई वस्तु नहीं, तुम असल में शक्ति और चालन में सुविधा देने वाली वस्तु में भेद कर रही हो..."

"नहीं, डॉक्टर!" वह कह उठी, "मैं आपका मतलब समझ गयी। आपने ठीक कहा है। मैं तो उसी बात को सरल शब्दों में समझने की कोशिश कर रही थी।"

तब डॉक्टर सन्तुष्ट-से कह उठे—"तब तो तुम ठीक कहती हो। तुम बिल्कुल ठीक हो।"

और लम्बे चेहरे का हरिश्चन्द्र, जो अपने को सबसे ज्यादा अक्लमन्द समझता, दोनों की बातें सुन-सुनकर मुस्कराता। वह कम बोलता और वास्तव में इस मौन ने उसे समाज में काफी स्थिरता दे दी थी। वह दिल में सवाल-जवाब करता था और सोच लेता कि इस बात का यह सबसे अच्छा उत्तर है लेकिन 'यह' बात हमेशा उसे बाद में सूझती और गाड़ी छूटने के बाद कौन नहीं चाहता कि वह भी मदरास चला जाए, खास तौर पर अगर वहीं तक का टिकट भी हो।

हरिश्चन्द्र गोरा और सजीला युवक था। उसे सदा ही बिल्कुल नपे-तुले फैशन से लैस देखकर लोग उसे एक धनी नवयुवक समझते थे। वह कौन था, क्या था, यह बहुत कम को ज्ञात था। जिस दिन सुधा उसके बंगले पर गयी थी उस दिन केवल उसकी मां ने उसका स्वागत किया था। एक बड़ी बहन थी, लड़ाई में 'वैकआई' बन गयी थी और हरिश्चन्द्र उसकी बात कहकर हंस उठा था। सुधा कुछ भी नहीं समझी थी। उसने विस्मय से देखकर कुछ सोचा था किन्तु फिर डूबते सूरज की सुनहली किरणों में जब पेड़ों की लम्बी-लम्बी छायाओं से घिरे वे चाय पी रहे थे क्षणभर को सुधा ठिठक गयी थी। उसने पहली बार देखा था कि हरिश्चन्द्र देखने में आकर्षक था। इससे अधिक उसने कुछ नहीं सोचा। रात को जब वह बहुत देर तक पढ़ती उसने देखा अवश्य था कि कैसे उसके

घर के सामने जो स्कूल की अविवाहिता मास्टरनी रहती थी बत्ती बुझाकर अंधेरे में टहला करती थी अकेली-अकेली-सी और कभी-कभी कोई उसके पास रात के एक बजे आ जाता था। सुधा सोचती, एक बजे तक प्रतीक्षा ! और जैसे उसके जीवन में वह पहलू नहीं था, वह झट खिड़की से हट जाती और उसकी निगाह अखबार पर जा पड़ती। दुनिया का हरएक देश अपनी स्वतन्त्रता के लिए युद्ध कर रहा है और हिन्दुस्तान में अभी तक ये मास्टरनी ? तभी उसे डॉक्टर की बात याद आती कि कोई भी देश तभी तक गुलाम रहता है जब तक उसके रहनेवाले स्वयं पूरी तरह से आज़ाद होने के योग्य नहीं हो जाते। बात उसके दिमाग में गूंजती और फिर डॉक्टर का अकेला जीवन उसके सामने चलने लगता। डॉक्टर का छोटा-सा मकान जिसका वह पन्द्रह रुपया किराया देता था ! मकानदार की चौबीसों घंटे की—लड़ाई-लड़ाई तक की—ईश्वर से केवल एक प्रार्थना थी कि डॉक्टर कूच कर जायें और वह महंगाई और जगह की कमी का फायदा उठाकर मकान को कम-से-कम चालीस रुपए में उठा दे, जो अपनी तरफ से वह करने में असमर्थ था—चूंकि सरकार के भारत-रक्षा कानून में वही एक बात जनता के लिए फायदेमन्द साबित हो सकी थी। सुधा घृणा से नाक सिकोड़ लेती। कैसे है ये लोग जो अपनी नीचता को अच्छे शब्दों में सजाकर कहने से बाज नहीं आते ! और घड़ी में दो घंटे बजते, उनकी प्रतिध्वनि बनकर जेल का घंटा बजता, जिसकी गूंज के समाप्त होने के पहले कहीं और से ढन-ढन की आवाज आती और क्षणभर शहर में जैसे घण्टे ही घण्टे बजते और सुधा पैरों पर से लिहाफ गले तक खींचकर आंखें बन्द कर लेती। तारे रात में ठंड से सिकुड़कर कांपने लगते, ठंडी-ठंडी हवा बहती रहती और थोड़ी देर बाद जमीन और आस्मान दोनो पलकों की तरह मिलकर अन्धकार, महाअन्धकार में लय हो जाते।

2

"दुनिया कभी सत्य को नहीं पहचान सकती, क्योंकि अपने-अपने स्वार्थों में पड़े मनुष्य कभी भी अपने दायरों के बाहर की बात नहीं सोच सकते।" डॉक्टर ने धूप में कुर्सी खींचकर बैठते हुए कहा।

हरिश्चन्द्र सिगरेट का धुआं उगलते-उगलते कह उठा—"क्या मतलब ? जरा स्पष्ट करियेगा डॉक्टर !"

डॉक्टर की आंखों के नीचे गड्ढे पड़ गए थे। उनका सुनहरी फ्रेम का चश्मा जो अर्द्धगालों की एक नुमायश थी, उनकी खाकी आंखों के ऊपर एक अपने ही ढंग की चीज थी। उन्होंने शाल अच्छी तरह ओढ़कर उत्तर दिया—"मनुष्य संकुचित है क्योंकि वह अपनी सत्ता को बनाये रखने के काम में अच्छा-बुरा छोड़कर लगा रहता है।"

सुधा चुप बैठी रही। आज इतवार था। वह फुर्सत में थी। लॉन पर ओस झलक रही थी। फूटती किरने पेड़ों के बीच में से ओस को पकड़ने के लिए झुकी आ रही थीं। दूर क्षितिज पर अब भी कोहरा जमा हुआ था, नीला-सा, ऊदा-ऊदा-सा। हरिश्चन्द्र

के बंगले का यह बराम्दा सड़क की तरफ था।

डॉक्टर कहता रहा—"जानते हो न इस पंजाबी होमियोपैथ डॉक्टर को? हजारों में खेलता है। क्विनीन को होमियोपैथिक दवा बताकर बांटता है। एम०बी० 693 का पाउडर बनाकर उसे अपना चूरन बता-बताकर देता है, और लोग उसके पीछे भागते हैं। जब से मेडीकल स्कूल कॉलेज हो गया है डॉक्टर मरीजों की, लोगों की बिल्कुल परवाह नहीं करते और फिर भी लोग उन्हीं के पीछे दौड़ते हैं। हम लोगों के पास कोई नही आता।"

डॉक्टर एक शुष्क व्यंग्य की हंसी हंसा। सुधा ओवरकोट की जेब में हाथ डाले बैठी रही। हरिश्चन्द्र ने कहा --"लेकिन डॉक्टर, आपके पास आना न आना सत्य से क्या सम्बन्ध रखता है?"

डॉक्टर चिहुंककर बोल उठे—"ठीक पूछा है तुमने हरिश्चन्द्र, ठीक पूछा है। क्या जरूरत है लोगों को उन लोगों के पीछे भागने की जो रुपये के सामने आदमी की परवाह नहीं करते?"

हरिश्चन्द्र कह उठा—"बच्चे जरूर सवालों को लेकर अभ्यास किया करते हैं, लेकिन जान का, जान जैसी चीज पर अभ्यास करना लोग जरा कम पसन्द करते है।"

डॉक्टर को लगा जैसे हरिश्चन्द्र के मुंह से बड़ा कड़वा धुआं निकल कर फैल गया। वह सुधा की ओर देखकर कहने लगा—"देखा सुधा, हरिश्चन्द्र हर चीज को खेल समझते हैं। एक बात बताऊं, किसी से कहोगे तो नहीं?"

दोनों ने आश्वासन-भरे नयनों से देखा। डॉक्टर ने कहा—"कल शाम मेरे पास सुधा के घर के सामने रहने वाली मास्टरनी आयी थी। वह दवा चाहती है कि समाज उसे ठीक समझता रहे। उसके कार्य पाप न होते हुए भी समाज को ज्ञात हो जाने पर जो पाप हो जायेंगे, इसीलिए वह उनको मिटा देना चाहती है?"

"क्या बात?"—सुधा ने नासमझी से पूछा—"क्या हुआ उसको?"

डॉक्टर जोर से हंसकर बोले—"अभी तुम नही समझोगी। क्योंकि तुमने अभी दुनिया नहीं देखी। मास्टरनी गर्भवती हो गयी है और गर्भ से छुटकारा पाने के लिए मुझसे दवा चाहती है, जैसे मैंने गर्भ गिराने की ही दवाएं सीखी हैं और कोई और भला काम मैं नहीं कर सकता। और इसके लिए उसके प्रेमी एक सेठ के लड़के ने पांच सौ रुपया मुझे देने को कबूल किया है, क्योंकि मास्टरनी के पास लड़के के प्रेम-पत्र हैं जिनके बल पर वह उससे शादी कर सकती है। किन्तु वह सेठ के लड़के से अपना सच्चा प्रेम बताती है और कहती है कि सेठ के लड़के में उतना साहस नहीं है कि मुझसे शादी कर ले। यदि मैं जोर दूंगी तो उसकी कमजोरी का नाजायज़ फायदा उठाना होगा, इसलिए मौजूदा हालात में भ्रूण-हत्या सबसे ज्यादा ठीक रहेगी।"

डॉक्टर एक जंगली तरीके से हंस उठा। सुधा ने पूछा—"और डॉक्टर, आप उसे मदद देंगे?"

डॉक्टर हठात् गम्भीर होकर बोले—"मैं नहीं जानता मैं क्या करूंगा।

हरिश्चन्द्र, तुम्हारी इस विषय में क्या राय है ?"

हरिश्चन्द्र चुप बैठा था। उसने एक बार लॉन की ओर देखा, सड़क की ओर देखा, राह चलतों पर नजर डाली, जैसे वह सबकी राय ले रहा हो, और खांसकर उसने कहा—"डॉक्टर, मैं नहीं जानता कि आप मेरे उत्तर से मुझे कैसा आदमी समझेंगे।"

डॉक्टर ने उसे ऐसे देखा जैसे उससे क्या, तुम्हें जो कहना हो कहो।

हरिश्चन्द्र ने ऊपर देखते हुए कहा—"बात असल में एक है, और वह है मास्टरनी का भविष्य। बच्चे समाज में इतने होते हैं कि हिन्दुस्तान उनमें से बहुतों को नहीं चाहता। ऐसी दशा में सन्तान का प्रश्न बेकार है। अगर भ्रूण-हत्या नहीं होती तो मास्टरनी या तो सेठ पर जोर डालकर शादी करती है और सदा के लिए जीवन की कोमलता खो जाती है या फिर वह बदनाम होती है, नौकरी से निकाल दी जाकर भिखारिन हो जाती है। एक पाप करने से अनेक विषमताओं का अन्त होता है, अतः वह काम भी बुरा नहीं रहता। अगर आप मेरी बात मानें तो आप जरूर उसे कोई दवा देकर इस परेशानी से उबार दें।"

डॉक्टर के दिमाग में सौ-सौ करके पांच चोटें पड़ीं और सुधा फट पड़ी—"तो उसके इस काम के लिए क्या सज़ा है ?"

हरिश्चन्द्र अविचलित स्वर में बोला—"क्या यह काम सचमुच सज़ा देने लायक है ? आप कहेंगी, यह दुराचार है। मैं मानता हूं; लेकिन भूखा और पिंजरे में बन्द क्या नहीं करता। जरा-सा दरवाजा खुला नहीं कि उड़ने के लिए झपटा। और नतीज़े में खटका गिरने पर टांग के बल घंटों लटकता है। और मेरे विचार में एक औरत के लिए सबसे बड़ी सज़ा है कि वह जब मां बनने वाली हो उसे स्वयं अपने ही बच्चे का खून करना पड़े।"

उसने तीखे नयनों से सुधा की ओर दृष्टि फेंकी। सुधा ने पढ़ा जैसे वह कह रहा हो कि यदि तुम उस जगह होतीं तो क्या करतीं ? और क्षण भर में ही परिस्थिति की गम्भीरता समझकर चुप हो गयी।

डॉक्टर सोचते रहे। फिर बोले "लेकिन यह करने के बाद भी तुम लोग यह न सोचना कि मैंने अपनी परेशानियों से तंग आकर पांच सौ रुपयों के लिए ऐसे ही एक मनुष्य को मार डाला।"

हरिश्चन्द्र बोल उठा—"आप भी कैसी बातें करते हैं, डॉक्टर ! सज़ा वही देता है जो अपने को अपराधी से अच्छा समझता हो। जिस समाज में ज़िन्दे आदमी भूख से मार डाले जायें वहां एक अनजाने मांस के लौंदे को मिटा डालना कोई बड़ी बात नहीं है। अगर पता चल जाने पर समाज मां और बालक दोनों को ही सज़ा के अतिरिक्त कुछ नहीं दे सकता तो क्यों न एक की ही ज़िन्दगी सुधारने का प्रयत्न किया जाय। मैं आपसे अपने दिल की कसम खाकर कहता हूं कि आपकी इज्ज़त मेरे दिल में फिर भी बनी रहेगी। और आप ही बताइए कौन-सा है वह इज्ज़तदार डॉक्टर जिसने इन्हीं कामों के बूत पर शुरू में अपनी प्रैक्टिस स्थापित नहीं की ? एक बार नस पकड़ ली, फ़ौरन

वहां 'फ़ैमिली डॉक्टर' बन गये और फिर चलती का नाम गाड़ी है।"

हरिश्चन्द्र ने दूसरी सिगरेट जला ली। सुधा खोई-सी बैठी रही। डॉक्टर सोचते रहे और सूखी डाल पर काली चिड़िया गर्दन मटकाकर गाती रही। एक उत्तर-हीन अभावपूर्ण सन्नाटा घहराकर धूप में सुबकने लगा।

3

जब शाम को सुधा इतवार को पुस्तकालय बन्द होने के कारण घर पर ही बैठकर जी बहलाने लगी उसके दिमाग में तरह-तरह के विचार दौड़ने लगे। धीरे-धीरे एक-धुआं-सा कोहरा सांस के साथ भीतर-बाहर छा गया और चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार का बहरापन आकाश से एक कशमकश करता बरसने लगा। वह चुपचाप बैठी खिड़की से देखती रही। दूर दोतल्ले पर बिजली के प्रकाश में कुछ दर्जी लड़ाई की वर्दियां सी रहे थे। वह प्रायः चौबीसों घण्टे काम करते और सुधा यही अचरज करती कि आदमी कैसे स्वयं एक मशीन हो जाता है। अब तो खैर जाड़े हैं मगर गर्मी, बरसात सबमें वे उस ही कमरे में बन्द रहकर काम करते और करते···

सुधा ने देखा दूर और दूर बिजली के खम्भे के नीचे कुछ भिखारी टाट में लिपटे बैठे थे और उसे मालूम था रात होने पर वे वहीं टाट में लिपटे लुढ़क जायेंगे, सो जायेंगे, सुबह उठकर फिर गंदे मुंह, गन्दे बदन से भीख मांगेंगे और रात और दिन की ठंड खाकर भी उनका शरीर नहीं अकड़ता। जैसे कुत्ता बहुत ठंड होने पर कूं-कूं करके फिर मिट्टी में सिमटकर सो रहता है और एक बार चांद को देखकर जब अपनी छाया से उसे डर लगता है तो ज़ोर से रो उठता है।

सुधा उन्मन होकर आस्मान की तरफ देखने लगी। कुछ नहीं केवल कुछ तारे निकल आये थे। पृथ्वी घूमती है, वे राह पर आते हैं, दीखते हैं फिर ऐसे नहीं दीखते और सुधा ने दृष्टि नीची कर ली। लालटैन की लौ तेज करके सामने वाली दूकान के हलवाई ने कुछ आवाज़ लगायी और सुधा ने देखा, वही बूढ़ा भिखारी और वही औरत खड़े थे, चुपचाप; जैसे कोई मतलब नही। सुधा अक्सर उन्हें देखती और उसे उनमें कुछ कौतूहल होता था। औरत बिल्कुल पागल-सी थी। बूढ़ा कभी-कभी किसी से बात कर लेता था और एक सुबह उसने देखा था, बूढ़े की गोद में सिर रखकर सड़क के किनारे ही औरत सोती रही। बूढ़ा कभी उसके शरीर पर झुककर भयंकरता से खांसता और कभी ऊंघने लगता। औरत फिर भी न जागी, बूढ़ा फिर भी न हटा, और आस्मान से चिल्ला गिरता रहा, किन्तु सुबह भी मरे नहीं थे उनका ध्वंस नहीं हो सका था। बूढ़ा उसे लेकर चल पड़ा था। ऊंचे उठे कन्धे और लटकी गर्दन, छोटा-सा कद, और स्त्री जो बगराती, नतराती और कदम-कदम पर ठोकर खाती।

सुधा ने व्यथा से भरकर एक लम्बी सांस ली और आंखों को ढंक कर हाथों से मसल दिया और अन्धकार में कमरे में कुछ देखने लगी। क्या हक है हमें इस तरह ठंड से बचकर रहने का जब इतने आदमी न सो पाते हैं, न जिनका जगना है; न जिनका सोना

है; जिनका जागना एक हाहाकार है, जिनकी नींद एक मूर्छा है···

वह सोचने लगी। मन में अपने-आप भावना उठी कि क्या यह जीवित रहना एक पाप है ? क्या हमें भी सब कुछ खोकर वैसा ही हो जाना है ? जब सुख है तभी दुख है। लेकिन यदि दुख ही दुख है तो न कोई ईर्ष्या करने वाला है, न कोई दूसरों के लिए व्यथित होनेवाला। यह जो स्वयं पीड़ित हैं, ये किसी और की चिन्ता नहीं करते, केवल इन्हें अपना ही ध्यान, अपने पेट का भयानक ध्यान-भर रहता है।

किसी के सीढ़ी चढ़ने की आवाज़ हुई और सुधा प्राकृतिक रूप से ही पुकार उठी—"कौन ? भइया ?"

"अरे, ंधेरे में क्यों बैठी है ?" कहते हुए एक युवक ने स्विच दबा दिया। एकाएक उजाला हो जाने से सुधा की आंखें पल भर को बन्द हो गयीं और जब उसने आंख खोलकर देखा तो भइया बिछे हुए बिस्तर पर बैठे पैर हिलाते हुए सिगरेट जला रहे थे। दोनों एक दूसरे को देखकर व्यर्थ मुस्कुराये और भइया ने एक बार धुआ छोड़कर कहा—"तूने सुना सुधा, मैंने नौकरी छोड़ दी ?"

"छोड़ दी ? क्यों ? कैसे ? कब ?" सुधा ने घबराकर सवालों की बाढ़ मचा दी। उसके दिमाग में एक उथल-पुथल मच उठी।

भइया ने नीची दृष्टि करके कहा—"कल मुझे तुझसे कहने का वक्त ही न मिला। सेठ हरनारायण के लड़के ने कल साढ़े छः सौ की नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया क्योंकि वे मेरे पीछे लड़ गये थे। एक अंग्रेज़ ने मुझे बहुत बुरी गालियां दी थीं और जब रिपोर्ट की गई तो सब बड़े अंग्रेज़ अफ़सर उस ही की तरफ़ बोलने लगे। उनके छोड़ने के कारण मैंने भी छोड़ दी।"

बात खत्म हो गई, किन्तु फिर भी इसलिए खत्म नहीं हुई, क्योंकि बात का समाप्त हो जाना आगे के जीवन का हल किसी तरह भी नहीं निकाल सकता था। सुधा ने धीरे से कहा—"अंग्रेजों का बर्त्ताव तुम्हीं से बुरा था या सबसे ?"

"सबसे। किन्तु मैं इसे सह न सका।" आज भइया के आदर्श त्याग का महत्त्व सुधा की समझ में नहीं आया। वह स्त्री थी और उसे अपनेपन का कहीं अधिक ख्याल था। अंग्रेज कौन सी ऐसी बात कर रहे हैं जिसमें हिन्दुस्तानियों की इज़्ज़त बढ़ रही थी ! जब आदमी नौकरी करने जाता है पेट के लिए तब इज़्ज़त तो वह पहले ही छोड़ आता है। या तो खुलकर बगावत करे, या करे ही नहीं। सब एक-दूसरे से हुजूर कहते हैं क्योंकि कहना पड़ता है।

और उसने भइया की ओर देखा जो ऐसे बैठे थे जैसे मैंने जो किया है उसके लिए बिल्कुल लज्जित नहीं हूं। मैं कुत्ता नहीं हूं जो टुकड़ों के लिए ठोकर खाता फिरूं। दोनों ने एक दूसरे को देखा और दोनों ने एक-दूसरे के विचारों को आंखों से ही पढ़ लिया।

सुधा को उस पर दया-सी हो आयी और भइया को एक उलझी-सी झुंझलाहट। सुधा ने कहा—"मुझे कल दो महीने की फीस दाखिल करनी है।"

भइया ने हंसकर कहा—"अरी कल तक मैं हंसता था कि घर में अखबार लेकर तू पुस्तकालय जाती है, मगर शायद जल्द ही अब तुझे पुस्तकालय में ही अखबार पढ़ने पर मजबूर होना पड़ेगा।"

सुधा थोड़ी देर चुप रही। उसने कहा—"अब ?"

भइया बोले, "अबके अमरीकनों में कोशिश करूंगा। जल्दी ही मिलेगी। सौ न सही, पचास ही सही—दो सौ तो अब क्या मिलेंगे—मगर मिलेंगे तो! सुनते हैं अमरीकन अंग्रेजों के मुकाबले में अच्छे हैं।"

सुधा को विश्वास नहीं हुआ। होंगे भी तो मुकाबिले में ही हो सकते हैं। वैसे तो जो नौकरी देगा वह ज़रूर दाबना चाहेगा, तब तक जब तक नौकर-मालिक का फर्क न मिट जाय।

भइया हंस पड़े। बोल उठे, "अरी तू क्यों घबराती है पगली। सोचती होगी सेठजी के लड़के ने ठोकर मारी तो उनका दूसरा पैर भी मजबूत था, यहां तो झनझनाहट से ही गिर गये। तेरा तो ब्याह मैं कर ही दूंगा कहीं अच्छी-सी जगह और फिर की फिर देखी जायेगी। अकेले की क्या है? मगर तू न कहेगी, अपनी पसन्द से करूंगी मैं तो··· पढ़ी-लिखी जो है न?" और भइया ठठाकर हंस पड़े। सुधा लाज से मुस्करा उठी। मजबूरियों में भावी सुख की यह कल्पनाएं जो कभी पास नहीं आती, और जीवन सरकता चला जाता है! कैसी मृगतृष्णा! कैसी मरीचिका! अनन्त अंधकार, आकाश में धू-धू जलता निर्धूम उन्माद, या पागलपन······

4

डॉक्टर ने सुधा की दो महीने की, तथा इम्तहान की फीस शीघ्र वापिस मिल जाने के वायदे पर तकल्लुफ दिखाते हुए दे दी और उस दिन सुधा ने पत्थरों के नीचे दबे दिल में पहली बार एक चोट महसूस की जिसमें बन्धनों की पीड़ा का वेग होता है। वह थोड़ी देर देखती रही और डॉक्टर ने उसकी ओर न देखते हुए अपनी सिगरेट जलाकर चुपचाप एक लम्बी सांस ली।

सुधा ने अपने होंठों पर जीभ फेरी और एकाएक पूछ बैठी—"डॉक्टर, मनुष्य सुखी कब होता है?"

डॉक्टर जैसे तैयार नहीं थे। उन्होंने चौंककर उसकी ओर देखा और वे धीरे से कह उठे—"जब मनुष्य कुछ नहीं चाहता, जब उसे कोई चिन्ता नहीं रहती।"

"यानी जब आदमी मर जाता है।"

डॉक्टर फिर चौंके। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उसे घूरते रहे, जैसे क्या मतलब?

सुधा ने उनका मतलब समझकर झिझकते-झिझकते कहा—"डॉक्टर, मनुष्य सदा चिंतित रहता है। आप मनुष्य के शरीर की सारी बनावट जानते हैं, इसी से आपसे

पूछती हूं। आदमी कभी चैन से नहीं रहता। वह क्यों कुछ करना चाहता है?"

"क्योंकि वह रहना चाहता है?"

"लेकिन क्यों?"

"क्यों? क्योंकि वह पैदा होता है।" जैसे डॉक्टर ने सारी समस्या सुलझा दी।

"यही तो पूछती हूं डॉक्टर," सुधा ने दृढ़ता से कहा—"वह पैदा क्यों होता है?"

"क्यों होता है?" डॉक्टर हंस पड़े। उन्होंने कहा—"यह तो मैं नहीं बता सकता कि क्यों होता है। डॉक्टर होने की हैसियत से यह ज़रूर बता सकता हूं कि कैसे होता है। और यह 'कैसे' ही वास्तव में 'क्यों' का पहलू अपने में छिपाये है। यह 'कैसे' ही 'क्यों' का असली उत्तर है। बिना 'कैसे' के 'क्यों' कभी सामने नहीं आता, क्योंकि केवल 'क्यों' एक दुःस्वप्न की घुटती पुकार है जिसका जवाब आइन्स्टाइन जैसे वैज्ञानिक भी नहीं निकाल सके और वह अब भी 'कैसे' में ही उलझ रहे हैं। 'क्यों' का उत्तर बहुतों ने दिया है, किन्तु आगे वाले ने उन्हें ही काट दिया और 'क्यों' का उत्तर सारहीन हाहाकार-मात्र रह सका।"

सुधा देखती रही। डॉक्टर का जादू आज उस पर असर करने में असफल हो गया। उसके मन को तृप्ति नहीं हुई। मनुष्य जो चाहता है वही नहीं हो पाता, जहां वह घास समझकर पैर रखता है वहीं कीचड़ निकलती है। और उसका पैर आगे बढ़ने की बजाय धंसा रह जाता है।

डॉक्टर ने सिगरेट फेंककर यूरोपियन ढंग से कुछ अशराफ जम्भाइयां लीं और दोनों हाथों को सीधा किया और उद्विग्न-से कमरे में टहलने लगे। कभी-कभी वह सुधा को देखते थे और जैसे कुछ कहना चाहते थे किंतु शब्द न मिलने के कारण परेशान थे।

सुधा ने ही मौन तोड़ा। उसने पूछा—"डॉक्टर, मास्टरनी का क्या हुआ?"

"होता क्या?" उन्होंने मेज पर टिककर कहा—"जो होना था वही हुआ।"

"यानी?" घड़ी के अलारम की तरह सुधा की बात टनटना उठी।

"यानी दवा ने उसके पाप को धो दिया, लेकिन आज ही सुबह ऑपरेशन करके मुझे एक और काम करना पड़ा। वह दवाएं गलत तौर पर पी गई और ज़हर ने गर्भाशय में प्रवेश कर लिया। इसलिए मुझे उसकी चीरा-फाड़ी करनी पड़ी और अब वह कभी भी मां नहीं बन सकेगी, चाहे तो भी नहीं। इसके लिए सेठ के लड़के ने मुझे पांच सौ की जगह कुल तीन सौ रुपया दिया है। ज्योंही उसे मालूम पड़ा कि बच्चा नहीं रहा उसने मास्टरनी से कुछ कहा। ऑपरेशन के बाद जब कोई भी डॉक्टर उसकी देख-रेख कर सकता था। उसने मुझे कुल तीन सौ रुपया दिया और वह मास्टरनी एकदम चुप हो गयी। दोनों ने मुझ पर जुर्म लगाया और मास्टरनी ने कहा कि मेरी ही गलती की वजह से वह अब औरत नहीं रही।"

डॉक्टर पराजित-से हंस पड़े। फिर कह उठे—"रुपया मैं जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य नहीं समझता। मैंने उनके भले के लिए किया था वह सब, लेकिन…"

सुधा ने बात काटकर कहा—"तो भला तो आप कर चुके न? फिर कैसा अफ-

सोस ? कर्म करना ही तो आपके अधिकार में था। फल न मिला, न सही।"

डॉक्टर तिलमिला उठा। इस समय वह चाहता था कि कोई उसकी प्रशंसा करे और उसी की एक शिष्या के समान लड़की ने उसके मर्म पर ऐसी चोट की थी। उसने आहत स्वर में कहा—"यह रुपया नहीं था, मेरी मेहनत का फल और उनकी ईमानदारी की परख थी।"

सुधा निराश हो गयी। उसका व्याकुल हृदय भीतर-ही-भीतर चिल्ला उठा—"यह सब झूठ है। यह सब झूठ है।" किन्तु फिर कॉलेज की फीस जेब में पुकार उठी—चुप! चुप!

5

भइया की नौकरी सचमुच लग गयी। वे सुबह साढ़े छः बजे के कड़कते जाड़े में घर से चल देते और शाम के पांच-साढ़े पांच बजे लौटते। एक सौ बीस रुपये की तनख्वाह बुरी नहीं होती। तीन ही दिन में यह कहीं से रुपये ले आए और डॉक्टर को सुधा ने बड़े-बड़े धन्यवाद देते हुए लौटा दिए। सुधा ने अपनी एक पुरानी जरसी उधेड़कर उनके लिए दस्ताने बना दिए ताकि साइकिल पर जाते वक्त हाथ न ठिठुर जायं और रात के परांठे लेकर वह गये गये कि फिर शाम तक की गयी। मगर हालत बदस्तूर गिरी रही। पूरा महीना बिना पैसे के चलाना था। घर में आटा था, मगर इधर सब्जी के बढ़े दामों पर पैसा डालना कठिन था, कि दूध-दही सुपना हो रहे थे। दरिद्रता की यह छाया सुधा के मन पर वैसी ही चढ़ी जैसे चूल्हे पर चढ़े बर्तन के तले पर कालिमा। अखबार बन्द कर दिया गया। पहले जो दो सौ आते थे उनमें पाई-भर भी बचाना हराम था। रसोई करने वाली निकाल दी गई और वह भार सुधा पर ही आ पड़ा। घर और बाहर के बोझ की कशमकश में उसकी आत्मा अवरुद्ध-सी छटपटा उठी। शाम को वह भइया को खाना खिलाकर पुस्तकालय जाने लगी और इस कारण लौटते में कभी-कभी अंधेरा भी हो जाता किन्तु अब अखबार पढ़ने में उसे सान्त्वना-सी मिलती जैसे यह सब एक महान संग्राम था जिसका परिणाम मुक्ति है, मनुष्य की मुक्ति।

किन्तु हरिश्चंद्र धीरे से मुस्करा उठा। उसने कहा—"तुम समझती हो सोवियत में सब सुखी हैं?"

"मैं नहीं जानती, मगर तुम सुख कहते किसे हो?" उसने पूछा।

"मैं?" हरिश्चंद्र ने उत्तर दिया।" सुख और दुख को केवल संसर्ग से उठनेवाली प्रतिक्रिया समझता हूं। साथ-साथ हैं तो यह है, वह है; दूर-दूर हैं तो न यह है, न वह है; और यह-वह कुछ स्वार्थ की सिद्धि सफल है तो सुख है, नहीं है तो दुख है।"

सुधा को यह उत्तर अच्छा लगा। एक बार मन में आया अपने घरेलू कष्टों का उससे बखान करके जी हल्का कर ले। किंतु फिर सहसा ही हिम्मत नहीं हुई कि कहीं इसमें कोई अपना अपमान न हो, कहीं हरिचंद्र उसे गरीब न समझ ले। हरिश्चंद्र बकता रहा—"संसर्ग ही सब कष्टों की जड़ है। मैं एक जमींदार हूं, छोटा-मोटा। कभी अपनी जमीन

देखने तक नहीं जाता। जो आज गरीब किसान है उसे कभी यह मालूम नहीं होता कि एक मिस्टर हरिश्चंद्र भी होंगे जो मेरी मेहनत के बूते पर सिगरेट पी रहे होंगे। मगर जो है सो तो है ही। वह सब भी ठीक है।" पैसा है तो सब कुछ है, नहीं तो कुछ भी नहीं।"

सुधा ने उसकी ओर देखा। अनजान में ही उसकी दृष्टि में एक स्नेह छलछला उठा था। नारी के मन की अनजानी वेदना को निर्दोष रूप में प्रगट कर देने वाला पुरुष कम-से-कम एक प्यार भरी दृष्टि का उत्तराधिकारी अवश्य होता है। हरिश्चंद्र ने निर्भय स्वर में कहा—"मेरे मना करने पर भी मेरी बहिन 'बैंक आई' है और मैं जानता हूं उसकी टॉमियों से दोस्ती है, लेकिन क्या कर सकता हूं मैं? वह मुझसे पैसा नहीं चाहती, कुछ नहीं मांगती, किस तरह दबा सकता हूं उसे?"

इतनी बड़ी बात कहकर भी उसे संकोच नहीं था। उसने बात को समाप्त करते हुए कहा—"मैं उसका भाई अवश्य हूं किन्तु उससे घृणा करता हूं क्योंकि वह मुझसे घृणा करती है। वह पुरुषों से घृणा करती है और फिर भी पुरुषों की ओर खिचती है। जिस आदमी से वह प्रेम करती थी वह एक अंग्रेज था जिसने उसे एक ठोकर मार दी थी और एक बच्चे की मां बनने के लिए छोड़ गया था। वह मां नहीं हुई, लेकिन पुरुषों पर उसने कभी विश्वास नहीं किया और मैं कोशिश करके भी उसे चाह नहीं सका।"

सुधा निस्तब्ध बैठी सुनती रही। कैसे हैं ये लोग! कोई एक-दूसरे से प्यार नहीं करता! केवल अविश्वास, केवल घृणा! और परस्पर का व्यवहार केवल एक धोखा या फिर अत्याचार! पार्क में उस दिन चांदनी फैली हुई थी। दोनों बेंच पर बैठे बातें कर रहे थे। मादक हवा चल रही थी। बात करते-करते हरिश्चद्र ने सुधा का हाथ पकड़कर कहा—"एक बात बतलाओ सुधा, क्या तुम बहुत सुखी हो? मैंने तुम्हें सदा एक जिज्ञासु के रूप में देखा है। तुम हो, तुम्हारे भइया हैं। मैं धन को बहुत बड़ी चीज़ मानता हूं। आज जो अविद्या, गंवारपन, कमीनापन और जाने क्या-क्या है यह सब धनहीनता के कारण हैं सब धन के भेद हैं। मैं नही जानता मैं कहां तक सही हूं; किन्तु तुम सदा मुझे सुखी दीखती हो।"

सुधा एकाएक हंस पड़ी। कैसा भोला है यह युवक जो हां-ना का फरक सुनकर नही पहचान सकता। उसने अपने सामने एक बालक देखा। अनजाने ही उसके कन्धे पर हाथ रखकर वह बोल उठी—"अरे हम लोग असल में गरीब आदमी हैं, गरीब आदमी। सुखी हम कहां? सुख की बातें तो तुम लोगों को करनी चाहिए, जो जमींदार हैं, बड़े लोग है। हम तो ज़िन्दे हैं, ज़िन्दे!"

"मैं जमींदार?" और हरिश्चंद्र ठठाकर हंस पड़ा, "बड़ा आदमी? शायद कपड़े देखकर लोग ऐसे ही गलत खयालों में पड़े रहते है? बंगले में रहता हूं जो! और सब, सब कर्ज़े से लदा है, गले तक कर्ज़ा है, कर्ज़ा, कमीने सेठों ने छोड़ा ही क्या है..."

और वह जोर से हंस पड़ा। उसकी भर्राई हंसी में उसका आहत अभिमान टुकड़े-टुकड़े होकर शीशे की तरह चांदनी में चमक उठा था। वह फिर कह उठा—"सोचती होगी जान-जानकर और क्यों फंसते हो? मगर जिसके मुंह में खून लग चुका हो वह

घास नहीं खा सकता। यह रोगी तपेदिक से मरकर ही चैन ले सकता है, इसका इलाज असम्भव है। बिल्ली दूध पी नहीं पाती तो लुढ़काये बिना उसे चैन कब मिलता है। एक खानदान की इज़्ज़त भी तो होती है न ? मां तो अभी भी अपनी ऐंठन उसी पर कायम रख सकी हैं।"

और वह फिर वही ज़हरीली हंसी उगल उठा। सुधा निस्पन्द सुनती रही। किला धप से मिट्टी में बैठ गया था। चारों ओर धूल ही धूल उड़ रही थी। वैभव को अंधकार ने डस लिया था।

6

दूसरे दिन सुबह ही सुधा डॉक्टर के घर की तरफ चल पड़ी। डॉक्टर बैठे कुछ सोच रहे थे। इतनी सुबह सुधा को देखकर उन्हें कुछ भी अचरज नहीं हुआ। सुधा को रात भर नींद ठीक न आ सकने के कारण उसकी पलकें भारी हो रही थीं और डॉक्टर के सन्देह की इस बात ने पुष्टि कर दी। वह अप्रसन्न-सा मुख लिए बैठ रहा। सुधा अपने आप कुर्सी खींचकर बैठ रही।

डॉक्टर ने देखा - कैसी सीधी बनकर बैठी है। लेकिन कल शाम को सीधी न थी जब पार्क में चांदनी में हरिश्चंद्र के साथ हाथ में हाथ डाले बैठी थी। अनजाने ही डॉक्टर की इस नारी के प्रति दबी वासनाएं इस अचानक पराजय पर भड़ककर क्षोभ विद्रोह और प्रतिहिंसा बनकर खड़ी हो गयीं जैसे आज वह कुछ सुनने को तैयार न था। सुधा चुपचाप बाहर देखती रही। उसने कहा—"डॉक्टर, जीवन कितना कठिन है!"

डॉक्टर के मुंह पर व्यंग्य की एक मुस्कान खेल गयी। उन्होंने कहा, "परिस्थितियों की उलझन को सुलझन बना देना ही मनुष्य का सुख होता है सुधा देवी! ठीक है न ?"

सुधा ने चौंककर डॉक्टर की ओर घूरा। किन्तु डॉक्टर बेताब होकर उठ खड़ा हुआ। मेज की दूसरी ओर धीरे-धीरे जाकर हाथ बांधकर वह खड़ा हो गया। सुधा ने सुना, वह कह रहा था—"जान-जानकर गलती करने वाले को कोई क्षमा नहीं कर सकता। मैं सब जानता हूं। सब देख चुका हूं, दवा लेने आयी हो सुधा? मैं नहीं दे सकता। तुम भले ही मुझे कुछ कह लो। मेरे लिए एक बार की भूल काफी है, बहुत काफी है। मैं बार-बार वैसी गलती नहीं दुहरा सकता। मुझे तुमसे कोई हमदर्दी नहीं है। यदि तुम पाप करते हुए नहीं हिचक सकतीं तो समाज को तुम्हें दण्ड देने का पूरा अधिकार है।"

सुधा कुछ नहीं समझी। वह बोल उठी—"कैसा दण्ड ? कैसी दवा ? क्या जानते हैं आप डॉक्टर ?"

"तुम मेरी आंखों को नहीं झुठा सकतीं सुधादेवी ! मैंने आंखों से तुम्हें हरिश्चंद्र के साथ पार्क में कल रात देर तक बैठे देखा है। अगर चांदनी का दोष है तो मैं कोई दवा कैसे दे सकता हूं ? है तुम्हारे पास पांच सौ रुपया ? डॉक्टर लक्ष्मण तुम्हारे कृपा कटाक्षों का न भिखारी था, न है, न रहेगा। जाओ, मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर

सकता।"

"ओह, समझी। तो आप मेरी कोई मदद नहीं कर सकते ?" सुधा एकदम उठकर हंस पड़ी। निर्दोष कभी किसी से नहीं दबता। "तब तो आप बड़े समझदार हैं। डॉक्टर, तुम्हारा भेजा सड़ गया है और तुम उसकी बदबू से परेशान होकर समझते हो कि सारा संसार सड़ गया है। बेवकूफ, तुम्हारे समाज में हरएक पाप का न्याय देने की ठौर है, और इसीलिए आज सत्ता के लिए विषमताओं के इस कारागार में पाप ही पुण्य हो गया है। इतिहास इसके लिए तुम्हें कभी भी क्षमा नहीं कर सकेगा।" वह अपने अपमान से विक्षुब्ध-सी फुफकार उठी थी। डॉक्टर हतबुद्धि-सा देखता रहा। सुधा तेजी से उसके घर से निकल गयी। बाहर हवा ठंडी थी, तेज थी। राह के लोग कपड़ों की कमी के कारण सिसकारी भरते चल रहे थे। ढाल के किनारे ताल पर कुछ बच्चे ढेले फेंक रहे थे। ढेला गिरते ही काई फट जाती थी, फिर उसके डूबने पर जुड़ जाती थी। बच्चों के ढेले कभी उस ताल की काई नहीं फाड़ सके। और ताल की काई पर मच्छर रहते हैं, भनभनाते हैं--ज़हर के छोटे-छोटे कातिल टुकड़े, लेकिन दूर से ताल कितना सुंदर लगता है, कितना मोहक···जो भीतर ही भीतर सड़ चुका है···गल चुका है···दुर्गन्ध और घृणा की एक दलदल-सा, जीवन की कलुषित पराजय-सा ··निर्वीर्य···निर्जीव···

('47 से पूर्व)

नरक

मैं एक चौमंजिला मकान हूं

उस मकान को देखकर यही लगता है कि वह किसी मुगल ने सराय के रूप में बनवाया होगा, मगर कालान्तर में उस पर काई जम गयी और वह काला हो गया। तब कुछ दिन तो उसके बारे में यह अफवाह उड़ी कि वह लालाओं की बगीची हो गया है। मगर उसके भाग्य में इज़्ज़त बची थी कि उस नाम को पूर्णतया सफलतापूर्वक अपने ऊपर सिद्ध न कर सका और वह ऐसा न रहा जहां शाम को रोज़ भंग घुटती। इसके कारण तो कई थे, मगर क़िस्सा असल में यह था कि टॉमसन साहब जिनकी कि नील की कोठियां थीं उनके नाती हैरिसन साहब कोठियों के बन्द होने पर खर्चा न चला सकने के कारण पहले महायुद्ध के समय उसको लाला हरदयाल के नाम बेच गये थे। और जो हरदयाल जवानी में सर पर पट्टे, लम्बी कलम, चिकन का अंगरखा और काली किनारी की धोती पहनता है। कन्धे पर पाप का गट्ठर है और मुंह में गाली। बेटे और नाती से चिढ़ है क्योंकि उन्हें कमा-कमाया धन मिल जायेगा। इसलिए घर से अलग रहता है। धुंधली हो गयी हैं आंखें, मगर मजाल है कोई उस पर खोटा रुपया चला ले। वह दो रुपये लेकर संसार-पथ पर चला था, आज लाखों की जायदाद खड़ी थी। क्या नहीं किया जवानी में— जूआ नहीं खेला कि शौक नहीं किये—मगर जो किया अपने बूते पर किया। किस चीज़ से रुपया नहीं कमाया?—चुंगी के चुनाव में उसी को वोट दी जिसने सबसे ज्यादा रुपया दिया; बीमा कराया दूकान का और आग लगाकर जल्दी ही तमाम रुपया ले लिया; धेली बिना सूद खाये वापिस नहीं ली—जैसे राजपूत की तलवार एक बार निकलकर बिना खून पिये फिर म्यान में नहीं घुसती।

मकान के चारों तरफ एक बड़ी बगीची है जिसके एक ओर लम्बा मैदान है, सरकारी। बगीची में अनेक पेड़ हैं: कहीं आम के, कहीं जामुन के; कहीं घनी छाँह, कहीं बिल्कुल नहीं। दो-एक नल हर जगह नज़र आ ही जाते हैं, और मकान बड़ी अजीब तरह से बना हुआ है। यों कहिए कि वह चारों ओर को बसा हुआ है। चार मंज़िल हैं। नीचे की कोठरियों में गरीब लोग बसते है।

आज हरदयाल को यहीं रहते हुए पैंतालीस बरस हो गये, किन्तु उसे सिवाय रुपये के और किसी बात की चिन्ता नहीं। बगीची के मन्दिर में ही वह अक्सर बैठा रहता है। मकान को देखकर लोग अचरज करते हैं। युगान्तर से वह स्तब्ध मूर्ति खड़ी

है। पंछी पत्तों में घुसे रहते हैं, जानवर उसकी मोरियों और छज्जों के बीच या पीछे और नीचे।

पूछा है--तू कौन है ? और वह प्रतिध्वनि कर पूछता है—तू कौन है ? मानो पूछने का अधिकार सबको नहीं होता। मगर कभी-कभी रात के सनसन समीरण की झिल-झिल ध्वनि मे कोई कहने लगता है—मैं मकान हूं, मैं समाज हूं, मैं मैं मानव हूं··· सब ही तो मुझमें हैं। न मैं पथ का आदि ही हूं, न अन्त ही।

2

पहली यातना : गदर

सुधीर अपने कमरे में पड़ा-पडा दीवार पर मकड़ियों की कारीगरी देखता रहा। एक दिन था जब उसके पास सब कुछ था। किन्तु आज वह केवल एक क्लर्क था। कॉलेज में जो गर्म-गर्म बहसें की थीं उनका नतीजा आज केवल पैंतालीस रुपयों का भयानक बोझा था।

उसने मन-ही-मन कहा, जो नहीं जानता वह भी पिसना नहीं चाहता, पर जो जान-जानकर पिसता है वह कितना निर्बल है ! आज पराजय और परतन्त्रता ने उसे कुचल दिया था। यह भी तो सामाजिक जीवन का एक गदर ही था। बगल में ही एक कमरा लेकर मिडिल स्कूल के मास्टर साहब रहते थे। वे अक्सर कहा करते —"देखिए सुधीर बाबू, अपनी मर्ज़ी से कुछ नहीं होता। हमारे पिता एक ज़मींदार साहब के यहां कारिन्दा थे। तनख्वाह आठ रुपये महीना पाते थे। मगर ऊपरी आमदनी इतनी थी कि हम दसवें दर्जे तक बेखौफ पढ़े। उसी साल वे स्वर्गवासी हुए और हम नौकरी ढूंढा किए। मगर नौकरी ? राम-राम ! हमारे पिता अंगरेजी एक अक्षर नहीं जानते थे; लेकिन काम, बड़े-से-बड़े काम, उन्होंने इशारे पर चलाये। बड़े साहब से मिलना, कलक्टर साहब से मिलना। हमने उनकी तमाम कमाई धूल में लुटा दी, और फिर भी कुछ नहीं। तब प्राइवेट ट्यूशन करना शुरू किया, और आज आपकी दुआ से मास्टर होकर दिखा दिया।"

सुधीर सुनता और कुढ़ता। मास्टर का जीवन इतना दयनीय था कि उसे उस पर घृणा हो आती थी। मगर मास्टर था कि कभी उसके मुंह से कोई भी शिकायत नहीं निकलती थी। नीचे की मंज़िल में यही दो कमरे अच्छे थे। उनके नीचे ही गरीब लोग रहते थे। उनकी कोठरियों की दुर्गन्ध कभी-कभी उसके कमरे में भी आ घुसती थी। ऊपर ही कुछ अच्छे कमरे थे, और उनमें कौन रहता था यह यद्यपि वह जानता था, वे लोग नहीं जानते थे, न उन्होंने कभी उसे बुलाया ही। अपने यही ले-देके पढ़े-लिखों में एक मास्टर साहब थे, और या फिर वे मज़दूर जो पहले तो उससे डरते थे मगर धीरे-धीरे दोस्त हो चले थे। उन्हें मालूम था कि बाबू सिर्फ पैंतालीस रुपये पाता है। दोनों वक्त खाकर, खास तौर पर साफ कपड़े पहनने को उसके पास कुछ नहीं है। और इसमें

उसका कोई दोष नहीं, क्योंकि वह पढ़ा-लिखा है।

सुधीर का असन्तोष उसकी अपनी अभिशप्त विवशता थी। वह मन-ही-मन कुढ़ता कि कोई ऊपरवाला उससे कभी भी बात नहीं करता। जब कभी वह मास्टर साहब से कविता की बात करने लगता, मास्टर साहब सुनाने लगते, "अजी साहब, अब तो लोगों को कविता का शौक ही नहीं रहा। पहले जब हम पढ़ते थे तो वह-वह अन्त्याक्षरी होती थी कि देखने वाले दंग रह जाते थे। अब भी जब गांव जाते हैं एक-आध तो जम ही जाती है।"

और सुधीर वहीं बात खत्म कर देता। किन्तु मास्टर साहब कहते—"सुधीर बाबू, कवि तो गिरधर हुए हैं। क्या-क्या कुंडलियां कही हैं! वाह, लाठी पर तो कमाल कर दिया है!"

सुधीर क्रोध से दूसरी बात छेड़ देता। मास्टर साहब फिर से सहयोग देने लगते।

× × ×

किसी ने द्वार को थपथपाया। सुधीर ने पड़े-पड़े ही पूछा—"कौन है?"

"अरे भाई, मैं हूं"—कहते हुए खड़ाऊं की खट-खट से कमरे को गुजाते हुए मास्टर साहब घुस आये। सुधीर खाट पर बैठ गया। मास्टर साहब भी बैठ गये।

"क्यों कुछ तबियत खराब है क्या?" मास्टर साहब ने धीरे से पूछा।

"हां, कुछ ऐसी ही थी।"

"सो ही तो मैंने कहा। दिया जले ही तुम तो आज खर्राटे भरने लगे।"

मास्टर साहब हंस दिये। सुधीर मन-ही-मन भुनभुनाया। आज मास्टर साहब कुछ प्रसन्न-से थे। अपने आप बोले—"तुमने सुना यार?"

"नहीं तो; क्या हुआ?"

"ओ, कोई खास बात नहीं," मास्टर साहब ने उपेक्षा दिखाते हुए कहा—"ऐसे ही।"

"तो भी तो! कुछ हम भी तो सुनें?"

"आज बुलाया था।" मास्टर साहब ने ऊपर इशारा करते हुए कहा। "हां!" और फिर सिर हिलाया, उनकी चुटिया ने उनकी गर्दन को दो-चार हल्की-हल्की थपकियां भी दीं।

सुधीर ने विस्मित होकर पूछा—"यार, किसने बुलाया था?"

"ऊपर जो बाबू रहते हैं उन्होंने।" मास्टर ने गर्व से कहा।

"क्यों?"

"उनकी एक छोटी-सी बच्ची है। उसे हिन्दी पढ़ानी है। उस्ताद, चार रुपये महीना देंगे। घर की जैसी बात है। हम तो कहते हैं मेल-जोल बढ़ेगा तो अपना ही तो फायदा है। क्यों, है न?"

सुधीर ने मास्टर साहब की प्रसन्नता देखी और उसने सिर झुका लिया।

मास्टर साहब हर्षित-से कहते रहे—"आदमी बड़ा सज्जन है। पाँच सौ पाता है, मगर घमण्ड छू तक नहीं गया। साहब, यह तो खानदान का असर होता है। आप अपने अच्छे खून के हैं तो रुपये की गर्मी आपको जल्दी नहीं चढ़ सकती। परमात्मा देता उन्हीं को है जो वास्तव में योग्य होते हैं।"

सुधीर के दिमाग में बड़ी-बड़ी कब्रें थीं। यह बात भी उसके दिमाग में एक लाश बनकर उतर गयी।

3
दूसरी यातना : ईश्वर की दया

मन्दिर में झांझ बजती रही। रात के एक बजे तक कीर्तन होता रहा। कहने को तो सेठ रामलाल ने आने को कहा था किन्तु वह अभी तक नहीं आये थे। उनके पिता ने खोंचा लगा-लगाकर इतना रुपया इकट्ठा कर लिया था कि नौ बेटों के अलग-अलग मकान खड़े थे। बेटों की बहुएं आयी थीं। जब से पांचवीं बहू आयी घर में बंटवारा शुरू हो गया। घनश्याम सिर पीट कर रह गया। बहू मिडिल पास थी। तब लोगों ने समझाया कि पढ़ी-लिखी लड़कियां ऐसी ही होती हैं।

झांझ बजती रही और राधे-राधे, श्याम-श्याम का सम्मिलित स्वर गूंजता रहा।

सुधीर को लगता जैसे दिन भर के शोषण के बाद यह प्रयत्न वैसा ही था जैसा कि कोई विद्यार्थी साल भर तो कुछ नहीं पढ़े और इम्तहान पास आने पर ईश्वर से कहे : मुझे पास कर दे, मुझे पास कर दे। किन्तु मास्टर साहब कहते—"पुण्य की बात है। भगवान का स्मरण है। और कुछ तो कलियुग में कर ही नहीं सकते, नाम तो ले लेना चाहिए। ज़माना ही बदल गया है तो कोई क्या करे?"

राधेश्याम-राधेश्याम, श्याम-श्याम, राधे-राधे का अवतरित स्वर पीपल के पेड़ में खड़-खड़ पैदा कर स्याही वाले आसमान की सलेटी-सी छाया में डोल उठता था। धीरे-धीरे एक बूढ़ा आकर स्वर में स्वर मिलाने लगा। उसको देखकर पास बैठा घीसा ज़रा खिसककर भीड़ में मिल गया और धीरे-धीरे हटने लगा।

ज्यों ही घीसा द्वार पर पहुंचा, हट्टे-कट्टे घुटमंडे बाबा ने पूछा—"घीसा, कहां चला?"

"कुछ नहीं, ज़रा यों ही। अभी आया।" उसने सकुचाते हुए कहा।

किन्तु बाबा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"तुम्हें कसम, जाना नहीं।"

घीसा ने अपराधी स्वर में कहा—"अच्छा तो चलो, न जाऊंगा।" उसके शरीर में एक सिकुड़न-सी दौड़ गयी। साहस भरा और भीतर जाकर बैठ गया।

बूढ़ा हरदयाल हाथ में माला लिये बैठा था। पास ही एक नया मकान बनवा रहा था। मकान धर्मादा और सूद के साथ-साथ उठ रहा था। घीसा हरदयाल का कर्ज़दार था। पहले महीने रुपया देर में पाकर वह गरज उठा था—"क्यों बे, हमीं से

साहंसाह बनने चला है, साले ! और वह दो आने ?"

"मालिक," घीसा ने कहा—"वह भी आ जायेंगे। यह तो जबान की बात थी। यह भी घरवाली को रोती छोड़कर उसके कड़े रख के लाया हूं। वह तो तुम मिले नहीं, जबान की बात थी, वर्ना मैं तो कल ही दे दिये होता ! क्या करूं लालाजी, फेरी लगाते-लगाते देही निचुड़ गयी, मगर आमन्दनी की वही मन्दी !"

"और सट्टा लगाने को कौन तेरा बाप तुझे पैसे दे जावे है !"

"देखो लालाजी, सुन रहा हूं देर से। गालीगुफ्ता करोगे तो हां ! कोई इज्जत थोड़े ही वेच दी है।"

"अबे, बडा साहूकार आया ! खाली कर दे मेरी कोठरी; समझा ! खाली कर दे। हां, क्या कही मैंने ?"

घीसा लौट आया था। घर आते ही देखा कि रामस्वरूप का बुखार बढ़ता ही जा रहा है, हिम्मत पस्त हो गयी। उल्टी के बाद भी हिचकियां बनी रहीं। वैद्य जी ने जो काढ़े दिये वह दो दिन बाद हलक के नीचे उतारना हराम हो गया। जाने कौनसी बीमारी थी, यही पता न लगा। उसी रात बहू को जाने क्यों गश आ गया। और सुबह होते-न-होते वह चल बसी। शायद चार-पांच दिन से वह पेट वाली भूखी रहकर मेहनत करती परास्त हो गयी और उसने मरघट में ही जाकर चैन लिया। घीसा ने देखा और वह रो न सका। जब वह लौटा तो बूढ़ी महरिया बहू के कपड़े इकट्ठे कर रही थी। घीसा ने करम ठोक लिये। अन्त में उसकी फेरी पर आंच आयी। पैर टूटने लगे। आंखों के सामने अन्धेरा छा गया। बच्चा फिर कराह उठा। उस मांस के लौंदे में अपूर्व शक्ति थी। उसने आंखों के सामने लाचारी का धुंधलका हावी कर रखा था। बुढ़िया भीतर गयी। बहू की खंगवारी उठा लायी। वह घीसा के हाथ पर धरकर बोली, "जा लाला के पास जा, इसे धरके कुछ ले आ।"

घीसा ने देखा। हाथ पर सांप फन तिरछा किये कुण्डली मारे बैठा था। यही उसकी बहू के गले से लिपटा रहता था। वह रो दिया।

हरदयाल उस समय मन्दिर में बैठे थे।

घीसा ने झुककर कहा—"लालाजी, पालागन !"

लालाजी ने आंख उठाकर देखा और फिर भजन करने लगे। घीसा ने खंगवारी आगे रख दी और गिड़गिड़ाने लगा—"लालाजी, अब कभी गुस्ताखी नहीं होगी।"

"क्या है ? क्या है ?" हरदयाल चिहुंक उठे।

"बहू गुजर गयी। बच्चा बीमार है।'

वह चुप हो गया। हरदयाल ने नर्मी से कहा—"अपना-अपना भाग्य है भइया ! वह सब कुछ करते हैं।" सामने शिवलिंग था। उस पर कुछ चन्दन आदि चढ़ा हुआ था। घीसा ने देखा। कठोर सत्यों ने कहा—यह कभी कुछ नहीं करते। किन्तु अज्ञात भय ने कहा—कुछ नहीं करते, तो बता हरदयाल आज कैसे इतना रुपये वाला है ?

घीसा बोला—"सब उन्हीं की माया है ! उनकी दया से दुनिया चलती है !"

हरदयाल माला जपने लगा।

"लालाजी, गुजारिम है कि यह खंगवारी···"

"कितने की है ?" भजन करते-करते लालाजी ने पूछा।

"तेरह रुपया भर है।"

"तो क्या है ? कुछ नहीं। खैर तेरी मर्जी। मगर एक बात है। इधर मेरा हाथ बहुत तंग है। सोचता हूं क्या करूं ?"

"महाराज, निरास न करना। बच्चा तड़प-तड़पकर मर जायेगा महाराज !" उसका गला रुंध गया।

हरदयाल जैसे औरतों की अदाओं पर मरना भूल गया था वैसे ही आंसू से बहल जाने का लड़कपन भी वह प्रारम्भ में नुकसान उठाकर छोड़ चुका था।

उसने कठोर स्वर से कहा—"नखरे नहीं घीसू ! चार आने सूद की रही।"

"अजी लालाजी, मर जाऊंगा। जान से ही मर जाऊंगा। तुम्हारी कसम, बुरी मौत मर जाऊंगा। लालाजी तुम्हारे दरवाजे का जस है, जो आया वह खाली हाथ नहीं लौटा, फिर आज मेरे ही लिए लालाजी, दया करो···"

"तब दो आने रुपया लूंगा। समझा ? अब इधर की उधर नहीं होगी। क्या समझा ?"

अब उसी का मूल नहीं तो ब्याज तो चुकाना ही था। कल का दिन था सो निकल गया। तभी घीसा हरदयाल को देखकर खिसक रहा था। उसने धर्मभाव से हाथ जोड़े—"हे परमात्मा ! हे परमेसुर ! मेरे बच्चे को अच्छा कर दे !"

कीर्तन समाप्त हो गया था। हरदयाल ने घीसा के कन्धे पर हाथ रख कर कहा—"परमात्मा की दया अपार है, उसकी महिमा अपरम्पार है।"

घीसा ने भक्ति से सिर झुका लिया। तभी हरदयाल ने पूछा—"कहो घीसा, बच्चा कैसा है ?"

"लालाजी, उसकी बीमारी का ही पता नहीं लगता।"

"अच्छा हो जाएगा, चिन्ता की कोई बात नहीं। वह सब अच्छा करते हैं। उनकी दया से जीवमात्र चलते हैं। पूर्व जन्म के पाप ही दुनिया को अंधेरे में डाले हुए हैं। हां, अब कब तक दे दोगे ?"

"अभी तो नहीं लालाजी, जरा हाथ खुले तो···"

"अरे," हरदयाल ने टोककर कहा—"हाथ तो धीरे-धीरे खुलता रहेगा। मगर मैं भी तंग हूं इधर। भैया यों तो काम चलेगा नहीं। अपना मकान बन रहा है न। आ जाइयो, उधर ही मजूरी मिलेगी, कोई बेगार नहीं है, समझे ! काम भी हो जाएगा और चुकाना-फुकाना तो हो ही जाएगा।"

घीसा ने सुना। पुजारी बाबा ने शंख में श्वास भरा। स्वर गूंज उठा लहराता, भरमाता···

मन्दिर की अंधेरी छाया में निस्तब्धता मंडराने लगी। चारों ओर हाय-हाय

करता सन्नाटा छा गया। उस विशाल अनेक मंजिलों वाले घर में लोग चुपचाप सो गये। किसी तरह वे सब जिये जा रहे थे। उनमें से किसी का भी भविष्य निश्चित नहीं था। आस्मान की सल्तनत बन रही थी। मनुष्य ने जैसे पृथ्वी से मोह छोड़ दिया था!

यह भी ईश्वर की दया थी।

4

तीसरी यातना : परम्परा

दिन थका हुआ-सा निकला। बगीची के पेड़ सूने-सूने से खड़े थे। बादल अभी-अभी बरसकर बन्द हुए थे। अब वे आस्मान में इधर-से-उधर भाग रहे थे। उनकी सूनी उसांसों से अंतस कुछ-कुछ विह्वल हो आता था।

चूरा मर गया था। उसका शव कपड़े से ढंका रखा था। केवल मुंह खुला हुआ था। आंखें निकली पड़ रही थीं और गालों पर डरावनी स्याही छायी हुई थी।

हरगोविन्द ने बांसों को बांधा और अर्थी सजाने लगा। महरी रोती रही। बाड़े की अन्य स्त्रियां आंसू बहाती हुई उसे सांत्वना देने लगीं। किन्तु उसके आंसू बहे जा रहे थे। वह गा-गाकर रो रही थी। हरदयाल ने दूर से सुना और कोठरी बन्द करके पड़ रहा।

चूरा मर गया था। जिन्दगी जबतक रही उसने अपनी बहू को खूब मारा। पर उसमें एक बहुत बड़ी बात थी। किसी दूसरे की चुगली सुनकर उसने महरी से कभी भी कुछ नहीं कहा।

लेकिन जब उसका हाथ उठता था, मजाल थी कि कोई रोक जाए। तब एक बार जब वह जवान थी चूरा अपने दमे की कशिश में खांस रहा था।

थोड़ी देर बाद भीड़ इकट्ठी हो गयी। महरी गाली दे रही थी—"हाय कढ़ी खाये, तेरे कीड़े पड़ें···"

जवानी को जवानी ने लोहे की तरह खींचा। चूरा का हाथ उठ गया था।

गफूरा ने कहा—"क्यों वे, क्यों मार रहा है माले?"

बालिस्त-भर के चूरा ने कहा—"कतरनी से कपड़े काट जाकर, बीच में मत बोलियो, खून हो जायगा खून।"

"अबे होश की दवा कर, मुर्गा बनाकर छोड़ूंगा। औरत पर हाथ उठाता है, शरम नहीं आती?"

"शरम आये तेरे मां-बाप को, समझा! जीभ काट लूंगा जीभ।"

गफूरा बिगड़ गया। हो गये होते दो-दो हाथ। मेहरी बेबस बकरी-सी उसकी तरफ देख रही थी और मन में संशय लिये आने वाले तूफान को सहने का साहस भर रही थी। चूरा का हाथ बहने को उठा। गफूरा को लोगों ने पकड़ लिया। "हां-हां क्या करते हो?"—भीड़ गरज उठी। गालियां चल रही थीं। शमसू कह रहा था—"हिजड़ा है

साला !" गफूर ने बहुत कुछ वज़नी गालियां दीं और कहा—"औरत कोई तेरी कुतिया है क्या ?" मगर चूरा समझाने वालों के कोलाहल को भेदकर चिल्ला उठा—"औरत मेरी है कि तेरी ? अबे मैं इसे फेरे पाड़कर लाया था कि तू ? मेरी चीज, फिर तू कौन लाटसाहब का बच्चा है कि बीच में बोलेगा। मैं मारूंगा, खोद के गाड़ दूंगा। टुकड़े-टुकड़े करके कछुओं को खिला दूंगा। तू कौन बीच में बोलने वाला आया !"

एक बुज़ुर्ग आगे बढ़कर गफूरा से कहने लगे, "उसकी जोरू, उसकी मलामत। कल को फिर दोनों एक होंगे, तू किधर का रहेगा तब ? खुदा ने जब अकल दी थी तब ये लोग गैरहाजिर थे। तू क्यों बिगड़ रिया है ? तू बीच में मीजान बैठाने वाला कौन है ?"

सब चले गये। चूरा का हाथ चलने लगा।

"हरामजादी, यहां यारों को लिये मौज कर रही है, वहां ईंट ढोते-ढोते मर गये !"

बाड़े में यही प्रसिद्ध था कि असल में चूरा अपनी बहू को दिल में बहुत चाहता है। भाई मरद ही का तो हाथ है, जाने कब उठ जाये !

चूरा जब तक जिया महरी को चैन नहीं मिला। उसका सुहाग था कि वह घरों में जाकर चौका-बासन करती और कमा-कमाकर लाती। चूरा दमे में पड़ा-पड़ा बर्राया करता और उन दिनों गिरस्ती उसी पर आ झूलती। इकलौता पन्ना एक नम्बर का ढीठ था। वह बाप की भी नहीं सुनता था। उम्र करीब उन्नीस साल की। आज तक कसम है कि कभी एक पैसा कमाया हो। दिनभर डोलना, आवारागर्दी करना। बाप की नजर बचायी, मां से माल ले उड़ा। फिर तो यह देखो, वह देखो।

परसों बुखार में बर्राते-बर्राते चूरा ने कहा—"देख री जरा उस्तरा तो ले आ।"

महरी ने शंकित होकर पूछा—"क्यों ?"

किन्तु चूरा शान्त था। फिर भी स्वभाव से बोला—"देख री, लाती है कि मैं उठूं ?"

महरी चुपचाप उस्तरा ले आयी। चूरा उसे सिल्ली पर तेज़ करने लगा।

"क्या करोगे ?" महरी ने पूछा।

चूरा ने देखा, वह गयी-गुजरी बात-सी एक औरत ! अब कहां है वह जोर ? पलक झुक गयी। बोला—"डाढ़ में फोड़ा उठा है, काटूंगा।"

महरी चुप हो गयी। उस गन्दे उस्तरे ने घाव करके उस पर ज़हर का काम किया। चूरा बर्राने को पड़ गया। दिन आया और अपने निष्ठुर प्रकाश में उसके मुख को पीलापन दे गया। सन्ध्या अपने जाने के साथ उसके चेहरे का सारा खून ले गयी और रात ने अपनी काली छाया उस पर निःशंक होकर अंकित कर दी। रातभर चिल्लाकर आज सुबह चूरा उजाले के पहले ही चल बसा। वह मरा और संसार के नियम के अनुसार फूंक दिया गया। जैसे जीर्ण चादर हटाकर हड्डियों को तपा दिया गया। महरी रो पड़ी। दो बूंद नीचे गिरीं और गा उठी—"हाय मेरे राजा···!" बात आयी-गयी

समाप्त हो गयी।

× × ×

पन्ना देर से उठता, देर से नहाता देर से खाता और जो भी वह करता देर से ही करता। महरी के बारहमासी कठोर परिश्रम ने स्त्रीत्व में पुरुषार्थ बन कर प्रकृति पर भी विजय प्राप्त कर ली थी। पन्ना रात को ग्यारह-ग्यारह बजे लौटता और अपनी जरूरतों का बखान करता और तब फिर वही, फिर वही···

पन्ना धीरे-धीरे जुआ खेलने लगा। कुछ भी हो उसे जुआ खेलने से काम। औरत और शराब की तरह जुआ भी एक नशा है।

रात हो गयी। आज महरी का शरीर टूट रहा था। कल्लू हलवाई ने पोस्ट मास्टर के लड़के की शादी में ठेका लिया था। वह वहीं से पूरी बेलकर आयी थी।

इसी समय पन्ना ने प्रवेश किया। कमीज फटी हुई, सिर के बाल बिखरे हुए। एक धमाचौकड़ी से वह घुसा और बोला—"अम्मां, दस रुपये दे दे।"

महरी ने कराहकर करवट बदली।

पन्ना अधीर-सा फिर बोला—"देती है कि नहीं?"

महरी कुछ नहीं समझी। लड़के की इस बदतमीजी पर उसे क्रोध हो आया। वह उठ खड़ी हुई और चिल्लाकर बोली—"दे दूं, सो तेरा बाप ही तो कमा-कमाके जमा कर गया है, हरामी। यहां हाड़ों से पत्थर तोड़ दिये और लल्ला की पहुंची लचक गयी।"

पन्ना ने सामने रखे मटके में जोर से ठोकर मारी। मटका तड़ककर टूट गया। सारी दाल बाहर फैल गई। महरी उसे चिल्लाकर गालियां देने लगी और रोने लगी। पन्ना ने कहा—"देख दे दे। चुपचाप दे दे नहीं तो कुट्टी करके धर दूंगा।"

"अरे देख लिये! कुट्टी करेगा तू?" महरी ने दाल बीनते हुए कहा-"कमीन नहीं तो कहीं का। आया बड़ा लाट का···"

इसके बाद उसने कुछ अश्लील गालियां दीं। पन्ना फिर चिल्लाया—"देख मान जा। नहीं हड्डी तोड़ दूंगा हड्डी मारते-मारते···"

महरी पर बिजली की चोट हुई। वह तड़पकर उसके सामने जा खड़ी हुई और बकने लगी—"उठा तू हाथ उठा। आज तू मार! अपनी मां को मार! सपूत बेटा! अरे तेरे मुंह पै आग बराय दूं···कढ़ी खाये···"

पन्ना का हाथ चल गया। परम्परा चल निकली।

बूढ़े गफूरा ने सुना और कहा—"जैसा बाप वैसा बेटा···"

अब वह बूढ़ा था। उसमें बीच-बचाव करने का जोर नहीं रहा था।

रामधन ने सुना। हुक्के पर से मुंह हटा लिया और फिर ठठाके हंसा बोला—"वाह जिजमान, इस घर में रोज दिवाली मन रही है। हम तो पहले ही कहते थे···"

महरी अपमान और विक्षोभ से तड़प-तड़पकर रो रही थी। पन्ना उससे छीनकर सारे रुपये ले गया था। कोठरी में मटके टूट गये थे। दाल में आटा मिल गया था। उठी और बुखार में बरबराते हुए, रोते हुए समेटने लगी। आज उसका हृदय टूक-टूक हो रहा

था। एक बार उस आदमी की याद आयी जिस पर उसका दारोमदार था। कैसा भी था अपना आदमी था। उसका तो हक था। वह होता तो क्या यह कल का लौंडा यों हाथ उठा जाता। ककड़ी की तरह तोड़ देता कलाई……"

गरीबी की दुनिया पूजी के अवैतनिक रूप में पल रही थी!

5

चौथी यातना : चक्कर फिर चक्कर

लच्छो का आदमी चल बसा। पहले तो वह रोयी, लेकिन बाद को उसके जीवन का सहारा उसका आठवां लड़का जो किसी तरह जी रहा था उस पर ममता बनकर केन्द्रित हो गया। लच्छो काली थी। यौवन ढल चुका था। बूढ़ी चाची समझती थी कि वह सारी गिरस्ती पाल रही है; लच्छो का दावा था कि उसके बूते पर चूल्हा जल रहा है। चाची के लड़के हालांकि लच्छो के रामचन्द से बड़े थे फिर भी वह रामचन्द को कभी किसी से कम नहीं समझती थी। रात के तीन बजे ही उठकर हल्दी या गेहूं या चना पीसने बैठ जाती। कोठरी में उसकी चक्की का शोर उसके गीतों से मिलकर बाहर तक मंडरा उठता। जब वह बाहर निकलती बालों पर, तन पर पीसन का रंग चढ़ा होता। उसे फटकारती और एक लोटा पानी ले, मुंह-हाथ-पांव धोकर, लहंगा-फरिया पहनती, सिर पर कनस्तर धरती और बाजार के पंसारी के यहां जाकर उसे देकर, पैसे ले आकर, घर आ बैठती। दालान में ही देवरानी सुरसुती बैठी रहती। लच्छो के पहुंचते ही उठकर जाती और दो मोटी-मोटी मिस्सी रोटियां फटकारती हुई लाती और पानी का गिलास रखकर रोटियां उसके हाथ पर रख देती।

सूखा रोग से पीड़ित बालक लिए सुरसुती बैठकर अपने पति की निन्दा करने लगती। पतली तीखी आवाज में उनको दुहराती, कभी बालक को पुचकारती, कभी अपने रामचन्द को डांटती, रोटी खाती हुई लच्छो सुरसुती की आधी बात सुनती आधी टाल देती।

सुरसुती कहने लगी—"जीजी, मैं तो कुछ भी नहीं समझी। कल तो दो आने लाकर दिए थे। मैंने पूछा था कि दिन-भर की पल्लेदारी में बस दो ही आने मिले तो बोले हां!"

लच्छो ने चौंककर कहा—"पतला-दुबला है तो क्या? है तो मर्द-मानुस! दो आने तो हमारा रामचन्द ही कमा लेगा।"

इतना कहकर उसने गर्व से रामचन्द की ओर देखा जो इस समय दो का पहाड़ा याद करने में अपनी जान की पूरी ताकत लगाए हुए था।

सुरसुती ने कहा—"जीजी, वे तो समझाने से मानते नहीं। बेटा हुआ तब से तो घर की सुध ही छोड़ दी। और न जाने कहां-कहां चिन्ता व्याप गई है रांड कि बस बोलते ही नहीं। मैंने जो कुछ कहा कि बस मारने-मरने को तैयार।"

इसी समय नल पर से पानी लाकर चाची आ खड़ी हुई। सुरसुती ने उतरवाया।

अन्तिम बात सुनकर उन्होंने कहा—"तू तो बेटी रानी है रानी! नैंक मरद ने छू दिया कि इज्जत चली गई।"

सुरसुती सकपका गई। किन्तु लच्छो ने कहा—"चाची, तुम समझो तो हो नहीं। कल को बेटे का ब्याह करेगा। खिला-पिलाकर आदमी बनाएगा···"

चाची ने हाथ मटकाकर कहा—"बेटा न बेटा की पूंछ। मेरे ही से आग ले गई नाम धरा बैसानर! तुमने भली गधे के कान में फूंक मारी! हाय राम!"

लच्छो ने बिगड़कर कहा—"मैं जो उसकी मां होती तो एक दिन में बेटा को छटी की याद दिला देती। समझीं! तुम्हारे ही लाड़ हैं कि ऊधम को लाड़ है, बरबादी को दुलार है।"

चाची ने ताली पीटकर कहा—"अरी मेरी छल्लो! तू ही ने तो उसे इत्ता बड़ा किया है अपनी छाती के बल पै? बेटी मन्दोदरी! जब उसका बाप मरा था तब तू कहां थी? उस बखत तो मैं थी। मैंने पाला है उसे दूध पिलाकर अपना। एक वो आई है न कि फूलों पर चलूंगी मैं तो। काम नहीं किया जाता मेरी सौत?" सुरसुती ने आंखों में आंसू भर के कहा—"खा जाओ मेरी सौगन्ध जीजी! मैंने कुछ भी कहा है? देखो मुझे दोस लगा रही हैं?"

लच्छो ने तीव्र स्वर में कहा—"देख ली भैना! देख ली, जैसे पाला है वैसे ही वह करम कर रहा है। इनने ही बिगाड़ा है उसे। मैं तो चटनी करके धर देती चटनी!"

चाची ने गरम होकर कहा—"तू ही न एक खैरखा है उसकी? हम तो दुश्मन हैं दुश्मन। आई बड़ी···"

और चाची ने उसे कुछ गालियां दीं। इसके बाद चाची और लच्छो में स्त्री और पुरुष के गुप्तांगों के विशद विवेचन करनेवाले शास्त्रार्थ होने लगे। सुरसुती चुपचाप घूंघट माथे पर सरकाए बैठी रही। इसी समय सुरसुती के पति सुरजन ने प्रवेश किया। आज उसका सिर घुटा हुआ, आंखें चढ़ी हुई और कदम लड़खड़ा रहे थे। उसने कुछ भी नहीं कहा। एक खटिया पर घुटने मोड़कर वह पड़ गया। चाची को आव-ताव कुछ भी नहीं सूझा। वह उसके पास जाकर चिल्लाकर उसे एक-एक बात सुनाने लगी।

एकाएक सुरसुती चिल्ला उठी। सुरजन की देही कांप रही थी। हाथ-पांव थर-थरा रहे थे। आंखें मुंद रही थीं। लच्छो चिल्ला उठी। उसने पास जाकर देखा।

देखते-देखते बाड़े के लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। शमसू ने कहा—"जाओ किसी हकीम-अकीम को बुलाकर लाओ। खड़ी-खड़ी क्या कर रई हो?"

लच्छो ने सकपकाकर पूछा—"वह कित्ते रुपये लेगा?"

शमसू ने कहा—"ये ही दो-तीन और क्या? इस बखत जान की बात है। जान है तो जहान है।"

लच्छो ने चाची की ओर देखा। चाची ने सुरसुती की ओर। सुरसुती घूंघट

काढ़े बैठी थी। चाची ने कहा—"सुरसुती, लाज तो तेरी तब है जब ये जीता है। अब लानिकाल के भीतर से।"

सुरसुती ने घूंघट में से कहा—"चाची, मेरे पास क्या है जो दूं ?'

चाची ने तड़पकर कहा—"और चूल्हा अलग कराने को जीभ बहुत बड़ी है न ? ले-ले के जो भर रखी है उसे उगल दे महारानी ! नहीं तो यह ही नहीं रहा तो···"

"छिः छिः"—बूढ़े रामधन ने कहा—"असुभ बात मत किया कर तू बिंदिया !"

चाची ने पलटकर कहा—"तो मामा मेरे भी दो हैं। ये जमा करें और मैं उन्हें भूखा मार दूं सो मेरे देखते न होगा।"

"तो हैं किसके पास ?" सुरसुती ने घूंघट में से कहा, और वह जोर-जोर से रोने लगी। हरगोविन्द ने कहा—"क्या देख रही है लच्छो ! बुला किसी स्याने को। आनन-फानन ठीक कर दे।"

बात पसन्द आई। तुरन्त भोपा बुलाया गया। उसने आकर पहले तो कुछ मन्तर पढ़े फिर लगा उसे झकझोरने। सुरजन के दांत थोड़ी देर तक तो बजते रहे फिर वह मूर्छित होकर भूमि पर फैल गया। भोपा बड़ी देर तक चिल्लाता रहा—"साले तेरी खोपड़ी तोड़ दूं। और बजरंगबली की जय। भूतपलीत की ऐसी-तैसी, पास आए तो आग लगा दूं, हेई बजरंगबली का सांचा···"

भीड़ छँट गई। भोपा अपनी दक्षिणा लेकर उठ खड़ा हुआ। जांघों में ऊंचा लाल घुटन्ना, लाल फितूरी, माथे में सिन्दूर लगाए जब वह चला तब कमर में बंधे बड़े-बड़े घुंघरू गोले जैसे बजने लगे।

सुरजन मूर्छित-सा पड़ा रहा। रामचन्द बैठा रहा। चाची के लड़के भी आ गए। सांझ का चूल्हा जला, सुबह का चूल्हा जला, मगर सुरजन वैसे ही खीचना पड़ा रहा। कभी-कभी वह जब किचकिचाने लगता लच्छो उसके मुंह मे पानी डाल देती। सुरसुती बच्चे को गोदी में लिटाए, उसका रोना बन्द करने को बारी-बारी से अदल-बदलकर अपने स्तन उसके मुंह में देती, घूंघट काढ़े, पंखा झलती रही।

दोपहर ढले उस उदासी का गतिरोध टूट गया। सुरजन ने आंख खोल दी। उसने पानी माँगा। सुरसुती दौड़कर ले आई। पानी पिया।

लच्छो ने पूछा—"अब कैसा है तेरा जी ?"

सुरजन ने टूटे-फूटे शब्दों में कहा—"बाबा ने दम लगवाई थी जड़ी रखकर, तभी मन खटा गया।"

लच्छो ने कहा—"तो क्या तू साधू होने गया था। जो मूंड़ मुंड़ा दिया ? यह किसके नाम को रोती ?"

सुरजन ने कोई जवाब नही दिया। पागलों की तरह देखता-भर रहा; जैसे कुछ भी नहीं समझा। लच्छो ने बिगड़कर कहा—"मैं तो कहूं मान जा, मान जा, और तू है कि सिर पै ही चढ़ा जावै ! मैं कहूं सीधे मुंह बात कर, सीधे मुंह, समझी ?"

सुरजन ने इधर-उधर देखा और निराश-सा दोनों हाथों में सिर थाम कर बैठ गया। सुरसुती फिर हवा करने लगी। लच्छो ने पंखा छीनकर फेंक दिया। वह जोर से बोली—"क्या कही ? अब तो नहीं जायगा बाबा-आबा के पास ?"

सुरजन ने फिर सिर उठाकर देखा और हताश की भांति सिर हिला दिया।

वह बहरा हो गया था।

6

पांचवीं यातना : विषैला धुआं

कुछ दिन से किसी काम से पुलिस की छावनी ने कुछ दूर पर पड़ाव डाल रखा था। उससे बाड़े में एक दहशत-सी बैठ गई थी। लोगों ने आपस में ही खूब चर्चा भी की, लेकिन नतीजा नहीं निकाल सके। एक दिन छावनी में हजामत बनाने वाला नाई आया था तो वह भी रौब डाल गया था। कुछ पुरबिया किसान आकर बाड़े में रहने लगे थे। पहले वह पुलिस में थे, फिर निकाल दिए गए थे। तब से पांच मील दूर एक कारखाने जाते थे और अंधेरे में लौटकर आते। चूल्हा चढ़ाते और चौका काढ़ते। दिन में मुंह में अंगूठा डालकर पानी और हरी मिर्च के सहारे ढेर का ढेर सत्तू पेट में उतार देते।

हरदयाल का नया मकान उठने लगा था। अनेक मजूर वहां काम करते और हरदयाल बैठा गिद्ध की तरह सब देखता रहता। ईंट पर ईंट रखने का मतलब उसे खून की बूंदें देने के समान था। घीसा वहीं काम करने आता। हरदयाल का पठानी कर्ज धीरे-धीरे चुकता जा रहा था या वास्तव में द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ता जा रहा था। जब से सुरजन बहरा हुआ वह वहीं काम करता। सुरसुती बच्चा गोद में लिए बैठी-बैठी मिट्टी फोड़ा करती। सुधीर देखता और देखता। उसकी नजर जहां जाकर अटक गई वह स्थल एक स्त्री का शरीर था, जवानी से गदराता। ऊंचा भारी लहंगा, ओढ़नी और नाक-कान से लेकर शरीर के प्रत्येक अंग पर कोई-न-कोई सस्ता गहना। लगभग अठारह-उन्नीस साल की डंक मारती जवानी। जो आता उससे दिल्लगी करता, जो आता छेड़ता और वह सबकी बात सुनकर हंसती, स्वयं चुहल करती और किसी के आंख मारने पर लजाने का अभिनय करती। कठोरहृदय हरदयाल उसे जब मिलता तब डांटता और वह उस बूढ़े की तरफ एक अजीब तरह से देखती कि बूढ़े हरदयाल में भी एक हल्की कंपकपी-सी हो आती और क्षण-भर को वह भी सीना निकालकर बैठता। अन्य मजूरिनें उसे देखकर जलतीं, गालियां देतीं, लेकिन जैसे उसे इन स्त्रियों से कोई दिलचस्पी नहीं थी। जब देखती तब पुरुषों की ओर देखती। बिड़ला-विड़ला की बदनाम जात की वह स्त्री अकाल के कारण मारवाड़ छोड़कर आ गई थी। सुधीर देखता। उसे ऐसा लगता जैसे प्राचीन काल में कोड़ों के जोर पर गुलामों से काम करवाया जाता था।

शाम हो गई। पुरबिया किसान लौटकर खाने-पीने लगे। हरदयाल आज कुछ विचलित हो उठा था। उस बुढ़ापे में भी उसका हृदय कुछ-कुछ-सा करने लगा था। वह

बैठकर भजन करने लगा। जब इससे भी उसका मन नहीं माना तब वह मन्दिर में चला गया।

पुरबिया किसान खा-पीकर आराम से लेट रहे। वे देह के ताकतवर थे। कभी उन्होंने किसी के हाथ का छुआ नहीं खाया। एक बार उन्होंने लच्छो की ओर ललचाई आंखों से देखा भी था, किन्तु लच्छो की निर्भय आंखों को देखकर उनकी दृष्टि पथरा गई और भूमि से टकराकर चूर-चूर हो गई। तब से उन्होंने उसकी ओर कभी भी नहीं देखा।

रात का अंधियारा सनसनाने लगा। इसी समय रामसिंह ने सुना, उधर पेड़ों के पीछे कुछ न होने वाली बात हो रही है। उसने चुपचाप हरीसिंह को जगा दिया। दोनों चुपचाप छिपकर देखने लगे।

हरदयाल खड़ा था। उसकी बगल में मारवाड़िन थी।

मारवाड़िन ने कहा -"मरद का क्या? ऐसे कहके मुकरनेवाले बहुत देखे हैं।"

हरदयाल ने उसकी ओर व्यंग्य से देखकर कहा --"जमाना तो अठन्नी का गुन गा रहा है।"

स्त्री ने निस्संकोच होकर कहा —"बौहरे, अपनी-अपनी सरधा है। तुम्हारे क्या कमी है? भगवान् ने तुम्हें क्या नहीं दिया?"

हरदयाल ने विवश होकर जाल फेंका—"हटा एक रुपया ले ले।"

"वाह बौहरे?" मारवाड़िन ने कहा—"अपने बुढ़ापे को भी देखा है? बन्दर की-सी तो सूरत हो गई है।" हाथ नचाकर बोली—"एक रुपया ले ले! घर की बात समझ रखी है? जाओ-जाओ पांच रुपये लूगी। वे तो अपने जैसे हैं, तुम तो बौहरे हो, समझी? एक बात कैसे हो जाएगी?"

रामसिंह को हंसी आ गई। इससे पहले कि हरीसिंह उसे रोके रामसिंह चिल्ला उठा—"शाबास, बौहरे! खूब हाथ मारा है! बुढ़ापे में पीपल लचक रहा है?"

हरदयाल चौंक उठा। उसने एक बार इधर-उधर देखा और फिर अपनी कोठरी की ओर चल पड़ा। मारवाड़िन फिर अपने तम्बू में सोने चली गई। हरीसिंह और रामसिंह लौट आए। रात-भर इसकी चर्चा रही। प्रायः पूरे बाड़े को बात सुना दी गई। जवान औरतें खूब हंसीं। लोगों को मारवाड़िन के प्रति एक श्रद्धा-सी हो गई। औरत कट्टर है-- करती है तो मन की करती है! कोई फुसला के जबरन कुछ नहीं करा सकता। सुधीर ने भी सुना। और मास्टर साहब को जाकर सुनाया। दोनों खूब हंसे। हरदयाल जब अपनी जगह बैठा उसने देखा मजदूर कुछ कानाफूसी कर रहे थे। आज उन लोगों के चेहरे पर एक कुटिल मुस्कराहट थी। दो-एक जवान छोकरों ने पीछे से आवाज भी कसी, किन्तु हरदयाल ने उनसे कुछ भी नहीं कहा।

दोपहर को जब वे लोग एक किनारे बैठकर रोटी खाने लगे, जब कुछ लोग बहरे सुरजन को छेड़ रहे थे, मारवाड़िन ने रोते हुए प्रवेश किया। सब चौंक उठे। घीसा ने पूछा—"क्यों री, क्या हुआ?"

मारवाड़िन चुप खड़ी रही। मजूर-मजूरिन ने उसे चारों तरफ से घेर लिया।

हरदयाल ने उसे निकाल दिया था और उसकी आधी मजूरी दाब ली थी। हरगोविन्द ने कहा—"तो क्या करेगी तू? मैं भी एक प्रोफेसर का नौकर था। उसकी बीवी ने मुझसे कहा—मेरे पैरों में मालिस कर दे, मेरी साड़ी धो दे; मैंने इन्कार कर दिया। तो उसने मेरी तनखा दाब के मुझे निकाल दिया। मैंने कहा-सुनी करके उस पै कचहरी में दावा किया। मगर क्या नतीजा निकला। ऐसा इन्साफ हुआ कि मैं तो सुन के दंग रह गया। जज ने कहा कि हरगोविन्द पेशे का नौकर है। उसके साथी कमीन हैं। प्रोफेसर इज्जत का आदमी है। वह बारह रुपये के लिए झूठ नहीं बोल सकता। मुकद्दमा खारिज। क्या कही? मुकद्दमा खारिज। सो लल्ली, जो आठ रुपये खरच हुए सो अलग, बीस की बैठी। पूरी रकम थी।"

घीसा ने कहा · "और कोई थोड़ी नही सो भी, जमा समझो पूरी!"

"क्या कर लिया?" हरगोविन्द ने आंख निकालकर पूछा-—"क्या कर लिया? कुछ नही। प्रोफेसर अब भी फल-फूल रहा है। हम हैं कि मेहनत करते है, तुम्हारे बाल-बच्चे यों ही हो रहे हैं यों," उसने उंगली दिखाकर दुबलेपन की ओर इशारा किया और कहता गया—"मगर ये साले हैं कि पान-पान सौ रुपये तनखा पाने वाले गेहूं खा रहे है और तुम बेटा चने की भसको चने की!"

घीसा ने कहा—"तो क्या करेगी?"

मारवाड़िन यह सुनकर हंस दी। बोली—"कहीं चली जाऊंगी और क्या! पेट को नहीं होगा तो यहां क्या करूंगी? देश छोड़ा तो पेट की खातिर ही न? और सब तो राग-झमेला संग बैठे-सोये का है। मुक्ख तो पेट है लाला। जाऊंगी मजूरी करके खाऊंगी।"

सब उदास-से तितर-बितर हो गये। मजूरिनें उसके स्वाभिमान और स्वतंत्र साहस को देखर दंग रह गयी। मजूर उदास हो गये कि वह उनके बीच में एक रौनक थी जिसके चले जाने पर बातचीत का एक केन्द्र ही खो जायगा। मारवाड़िन वहां से चली गयी।

दूसरे दिन अचरज से लोगों ने देखा कि रामसिंह और हरीसिंह की कोठरी में मारवाड़िन सो रही थी। रात भी वह शायद वहीं रही थी। फिर से चर्चा चल पड़ी। अब के बड़ी निंदा हुई। मगर वह बोली—"लाज उसकी जिसकी लाज ढांकने को तन पर बस्तर हो।"

लच्छो को अपने पातिव्रत पर विशेष गर्व था। जब वह महरी से मिली, दोनों ने उसे कुलटा और हरजायी-कुलच्छनी करार दिया। चलते-चलते महरी ने कहा—"भैना, धरम नहीं रहा; नहीं तो मरद किसका नहीं होता? मगर मरद तो एक, और ऐसा जैसा अपना चोला, कि मौत से पहले न छोड़ा जाय···"

उसकी बात की कुद्र थी। उसने चूरा के साथ जिस तरह निभायी थी उसे देख लोग उसे सती मानते थे। कुछ दिन से पन्ना भी इधर-उधर न जाकर मारवाड़िन की

कोठरी के ही चक्कर लगाता फिरता।

शाम को जब पुरबिया लौटते, चौका काढ़ते, चूल्हा सुलगाते, खुद खाते फिर बाकी बचा चौके के बाहर बिठाकर मारवाड़िन को खिलाते। सुबह उनके चले जाने पर जब वह अकेली रह जाती, कोई उससे बात नहीं करता तो वह पन्ना से ही दिल्लगी किया करती। बाड़े के लोग देखते। महरी ने सुना। उस दिन शाम को घमासान हुआ, किन्तु हरीसिंह ने डांटकर कहा—"खबरदार जो चों-चपाट की तो मुंह तोड़ दूंगा, मुंह। लौंडा तो तेरा बदमास है, परायी बहू-बेटी के पीछे डोलेगा तो उसका भला क्या कसूर है ?"

सुनने वाले हंस पड़े। जाने क्यों महरी भी चुप हो गयी। रामसिंह ने पन्ना की गर्दन पकड़कर कहा—"बेटा, जब मुंह का दूध सूख जाय तब इधर आइए। समझा ? समझा कि नही बोल; नहीं तो अभी लाश पटक के मानूंगा बोल !" पन्ना ने सुना और फौरन ही जब पन्ना समझ गया उसने उसे छोड़ दिया। फिर वही कार्यक्रम चलने लगा। धीरे-धीरे मारवाडिन से स्त्रियां मिलने-जुलने लगीं। बिंदिया चाची ने कहा—"तो क्या हुआ ? धोखा हो सही, वेसा तो नही ! जात-पांत तो तब तक है जब तक देश है, जब मां-बाप ने ही छोड़ दिया तो वह क्या करे ?"

बात फैल गयी, जम गयी और बीच के गड्ढे पर पत्थर की पटिया की तरह पड़ गयी। आवागमन सरल हो गया। पुरबियों का धरम चलता रहा। लोगों में रामसिंह उसका पति प्रसिद्ध था, किन्तु वास्तव मे वह द्रौपदी की भांति जीवन बिताये जा रही थी। भेद इतना ही था कि पुराने ऋषि-मुनि तरह दे गये थे; आजकल मास्टर साहब को यह बिल्कुल असह्य था। बड़ी दिलचस्पी से पूरा किस्सा सुनते और अन्त मे कहते—"हटाओ यार, तुम भी क्या गन्दी बातें ले बैठे ?"

सुधीर हमेशा मारवाड़िन की तरफ बोलता। मास्टर साहब विरुद्ध मोर्चा डाटते। एक दिन हरगोविन्द और घीसा के सामने ऐसी ही बातें होती रहीं। शाम तक मशहूर हो गया कि ऊपर का बाबू मारवाड़िन पे फिदा हो गया है। सुधीर ने सुना। पहले तो हंसा और फिर निष्प्रभ-सा कुछ सोचने लगा। मारवाड़िन ने जब सुना तो कोई ध्यान नही दिया। पूछने पर कहा—"ओ तो बाबू है, उसका क्या ?" जैसे बाबू होने के कारण वह कोई पराया था और उसके दायरे के बिल्कुल बाहर था।

धीरे-धीरे कुछ महीने बीत गये। सुबह-शाम पुलिस के पड़ाव के सामने सिपाहियों की कवायद होती। कभी-कभी जमादारों की गन्दी गालियां गूंज उठतीं और फिर से जीवन चलने लगता।

लेकिन एक दिन फिर बाड़े में हलचल मच उठी। हरदयाल बाहर खडा चिल्ला रहा था। मारवाड़िन भीतर पड़ी कराह रही थी। उसकी आंखों में आंसू छा रहे थे। आज उसकी सारी अकड़ खतम हो चुकी थी। सुधीर ने देखा। नीचे उतर आया। पूछने पर हरदयाल ने कहा—"भाग गये वे दोनों बदमाश, इस कुतिया को छोड़ गये हैं।"

सुधीर ने सुना और चुपचाप लौट आया। एक बार जी में आया, जाकर

मारवाड़िन से पूछे तो क्या हुआ ?

घीसा ने कहा—"बाबू भैया, कौन सुख नहीं चाहता ! इसी दिन के लिए पुरखों ने धरम बनाये हैं। अब क्या करेगी ? मरद को क्या, ठोका-पीटा छोड़ गया ! लेकिन यह तो औरत है, किसका नाम होगा ? उनका क्या ? वे तो बदमाश थे—जोखों आयी भाग निकले कि अब बोझा कौन सम्भाले; इसे तो लादी उठानी होगी।"

मारवाड़िन के दोनों में से किसी एक का गर्भ रह गया था। आज वह शर्म से बाहर निकल नही सकी। हरदयाल कुछ देर तक तो देखता रहा। फिर चिल्ला कर बोला—"निकल जा यहां से छिनाल, अब रो रही है ? तब न सूझा था हरामिन, कुतिया ?"

घीसा की मां ने बढ़कर कहा—"लाला, दया करो, गाभिन है ! कहां जायगी ! दो दिन की बात है, माफ कर दो। पेट उतर जायगा तो तुम्हारी चाकरी करेगी···"

हरदयाल चला गया। बूढ़ी अपनी कोठरी को लौट गयी। सब चले गये। केवल मारवाड़िन पड़ी-पड़ी रोती रही। आज उसमें इतना भी साहस न था कि बाहर चली जाय। बाड़े में हरदयाल की दरियादिली की बेइन्तहा तारीफें हो रही थी। ऐसा दिल है तभी तो परमात्मा ने इतना दिया है, नहीं तो किसके पास है ऐसी माया ?

मारवाड़िन जब निकली तब पेट में ऐंठा चल रहा था और चेहरे पर पीलापन हुमक रहा था। वह मां बनने वाली थी—एक और कीड़ा पैदा होने वाला था !

7
छठी यातना : पशु

सामने के मैदान में शोर होने लगा। सूरज डूब रहा था। और एक कोलाहल जो मानो दूर क्षितिज के पार कलरव करती लहरों का मृदु-मृदु कम्पन हो, या बड़े दिन की गिरजे की घंटियों की तुमुल ऊर्मिल प्रतिध्वनि हो और इसी बीच कभी-कभी कोई गीत—जैसे तारा टिमटिमा उठा हो। सुधीर ने ऐसे देखा जैसे वह तूफान में फंसी एक छोटी-सी नाव थी जिसके पतवार खो गये थे किन्तु बही जा रही थी। कंजर डेरे गाड़ रहे थे। उनके पास विश्वासों की कैसी भी पराजय नहीं थी। वे खाते थे, पीते थे, सोते थे और उनकी सत्ता और एक पशु की सत्ता में कोई भेद नहीं था। उनकी जवान स्त्रियां मदमाती डोलतीं, बच्चे नंगे घूमते और पुरुषों के चेहरे की कठोरता देखकर लोग उन्हें बदमाश कहते। कोई-कोई उनमें से तमाशे दिखाता। एक गाना गाता, साथ की जवान लड़की नाचती और ऐसा अश्लील अंग-चालन करती कि बरबस लोगों को बाद में निन्दा करने के लिए रुककर उसे देखना पड़ता।

वे लोग अपना दिन अधिकांश में घूमते हुए निकाल देते। इतनी जोर से बात करते कि देखने वाला समझता लड़ाई हो रही है और लड़ते तो किचकिचा कर झपटते, नाखूनों से नोचते या काट खाते। कभी-कभी उनके हाथों में छुरियां चमक उठतीं। तब दूसरे मर्द कंजर आकर छुरी छीन लेते और फिर अलग जा बैठते। फिर लड़ाई होने

लगती। बहुधा रोटी या औरत के पीछे लड़ाई होती। शाम को ईंटों के बने बराय नाम चूल्हों से धुआं उठने लगता और रात को चिथड़ों के तम्बुओं में वे सब जानवरों की तरह घुस जाते और खांसते-खखारते चिमट-चिमटा कर सो रहते। वासनाओं का नग्न से नग्न रूप उनके लिए एक स्वाभाविक बात थी। एक तरफ तम्बू में मां-बाप सोते रहते, दूसरी तरफ बेटा और बहू।

मोती ने कुछ दिन से कमाल को छोड़कर रामभू कर लिया था। इस पर एक दिन खून-खच्चर होते-होते बचा। दिन में छोटे-छोटे लड़के-लड़की ही नहीं बड़ी-बड़ी जवान लड़कियां राह के किनारे डोलती रहतीं। कोई निकला नहीं कि पीछे हो लीं। उनका घिघियाना, भीख मांगना इतना गन्दा था कि लज्जित होकर राहगीर को उन्हें कुछ-न-कुछ देना ही पड़ता।

एक दिन एक बाबू अपनी पत्नी को लिए जा रहा था। सड़क पर काफी भीड़ थी। मोती उस बाबू के पीछे लग गयी। वह रिरियाने लगी—"बाबू, तेरी जूती चाटूं! ऐ बाबू, तेरी बहू के गोरे गालों पै काले तिल की कसम! तेरा घर फूले-फले! तेरे बच्चे बड़े हों..."

'गोरे गालों पै काले तिल' का वर्णन सुनकर राहगीर मुड़-मुड़कर देखने लगे। बाबू को लाचार होकर पैसा देना पड़ा।

दूसरे दिन ही पास में किसी रईस के घर चोरी हो गयी। दारोगाजी ने फौरन कंजरों के चारों तरफ घेरा डाल दिया। उन्होंने देखा, कंजरियां बड़ी कटीली थीं। उनका जी आ गया। कानून था कि ऐसे लोगों को संदेह पर भी गिरफ्तार किया जा सकता है क्योंकि यह होते ही चोर हैं। इन पर मुकद्दमा चलाने की भी कोई आवश्यकता नहीं होती। न्याय उनकी ओर था। जितने भी जवान कंजर थे वे सब गिरफ्तार कर लिये गये। औरतें देखती रहीं, बच्चे सहम गये। रोया-धोया कोई नहीं। उन्हें यह सब देखने की आदत थी। उनके पुरुष अक्सर गिरफ्तार कर लिये जाते थे। जब तक वे छूटकर न आते, तम्बू गड़े रहते। उनके आने पर तुरन्त वह स्थान छोड़ दिया जाता।

सुधीर अपने कमरे से यह सब चुपचाप देखा करता। बाड़े में सब उनसे नफरत करते थे। पुलिस चली गयी। थोड़ी देर तक मैदान में एक दमघोट सन्नाटा छाया रहा; किन्तु उसके बाद फिर वही हलचल होने लगी।

मोती ने पुकार कर कहा—"ओ री सुहैल, सुनती है? अब तो कोई मरद नहीं रहा।"

सुहैल ने ठहाका मार कर कहा—"बुड्ढे तो हैं ही।" मोती भी हंस पड़ी। बूढ़ी कामनी भी आ गयी। कामनी ने कहा—"ओहो, दो दिन मरद नहीं रहा तो परान सूख गये! बेटी, अब तो यह लड़के कुछ नही करते। हमारे मरद तो दिन-दहाड़े लूट लेते थे।"

मोती ने आंखें मिचका कर कहा—"तू भी तो तब जवान थी।"

काकी हंस दी।

दो-तीन दिन बाद ही बूढ़े सुबह के गये बहुत रात हुए लौटते। वे चोरी करने में असमर्थ थे क्योंकि उनमें अब फुर्ती नहीं बची थी। अब जो कमाई होती वह अलग-अलग न रखी जाकर सामाजिक संपत्ति होती। किन्तु फिर भी पूरा न पड़ता।

मोती ने सुहैल को बुला कर कहा—"इस देश के मरद कैसे हैं? किसी में दम ही नहीं लगता?"

सुहैल ने कहा—"उधर सिपाही रहते हैं। मुझे बुलाते थे। दूर से रुपया दिखाया था। मैं डर के मारे न गयी।"

मोती ने कहा—"हत्तेरी की! रुपया दिखाया था?"

सुहैल ने कहा—"मगर दे ही देगा इसकी क्या पक्की है। वह तो पूरी छावनी है। मारेंगे तो?"

"ओहो," मोती ने कहा—"मारेंगे ऐसे ही? चल, संझा को चलेगी?"

सुहैल ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। धीरे-धीरे सिपाही इधर ही आने लगे। अब फिर मस्ती छाने लगी। दिन-रात मैदान में नाच-गाने हुआ करते। रात में अब बूढ़े भी शायद जान-जानकर काफी देर से लौटते। अब वे पैसे बचा कर नहीं लाते। जो पाते हैं, वहीं शराब पीते हैं और जब लौटते हैं तो बूढ़े-बुढ़ियों में दंगा होता है। जवान लड़कियां देख-देखकर हंसते-हंसते लोटपोट हो जाती हैं।

बूढ़ी श्यामा कानी हो गयी थी। उसका आदमी देखने में बिलकुल भयानक पशु-सा लगता था। जब दोनों मत्त होकर नाचने लगते बच्चों की टोली हर्षित होकर ताली बजाने लगती।

शाम हो गयी। मोती और सुहैल राह के किनारे बैठे बातें कर रही थीं। अब थोड़ी ही देर में सिपाही आने लग जायेंगे। सारी-की-मारी कंजरियां तम्बुओं में तैयार हो रही थीं। उनकी तैयारी कोई प्रसाधन नहीं था। मन की चाह-मात्र थी। उसी समय सुधीर उधर से निकला। मोती ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया। सुहैल ने पल भर को देखा और फिर दौड़कर दूसरा हाथ पकड़ लिया।

सुधीर बोला—"क्या है, क्या है?" उसको परेशान देखकर उनकी हिम्मत और भी बढ़ गयी। मोती ने कहा—"बाबू! एक अठन्नी दे जा! ऐ बाबू तेरा पैर धोऊं! ऐ बाबू तेरा···"

सुधीर भीख मांगने के इस नये तरीके पर स्तब्ध रह गया। उसने जेब में हाथ डाला। केवल एक इकन्नी थी। उसने दोनों की ओर देखा, दोनों में से यौवन की गंध आ रही थी। देखने से ही लगता था कि यह स्त्रियां केवल इसीलिये हैं कि इनसे कोई ऐसी ही वासनात्मक बात की जाय। न जाने कितने नेगों के संकोच ने उसके हृदय को जकड़ लिया। उसने अपने को छुड़ाते हुए इकन्नी फेंक दी। सुहैल ने झुक कर उठा ली। किन्तु मोती ने कहा—"ऐ बाबू मुझे! मुझे भी कुछ दे जा!"

सुधीर ने कहा—"एक को दे दी। अब मुझे-तुझे क्या?"

मोती एक बार ठुमका मार कर हंस दी। उसने अपनी आंख मिचका दी। कोई

देख न ले इस संकोच से सुधीर पानी-पानी होकर लाज में गड़ गया। सुहैल ठहाका मार कर हंस दी।

सुधीर ने कमरे में आकर जब उस तरफ झांका, उसने देखा उसकी इकन्नी झुक कर उठाने वाली स्त्री अपने भारी लहंगे को नीचे से दो जगह पकड़े उसे फैलाये हुए खड़ी थी। लहंगा नीचे से चांद की तरह गोल फैल गया था और पर्दा बनाने का प्रयत्न कर रहा था। फिर भी अपर्याप्त था। पीछे की झाड़ी के पीछे दो स्त्री के पैर थे और दो बड़े-बड़े सिपाहियों के बूट पहने।

सुधीर ने देखा और घृणा और अपमान से विक्षुब्ध होकर भीतर लौट गया। वे वास्तव में बिल्कुल पशु थे। उसका हृदय इसे देखकर उद्विग्न-सा एक बार भीतर-ही-भीतर हाहाकार कर उठा। कुछ ही दूर पीछे कुछ लड़कियां नाच रही थीं। उनका गीत आसमान में भंवर मारता कांप रहा था। किन्तु नारी का यह मोल देखकर उसकी अंतरात्मा में शूल-सा चुभने लगा। जिनके न लज्जा थी, न संकोच, न पवित्रता, न अन्य ही कोई भाव—वे पशु नहीं तो क्या हैं? किन्तु न जाने कहां से सुधीर के मन में एक करुणा जाग उठी। उसने कहा—वे पशु हैं क्योंकि वे अशिक्षित हैं, दरिद्र हैं और संसार उनकी मजबूरियों को लूटता रहा है और सुधीर उदास हो गया।

8

दिन में ही घने बादल छा गये। लच्छो ने देखकर बाहर धूप में फैले गेहूं उठाकर भीतर टाट बिछा लिया और बैठकर बीनने लगी। रामचंद को बुखार था। वह चुपचाप खोल ओढ़कर पड़ा था। मारवाड़िन दर्द से कराह रही थी। घीसा की मां उसके पास बैठी थी।

मास्टर साहब बादलों को देख-देखकर मगन हो रहे थे। सुधीर चुपचाप बैठा था।

दोपहर ढले नन्ही-नन्ही फुहारें आने लगीं। पेड़-पत्ते, जमीन-आसमान सब धीरे-धीरे भीगने लगे। दूर कंजर गीत गा रहे थे। उनके बूढ़े उठ-उठकर तम्बुओं में चले गये। युवतियों का गीत प्रबल और चुभीला बनकर आसमान में गूंज रहा था।

चिड़ियां चहचहाती हुई घोंसलों को लौट चलीं। हवा सनसनाने लगी। हरदयाल एक बने हुए कमरे में बैठा काम देख रहा था। मजदूर काम पर से हटने लगे। उसने गरजकर कहा --"किये जाओ काम। खबरदार जो हाथ हटाया है। मुफ्त की मजूरी नहीं मिलेगी। ऐसी क्या कोई बाढ़ आ गयी है?"

घीसा फिर काम करने लगा। हरगोविन्द तथा अन्य सब भी फिर काम में लग गये, किन्तु पानी का वेग बढ़ता गया। मुंह पर बौछार पड़ने लगी। तमाम बदन भीग गया। तब वे लोग भागकर अपनी-अपनी कोठरियों में आ गये। हरदयाल छतरी लगाये अपनी कोठरी में जा घुसा। पानी बरसता रहा। उस भयानक वर्षा में आसपास के घर गिरने लगे।

थोड़ी देर को पानी रुक गया। किन्तु फिर जब वह बरसने लगा तो एकधार। रात बीत गई, दूसरा दिन भी बीत गया। तीसरे दिन सब लोगों के दिल-बैठने लगे। घरों में खाने का सामान खत्म हो गया था। बाहर जाने की कोई राह न थी। पानी बरस रहा था, एकधार।

आज उन दलितों को अपनी-अपनी चीजों से मोह हो रहा था। वर्षा का पानी धीरे-धीरे बढ़ता देखकर उनका हृदय स्तब्ध हो रहा था। बिंदिया अपने दोनों बच्चों का मुंह देख-देखकर कांप उठती थी। महरी ने पन्ना को खींचकर अपने पास कर लिया और रोते हुए बोल उठी—"पन्ना बेटा, अब क्या होगा ?" किन्तु उसने कुछ नहीं कहा।

सुधीर तीन दिन से दफ्तर नहीं जा सका था। मास्टर बार-बार कहता था—"सुधीर बाबू, हेडमास्टर तो कहेगा हमें कुछ नहीं मालूम। नहीं आना था तो इत्तला क्यों न दी ?"

सुधीर सुनता और चुप हो रहता। नीचे की मंज़िल-भर में शायद दो-एक चूल्हे जल सके थे। सारे कंडे और लकड़ियां गीली हो गयी थीं। बाहर मैदान के तम्बू हवा से तितर-बितर होकर उड़ गये थे। कंजर उन्हें खींच-खींचकर फिर घर बनाने का प्रयत्न करते थे; किन्तु आंधी में उनका सब कुछ उड़ा जा रहा था।

चारों तरफ पानी भर गया था। पानी की भयंकर बाढ़ अट्टहास करती हुई सिर पर गरज रही थी। बच्चे रो रहे थे, औरतें सिसक रही थीं। जिस समय नरक के प्राणी आकाश की शरण में जा रहे थे उस समय भगवान अप्सराओं को गोद में लिए आसव पी रहा था और उसके न्यायदण्ड को लेकर लक्ष्मी नंगी नाच रही थी। इसके बाद ऊपर की मंज़िल से धीमा-सा संगीत पानी के गर्जन में हिलोरें भर उठा। सुधीर लुटा-सा, गमगीन-सा देखता रहा। उसका हृदय खोया-सा, सकपकाया-सा बिल्कुल चुप था। जब नीचे की मंज़िल में पानी भरने लगा, दौड़-दौड़कर नीचे से लोग ऊपर जाने लगे। जंगल में आग लग गयी थी। शेरनी और बकरी साथ-साथ आ खड़े हुए थे। औरतें अपनी छाती खोलकर बच्चों के मुंह से लगा-लगा देती थीं, किन्तु बच्चे दूध पीते हैं, खून नहीं। मुहर्रम के धर्मान्ध मुसलमान जैसे हा-हा करके छाती पीटते है उससे भी भयानक स्वर मच रहा था। तमाम काम बन्द था। जीवन की सत्ता बनाये रखने वाले निर्जीव दकियानूसी प्राणी आज उदास और पराजित-से बैठे थे।

आसमान में बादल भीषण गर्जन कर रहे थे, ऐसा गर्जन कि नवोढा जिसे सुनकर थर्रा उठती है।

इतने में ऊपर की मंज़िल से एक जबर्दस्त ठहाका लगा। न जाने वह किस रईस का अभिमान था कि नाचने वालों की पायल बजती ही चली गयी। उस ठहाके की प्रतिध्वनि आसपास सब कहीं गूंज उठी। सुधीर ने सुना, जैसे रोम जल रहा था और नीरो अपने 'फिडिल' पर लगातार अपनी उंगलियों को चला-चलाकर अट्टहास कर रहा था। जैसे चंगेज लाखों के सिर काटकर तलवारों की झनझनाहट में उन्माद से हंस रहा हो। पानी की भीषण ठोकरों और बादलों की गरज ने उस ठहाके को बीभत्स बना दिया। बादलों के रुई-से बदन पर बिजलियों के कोड़े पड़ रहे थे और वह भयंकर स्वर

से आर्त्तनाद कर उठते थे।

सुधीर ने देखा, जिन्दगी का घर डूब रहा था किन्तु वे सर्वहारा अब भी नहीं मरे थे। उसने देखा, कंजरों की बस्ती बह गयी थी और वे सब इधर ही भागे आ रहे थे। आज उनके पास कुछ भी नहीं था। कल तक जो टूटे-फूटे तम्बू थे वह भी अब नहीं रहे। अनेक दिनों के भूखे वे कंजर कुत्तों के झुण्ड की तरह इधर ही भागे आ रहे थे। उनकी इस भगदड़ ने सबको शंकित कर दिया। लोगों ने दौड़-दौड़कर उनके पथ में बाधा उपस्थित करने को दरवाजे लगा दिये।

कंजर और कंजरियां कुछ देर पानी में इधर-उधर भागते रहे। जब उन्हें कोई जगह नहीं मिली वे ऊपर चढ़ने को भागे। भीषण वर्षा में कई फिसल गये और गिरकर कराहने लगे, किन्तु फिर भी उन लोगों के लिए किसी ने भी द्वार नहीं खोला। वे वहीं पानी में भीगते हुए खड़े रहे। उनके छोटे-छोटे बच्चे पेड़ों के नीचे तनों को पकड़े खड़े थे। हवा में उनके दांत बज-बज उठते थे। पानी घुटने-घुटने बह रहा था। औरतों के कपड़े भीगकर उनके शरीर से चिपक गये थे। वे प्रायः नंगी-सी प्रतीत हो रही थीं। बूढ़ों को कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था। वे पानी में खड़े केवल चिल्ला रहे थे। आकाश में कभी-कभी बिजली [illegible] उठती थी जिसको सुनकर कंजरियां आर्त्त स्वर से चिल्ला उठती थीं और बच्चों की तरफ दौड़तीं किन्तु ठोकर खा-खाकर गिर जाती थीं।

और तब ही अचानक कोठरी में हरदयाल अपने रुपये गिनने लगा। सुधीर ने सुना, रुपये का महानाद खन-खन करके गूंज उठा। यह रुपया नहीं था, गरीबों की हड्डियां कड़कड़ा रही थीं, यह रुपये की आवाज नहीं थी, यह पोम्पिआई की सल्तनत लुढ़क रही थी। यह खनखन की मधुर तान नहीं थी, यह मौत के घण्टे का ढन-ढन शब्द तुमुल कोलाहल कर रहा था। आदमी के जीवन का कोई मोल नहीं था। यह रुपया नहीं था, यह जीते-जागते आदमी का कफन था। यह दौलत नहीं थी, यह खोखली पीठवाली उभरी छाती थी। यह मां नहीं थी, यह सरे बाजार जोबन बेचने वाली हरजाई थी।

किन्तु वे असहाय थे। उनके सामने इस भीषण समुद्र में कोई ध्रुव तारा नहीं था। वे ऐसे भयभीत और बेजबान थे जैसे दुनिया के शुरू के वन-मानव खोहों और पहाड़ों में विशालकाय मोटी खालवाले अजदहे को देखकर चट्टानों में दुबकते थे और वह उनकी तरफ हुंकार-गरज कर दुम फटकारता बढ़ा आता था।

कंजरों ने सुना। एकाएक उनके सामने बिजली-सी कौंध उठी। पानी निरन्तर भरता जा रहा था। बच्चे तो प्रायः डूबने लगे थे। वे लोग एक साथ हरदयाल की कोठरी की ओर टूट पड़े। ऊपर से बाड़े के लोग देखते रहे। ऊंची-ऊंची मंजिल वालों ने भी घबराकर इधर ही देखना शुरू किया। किसी का भी साहस नहीं हुआ कि बाहर आए।

कंजरों ने बल करके दरवाजे को तोड़ दिया और उन्होंने हरदयाल का रुपया ऐसे लूट लिया जैसे वारेन हेस्टिग्स ने बेगमों की लुटी हुई इज्जत को लूटा था, जैसे करोड़ों भूखे हिन्दुस्तानियों ने अंगरेजों के न्याय को लूट लिया है।

लूटकर वे लोग भाग चले। घायल हरदयाल पड़ा छटपटा रहा था। बाहर तूफान गरज रहा था। भीषण हवा की प्रतिध्वनि हो रही थी—सूं···सां···

कुछ नहीं

27 मौनी गली
कूचा लाला माधोलाल

प्रिय प्रकाश,

तुम्हारा पत्र आया। और यह भी समझ लिया कि भाभी से तुम्हारी बिल्कुल नहीं पटती। लेकिन यह भी समझ में नहीं आता कि विवाह का आखिर मतलब क्या है? कहने को तो तुम बहुत कुछ कह जाओगे और मैं बिना दिलचस्पी लिये भी सुनूंगा ही, लेकिन बात इतने ही से सुलझने से रही। विवाह की कहानियां यदि कोई सुनाने बैठ जाय तो भूतों की कहानियां भी इतनी अच्छी नहीं लगेंगी। कुंवारी लड़कियों का लड़कों से प्रेम, प्रेम को ही सब कुछ समझने का पागलपन या पति-पत्नी का सम्बन्ध, न जाने कितनी उल्टी-सीधी बातें हैं; और जो कहीं छिपा-चोरी किसी की पत्नी या किसी के पति का सम्बन्ध हो तो भला क्या कहने? एक पूरा चिट्ठा ही समझो।

लेकिन हाल में एक घटना हो गयी है। हिन्दू धर्म खतरे में पड़ गया है। मेरी राय में बेचारा हिन्दू धर्म तो क्या, दुनिया का कोई धर्म नहीं जो इस हरकत से लड़खड़ा न उठा हो। मेरी नजर में बात एक मामूली-सी है। फिर भी तुम्हारे जीवन में नया कोण उपस्थित हो सके इसकी सम्भावना से ही तुम्हें लिख रहा हूं। तुम जानते हो मैं लड़कियों को कोई अजीब चीज समझने से हमेशा ही इन्कार करता रहा हूं।

परसों मैं शाम को घूमने जा रहा था। राह में देखा, एक औरत खड़ी रो रही थी। देखने में वह किसी क्लर्क की पत्नी लगती थी। और थी भी वह सचमुच ही वही जो मैंने सोचा था। मैं रुक गया। लोगों से पूछने पर पता लगा कि उसका पति उसे रोज मारता है और घर से निकालना चाहता है। इसलिए वह उसे पागल करार देना चाहता है। स्त्री कहती थी वह बदमाश है, झूठा है। सचमुच स्त्री उन्माद में थी। शकल की बुरी, रंग की काली, और तुर्रा यह कि वह गर्भवती भी थी। सोच सकते हो कितनी भद्दी होगी? खैर हम कुछ लोग मिलकर उसके पति के पास गये। पति एक क्लर्क था। हमने जाकर दरवाजा खटखटाया।

स्त्री को देखकर मुझे यही विस्मय हुआ कि वह कितनी उन्मत्त थी। देखने में उसका कामातुर रूप वास्तव में असन्तुष्ट-सा हाहाकार कर रहा था। पुरुष का शरीर

उसके मूल्य का मापदण्ड नहीं होता। नारी का अपना शरीर ही इस समाज में एकमात्र सहायक है। सौन्दर्य और वासना का मेल ही यह संसार सह सकता है। वह स्त्री जो विवाह के बन्धन में पति को सब कुछ अर्पित कर देती है उसका आधार ठोस और भौतिक है। कल्पना की सुन्दरियों से प्रेम करने वाले अपने नैतिक व्यभिचार को छिपाने के लिए ही संसार को माया कहते हैं। स्त्री की वह अतृप्ति ही कदाचित् उसके नारीत्व का एक सत्य था जिसे वह खोलने में झेंपती हुई अपने पति के यहां दासीत्व का अपना अधिकार माँग रही थी। हमारा समाज उसे वह भी नहीं दे सकता क्योंकि उसके पास कुछ भी नहीं है। वह स्वयं कंगाल है किन्तु उसे अपनी दुर्गन्ध पर ही भीषण अभिमान है।

सामने खड़खड़ हुई। उसके पति ने दरवाजा खोलकर हम लोगों को बिठा लिया और अंग्रेजी में बातचीत करने लगा। औरत इस पर क्रोध से पागल होकर ऊलजलूल बकने लगी कि मैं तेरा खून पी जाऊंगी। मैं तुझे जान से मार डालूंगी। तू कमा-कमा के रंडियों का पेट भरता है तभी मुझे निकालना चाहता है। मैं तेरा भंडा फोड़ दूंगी। आदि-आदि। पति ने सुना और मुस्कराकर मुझसे अंग्रेजी में कहा—"आपने सुना ? क्या यह औरत आपको पागल नहीं लगती ?"

तुम बताओ प्रकाश, मैं क्या जवाब देता ? न मैं पति को जानता था न पत्नी को। पति की तरफ से बोलता तो सब कहते मर्द कुछ करे कोई कुछ नहीं कहता, और स्त्री की तरफ से उठता तो पच्चीस उंगलियां उठतीं कि औरत मिली और झट उसके साथ हो लिए। जैसे उसका पति कुछ है ही नहीं !

उस रात स्त्री ने अपने आपको उसकी दया पर पलने वाली भिखारिणी कहने में जो संकोच किया उसे देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि नारी भी नर की भांति ही अपना स्वाभिमान रख सकती है। युगान्तर से जो उसे पुरुष की छाया बना दिया गया है उससे वह अपना अस्तित्व, अपनी मर्यादा भूल गयी है। यह तो जीवन का कोई कार्यवान रूप नहीं कि दोनों का एक-दूसरे की उपेक्षा करना ही उनकी सत्ता की पूरी परख है। मैं जानता हूं यह संघर्ष केवल इसलिए है कि विश्वासों का अहाता ऐसी गलत जगहों से बांधा गया है जिसने तारतम्य और सामंजस्य को जगह-जगह अनुचित रूप से काट दिया है। किन्तु जिसके पास लागत नहीं है वह कभी नया घर नहीं बना सकता। परन्तु इतिहास ने कभी पांव को रोका नहीं।

लड़-झगड़कर अन्त में स्त्री ने एक कोठरी बन्द करके भीतर से ताला लगा लिया क्योंकि उसे भय था कहीं सबके चले जाने पर वह उसे फिर मारे नहीं। भीतर से वह गालियां देती रही और पति ने मुस्कराकर कहा—"आपकी सेवाओं के लिए धन्यवाद ! मैं तो उसे निकालता नहीं। जब उसे छिर्द उठती है तब भाग जाती है, आपने अच्छा किया कि मेरी पत्नी फिर मुझे सौंप दी।"

मुझे उसकी आकृति पर कुटिल रेखा सरकती दिखाई दी। मैं लौट आया। उस रात भर स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का घोर विवेचन जीवन में इतनी तन्मयता से मैंने पहली बार किया।

दूसरे दिन घर लौटते समय एक अजीब बात फिर देखी। तुम्हें याद होगा अमरनाथ एक अधेड़ आदमी है। सब उसका मजाक उड़ाते थे कि अभी तक उसका ब्याह ही नहीं हो सका था। योरप में क्वांरा रहना एक गर्व की बात समझी जाती थी। हमारे देश में स्त्रियां उसे आदमी नहीं समझतीं जिसके कोई पत्नी न हो। पुरुष जब तक स्त्री को अपने अधिकार में नहीं रख सकता, स्त्रियां उन पर हंसती हैं। जंगली पशु को जंजीरों से बांधकर ही पालतू बनाया जाता है। हमारे देश में एक समझदार वर्ग भी है, जिस वर्ग के सदस्य सिर झुकाकर, हार कर समझौता करने को सदैव तत्पर रहते हैं। उन्होंने देखा है कि जिन आधारों पर वे खड़े हैं वह केवल अपनी सत्ता-मात्र रखता है। यदि उसमें परिवर्तन किया जा सकता है तो वह चित्र ही मिट जाता है जिसका रूप अभी तक वे अपने मस्तिष्क में चरम सत्य के रूप में ग्रहण किए हुए हैं। जब तक मनुष्य समाज को रिश्वत नहीं देता तब तक उसे भीख का अधिकार भी नहीं मिलता। अब संसार कहता है उसके क्या नहीं हुआ। पारसाल उसकी शादी हो गई। मुहल्ले में एक लड़की थी, करीब सोलह-सत्रह वर्ष की। एक उसके छोटा भाई था। मां-बाप मर चुके थे। चाचा ने पाला था। चाची कर्कशा थी। बचपन में ही लड़की भूखी रखी गई। किसी ने उसकी चिन्ता नहीं की। मुहल्ले के आवारे लड़कों ने उसे पहले से भांप रखा था। इधर वह चौदह की हुई नहीं कि यारों ने उसके सामने मिठाई के दोने सजा दिए। आज तक की जितनी सतियों की कहानियां मिलती हैं उनमें वे स्त्रियां या तो राजघराने की थीं या पूज्य ब्राह्मणों की रिश्तेदार। कभी तुमने बचपन से ही गरीब और अपमानित लड़की को भी सती होते सुना है? हुआ वही जो होना था। लड़की का तो इस तरह पेट मजे के भरने लगा। बात धीरे-धीरे मुहल्ले में फैल गई। चाचा झक मारते रह गए, कल तक भतीजी को भूखा मारने में जिनकी आत्मा ने तनिक भी कसक नहीं खाई आज उनकी मांस की नाक के मौजूद रहते भी इज्जतवाली नाक कट गई। यह नाक तब नहीं कटी जब अफसरों के सामने उन्होंने उसे रगड़ दिया। इसलिए कि यदि वह यही नहीं करते तो उनका पेट कैसे भरता। पेट है तो उन्हीं का है। लड़की को उसे भरने के लिए कोई भी अधिकार वे नहीं दे सकते। देश की स्वतन्त्रता बेचकर वे अपना ईमान बनाए रखना चाहते हैं। कहां है ऐसी पददलित नारकीय सत्ता का न्याय? कहां है मनुष्यता का अपना महेजा परम्परा का दुलार? कुछ नहीं, केवल पराजय, झूठ, एक दूसरे को धोखा देने की छलना। गंदले पानी में रहने वाले मेढ़क क्या जानें कि पानी का स्वच्छ प्रवाह क्या है? आंख खुले से मुंदे तक जिनका जीवन एक वास्तविकता को दूर रखने का पाखंड है वे दीवाल तोड़कर खिड़की क्या बनायेंगे? और लड़की तन भी नहीं बेच सकती? उनकी स्त्री ने और किया ही क्या है? एक दासीमात्र ही तो है वह! वही चाची भी शर्मा कर चुप हो गई। लेकिन लड़की को तो ब्याहना था। क्या जाने किस दिन चाचा नवासे का मुंह देखते और जमाई का पता नहीं चलता। उन्हीं दिनों अमरनाथ दिल्ली से आगरे आया था। चार साल बाद जब वह लौटा तो चाचा ने उससे दोस्ती की। हमउम्र थे, कुछ देर भी नहीं लगी। घर ले गए। लड़की दिखायी। वह बेचारा पसन्द-नापसन्द क्या करता? उसे तो क्वांरपन तो मिटाना था। तैयार हो गया। शादी हो गई।

मुहल्ले के लोगों ने उसे खूब भड़काया भी मगर वह यही समझता रहा कि मुझे क्वांरा बनाए रखने के लिए बदमाशों ने गिरोह बांधकर षड्यन्त्र रचा है।

विवाह के समय वह पैंतालीस साल का था। बाल सफेद होने लगे थे, बल्कि महाशय आगे से गंजे भी थे। शरीर की गठन लटक गई थी। बीवी सोलह-एक की जिसका यौवन इतना लुटकर भी अगणित रत्नों से भरे कोष के समान था। समय अपने हाथों से जिसे लूट रहा हो, उसे मनुष्य, यह निर्बल जन्तु, क्या छीन सकेगा? पुरुष अपने को स्वामी बनाकर भी जब अपनी प्राकृतिक वासना से उसके सामने घिघियाता है तब उससे बढ़कर कौन-सा प्राणी है जिसे तुम घृणित समझ सकने का असंभव काम कर सकते हो?

आज वह सोलह वर्ष की लड़की अपनी जवानी से संतुलन नहीं कर सकती। दान का पशु बंधा रहने को है जैसे कोई गाय। जब मालिक की मर्जी हुई गाभिन करा ली अन्यथा कुछ नहीं का यह अभिशाप हमारे संस्कारों का सबसे बड़ा मोल है। गर्म-गर्म वासनाओं पर ठंडा पानी डालकर उससे कहा गया है कि भाप नहीं निकलनी चाहिए क्योंकि भाफ में शक्ति होती है जो इस्पात को फाड़कर बाहर निकल जाती है।

और लड़की चुपचाप सब मानकर अपने कर्मों को पाप समझकर ग्लानि से दबी जाती थी। मुहल्ले का हर लड़का उसे देखकर किचकिचाता था और अब वह सबके सामने आंखें झुकाती थी। उसका छोटा भाई फिर भी सड़क पर मारा-मारा घूमता था और किसी ने दो पैसे दिए नहीं कि वह उसी का खत बहिन के हाथ पर रख देता। बहिन पीटती, वह रो देता और फिर सड़क पर भाग आता। छोटा-सा बच्चा है, सात-आठ साल का।

मुहल्ले में गज्जू नाम आज से नहीं सात साल से मशहूर गुण्डों में लिया जाता है। उसने उस लड़की को कहीं भी देखा नहीं कि बकना शुरू कर दिया। अब भूल गई है महारानी? कल तक तो हमने नहीं देखा तो खांस-खांस के बुलाया करती थी!

वह सुनती और सर झुकाए चली जाती। शादी के पहले उसको दो प्रेमियों को लड़ा देने में खास मजा आता था। किसी भी धर्म के हिसाब से वह पाप था। क्योंकि धर्म का आधार नारी की शारीरिक पवित्रता है। यह पवित्रता वास्तव में पुरुष का कुटुम्ब बनाए रखने का बीजमन्त्र है। जब स्त्री उच्छृंखल हो उठती है तब शृंखलाएं तड़तड़ाकर चटक जाती हैं। किन्तु जहाज जब समुद्र में अकेला चल निकलता है तब उसे पानी की अधिक शक्ति सहनी पड़ती है। मैं उन लोगों को भी जानता हूं जो कहते हैं कि नारी ने आराम से रहने के लिए पुरुष को इतने अधिकार दिए हैं। हिन्दुस्तानियों ने भी आराम से रहने के लिए ब्रिटिश साम्राज्य पर इतना भार छोड़ दिया है। सभ्यता सिखाने की आड़ बनाने वाले यह अंधकार के प्रेत वास्तव में एक दूसरे का गला घोंट सकते हैं, क्योंकि उनमें उनके स्वार्थ लिप्त रहते हैं। और कुछ नहीं। वह कुछ नहीं मुझे पागल बना रही है क्योंकि शून्य पर टकटकी लगाकर साधना करने के व्यक्तिगत मोक्ष से मैं घृणा करने लगा हूं। धार्मिक रूप और नीति से सती बनी रहने के लिए उसे जीवित रहने का कोई साधन ही न था। मैं पूछता हूं क्या जवानी बेचना पाप है या कुत्ते की तरह निरीह खा-पीकर मर

जाना ? तुम कहोगे रूखा-सूखा खा कर और पवित्र रहना ही मनुष्य का सर्वोच्च आचरण है। लेकिन जो ऐसा उपदेश देते हैं वे न भूख की व्यथा जानते हैं न यही समझते हैं कि सुख की जो अनुचित प्रेरणा होती है उसमें, उचित साधनों से प्राप्त आनन्द से, कहीं अधिक बल और उत्तेजना होती है।

और कल वही गज्जो वहीं कहीं ताक लगाए बैठा रहा होगा। लड़की घर में अकेली थी। अमरनाथ कहीं गया था। जबर्दस्ती गज्जो उसके घर में घुस गया और उसे दबाने लगा। पहले तो लड़की मना करती रही, लेकिन बाद को जब वह यह धमकी देने लगा कि तमाम पुराना किस्सा खोल देगा तो वह कांप गई। समझती थी कि अमरनाथ को कुछ भी नहीं मालूम। अब उसे शोक होता : क्यों दुख सहकर भी उसने इस चादर को, कोरा न रखा ? हिन्दू समाज में बहुत-सी जवान विधवा नहीं होती ? यदि अगर अमरनाथ जान जाएगा तब वह क्या करेगा ? वह उसे घर से लात मारकर निकाल देगा। और समार कहेगा ठीक है। ठीक तो शायद वह स्वयं कहेगी। परम्परा का मैल क्या शीघ्र ही जा सकता है ?

आज यदि वह पवित्र बनने का प्रयत्न भी करे तो उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं होगा। सारे पाप धुल सकते हैं, एक यही पाप नहीं धुल सकता। यद्यपि इसका पीछे कोई चिह्न तक नहीं रहता। क्षण-भर का वह शारीरिक आनन्द ही जिसकी चरम अभि-व्यक्ति है वह आत्मा का पाप कैसे हो सकता है।

गज्जो ने धमकी दी कि वह उसकी पहली पोलों का काला चिट्ठा सबके सामने छपवा कर बंटवा देगा। वह झुक गई। गज्जो के दोस्तों को मालूम था ही। इस जलन में कि गज्जो फिर गोता मारकर मोती निकाल लाया उन्होंने बाहर से कुण्डी चढ़ा दी। हाल के हाल में मुहल्ले वाले बिरादरी वालों की भीड़ इकट्ठी हो गई।

परसों वाला क्लर्क भी आ गया। आखिर दरवाजा खोला गया। गज्जो निकला। अब क्या था ? घर-घर खबर बिजली की तरह फैल गई। औरतों के झुंड के झुंड आने लगे। क्लर्क साहब ने आगे बढ़कर उस लड़की का अपराध सबके सामने खोल दिया। क्लर्क साहब का चरित्र अच्छा समझा जाता था। इसी समय अमरनाथ भी लौट आया। उसने भी सुना और क्रोध से पागल हो उठा। तीर की तरह भीतर घुसा, जैसे जान से मार डालेगा। मगर भीतर घुसकर देखा तो चुप रह गया। लड़की निस्सहाय-सी बैठी थी। अमरनाथ ठिठक गया। उसने देखा जैसे वह लड़की बिजली से चोट खाकर स्तब्ध-सी सुन्न पड़ गई थी। एक बार उसने अपनी ओर देखा, एक बार उसकी ओर। मुहल्ला बाहर इकट्ठा हो गया था, जैसे इससे बढ़कर स्त्री के लिए कोई पाप नहीं हो सकता।

हमारा पाप-पुण्य परखने का नैतिक ज्ञान इतना कलुषित और संकुचित हो गया है कि एक स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्ध पर ही धर्म की दीवार खड़ी करते हैं। अमरनाथ को एक-एक कर याद आया। मुहल्ले की चार भाभियां एक बार जब वह क्वांरा था तब उसकी क्या न थीं ? और आज भी कोई गज्जो से कुछ नहीं कहता ! फिर इस लड़की ने ही ऐसा क्या अपराध किया है ? आखिर बचपन में ऐसी भूल कौन नहीं करता ?

उसने देखा, वह फूट-फूटकर रो रही थी। उसने उससे कुछ भी नहीं कहा। जाने क्यों उसका मन पसीज उठा। इतने दिनों में वह उस लड़की के बारे में सब कुछ सुन चुका था। घृणा के स्थान पर उसे सदा उस पर करुणा ही आई।

बाहर लोगों ने तय किया कि अमरनाथ को अगर बिरादरी में रहना हो तो वह उस लड़की को घर से निकाल दे। अमरनाथ बाहर आया और उसको देखकर क्लर्क साहब ने घोषणा को दुहरा दिया। मुन्नू की बूढ़ी बूआ है न, उसका कथन वेद-वाक्य की तरह स्त्रियों में चलता है। उसने सीधे-सीधे शब्दों में अमरनाथ से इन्हीं शर्तों को दुहरा दिया। लेकिन अमरनाथ ने थोड़ी देर तक कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उसने सिर उठाकर देखा। लोगों के मुख पर घृणा, तिरस्कार और विक्षोभ के चिह्न थे। वह तनिक भी विचलित नहीं हुआ। इतनी बड़ी बात उस पर ऐसे फिसल गई जैसे चिकने घड़े पर से पानी। आज उस पर अधिकारी होने का दायित्व था। उसकी बुद्धि पर एक लड़की का जीवन था। क्या उसका मान एक स्त्री के वेश्या होने पर जीवित रह सकेगा? जब वह गर्मी और सूजाक में तड़प-तड़प कर जान देगी उस समय किस मुख से वह स्वर्ग की सीढ़ी पर चढ़ सकेगा? संसार की कोई स्त्री उससे विवाह करने को तत्पर न थी। वह एक फंस गई ही-सी, जो उस पर आश्रित है उसे वह कुचल दे क्योंकि उसे इसका अधिकार मिल गया है?

सामने क्लर्क खड़ा था। अमरनाथ जानता था कि इस लम्पट के भीतर का विष ही ऊपर पुण्य के ये झाग बरसा रहा है। इन घड़ों के मुंह इतने संकरे हैं कि भीतर हाथ देकर अच्छी तरह इन्हें मांजा भी नहीं जा सकता। और वह खड़ा रहा जैसे कुछ नहीं हुआ। उसने कहा—"जो हो गया सो हो गया। अब अपने-अपने घर जाइये।"

"नहीं," बुआ गरजी, "तुझे उस कुलटा को निकालना पड़ेगा। ऐसी भी लुगाई की क्या गुलामी?"

किन्तु अमरनाथ ने कड़ककर कहा—"जाओ, जाओ, घर जाओ अपने, समझीं! जब तुमने मुझ बूढ़े से इसकी शादी कराई थी तब वह जायज़ था? और अब इस छोटी-सी गलती पर इसे मैं निकाल दूं तो इसका क्या होगा? दर-दर मारी-मारी न फिरेगी? जाओ, जाओ! वह मेरी बहू है, किसी का क्या लेन-देन है?"

इस पर सबने दांतों से जीभ काट ली। मगर क्लर्क साहब बोल उठे—"चलो ठीक है। तुम बूढ़े हो, तुम्हें तो रसोईदारिन चाहिए थी, सो मिल गई। बीवी की सब इच्छाएं पूरी करने के लिए तुमने ब्याह ही किया था!"

पाप की यह पुकार एक षड्यन्त्र है। इसमें हमारा खोखलापन सारे आदर्शों को ठोकर मार कर नंगा नाचने लगता है। आए कोई और अपनी प्रशस्ति के रक्त लिखित गीत सुनाए। आज मानव का सम्पूर्ण पतन हो गया है। इस वेदी पर नरबलि के अतिरिक्त किसी को भी प्रशंसा नहीं की जा सकती।

अमरनाथ ने सुना और भीतर-ही-भीतर वह लज्जा से सिकुड़ गया। जिस पौरुष पर बच्चा पैदा-भर करने को गर्व करके भारतीय डींग मारते हैं, उसका आजकल एक-मात्र उपयोग समझते हैं, वह भी उससे छीन लिया गया था। जिसके बल पर नारी मुंह

खाई-सी भालू की तरह उसके पीछे दौड़ती है, उस पर ही इस क्लर्क ने घोर प्रहार किया था।

सामने यह एक विचित्र व्यक्ति था जो पाप को घर में देखकर भी उसे पालकर बढ़ा रहा था जैसे उस लड़की ने कुछ नहीं किया।

जन-समाज ठठाकर हंस पड़ा। लोग अपने-अपने घर जाने लगे। उनकी इच्छाएं पूरी नहीं हुई। शाम तक सबके मुंह पर यही बात रही। भगवान् राम तक यह नहीं कर सके थे। भीष्म पितामह तक के पुरुषार्थ को शिशुपाल ने नपुंसकता कहा था।

तुम क्या सोचते हो? इस दाम्पत्य जीवन का प्रेम कहां है? यदि प्रेम दया है अथवा बांट-तौल है तो वह न रहस्य है न कोई अद्भुत कल्पना। क्या अमरनाथ बनना कठिन है या क्लर्क साहब? मैं तो दोनों को ही कोई बड़ी बात नहीं समझता। हमारे पास कुछ है ही नहीं जिससे हम मन बहलायें अत: यही एक चक्कर है जिसमें निरंतर दौड़ते हैं, मगर बाहर नहीं निकल पाते और अपनी ही पगध्वनि से डर कर बार-बार मूर्छित हो जाते हैं।

लिखते-लिखते थक गया हूं, फिर कभी लिखूंगा। भाभी से नमस्ते कहना। मेरी राय है तुम पहले प्रेम न करके कैदियों की तरह ही सही, साथ-साथ रहने लायक समझौत कर लो, वर्ना छोड़छाड़ दोगे तो जानते ही हो क्या होगा! प्रेम तो एक लाचारी का मसविदा है। अब नहीं है तो कल हो जाएगा और कुछ नहीं है तो वही करना होगा। थोड़े दिन बाद तुम्हारे अनुसार प्रेम की नई परिभाषाएं बन जाएंगी।

शेष सब कुशल है। एक बात अवश्य है। कैसा भी माननीय समझौता हो वह परोक्ष रूप में होना पराजय ही है। उत्तर देना।

तुम्हारा ही
सोमनाथ

['47 से पूर्व]

देवोत्थान

भोर हुई, जागरण हुआ। नन्दन वन में सुरभित ममीर अलमाकर गूंज उठा। मादक परिमल की हिलोर से स्निग्ध प्रकाश झिलमिला रहा था। शतदल शय्या पर इंद्राणी अंगड़ाई भर उठी। महमा उन युगों की शान्ति को घरघराहट की भीषण ध्वनि ने तोड़ दिया। चौंककर मेनका उठ बैठी। इन्द्राणी ने उसकी ओर देखा और भयभीत-मी दोनों इन्द्र के वक्ष से चिपक गई।

"देव, वृत्र आ रहा है।"

देवराज ठठाकर हंस पड़े। बोले, "देवी, यह वृत्र नहीं, बर्बर फासिस्टों के वायुयान द्यावा के वक्षस्थल को चीरकर गरज रहे हैं।"

"ओह," प्राणों को धैर्य ने आश्वामन दिया। सिंहद्वार पर दुन्दुभी बजने लगी। गन्धर्वों ने वीणा के तारों पर उंगलियां फेरीं। वही अजस्र विलास का महानद उमड़ पड़ा।

इन्द्र ने वज्र को उठाते हुए कहा--"देवी, एक दिन यह वज्र अभेद्य था, पर न जाने मानव ने इससे भी अभेद्य अस्त्रों का आविष्कार कैसे कर लिया। यह त्याग का वरदान आज न जाने मुझे जीवन से इतनी दूर कैसे खींच लाया ?"

दो काली छायाएं आकर इन्द्र के चरणों पर लोट गई।

एक ने कहा--"देव, मैं अभी तक आपके शासन का प्रतिनिधित्व कर रहा था।"

दूमरे ने कहा--"देव, मैं आर्थिक रूप से इसकी सहायता कर रहा था।"

उर्वशी मुसकराई। उसने पूछा--"तुम कौन हो, इतने जर्जर ?"

एक ने कहा--"मैं अन्धविश्वास हूं। अपनी-अपनी कमर में डोर बांधकर दूसरा छोर मानव-विश्व में बांधकर यहां तक उड़कर आए हैं।"

दूसरे न कहा--"देव, मैं साम्राज्यवाद हूं। जर्जर विक्षत हो गया हूं। अब रहा नहीं जाता। मेरी रक्षा करिए। मेरे अन्त के साथ आपका भी तो नाश है।"

इन्द्राणी बोल उठीं--"किन्तु तुमने हमारे नाम पर शोषण और अत्याचार क्यों किया ?"

साम्राज्यवाद पुकार उठा--"देव, यह मानव तो अब पुरानी लीकों को बिल्कुल छोड़ देना चाहता है। महाराजाधिराज, इन अनीश्वरवादी राक्षसों को समाप्त क्यों नहीं कर दिया जाता ?"

वरुण ने दौड़कर यम से कहा—"चलिए वहां कुछ लोगों को दण्ड दीजिए।"

यम ने कहा—"मगर यह तो कलियुग है! मेरी शक्ति तो क्षीण हो गई है। क्या करूं, गुस्सा तो बहुत आता है। रुद्र से कहो न कि वे ध्वंस करें?"

देवताओं ने समवेत स्वर से आवाहन किया--"हे मृत्युञ्जय, नृत्य करो!"

महारुद्र ने चरण उठाया, किन्तु युद्ध की भीषणता से कांपती पृथ्वी पर उनका चरण कांप गया। पार्वती दौड़कर उनके गले से लग गई। बोलीं-"रहने दो। तुम्हीं एक भोलेभाले मिल जाते हो सबको! यह क्या, पांव लहूलुहान हो गया?"

रक्त से पांव लाल था।

यम ने कहा—"यह तो मृत्युलोक में मानव का बहा हुआ रक्त है!"

सरस्वती बोली—"ओह, मेरी वीणा का नाद कोई नही सुनता!"

स्वर्ग में कोलाहल मच उठा। 'त्राहि माम्! त्राहि माम्!' के स्वर से इन्द्र भी विक्षुब्ध हो गए।

उनके मुख से सहसा निकल गया—"यह क्या?"

"देव!" चीत्कार हुआ। स्वर्ग पृथ्वी से दूर हो चला है।

अन्धविश्वास और साम्राज्यवाद क्रोध और भय से कांपने लगे।

वे बोले—"महाराजाधिराज, कोई इस डोरी के मानव-विश्व से बंधे छोर को काट रहा है।"

"लौट जाओ! लौट जाओ!!" इन्द्राणी चिल्लाई।

इन्द्र ने कहा—"चलो मैं पहुंचा आता हूं।" वरुण और सूर्य्य भी साथ चले। इन्द्र ने एक जर्मन वायुयान में बैठने के लिए बुलाया; किन्तु उसी समय रूस के ऐन्टी-एयरक्रैफ्ट गन के वार से वह हवाई जहाज गिरकर जलने लगा। वरुण कांप उठे। बोले, "बाल-बाल बचे! अरे! इन्द्र, कहां आ गए? कमबख्त लड़ते है, लड़ने दो! कौन अपना नुकसान हो रहा है? पूजा के समय खाने आ जाएंगे! चलो।"

इन्द्र ने कहा—"नहीं सूर्य्य, तपो, तपो! कि यह अनीश्वरवादी भस्म हो जाएं! सूर्य्य लाचारी के स्वर में बोल उठे—"क्या बताऊं? आप कहेंगे कि पौरुष नही रहा। मगर सृष्टि का नियम ही ऐसा है कि मैं दिन पर दिन ठण्डा हुआ जा रहा हू और उधर रूस की बर्फ पर मेरा कुछ असर भी नही होता।"

"यह कौन मंत्रोच्चारण कर रहे है?" इन्द्र ने पूछा।

साम्राज्यवाद ने कहा--"आर्य्यपुत्र हिटलर और सूर्य्यपुत्र जापान पूजा कर रहे हैं।"

"और यह क्या है?" वरुण ने पूछा। साम्राज्यवाद ने खिसिया कर कहा—"श्रीमान्, यह स्तालिनग्राद है। नाक रगड़ कर मर गया, मगर इसे नहीं जीत पाया। यहां लोक-शक्ति इतनी प्रबल है! समझ के परे की-सी बात है। मुझे कभी-कभी संदेह होता है कि आप तो कहीं इन्हें सहायता नहीं दे रहे।

"अजी राम भजो भाई साम्राज्यवाद!" इन्द्र ने कहा—"यह क्या कर रहे हो?

देवताओं पर अविश्वास ? तब तो तुम्हारा नाश अवश्यम्भावी है।"

"मेरे साथ आपके साम्राज्य का भी तो नाश है।"

यह सुनकर इंद्र असमंजस में पड़ गए। वरुण ने इधर-उधर देखा। सहसा वह पुकार उठा—"इन्द्र, वह देखो स्वर्ग कितना धुंधला, संकुचित और क्षीण होकर न जाने कहां दूर उड़ता चला जा रहा है ?"

इन्द्र ने देखा।

वरुण ने फिर कहा—"अब अपना स्वर्ग संभालिएगा कि यह पृथ्वी ?"

इन्द्र ने कहा—"चलो।"

इन्द्र और वरुण उड़ चले। सूर्य्य ने रथ को बढ़ाया। साम्राज्यवाद चीख उठा—"मौके पर दगा दे रहे हो ?"

दूर से आवाज आई—"बाज़ आए तुम्हारी दुनिया से ?"

साम्राज्यवाद पुकार उठा—"मैं लुट गया !"

देवताओं का क्षीण उत्तर सुनाई पड़ा—"मानव-जनशक्ति अपार है।"

साम्राज्यवाद ने रोर उठाई—"यह सिंहासन, यह महल, यह मदिरा, यह अप्सरा..."

शब्द हवा मे तैर उठे—"किसान-मजदूरों से मुंह कौन लगे !"

साम्राज्यवाद गरज उठा—"मेरी रक्षा करो..."

प्रतिध्वनि वायु में विलीन हो गई—"हमें अपनी इज्ज़त प्यारी है। आज से तुम्हारी दुनिया से नाता ही टूट गया..."

अन्धविश्वास अब तक चुप था। अब सूर्य्य से बोल उठा—"कहां जा रहे हो ? सुनो तो।"

सूर्य्य ने कहा—"प्रातः-सन्ध्या मैं जिस भारत भूमि से अर्घ्य पाता हू उसका क्या हाल है ?"

साम्राज्यवाद किटकिटाकर बोला—"वह गुलामी मे जकड़ी है। भूख, हत्या, बलात्कार और नंगापन मेरा साम्राज्य चला रहे हैं।"

सूर्य्य ने विस्मित होकर पूछा—"भीम और अर्जुन के देश मे ?"

साम्राज्यवाद ने कहा—"वे तो मर गए। अब वहां आपसे भी अधिक मेरा राज्य है।"

सूर्य्य ने रथ बढ़ाते-बढ़ाते पूछा—"यह कब हुआ ?"

अन्धविश्वास ने कहा—"तब देवता सो रहे थे।"

सूर्य्य ने कहा—"तो क्या चाहते हो ?"

"जापान और जर्मनी का नाश। और गुप्त रूप से चाहते है कि रूस भी अधिक न बढ़ने पाए।"

सूर्य्य बोला—"यह क्या ? कहते हो कि बराबरी के लिए, धर्म के लिए, मानवता के लिए लड़ते हैं, और हिन्दुस्तान को आजाद नहीं करते ? यह कैसी स्वार्थ और अन्ध-

कार-भरी बात है ?"

साम्राज्यवाद बोल उठा—"हां, तुम भी चले जाओ। जब तक जान रहेगी तब तक गुलामी को रखेंगे..."

एक हंसिया नीचे से आकर अन्धविश्वास के लगा। वह गिर गया। सहसा नीचे से भीषण गरज उठी। उस हुंकार से साम्राज्यवाद कांप उठा।

सूर्य्य ने दूर से पूछा—"यह क्या हुआ ?"

"हिन्दुस्तान में एका हो गया। अब कहां बचूं ? उन्होंने गुलामी की ज़ंजीरों को तोड़ दिया है।"

पृथ्वी से भीषण जनगान-ध्वनि उठ रही थी--

हम मज़लूमों की मेहनत से
था स्वर्ग बना साम्राज्य बना,
है आज लिया बदला हमने
ऐ झंडे लाल सलाम तुझे।

साम्राज्यवाद के पैर लड़खड़ाए और वह मूर्छित हो कर गिर गया। आकाश-झंडा फहर-फहर पूछ उठा—'सुना करते थे यहां कोई स्वर्ग था ? कहां है वह स्वर्ग ? पृथ्वी से भी अच्छा वह स्वर्ग कहां है ?'

('47 से पूर्व)

मुर्दे

डूबते सूर्य की किरणें नदी पर फिसल रही थीं। पानी के भीतर से प्रकाश पीला होकर बाहर फूटने का प्रयत्न कर रहा था। चारों ओर निस्तब्धता छायी थी। केवल कुत्तों के भूंकने से कभी-कभी सन्नाटे की पर्तें हटती थी, चटक जाती थीं और फिर काली काई की तरह आ जुड़ती थीं। मरघट की उस वीभत्स छाया में न जाने किस-किसकी चिता जल रही थी।

बाबा की चरन पादुका के चौतरे पर अब कोई न था। थोड़ी देर पहले ही वहां कुछ बाबू लोग बैठे थे। उनके मुख पर उदासी थी, संसार के प्रति विरक्ति, जैसे इस संसार में कुछ न हो। और वह चिता भी अब ठंडी हो चली थी जिसकी लपटों के कारण बीस-बीस हाथ दूर बैठना दुश्वार हो गया था।

चारपाई पर बैठा हुआ मनीराम खांस उठा। वह बूढ़ा है, शरीर पर गेरुए वस्त्र हैं, बायें हाथ में लोहे का एक कड़ा, दायें हाथ में माला। शरीर काफी बलिष्ठ लगता है।

"बाबू," मनीराम की आवाज गूंज उठी—"सहर गया था ?"

"गया था न ?" बाबू हाथ में गिलास लिये पानी पीते-पीते बाहर निकल आया।

"तो।" वृद्ध का स्वर फिर गूंजा। बाबू एक जवान आदमी है, हल्की मूंछें हैं, कोई चिन्ता न करता-सा वहीं बैठकर गिलास औंधा दिया और बोल उठा—"नौकरी नहीं की जाती जैसे तुम कहते हो।"

"क्यों," वृद्ध ने रूखे स्वर से कहा—"रोटियां लग गई हैं बेटा। नहीं की जाती। और यहां मुर्दों में आग नहीं दी जाती। तो खाओगे क्या ?"

"मैं घर छोड़ दूंगा।" बाबू ने छोटा सा उत्तर दिया। वृद्ध ठठाकर हंस पड़ा और फिर उदास-सा हाथ की माला फिराने लगा। बाबू उठकर चला गया। यह रोज की बात थी। किसी ने इसे महत्वपूर्ण नहीं समझा।

2

बाबू थोड़ी देर तक इधर-उधर घूमता रहा और फिर विश्रांत-सा लौट आया। कोठरी में घुस गया और दो रोटी हाथ पर निकाल लाया। चुपचाप खाने लगा।

बूढ़े मनीराम ने सिर फेर कर कहा—"बाबू !"

"क्या है।" बाबू ने कर्कश स्वर में उत्तर दिया। जैसे वह बात नहीं करना चाहता था।

मनीराम ने कोई चिन्ता नहीं की। वह कहता गया—"क्यों रे! दो घण्टे पहले वह एक बच्चा गाड़ गये थे, उसका रेशम का जरीदार दुपट्टा निकाल लिया ?"

बाबू ने कुछ नहीं कहा। रोटी वहीं धर दी। जाकर फावड़े से खोदने लगा। कीचड़ में से चीत्कार की सी ध्वनि आयी और कुछ ही देर में बाबू के हाथ में वह महीन रेशमी दुपट्टा चमक उठा। पल भर वह उस बच्चे की लाश को देखता रहा, और न जाने क्यों एक बार काप उठा। फिर निगाह हटा ली और साहस करके गड्ढा ढक दिया। बेचारा मुर्दा! उसे क्या खबर। क्या उसका, क्या पराया। वह तो कुछ कह नहीं सकता।

बाबू ने विषाक्त नयनों से देखते हुए दुपट्टा मनीराम पर फेंक दिया। मनीराम हंसा और बोल उठा—"बेटा। एक दिन मैंने तुझे ऐसे ही अनाथ के रूप में पाया था, तभी मे पाल लिया।" और उसने कुछ नहीं कहा। बाबू यह बात कई बार सुन चुका था। उसकी सांस चल रही थी, वह गड़ा हुआ न था, तभी तो पाल लिया वर्ना यह कभी···

और श्रद्धा घृणा से लड़ती, पिता का अस्तित्व अकर्मण्यता से संघर्ष करता···

बाबू और अधिक विक्षुब्ध हो उठता था। बूढ़ी भिखारिन कुछ गुनगुनाती हुई एक झाड़ी से निकली और आकर पहले पेड़ के नीचे बैठ गयी। उसके चारों तरफ कटीले तार खिंचे थे, कोई उन्हें पार करके उसके पास तक जाना नहीं चाहता था। या जा नहीं पाता था।

बाबू को शहर की याद आने लगी। क्यों न लौट जाये वह शहर। जब पेट का ही सवाल है तो क्या अपना भी पेट न भर सकेगा। यहां जिंदगी क्या है। एक चिता की तरह सदा भभकता हुआ दिल और फिर राख, जिसे उठा कर बहती हुई नदी में छोड़ देना है. कोई चिह्न नहीं, कोई नतीजा नहीं। बुड्ढे ने जमाना देखा है, जब कुछ बल नहीं रहा तब, आकर मरघट में खाट डाली है और कैसा कठोर दिल है,···अधजली लाश नीचे पड़ी है, मगर मजाल है कि दो लक्कड़ भी धर देने दे। कहता है—"बेटा उतरा मुंह देखकर खैरात करेगा तो तेरे पास क्या बचेगा। इस दुनिया में हंसने वाले तो इने-गिने मिलेंगे। वरना सारी दुनिया में रोते चेहरे ही दिखेंगे जो हंसेंगे भी तो लगेगा, कि खिसिया रहे हों! हंसेंगे कैसे बेटा। हंसने के लिये दाम चाहिये दाम। अगर मैं ही सरकार को दाम न दूं तो समझता है कि ठेका मिल जायेगा मुझे ?"

बाबू माधुन के पास जाकर बैठ गया। उसको पास आया देखकर माधुन ने उसे एक भद्दी गाली दी और हंस दी। बाबू मन ही मन सकपका गया, फिर भी हटा नहीं, कहा—"माई! इतने दिन हो गये लेकिन कभी हम पर तेरी दया नहीं हुई।"

माधुन ने फिर गाली दी और उसकी बाकी आवाज एक बधिर घरघराहट में डूब गयी। जैसे नदी में भंवर पड़ते हैं, उनमें से असंख्य स्वर उठते हैं किन्तु उनका मनुष्य के

लिये कोई उपयोग नहीं होता। माधुन प्रायः अधेड़ थी। उसके बाद वहां असह्य नीरवता छा गयी। उसने कुछ नहीं कहा। बैठा-बैठा बाबू ऊब गया। आकाश के उदास नक्षत्र निरन्तर उसी की ओर देख रहे थे, किन्तु बाबू ने कभी उस ओर किसी संलाप के लिये दृष्टि नहीं उठायी। माधुन शांत थी, ऐसी जैसे पास के टाल में लक्कड़ पड़े थे।

बाबू को याद आया, वह बचपन से उसे यहीं देख रहा है। ऐसे ही, ऐसे ही, हां, अब वह बूढ़ी हो गयी है, तब अधेड़ प्रायः थी। तब वह बहुत हंसती थी, तब उसके पास ज्यादा लोगों की भीड़ आया करती थी, जिनमें अधिकांश तांगेवाले होते थे या इधर-उधर के ऐसे ही काम करने वाले लोग। खूब दौने लाते थे, सामने रख जाते थे और कई तो रात को यहीं पड़े रहते थे। कहते हैं माधुन कोई बाल-विधवा थी। सब कुछ चला गया तो पागल सी हो गयी थी। तभी से भगवान के चरणों में चित्त लग गया और आज तक वैसे ही चल रही है। पहले हंसती थी अब गाली अधिक देती है···

बाबू चौंक उठा। साधुन की कर्कश आवाज उसके कानों को फाड़ उठी—"हट, भंगी, डोम नहीं तो! दूर हट!"

बाबू भय से पीछे हट गया। अपमान का यह अनादृत स्वर सुनकर केले के पत्ते की भांति उसका हृदय हिल उठा। यह एक स्थिर प्रायः वस्तु उस चलती-फिरती सशक्त वस्तु का तिरस्कार कर रही थी और वह भी मरघट में जहां सब बराबर थे, जहां कल ही शहर का इतना बड़ा सेठ रमिया चमारिन की पास की चिता की बगल में पड़ा-पड़ा चुपचाप जल गया था। बाबू का ध्यान टूटा, देखा—कछार के नीचे की तरफ रोज की तरह अल सुबह आकर वही कुछ नावें रुक गयी थीं और लोग सिर पर बड़ी-बड़ी डलियों में बड़े-बड़े काशीफल लेकर उतर रहे थे। वे ऐसे ही हर नयी ऋतु में नये फल या साग-भाजी लेकर पास के गांव में उतरते हैं और सामान खरीद कर लौटते हैं। एक बार बाबू ने पूछा था- "मरघट के अलावा तुम्हें कोई रास्ता नहीं है?"

तो एक ने कहा था—"क्यों इस रास्ते ने क्या बिगाड़ा है? एक ये ही है जहां गांव के सबसे पास इस किनारे पर आबादी है?"

"आबादी!" बाबू का विकार हंस पड़ा। मरघट में भी जो आबादी है, मनुष्य उसी के लिये व्याकुल है।

और आज कोई बूढ़ा कह रहा था—"हमने तो कह दी, बेटी का ब्याह करना आसान नहीं है, जो तुम खेल समझ रहे हो। हमने न कही, बिरादरी के पचास जीभ हैं तो सौ कान हैं···"

"देख के दादा, देख के··· ।" दूसरा स्वर उठा—"बचा के, हां, देखो वहीं वह अधजली लाश पड़ी है···"

बूढ़ा रुक गया, बोल उठा—"छूट के भी नहीं छूटा, मिट्टी भी किनारे न लगी। कोई गरीब रहा होगा। मिट्टी भी नहीं सिमटी······"

जवान ने फिर कहा—"दानी सेठों ने यहां लकड़ी मुफ्त कर दी है-सुनते हैं···"

बाबू का हृदय झनझना उठा—"अब उसकी कौन गत सुधारनी है। जीते-जी

सुख नहीं मिला, मर कर जला न जला, परलोक सुधरेगा ?"

एक व्याकुल भूखी हंसी उसके होंठों पर तड़प उठी। और नावें लौट गयीं। फल और सब्जी वाले चले गये थे।

3

पौ फटने में अभी प्राय: दो घंटे की देर थी। आसमान में तारे बिखरे हुए थे जिनकी छलना में पृथ्वी पर यह मरघट अत्यन्त शक्तिमान प्रतीत होता था। अंधकार में दो-एक चिताएं दीपक की तरह जल रही थीं। बाबू खाट पर पड़ा ऊंघ रहा था। एकाएक दूर से आवाज आयी—"माधो आये वृन्दावन, सबको आना वृन्दावन।" मुर्दा लाये हैं कोई, और घाट पर से अब दिशा बदल ली है। बाबू उठ बैठा।

थोड़ी ही देर में कुछ मजदूरों ने आकर रेत पर एक अर्थी धर दी और टाल से सामान जुटाने लगे।

बाबू अर्थी से दूर खड़ा रहा, फिर न जाने क्यों सिहर उठा। जाकर चिता सजाने लगा।

"क्यों मुकुन्दा, ठीक रहेगा यह लक्कड़ ?"

"उधर रखना सिर के नीचे।"

"कलुआ काका सब ठीक कर देंगे।"

"तो जरा एक डुबकी तो दिला ला रे बुधुआ।" कलुआ ने कहा। देखते ही देखते चिता धधक उठी और सबके चेहरों पर लपटों का उजाला तैरने लगा। बीड़ी का बण्डल हाथों पर चलने लगा।

सबके चेहरे पर उदासी के अतिरिक्त एक ग्लानि भी थी। बाबू ने स्वाभाविक स्वर में पूछा—"कौन था ? कैसे मर गया ?"

बुधुआ ने अनजाने ही कहा—"इसका हाथ गट्टे से कट गया।"

"हाथ कट गया ?" बाबू की आवाज भर्रा गयी, "कैसे कट गया ?"

"मशीन के बीच में आ गया, कट गया।" कलुआ की आवाज में उसकी उदासीनता झलक आयी, पूरी मजूरी मिलती नहीं। जोश में आ गया था लौंडा, तभी चटक गया।"

बुधुआ को एक छींक आयी।

"क्यों बे ?" कलुआ का स्वर गूंजा—"नवाबों के से नखरे।" और मुड़ कर कहा—"लड़ाई का जोश चढ़ गया था। कहता था हम मजूर न हों तो लड़ाई न चले। बस, चपेट में मारा गया। कौन नहीं मरता ? मगर बीवी है, एक लौंडिया भी छोड़ गया है वह।"

और कलुआ ने सिर हिलाया जैसे यह भी खूब रही। बाबू ने देखा और बोल उठा—"तो कुछ हरजाना मिला ?"

"मिलेगा कहते हैं।" बुधुआ ने धीरे से कहा। और झांक कर कहा—"लग

गयी ? क्यों भीतर पहुंच गयी ?"

मुकुन्दा ने झांक कर आग को देखा—उसके मुख पर एक सूखी मुस्कान फैल गयी। धीरे से हंसा और कहा—"उससे कोई बचा है ?"

फिर सब चुप बैठे रहे। चिता की आग धू-धू करके जल रही थी।

"हवा तो खूब चल रही है।" मुकुन्दा ने न जाने किससे कहा। हवा लपटों में फरफरा रही थी, आस-पास उजाला फैला हुआ था। चौतरे पर लंगोटी लगाये वही पतला-दुबला बाबा बैठा था। उसके मुंह पर सन्तोष था। त्रिशूल पास ही गड़ा था। सामने ही हड्डी का कपालकुण्डल रखा था और झाड़ी के पीछे वही साधुन बैठी थी।

बाबू सुनता रहा। हृदय में कुछ कचोट रहा था। उसने धीरे से बुधुआ से कहा—"तो सच, बेमौत मारा गया।"

"नहीं जी।" बुधुआ ने अलग से कहा—"जरा देरी होगी मगर हरजाना लेके रहेंगे। कोई दिल्लगी है। अब वे जमाने गये। हम क्या दबने वाले हैं ? कौन जायदाद खड़ी है जो छिनेगी ? पेट भरने की लड़ाई है। पेट भी नहीं भरेगा तो जीते ही क्यों हैं। दबता तो मुर्दा है।"

कलुआ ने भी सुना। और उसके स्वर में एक तिक्त घृणा गूंज उठी—"नही देगा तो माले के कन्धों पर सिर तो रहेगा, मगर 'मील' नहीं चलेगी। आज इसके बखत चुप रह जायेंगे तो कल हमारी बारी न आयेगी ? जीते है तो केवल मेहनत से, हराम का नहीं खाते कि हमारे मरने-जीने मे फरक ही न हो।"

उसके शब्दों का गर्व बाबू के हृदय पर बज उठा। अपमान के प्रति उसमें विक्षोभ था, शक्ति के प्रति एक जागरण। और बाबा चिता की आग की ओर ठण्डी आंखों से देखे जा रहा था, जैसे फिर भी उसमें कोई गर्मी न थी, कोई हलचल न थी।

"वह भी कोई आदमी है" मुकुन्दा ने कहा—"जो रोते बखत दूसरे के काम न आया, अरे भीख मांग कर तो हम पेट नही भरते।"

बाबू के मन में एक तीखा बाण जा चुभा। क्या करता है वह यहां। दिनभर बाबा और उसी साधुन की खुशामद, चाकरी, कि वह कुछ बता दें, कि उसे एकदम रुपया मिल जाये, घृणा से मन सिहर उठा।

नीचे एक अधजली लाश पड़ी है, और क्षणभर को उसे लगा, जैसे बाबा भी एक मुर्दा हो, एक मुर्दा जिसमें छाल के अतिरिक्त और कुछ नही, जिसे खाने-पीने के सिवाय और कुछ नहीं, दुनिया की रफ्तार जिसके लिये नहीं रही, जो सुख-दुख से परे हो गया है, यानी जिसके भीतर आदमी का दिल नही रहा है, जिसके जीने और मरने में कोई फर्क नही रहा है।

एकाएक कलुआ ने चौंक कर कहा—"भोर हो चली, उठोगे नहीं। काम पर भी तो चलना है।"

सब उठ गये। रात एक पल आंख नहीं लगी थी सब चलने लगे। एक बार बुधुआ ने रुक कर पलट कर देखा। कलुआ जैसे समझ गया। बोला—"वहां क्या है

अब, जो रुक गया बेटा ?"

बुधुआ चल दिया। हृदय भारी था। कैसे मुंह दिखेगा अब उसकी बहू का। बाबू देखता रहा। उसने देखा अब वे फिर जिन्दों की दुनिया की ओर लौट रहे थे।

4

बूढ़े मनीराम ने जोर से आवाज दी—"बाबू !" कोई उत्तर नही मिला। बूढ़ा फिर चिल्लाया। जब कोई भी नहीं बोला तो झल्ला कर उठा और बाबा के पास जाकर चिल्ला उठा— "कहां भेज दिया है तुमने मेरे बेटे को ?"

लेकिन बाबा समाधि में लगे थे। वह उस आवाज को नही सुन सके। उसकी दुनियादारी के दुःख का स्वर उन तक नहीं पहुंच सका और जली और अधजली लाशों की तरह ही उन्होंने भी कोई उत्तर नहीं दिया···

['47 से पूर्व]

'पिसनहारी

भोर के सूनेपन में बुढ़िया खांसने लगी। उसका नाम किसी समय जमुना था, किन्तु आज समय ने उसे बिल्कुल भुला दिया था। अपनी मड़ैया की छान की ओर उसने एक बार धुंधली आंखों से देखा और फिर बल लगा कर उठ बैठी। हवा सनसना रही थी, और उस धुंधले अन्धकार में जब आकाश का एकाकी शुक्र दमक रहा था, चक्की चलने की घरर-घरर गूंज उठी। स्वभाव के अनुसार ही वह गाने लगी और उसका वह भग्न स्वर ऐसे फूट निकला जैसे वह शव के ऊपर रही हो, और उसका वह आर्तनाद आकाश में गूंज रहा हो।

सारा गांव उसे जानता है। सब उसे आज 'डोकरी' के नाम से पुकारते हैं। सुहागिनें उसका मुख सुबह उठ कर देखना बुरा मानती हैं। कोई उसे नहीं छेड़ता, क्योंकि वह सबको मनमाने सुनाती है, किसी से नहीं डरती।

जब कभी मैं इस गांव में आता हूं तब इस बुढ़िया को देखकर मेरे हृदय में अद्भुत विचार उठने लगते हैं। नानगा ने मुझसे कहा था कि बुढ़िया कभी भीख नहीं लेती, तीन आने रोज कमा लेती है। एक बार नानगा ने कहा—"क्यों डोकरी, और बूढ़ी हो जायगी तो क्या करेगी?"

बुढ़िया ने हंसकर कहा—"मर जाऊंगी।"

उस उत्तर की कठोरता को नानगा सह सकने में असमर्थ हो कर लौट आया, और बुढ़िया पीसती और बीच-बीच में गाती रही। उसके इतने बच्चे हो चुके हैं कि वह दूर से अवश्य स्त्री प्रतीत होती है, किन्तु उसमें मनुष्य देह के अतिरिक्त और कुछ भी शेष नहीं है, कभी-कभी जब उसका वह भावहीन शुष्क मुख देख लेता हूं तब हड्डी तक कांप उठती है।

जब मुरली, मनोहर और मन्सुखा फौज में भाग गये तब जमुना ने एक कान से सुना, दूसरे कान से निकाल दिया। सचमुच उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा—जैसे आये वैसे ही चले गये। बासु ने सुख नहीं दिया, मां होकर वह भी उन्हें सुख से नहीं पाल सकी। जेल गये, फौज में गये—कितनी अच्छी है सरकार यह, कुछ न मिले आ जाओ; भूखे तो नहीं मरोगे।

नानगा ने सुना तो तुरन्त आकर कहा—"अरी डोकरी, कुछ सुना ?"

जमुना ने स्वीकार करके सिर हिलाया और कहा—"भगवान सबकी सुनता है भइया, मरना-जीना तो परमात्मा के हाथ, पर रोटियां तो मिल जायंगी।"

नानगा हतबुद्धि-सा निरुत्तर होकर लौट गया। एक बार जमुना को याद आया कि आज यदि इनका बाप होता तो वह भी कितना सुखी होता। तीन लड़के तो सहारे लग गये—और उसकी आंखों में अपने आप पानी भर आया।

तीनों चले गये। फिर कभी उनकी कोई खबर तक नहीं आयी—जैसे वे कभी पैदा ही नहीं हुए।

और जमुना फिर भी व्यस्त थी। सर में अनेक जू निकलती हैं, वक्त मिलते ही उन्हें निकाल कर कुचल दिया जाता है। मरे की भगवान को चिन्ता है, आंख से ओझल की ओर देखने की उसे फुर्सत नहीं, क्योंकि अभी उसके सामने पन्द्रह बच्चे पड़े हैं। जमुना ने अपनी गीली आंखें पोंछ लीं और फिर अपने काम में जुट गयी—जैसे उसे कुछ नहीं मालूम। उसे कुछ मत बताओ, क्योंकि वह रोना नहीं चाहती।

2

उस रात भयानक गर्मी पड़ रही थी। गांव में हैजा फैला हुआ था। घर-घर से रोने की आवाज आ रही थी। कपड़े का भी अकाल फैला हुआ था।

भोला ने एकाएक अररर करके जोर की कै की। चन्दा ठठाकर हंस पड़ा। जमुना आटा देने गयी थी। बस वही ग्यारह बैठे थे।

"अरिया खाने को जो रोज-रोज मिल जाय···" रामसरूप की पतली आवाज किलक उठी। सहमा उसने भोला को झकझोर कर कहा—"भइया!"

लेकिन रज्जू को कोई मतलब नहीं, बोला—"पेट भर के खाया, पेट भर के··· मजा आ गया···"

और भोला चीख कर लेट गया। रामसरूप पेट पकड़ कर चिल्ला उठा—"अरे, मर गया रे······"

और इतने जोर की कै की कि चार-पांच भाई सिहर गये। और वह वहीं लुढ़क गया।

रज्जू कहता जा रहा था—"अरिया, आयेगा जब कलुआ खेत में तब देखेगा कि सूअर भी खेत ऐसे नहीं खा सकते···"

बोलते-बोलते उसकी आवाज भर्रा गयी और उसने उठने की कोशिश की, किन्तु उठा नहीं गया···

और इसके बाद वे देर तक के लिए बिलकुल खामोश हो गये।

सड़क पर चलता रिलीफ करने को आया एक वालंटियर रुक गया। सूंघ कर बोला—"बड़ी गंध है।"

उसके साथी ने बत्ती उम्कायी और दोनों ने भीतर जाकर देखा। बदबू से चकरा

गये। इसी समय जमुना ने प्रवेश किया। घर में दिया देख कर चकरायी। जाकर देखा। उस दहशत से भरे सन्नाटे में एक बड़ी भयानक आवाज उसके गले से निकल गयी।

एक वालंटियर उठाने की गाड़ी लेने चला गया। दिये की धुंधली रोशनी उन लाशों पर खेलने लगी। वालंटियर ने पूछा—"तुम कौन हो?" एकाएक वह चौंक गया। जमुना ने उसकी ओर देख कर कहा—"इनका बाप जब मरा था तब उसके कपड़े उतार कर मैंने इनके लिए कपड़े बनाये थे, लेकिन ये निपूते तो निपट नंगें हैं, ऐसा भी नहीं कि मर के भाइयों के लिए कुछ भी छोड़ जाते, सब ले गये, कुछ भी नहीं छोड़ा गया इनसे।" वालंटियर चकरा कर इधर-उधर देखने लगा। जमुना हंस दी। उतार कर अपनी ओढ़नी से दो को ढंक दिया और कहा—"धोती नहीं उतार सकती बाबू। तुम्हारे तो कपड़े भी इस जोग नहीं कि कफन का काम दे सकें।"

वालंटियर किंकर्तव्यविमूढ़-सा देखता रहा। जमुना क्षणभर को झुकी और एक बार उसने अपने सबसे छोटे बच्चे को गोद में उठा लिया। घूर कर उसे देखती रही—जैसे वह उससे जुदा हो रहा हो। और फिर हताश होकर शव को छोड़ दिया।

वालंटियर कराह उठा, किन्तु जमुना जलती आंखों को खोले बैठी रही, जैसे पुतली भी थोड़ी देर मे बिल्कुल सफेद हो जायेगी।

3

"अम्मां," सरजू ने कहा—"मैं, फूल और सोमा शहर चले जायं।"

जमुना ने आंख उठाकर देखा। आज अन्तिम सेना भी बाहर जाना चाहती थी। सरजू और फूल जुड़वां है।

"क्या करोगे वहां?" जमुना ने पूछा। सरजू को विस्मय हुआ। आज तक तो अम्मां ने कभी नहीं पूछा, फिर आज क्या हो गया है उसे। और क्या वह नही जानती कि वहां पेट तो भर जायेगा।

"लड़ाई की नौकरी करेंगे और क्या।" फूल ने टोक कर कहा—"तुझे भी कुछ भेजेंगे।"

जमुना हंस पड़ी। खूब समझती है वह लड़कों के वादे, जो जायेंगे तो मुड़कर अपनी छाया तक नहीं देखेंगे। और जो इनका ब्याह कर देती तो यहीं सड़ते, यहीं मरते। भावधारा सूख गयी, क्योंकि वह किसी का भी ब्याह कर सकने में असमर्थ थी।

मन उचाट हो गया। अब के सोमा ने कहा—"और अम्मां, बल्लू तो तेरे ही पास है।"

जमुना ने कुछ नहीं कहा। उसके पास कौन है, कौन नहीं है—इसकी उसे चिन्ता नहीं। केवल इतना ही कहा—"जाओ, मन छोटा न करो। अच्छी तरह रहो सहो। मुझे और कितने दिन जीना है, मेरी चिन्ता न करोगे तो क्या कोई हानि होगी।"

तीनों ने एक दूसरे की ओर देखा और चरन छूकर बाहर चले गये। जब पग-ध्वनि शान्त हो गयी, जमुना एक बार खुलकर रो पड़ी। जैसे आज रोने के अतिरिक्त

उसके पास और कोई काम नहीं। आंसू बार-बार आंखों में उमड़ आते। जाने कितने दिन का उपवास टूट रहा था। एक-एक करके याद आने लगे वे दिन—वे दिन जो याद में भी विष की भांति फैल जाते हैं।

घर का सूनापन एक बार जी को कचोट उठा। उसकी बगिया में फूलों की क्या कमी थी। किन्तु एक-एक करके सब मुरझा गये, सब कुम्हला गये। दृष्टि उठाकर देखा, वही छान थी, वही दीवारें थीं, किन्तु कुछ भी शेष नहीं था। एक पेड़ था, उसमें अनेक-अनेक कोंपलें फूट आयीं, पत्तों से सघन हरियाली नाच उठी, उसकी उसांसों से एक बार छाया-सी फैल गयी, किन्तु फिर सब पत्ते एक-एक कर गिर गये और केवल एक पत्ता कांपता हुआ लटका रह गया।

जमुना ने सोचा, एक बेचारा बल्लू रह गया है, अकेला। आयु भी तो अधिक नहीं, कुल तेरह बरस की है। उसे अब मैं खूब खिलाऊंगी। जो आता है उसमें से कुछ भी अपने लिए नहीं रखूंगी···"

सारी ममता कण्ठ में इकट्ठी हो गयी, गला दबा उठी···

इसी समय नानगा ने द्वार पर खड़े होकर घबराये हुए कहा—"बल्लू की मां! शहर की सड़क पर फौजी लारी के नीचे आ गया। वह मर गया है···"

जमुना जोर से हंस दी, जैसे हवा का एक तेज झोंका आकर दीपक को फक से बुझा देता है। नानगा कहता रहा—"वे लोग बहुत तेज चला रहे थे, उन्हें क्या पड़ी कौन बचे कौन मरे···"

किन्तु जमुना हंस ही रही थी, क्योंकि वह सरकार पर दावा करना नहीं जानती थी।

4

आज वह अकेली थी, किन्तु फिर भी जीने की लालसा से पत्थर पर पत्थर रगड़ कर सबसे भयानक सबसे सशक्त आग निकाल रही थी। जीवन के महाभारत में अठारह अक्षौहिणी की भांति उसके अठारहों लड़के उसे छोड़ चुके थे किन्तु वह नहीं मरी थी—नहीं मरी थी।

उसको देखकर मुझे याद आती है गान्धारी की, जो बेटों के रक्त से भीगी पृथ्वी पर भूख लगने पर खड़ी हुई थी और जिसने वहीं रोटी खायी थी। यह जीवन की वह शक्ति है जिसे मृत्यु की, ध्वंस की कोई छलना नहीं मिटा सकती।

मेरे कानों में एक ही स्वर गूंज रहा है। चक्की का पत्थर गरज रहा है, जैसे हिमालय और विन्ध्याचल टकराकर चिल्ला उठे हों···"

और मेरे सामने एक विराट् महाशक्ति की भांति बुढ़िया खड़ी है—छाये जा रही है, और एक दिन सारे संसार पर छा जायेगी।

गेहूं के दाने पिसकर आटा हो गये थे, बरफ पिघलकर पानी हो गया था। भविष्य के बड़े-बड़े पत्थरों को चूरकर काल भी इसी तरह वर्तमान बना देता है, जिसे

खाकर संसार अपने आपको जीवित कहता है, आपस में लड़ता है, फिर लड़कर समझौते की छलना में बढ़ता भी है और अपने अभिमानों की केंचुली भी उतारता जाता है, किन्तु जमुना यह सब नहीं जानती, वह गेहूं पीसती रही है और घुन बनकर उसके साथ पिसती भी रही है, क्योंकि आज के समाज में जमीन की फसल और गरीब, अमीरों के खाने के लिए हैं, पचाकर छोड़ देने के लिए हैं···

और जमुना पीस रही थी···पीस रही थी।···

['47 से पूर्व]

डंगर

बोधासिंह ने गर्व से अपने नये बैलों की ओर मुड़कर कहा—"हरिया की मां ! जिन्दगी का फल मिल गया। सच मालूम होता है, परमात्मा ने हमारी सुन ली। कितने दिनों की साध थी न?" और रुककर कहा धीरे-धीरे, "एक दिन वह जोड़ी लूंगा कि सारा गांव अचरज करेगा, और आज वह दिन आया है जिसका इतने दिनों से इन्तजार था।"

लक्ष्मी ने अपनी धुंधली आंखों से देखा और अचानक ही उसके दोनों नयन भर आये। देखती रही, देखती रही, जैसे मन की उस अतृप्त जगह पर किसी ने जोर से डंक मार दिया हो कि वह पल भर को इतनी मुमूर्षु हो गयी कि उत्तर देना भी असंभव हो गया।

बोधा अब वृद्ध हो गया था। अब जो लड़ाई के दिनों में नाज महंगा होने से दो पैसा हाथ लगा है, उसी से घर की शोभा बढ़ी है। लक्ष्मी ने लम्बी सांस लेकर आंखों को पोंछते हुए कहा—"परमात्मा जोड़ी को सदा ऐसा ही फला-फूला रखे।" कहते-कहते स्वर कांप गया। हरिया और तेजा का चित्र आंखों के सामने बरबस घूम गया। दोनों ऐसे ही पठ्ठे थे। शेर के से बच्चे। अन्तिम चित्र याद था दोनों का। खाकी वर्दी में कैसे सिर पर साफा रखकर जब कन्धों पर बन्दूकें रखी थीं, तब मन करता था कि दोनों को कलेजे में छिपा लिया जाये। गांव की जवान औरतों की आंखों में एक हिर्स-सी खेल उठी थी। और बोधासिंह का कठोर हृदय भी पुरुष-वक्ष से एक बार विचलित हो उठा। वह भी जवानी में फौज में था, उसका बाप भी अंगरेजों की फौज में काम करता था, सिपाही का बेटा सिपाही था, कि उसका बाप, जब अंगरेजों का राज न था, सिक्खों की फौज में था, बल्कि उसका खांडा तो सरकार बहादुर पर चला था। उसके बाद अंगरेज मालिक हो गये तब से उन्हीं का नमक खाया है, पीढ़ी-दर-पीढ़ी खाया है, और सिपाही ने सदा नमक से वफादारी की है। वह और कुछ नहीं जानता, वह पढ़े-लिखे की तरह कायर नहीं होता कि लड़ने-मरने की जगह बहस करे।

बोधासिंह चुपचाप सोचता रहा। जब वह जवान था तब उसके बाप ने भी उसे फौज में जाने से कभी नहीं रोका। उसका यौवन भी चट्टान की तरह उठा था और आज बरगद की तरह विशालकाय उसने अपनी जटाओं से पृथ्वी पर फिर से हाथ टेक दिये थे और ऐसी छाया हो रही थी जिसमें लक्ष्मी थी, हरिया और तेजा थे और वैभव और

समृद्धि की निशानी यवेरी।

2

पानी पड़ चुका था। आसमान में मुलायम बादल फरफरा रहे थे। मंगलसिंह ने खेत में हल चलाते-चलाते कहा—"दादा! जोड़ी तो गजब कर रही है।"

बोधासिंह ने दृष्टि उठाकर देखा। अभी तक किसी चिन्ता में उनका ध्यान केन्द्रित हो गया था। उन्होंने दृष्टि धीरे-धीरे ऐसे उठायी और अन्त में उनकी आंखें ऐसे फैल गयीं जैसे भरे तालाब में किसी ने कंकड़ डालकर उसमें हलचल मचा दी हो।

सामने बूटासिंह उनके बैलों को चला रहा था। वह बूढ़े हो गये थे। गरीब है बूटासिंह। अच्छा है, दोनों का काम चल जाता है।

बोधासिंह ने कहा—"मंगल बेटा! नजर मत लगा देना, समझे।"

और वे हंस पड़े। मंगलसिंह ने कहा—"तुम्हारी तो हर जोड़ी कमाल करती है दादा। परमात्मा करे, जो हो जोड़ी ही हो। अब तो वह दिन आये कि बहुओं की भी जोड़ी लाओ। मैं तो दुआ करता हूं।"

बोधासिंह ने करुण आंखों से उसे देखकर कहा—"भैया! यह भी क्या अपने हाथ की बात है। वह चाहेगा तो ऐसा भी हो गया।"

टोककर मंगलसिंह ने कहा, "ऐसी बात कहते हो, कुछ कह नहीं सकता। तुम तो बाप हो, तुमसे ज्यादा उनका अपना कौन है, मगर बात ऐसी न कहा करो। फले-फूलेगी सदा यह जोड़ी।" फिर दृष्टि फिरा कर कहा—"कैसी सुतान है। दादा सींग कैसे छोटे-छोटे हैं, तुम तो हाथी के बच्चे खरीद लाये। कल बीरासिंह कहता था कि अब तो बोधा-सिंह के घर शेर बंधता है। मगर इस कान से सुनकर उस कान से निकाल दो। यह सब जलन की बातें हैं। इन पर ध्यान देना ठीक नहीं है।"

मंगलसिंह फिर अपने काम में लग गया। बोधासिंह देखते रहे। बैल चल रहे थे। ऊंचे पुट्ठे, जैसे भारी-हल्का भार उनके लिए कुछ भी न था, वह उसे ऐसे चला रहा था जैसे बच्चे लकड़ी की छोटी गाड़ी को खींचे लिये जाते हैं। जमीन में फल भीतर तक घुसता चला जाता था और उन्होंने सोचा, कल इसी धरती को बोकर वे कमाल की फसल हासिल करेंगे। तब जोड़ी के लिए घी का भी इन्तजाम होगा। हफ्ते में एक-आध बार। ऐसा कौन खर्चा बैठेगा? घर की ही तो गाय है। उनका मन प्रसन्नता से पुलक उठा। इस जोड़ी को वह कभी नहीं बेचेंगे। बूढ़ी हो जायेगी तब भी चारा देंगे। ऐसा कौन बहुत खायेंगे। आधा ही तो रह जायेगा पेट। फिर वे और डंगर लेंगे। और इन्हीं डंगरों को दिखाकर बहुतेरे डंगर उन्हें मिल जायेंगे और उनकी फसल कभी बौनी नहीं रहेगी···।

एकाएक उनका ध्यान टूट गया। लक्ष्मी ने पल्ला सिर पर सरकाते हुए गद्गद स्वर से कहा—"चिट्ठी आयी है मेरे लाल की।"

बोधासिंह ने लपक कर उसे थाम लिया और गांव के मास्टर साहब के घर की ओर चल पड़े। लक्ष्मी उन्हें तब तक देखती रही, जब तक पेड़ों ने उन्हें बिल्कुल ही छिपा

न लिया। उसके हृदय में लहरों का-सा उद्वेग उत्सुकता के भंवर डाल रहा था।

3

लक्ष्मी ने हर्ष से आंखें उठायीं और कहा—"खत आया है तो बताते क्यों नहीं क्या लिखा है मेरे हरिया ने ?"

बोधासिंह गर्व से पंजे पर बैठकर बोले—"राजी-खुशी है।"

"दोनों ?" लक्ष्मी ने आतुर स्वर से पूछा।

"दो ही तो थे हरिया की मां। तीसरा कौन है मुझे तो नहीं मालूम।" और वे ठठाकर हंस पड़े। लक्ष्मी झेंप गयी। मान करती हुई बोली—"चलो रहने भी दो। बुढ़ापे में भी तुम्हें मसखरी करने की आदत नहीं छूटी।" फिर बात बदलकर कहा—"तो लिखा क्या है ? मास्टर साहब ने क्या पढ़ के सुनाया तुम्हें ?"

"अरे," बोधासिंह ने कहा—"मास्टर की न पूछो लक्ष्मी। बड़ी तारीफें करता था दोनों की। कहता था पढ़ने में तो कभी जी नहीं लगा उनका, न सही, उन्हें कौन मास्टरनी करनी थी। मगर बहादुर का बेटा बहादुर ही निकला।" कहते-कहते बोधासिंह का सीना अपने आप फूल गया। लक्ष्मी तृप्त-सी सुनती रही। बोधासिंह कहते रहे—"उन्हें नयी वर्दी मिली है। खाना भी अच्छा मिलता है। सुनते हैं वेतन भी बढ़ने की बातचीत हो रही है। बड़े खुशी हैं वहां। साहब तो इतना खुश है कि किसी और से क्या होगा।"

लक्ष्मी के मुंह से एक आह निकल गयी। आज तक उनके आस-पास जितने भी पुरुष रहे थे वे सब फौजी थे। घर में लड़के के जन्म का मतलब ही फौज का जन्म था। बाप, भाई, मामा, पति और लड़के भी। फौज में नहीं जाते तो पेट नहीं भरता। मरद का काम तो लड़ना है। जो लड़ने से डरता है वह चूड़ियां पहनने के योग्य है। ऐसी और कौन नौकरी है जिसमें पिंसन मिले। बोधासिंह ने फिर कहा—"लिखा है, यहां दंगे हो रहे हैं। जाने किस जगह। तो वहां ही उनकी फौज भेज दी गयी है उसे दबाने। उनका साहब उनकी बहादुरी देखकर बहुत ही खुश हुआ है। हरिया का तो, मास्टर कहते थे, ओहदा भी बढ़ जायेगा।"

लक्ष्मी ने टोककर कहा—"किसको मारा है। उत्थे हिन्दुस्तान के लोगों को ?"

"ओ हो," बोधासिंह ने समझाकर कहा—"अंगरेज की सरकार है। सरकार का नमक खाते हैं, वही मालिक हैं। जो अंगरेज का दुश्मन है वह उसकी फौज का दुश्मन है। हरिया की मां फौज में कुछ नहीं देखा जाता। नमक देखा जाता है। जिसने नमक से दगा की वह आदमी आदमी नहीं है। मर्द का क्या, अपने धर्म को बचाये रखे और उस पत्तल में कभी छेद न करे जिसमें वह खाना खाता हो। सिपाही क्या जाने दुनिया की चालाकियां। वह तो मरना जानता है, मारना जानता है। जिसका सिर हथेली पर रहता है वह कभी औरतों की तरह नहीं घबड़ाता।"

लक्ष्मी दमक कर बोल उठी—"तो मैंने क्या कह दिया ऐसा ? अपने बच्चे की

भी याद न आयेगी, ऐसा पत्थर नहीं है मेरा दिल।"

इस व्यथा को उन्होंने भी समझा। कहा—"तुम तो हरिया की मां, सब समझती हो। राजा रणजीतसिंह के जमाने में एक सिपाही था···।"

और देर तक वे उस सिपाही की कर्तव्यशीलता की कहानी सुनाते रहे, लक्ष्मी चुपचाप सुनती रही, सुनती रही···।

इसी तरह दिन पर दिन बीत गये। जोड़ी फल-फूल रही थी। बोधासिंह के हृदय में एक अनबूझ-सी तृप्ति छायी रही। लक्ष्मी कभी-कभी न जाने किस आवेश में सोच बैठती कि निहत्थों पर गोली चलाना क्या ठीक है? यह लोग भी मुलुक के लिए लड़ते हैं। लेकिन यह सब कुहरा दूर हो जाता जब बोधासिंह कहते हैं—"सिपाही फौज में अपना नहीं, मालिक का है समझी? तभी तो डरपोक लोग फौजी को बकरा कहते हैं बकरा!" और उनके अट्टहास की प्रतिध्वनि में लक्ष्मी अपने आप सिहर उठती, फिर ठीक हो जाती।

एकाएक कोई भयानक दर्दनाक आवाज गूंज उठी। बोधासिंह चिल्ला उठे—कौन है बाहर?"

बूटासिंह का स्वर सुनायी दिया, "दादा, बैल को न जाने क्या हो···" वे सुन नहीं सके, उठकर बाहर चले गये।

4

रात आधी से ज्यादा बीत गयी थी। बोधासिंह चुपचाप खड़े थे। उनकी आंखों में एक भी आंसू नहीं था। हृदय में कसकन हो रही थी। उफ कैसी दगाबाजी है। इसके लिए मैंने क्या नहीं किया? सर्दी से बचाने के लिए टाट सिलवाये। खली और भूसी तो गरीबों के डंगर खाते हैं, मैंने इसके लिए घी तक ला-लाकर रखा। और इतना रुपया खर्च करवा कर क्या हुआ?

वह एकबारगी विक्षोभ से सिहर उठे। लक्ष्मी भीतर जमीन पर बैठी आकाश की ओर देख रही थी। उसका हृदय जैसे बिलकुल सूना हो गया था। न जाने कौन-सा तारा कहां से टिमटिमा रहा था, यह सब वह स्वयं नहीं समझ पायी।

एक बैल की अचानक मौत से उसके दिल में न जाने कैसा-कैसा होने लगा था। उसने देखा था कि दूसरा बैल चुप खड़ा था जैसे मृत्यु की वेदना ने उसे स्तब्ध कर दिया हो। और उसकी बड़ी-बड़ी काली आंखों के कोनों में गंदला पानी उछल आया था और लीक बना कर बह गया था। लक्ष्मी को कभी इतनी वेदना नहीं लगी। दुःख अवश्य हुआ कि इतना रुपया उस पर व्यर्थ बरबाद हो गया। बैलों का क्या है, बैल तो पच्चीस मिल जायेंगे। और लक्ष्मी चुपचाप बैठी रही।

बोधासिंह खड़े-खड़े सिहर उठे। कैसी दगा की है इसने! बिना कहे-सुने मर गया। इसके रहते हुए गांव भर कहता था कि बोधासिंह के पास डंगर नहीं हैं, एक फौज है···।

रात की अलसाहट झीनी होकर छितराने लगी, क्योंकि सफेदी आसमान में चादर बिछाने लगी थी। ठंडी हवा का झोंका उनके शरीर को सिहरा गया। वे भीतर लौट आये।

"रात सारी जागते ही बीत गयी, हरिया की मां," मंजे पर बैठते हुए बोधासिंह ने कहा।

लक्ष्मी उठ गयी। हुक्का पास लाकर रख दिया और वहीं बैठ गयी जमीन पर। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा। लक्ष्मी ने ही कहा—"तुम तो रात भर नहीं सोये। पलक तक नहीं लगी।"

"ओह !" बोधासिंह ने कहा—"लक्ष्मी ! सात सौ की चोट बैठी है। उधर लड़के कमा कर भेज रहे थे, इधर अगर यह बना रहता तो घर ऐसा भर जाता कि सारा गांव चकाचौंध हो जाता। मगर किस्मत की बात है। यह तो बात ही ऐसी है जिसमें किसी का चारा ही क्या है ?"

बात अधूरी रह गयी। बाहर से किसी ने पुकारा, "हरिया की मां !"

लक्ष्मी उठकर बाहर गयी। देखा डाकिया है।

"कल शाम को आ गयी थी चिट्ठी, हरिया की मां, मगर क्या बताऊं घरवाली बीमार है न, इसी से अब आया हूं।"

लक्ष्मी ने लेकर देखा वही बड़ा लिफाफा था। मन में न जाने कैसा-कैसा होने लगा। एकाएक हवाखोरी को जाते मास्टर साहब पर नजर पड़ी। डाकिये से कहा— "जरा मास्टर साहब को तो बुला।"

डाकिया चिल्ला उठा, "मास्टर साहब ! ऐजी मास्टर साहेब, ऐ जरा इत्थे, ये खत तो पढ़ते जाना जी। बड़ी मेहरबानी होगी।"

लक्ष्मी ने बूढ़े मास्टर के हाथ में पत्र दे दिया। बोधासिंह भी बाहर ही आ गये थे।

वृद्ध मास्टर ने लिफाफा खोला। डाकिया गद्‌गद-सा बोल उठा- -"भइया आयेंगे। हरिया की मां, अब के तो पगड़ी लूंगा, तुम्हारी कसम···"

लक्ष्मी ने हंस कर कहा—"अच्छा सुनने तो दे।"

मास्टर साहब ने पढ़ा—कमाण्डेण्ट···। रेजीमेण्ट। नम्बर···सूचित किया जाता है, हरखसिंह सिपाही वल्द···मौजा···गांव···की बहादुरी से कल एक पूरा गांव हमने जीत लिया। उसकी संगीन दुश्मन के बदन में ऐसे घुसती थी जैसे जमीन में हल। उसका छोटा भाई अच्छी तरह है हरखसिंह सरकार के बहुत काम का आदमी था। उसने कभी अपनी परवाह नहीं की, हुक्म पर कट जाने वाला वीर था वह। मुझे उसकी···

मास्टर के हाथ से पत्र छूट गया। लक्ष्मी बेहोश होकर गिर गयी।

['47 से पूर्व]

जीवन की तृष्णा

रेल ज्यों-ज्यों स्टेशन के निकट पहुंचने लगी, मेरी हालत भी खराब हो चली। यहां तक कि आस-पास बैठे मुसाफिरों को एक हंसमुख दिल्लगीबाज आदमी का इस तरह बदल जाना, बहुत ही अद्भुत प्रतीत हुआ। बशीर थोड़ी देर घूर कर देखना रहा और कुछ समझ न सकने की असमर्थता से कंधे उचका कर रह गया। रेल में मेरे सभी दोस्त बन गये थे, लेकिन अब मुझे लगा, वे चेहरे आदमियों के से नहीं थे, बनाने वाले ने हड्डी को काट कर उनकी आकृति की छाप लगा दी थी।

भय मुझे अनेक बार हुआ है। मैं भूगर्भवेत्ता होने के नाते अजीब-अजीब वस्तुओं के आगे खड़ा हो जाता हूं। उस समय मुझे तनिक भय नहीं होता। पर कभी-कभी जब घने अंधकार में किसी के कराहने की कर्कश आवाज गूंजती है तब मेरे प्राणों के भीतरी स्तर तक एक दहशत ऐसे डूब जाती है, जैसे सूखी पृथ्वी पर पानी डालते ही थोड़ी देर बाद अपने आप गायब हो जाता है।

एकाएक झटका लगा, रेल रुक गई। एक बार रेल के कुछ भाप छोड़ने का सा शब्द हुआ और छोटा स्टेशन कुछ जाग उठा। मैं उतर पड़ा।

रात की अंधियारी नीरवता वनान्त के ऊपर घहरा रही थी। मैं इस अंधकार को नहीं सह सकता, क्योंकि मैं आलोक का पथिक हूं। तिमिर से मेरा दम घुटने लगता है, क्योंकि मैं अन्धा हो जाता हूं। मन में आया, उस विक्षोभ में भी एक बार जोर से चिल्ला उठूं—मैं तुम्हें घृणा करता हूं, मैं तुम से घृणा करता हूं—किन्तु स्वर गले में अटके रह गये। आधी रात का नगारा बज रहा था, मानो यह अन्धकार, यह उन्मत्त सनसनाती वायु सब उसी की प्रतिध्वनि थी। और जब मैंने घर का द्वार खटखटाया उस समय मुझे ऐसा लगा कि आसमान बीच में से फट रहा हो।

2

दरवाजा चूल पर अर्रा कर झूल गया। अन्धकार में मैं भीतर का कुछ भी नहीं देख सका। चेतना ने फिर से मस्तिष्क पर घूंसा मारा और एक कर्कश स्वर मेरे कानों में बज उठा—"कौन हो? क्या चाहते हो?"

शब्द मुंह तक आकर रुक गये। लगा जैसे किसी ने खींच कर चांटा मार दिया हो। "मैं हूं, बिहारी। सौनो!"

बुढ़िया हट गई, मैं भीतर चला गया। सौनो भी चुप है, सब कुछ दहशत में डूबा हुआ है। शांता मुस्करा दी। कहा—"बैठो।"

मैं बैठ गया। बैठे-बैठे काफी देर हो गई। वह मुसकराई है जैसे ज्वालामुखी में से बहुत दिन बाद लपट निकली है।

मेरे सामने वही लड़की बैठी है, जिसका रूप देख कर इन्द्र-धनुष बल खाता था, जिसके यौवन की गंध से अमराई कांप जाती थी। आज उसमें क्षय भर गया है। कोढ़ भीतर ही भीतर नहीं गलता है, पर वह गल रही है, उसकी श्वासों में विष है, शरीर में विष है, पर मुझे देख रही है। उसकी आंखों में वही चिह्न हैं जो मेरी प्रतीक्षा में घुलते-घुलते भी नहीं मिटे हैं। मेरा पाप है कि वह आज तपेदिक से घिर गई है। किन्तु आत्मा का आनन्द ताराओं में छलक आया है। जो स्नेह इतने दिन दूर रह कर भी नहीं मिला, वह इतना अमर है कि तपेदिक भी उसका क्षय नहीं कर सकता। जब प्रेमी सूली पर चढ़ गया है, तब प्रिय आया है और उसकी घबराहट ही उसका शृंगार है। कितने दिन बीत गये, एक बाग उजड़ गया, दूसरे में आग लग गई, किसी क्षीण स्मृति का तार दोनों को फिर आमने-सामने ले आया है और भविष्य···किसी पर भी बात करना अनावश्यक है। हम एक दूसरे को देख रहे हैं। बात क्या होगी अब? वह चुप है। उसकी शांति ही उसकी अथाह तृप्ति का चिह्न है। एक बात कही—"भूखे हो, कुछ खाओगे?"

मैं चाहता हूं, कुछ खाऊं। मुझे भूख लगी है। पर बुढ़िया चीख पड़ी—"नहीं, वह खाना नहीं खाओगे तुम। तुम्हें तो रहना ही है।"

शान्ता चुप रह गई, जैसे अपमान ने फन बिलकुल कुचल दिया। प्यार से भी तो ऊंचा है जीवन, प्यार जिसके पथ का केवल दिल बहलाव मात्र है···मैं बिना खाये ही जाकर लेट रहा। कुछ देर बीभत्स सन्नाटा छाया रहा, जैसे घर मर गया हो। इसके बाद फिर गुरगुराने की आवाज आई। बुढ़िया ने अधिकार-भरे स्वर से कहा—

"और अपने खाने में से खिला कर उसे भी मारना चाहती थी।"

"पर तुमसे तो इतना भी न हुआ कि अपने खाने में से उन्हें कुछ दे देती।"

"आहा! शान्ता बेटी! मुझे जिन्दा नहीं रहना है, क्यों? अरी अब तुझे किसकी लालसा है? तपेदिक की मारी!"

घृणा! वही घृणा जो धन में है, धर्म में है, संसार में है, जीवन के, मृत्यु के प्रति भी है। और फिर एक और आवाज सुनाई दी—"तपेदिक है मुझे। कल न मरी आज, दो दिन रह कर भी मैंने सुख नहीं पाया, तो जन्म लेकर ही क्या किया।"

बुढ़िया हंसी। बोल उठी—"ओहो! महारानी इस हालत में भी सुख भोगना चाहती हैं। अरी तुझे जब मरना ही है, तो दूसरे को सुखी देख, दूसरों का खाना क्यों छीनती है?"

और मैं जानता हूं, मैं भी जीवित रहना चाहता हूं। इसके बाद खांसी—तपेदिक

की खांसी, मौत की गुर्राहट···

रात की कड़कड़ाहट बढ़ चली। उस सन्नाटे में कभी-कभी गीदड़ों की आर्त्त पुकार डरावने पंख फैला कर गूंज उठती थी। मैं चुपचाप कोठे में पड़ा रहा। गुदड़िया खोंच कर सिर पर ढांक ली थी। फिर भी कभी-कभी दांत बज उठते थे। छत पर बिल्लियों में लड़ने की गुर्राहट, फिर एक बिल्ली का भयानक रूप से करुण स्वर में रोना—जैसे उसकी वेदना के सामने मनुष्य की वेदना भी कुछ नहीं, शायद लड़ाई में उसकी एक आंख फूट गई थी···काश अपनी बदसूरती को वह हरा चश्मा लगा कर छिपा सकती।

मन-ही-मन मैं हंसा। मुझे विश्वास हुआ, मैं अमानुषिक नहीं हुआ हूं। अभी भी मुझे हंसी सूझ सकती है। बिल्लियों का रोना बन्द हो गया।

एकाएक रोने की दर्दनाक आवाज से आसमान गूंज उठा। वह स्वर टकरा कर लौट रहा है, मेरी खाट के पास आकर किसी छाया की तरह रुक गया है और झुक कर मेरी गर्दन पकड़ लेना चाहता है।

मैं चीख उठा, "सौनो!"

बाहर निकल कर देखा। सौनो सिर पीट कर रो रही थी। मैंने पूछा—"क्या हुआ? सौनो? क्या हुआ?" फिर भी बुढ़िया ने कुछ न कहा और वैसे ही रोती रही, जैसे बन्द टूट गया हो और फलल-फलल करके पानी धीरे-धीरे खौल-खौल कर गिर रहा हो; जैसे कोई आखिरी सांसें ले रहा हो।

"मैं अकेली रह गई हूं, भैया मैं अकेली रह गई हूं।" सौनो का कराहट भरा स्वर सुनाई पड़ा। मेरा मन घृणा से तिक्त हो गया है। तो क्या शांता···! और इसे भी अपने अकेले होने का दुःख है? जीवन की लहर जब लौट गई, तब चट्टान को अपनी कठोरता का आभास हुआ है! जब पतंगा जल चुका है, तब दीपक को अपनी झुलस पर, बर्बरता पर पश्चाताप हुआ है!

कोठे के द्वार पर खड़े होते ही देखा—एक खाट पर पड़ी थी उसी कल वाली घिनौनी मैली साड़ी में लिपटी। पर वह मनुष्य का शरीर था। और आज उसके मुख पर एक बर्बर घृणा थी, जो चुम्बन से लज्जित नहीं होती, जो आलिंगन से चकनाचूर नहीं होती······! महारानी!!

मैंने देखा, वह जैसे हंस रही थी। आज उसके लिए अभिसार की बेला आ गई थी। और मैंने देखा वह शांत थी, जैसे आंधी घुमड़ कर बीच आकाश में थम गई हो। धुंधले दीपक की डरावनी छाया में एक बार मुझे लगा, वह केवल मां थी। मां थी कि वह ममता के सहारे अपनी जवानी के बुढ़ापे को ठेल रही थी। मेरे स्नायु झनझना उठे थे। क्योंकि उसकी बड़ी-बड़ी आंखें कांच की तरह चमक रही थीं, चिराग की लौ में सफेद, उस सफेदी में पारे की तरह कुछ हिलता हुआ, तो क्या मनुष्य का जीवन यही है? क्षण भर में ही मेरा स्वप्न खंड-खंड होकर गिर गया।

जीवन में आज पहली बार हम अकेले थे। जी करता था मनमाना प्यार कर लूं!

मैं निर्भय उसके पास चला गया। तकिये पर कुहनी थी, चादर में हड्डी के पांव थे और उसके दांत बाहर निकल रहे थे, क्योंकि जबड़ों के ऊपर की पंखुरियां सूख चली थीं। उसके कपड़ों पर खून था, ताजा, बदबू की शायद मुझे भावना ही हो, गर्म··· तपेदिक के कीड़ों की नहर, दांत में लगा, मुंह में लगा···जिन्दगी का तार···वह खून जो तनिक स्वच्छ होता, तो उससे दर्शन, विज्ञान, कविता और न जाने क्या-क्या निकल पड़ते, किन्तु वह अधिकारों से वंचित था, क्योंकि वह विषैले कीटाणुओं का दास था, गुलाम था, अगर वह साफ होता, तो मृत्यु के स्थान पर मातृत्व से उसकी गोदी भर गई होती···

मैं उसका प्रेमी था। वह मेरी प्रिया नहीं, वह स्वयं मुझे प्यार करती थी। जाने दो उस प्रेम को जो यदि जीवन में अद्भुत शक्ति उत्पन्न कर सकता है, तो भीतर ही भीतर उसे खोखला भी। मेरा हृदय निर्धूम जल रहा है। मैं सोच रहा हूं कि वह जी रही है, क्योंकि उसका जीना और मरना एक चाह भर ही था। मर गई तो बुझ गई, जी रही थी तो चाह की सी एक सत्ता मात्र···

अन्धकार में वे आंखें झलमला रही थीं, जैसे रेगिस्तान में मृगतृष्णा जगाने वाली जलती हुई रेत···

मैं रोना चाहता हूं, किन्तु रो नहीं सकता। मेरे जीवन का विक्षोभ मेरे पैरों के सामने लाश बन कर गिर गया है। इसे ठोकर मार देना मेरी परम्परा के बाहर है और इसे छू कर जिला देना मेरी मनुष्यता के परे है और न मेरे पास तृष्णा की आग ही है कि इसे जला कर खाक कर दूं, नाम मिटा दूं, निशान मिटा दू और फिर विजय के गर्व से उसी भस्म पर खड़ा होकर पुकार उठूं—यह किसके यौवन का गर्व है, यह किसकी विक्षिप्तता का एकमात्र परिणाम है···

और घूरने लगती हैं मुझे दो आंखें, जिनमें लोहे के प्याले में पिघली हुई चांदी की सी झांई है···

सच, रोने को तो जी कभी नहीं चाहता। बस याद आया करती है—एक, दो··· तीन···

किन्तु मैं जानता हूं, यह विक्षोभ मेरी समाप्ति नहीं है, वह जीवन का एक··· पृष्ठ था, जो सदा के लिए बीत गया, पर वह आंखें मुझे घूर रही हैं—जिनका मरण ही जीवन का सबसे अमूल्य प्रश्न है—तुम आ गये?

['47 से पूर्व]

सारनाथ के खंडहरों में

सांझ की पीली किरनें धीरे-धीरे धूमिल होकर क्षितिज पर खेलने लगीं। चौखण्डी पर खड़े होकर जब मोहन ने देखा तो जाने क्यों वह एकदम निस्तब्ध रह गया। नीचे खड़ी बरूचा ने उसका एकाएक परिवर्तन देखा और पुकारकर हंसते हुए कहा—"ओ गौतम बुद्ध! नीचे आ जाओ जल्दी। कहीं इस जगह गश आ गया तो मैं क्या करूंगी यहां?"

किन्तु मोहन गम्भीर खड़ा था। आज यशोधरा की आवाज उसके कानों तक नहीं पहुंची। बरूचा थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करती रही किन्तु जब सांझ की वह नीरव उदासी धीरे-धीरे कोलाहल की संधियों को मूंदने लगी तब हठात उसके हृदय में एक भय उत्पन्न हुआ।

दूर-दूर तक खेत फैले हुए थे। उनमें एक ही रंग था किंतु उस हरे के भी इतने अधिक भेद थे कि उनका प्रत्येक में एक भिन्न स्वरूप था जैसे अन्तराल के स्तरों में हिलती हुई वायु के कारण आकाश के अनेक छायाभेद दिखाई देते हैं। मोहन ने चारों ओर देखा। वे खेत के टुकड़े-टुकड़े होकर भी इस समय एक बड़े फर्श के समान फैले हुए थे।

बरूचा ने चिल्लाकर कहा—"नहीं आओगे? क्या है ऐसा वहां?"

मोहन ने उत्तर दिया—"एक बार ऊपर आकर देखो न? जो मन का विचार है वह यहां भाषा को कुण्ठित पा रहा है। न जाने क्यों कुछ बड़ा अजीब अजीब-सा लग रहा है।"

बरूचा ने एक बार विचलित दृष्टि से इधर-उधर देखा। उसे लगा कि सौंदर्य का स्वप्न जिसके त्रिकोण में केवल उसी का एकमात्र आकार निहित है अब बीच के बिंदु में उल्कापात बन कर गिर गया है और उस त्रिकोण का चतुष्कोण, कोण कि अगनकोण कि बिंदु संघट्ट होकर एक निराकार प्रसार हो जाएगा और जो मोहन आज तक भटका नहीं है वह अब दर-दर की खाक छानेगा क्योंकि बंधनों की कड़ाई कलाई को खाने लगी है जैसे उसके लोहे के दांत हों···

तांगे वाला उधर मुंह किये आगे फैल गया था। घोड़ा सामने पड़ी घास में मुंह डालकर उसे धीरे-धीरे चबा रहा था।

बरूचा टीले पर चढ़ते-चढते हांफ गयी। उसके गोरे गालों पर लाली की तम-तमाहट छा गयी जैसे सुदूर क्षितिज के सामने किसी ने दर्पण उठाकर रख दिया हो। मोहन अब एकबारगी फिर तन्मय होकर कुछ सोच रहा था। बरूचा की सांस फूल रही थी। किन्तु उसने हंसकर कहा—"क्या देख रहे हो? आज लगता है तुम मुझे बिलकुल भूल गये हो।"

अवसाद की छाया में किसके पैरों की चाप है जिसे पुरुष की अहम्मन्यता सुनना नहीं चाहती क्योंकि उस चाप में उन नूपुरों का घोर हाहाकार है जिसमें स्फटिक-सा जमा हुआ अभिमान पानी-पानी होकर वहने लगता है और अभिमान चट्टान समझकर लहरों के सांप 'ाकड़ने लगता है।

उसने मोहन के सामने खीझकर कहा—"क्यों? क्या हो गया तुम्हें? बोलते क्यों नहीं?"

किंतु वह खीझ भी व्यर्थ हो गयी। आज वह नहीं मनायेगा। क्योंकि उसके सामने शायद इसका मूल्य ही नहीं रहा है।

बरूचा उद्भ्रांत सी पीछे हटकर पत्थर पर बैठ गयी। चौखण्डी की उन उच्च पलकों में जैसे दो सपने थे और दोनों ही इस समय घबरा गये थे।

मोहन ने मुड़कर देखा। बरूचा दोनों हाथों में मुंह लिए सिर झुकाए बैठी थी। वह थक गयी थी। उसे मोहन ने आज कोई दुलार नहीं दिया है अतः अपने अधिकारों में वह कुछ कमी पा रही है।

नीरव आकाश उस समय धीरे-धीरे धुंधला हो चला था। अंधेरे का तीर दन-दनाता बढ़ा आ रहा था। अब वह आकर पृथ्वी के वक्षस्थल में गड़ जायेगा और वेदना से धरती बेहोश हो जाएगी।

भूला हुआ समीरर्ण दूर-दूर की कराहों का निस्तब्ध सन्निपात बना तड़प रहा था। मोहन को लगा जैसे युग-युग से जो समीर की चेतना घायल होकर बह रही थी वही आज फिर कांप रही है।

और मोहन ने कहा—"बेबी!"

बरूचा ने सिर नहीं उठाया। केवल आंखों ने ही प्रश्न बनकर पुतलियों को उठा दिया। उसमें कुछ गर्व है किंतु वह नाव की तरह डांवाडोल हो रहा है।

मोहन ने ही कहा—"कितना प्रशांत है यह स्थान। हम जिस जीवन में रहते हैं क्या उसमें कभी इसकी छाया भी पड़ती है। तुम कहोगी यह पलायनवाद है। ऊं?"

बरूचा सुनाती रही। उसके मन में आया हंस दे। बन रहे हैं आज जनाब! गोया जैसे गौतम बुद्ध ही हों।

पर मन तो सोच रहा है, जीभ क्यों तालू से सटी जा रही है। वह नहीं बोलेगी अब। किन्तु मन का उफान जब वास्तविक जीवन के चूल्हे में फेन बनकर गिरता है तब चमड़ा जलने की सी बदबू आती है।

बरूचा खड़ी हो गयी। मोहन ने कहा, "एक बार सोचो, ढाई हजार साल से भी

पहले एक दिन गौतम ने यहां आकर अपना पहला उपदेश दिया था और एक दिन संसार कांप उठा था। मेरा मन कांप रहा है जैसे आज फिर।"

देर तक दोनों खड़े रहे। उनको लगा कि अब और कोई नहीं है। तपस्तप्त गौतम ने हाथ उठाकर अभय मुद्रा में उपदेश देना प्रारम्भ किया है। उस समय भी काशी में प्रकाण्ड पांडित्य है, ब्राह्मण कर्मकाण्डों में हत्या कर रहे हैं और क्षत्रियों में मानसिक असन्तोष फैल रहा है क्योंकि अधिकारहीन को आज वह चाहिए जिसे निर्वाण के छल में वह केवल अपनी भौतिक स्वतन्त्रता नहीं कहना चाहता।

तांगे वाला ऊब रहा था। उसने बड़बड़ाना शुरू किया—"बाबूजी !"

मोहन ने नहीं सुना। बरूचा ने ही कहा—"चलोगे कि यहीं सो रहोगे। बाज आयी मैं तो पांच बजते ही म्यूजियम बन्द हो जाएगा, फिर चिल्लाना यहीं खड़े होकर और दोष देना मुझे। अच्छा? मैं कहती हूं, सुना?"

मोहन को एक कोफ्त हुई। उसने कहा—"तो चलो न? तुम आयी ही क्यों? तस्वीरें देख लेती सारनाथ की।" फिर समन्वय करते हुए कहा, "जब ऐसी जगह आते हैं तब कुछ वर्तमान और अतीत की सजग चोटें होती है और मनुष्य कुछ देर तक सोचने के लिए मजबूर हो जाता है।"

दोनों उतर आए नीचे। तांगा चल पड़ा।

बरूचा सोच रही थी पांडिचेरी में योगी अरविन्द है। वहां लोग अंग्रेजी न सीख कर फ्रेंच सीखते हैं।

मोहन सोच रहा था—कैसा होगा यहां का वातावरण जब उन पांच भिक्षुओं ने अविश्वास से गौतम को देखा होगा और अन्त में पराजित होकर झुका लिया होगा अपना सिर···किंतु बरूचा के साथ और गोआ की वह रात जब अलफोंसी आम खाये थे। आम हिन्दुस्तान के है नाम स्पेन के राजा का है। क्या जमाना है।

पोर्चुगाल में लड़ाई में सरकार की तरफ से नए हुए, लाखों कमाये गये, होता कोई ड्यूमा तो फिर लिखता, किसी यहूदी लड़की को अबके नायिका बनाता, वह अकेली···एक प्रेमी···हिटलर की बर्बरता···।

राह के वे उनीदे उनीदे वृक्ष।

एक अंगड़ाई न ले ले आकाश।

बरूचा का हाथ मोहन के कंधे पर है। हाथ के नीचे मांस की पेशी है जैसे यह मांस का टुकडा जीवन के विस्तार में एक छोटी परिधि का केन्द्र है। नहीं है। होगी क्यों? नहीं ही होगा···

दूर-दूर तक फैले हुए खेत। मोहन के अधखुले नेत्र। छाया हो रही है। कैसी मादक तन्द्रा भिक्षुओं ने आंख फाड़कर नहीं देखा होगा? तर्क के कुठार मारे होंगे, जीत गये गौतम।

जीत या हार? क्या महापुरुषों में भी जय का संतोष होता होगा? गांधी नहीं जानता होगा—उसके पीछे हजारों आदमी हैं जो उसे अपना नेता समझते हैं।

अत: मनुष्य की तृष्णा···प्रसिद्ध···जिसके शव के लिए जीवन का कफन···।

कितना भीषण विष है यह इतिहास, जिसमें और कुछ नहीं केवल नादानियों का भण्डार है, मनुष्य की अबूझ निबलताओं का, जिनका शृंखलाबद्ध रूप कहानी का सा एक दुखद प्रवाह है ।

मोहन ने कहा—"बेबी ! तुम्हें कुछ नहीं लगा ?"

बेबी ने मुसकरा कर व्यंग से कहा—"मुझे बुद्धजी मिले थे । कहते थे—बेबी, तुम बहुत बुरी लड़की हो···फिर अंगरेजी में कहा—क्योंकि तुम मोहन से ब्याह करना चाहती हो और विवाह विराग नहीं है, मोह है, इन्द्रियों का सुख है···"

वह हंस पड़ी । तांगेवाले ने अन्दाज से सोचा कि जरूर कोई बुरी या गन्दी बात कही है तभी अंगरेजी की टांग तोड़ी है···।

मोहन को झटका लगा । हृदय की गति जैसे क्षण भर को स्तब्ध हो जाएगी । उसने भय से बरूचा का हाथ पकड़ लिया । जिस दिन के लिए सारे जीवन का मोह है, वही क्या इतना बड़ा कल्मष है ।

कितना अच्छा है वह त्याग जो करना नही पड़ता । भले ही बुद्ध का यश न मिले । उसे लगा जैसे बुद्ध का सौम्य रूप ही विराट अन्धकार बनकर उस पर हुमक-हुमक कर रहा था और वह दोनों हाथों से बेबी को छाती से चिपकाये, बिखरे बालों से, प्रतीक्षा कर रहा था कि यह तूफान ऊपर ही ऊपर से निकल जाये ।

कड़वाहट फैल गयी । बेबी का उपहास एक भयानक-सा तीर बन गया । पास खड़े होकर तो उसने अभी तक कुछ भी न देखा था ।

हम विवाह करेंगे । अमिताभ गौतम महान था । उसने जीवन में त्याग का रूप दिखाया था ।

आर्य्य सत्यों का जय-निनाद हुआ । आगे बढ़कर चीवरधारी अमिताभ के सामने मोहन ने कहा, "बुद्धं शरणं, धर्म शरणं, संघं शरणं गच्छामि ।"

गौतम के नयन नहीं हिले । गंभीर स्वर में उन्होंने कहा, "सद्धर्म की जय हो । बिहार में आने वाले कुमार ! तेरे साथ यह कौन है ?"

मोहन ने कहा, "बेबी है तथागत ।"

"बेबी ?" अमिताभ ने मुड़कर कहा, "आनन्द ! यह ललना आर्य्यावर्त्त की नहीं प्रतीत होती ।"

आनन्द ने कहा, "प्रभु ! यह ललना भ्रम है, माया का दुस्तर स्वरूप है ।"

बेबी ने अंगरेजी में कहा, "मोहन ! भगवान ने क्या कहा ?"

"ओह, वेट" कहकर मोहन ने फिर कहा, "अमिताभ ! यह स्त्री आर्य्य देश की करुणा का ज्वलन्त उदाहरण है । एक दिन सैकड़ों बरस पहले इसके पूर्वज जरतुष्ट्र के उपासक होने के कारण ईरान से निकाल दिये गए थे । वे यहां समुद्र तीर पर आकर बस गये । यह उन्हीं की सन्तति है । आजतक हम आर्यों ने कभी परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं किये । आज मैं जाति-बन्धन तोड़ देना चाहता हूं ।"

आनन्द ने कहा—"कौन से भारत की प्रजा हो ? सम्राट अजातशत्रु की अथवा सम्राट जार्ज षष्ठ के अंगरेजी भारत की ?"

बेबी ने काटकर कहा, "हम प्रजा नहीं हैं, हम सम्राट-अम्राट नहीं मानते। हम जनता हैं।"

मोहन ने मन ही मन कहा, 'बहुत अच्छे ! शाबाश।' फिर बेबी की ओर दिलासा देते हुए कहा—ठीक है।'

बेबी ने फिर कहा, "हम भूखों के लिए लड़ते हैं, हम आजादी के लिए लड़ते हैं। हम नहीं चाहते कि हम गुलाम रहें…"

"तो क्या तुम दोनों दास हो ?" भगवान बुद्ध ने हठात प्रश्न किया।

"मन से तो नहीं हैं," बेबी ने कहा—"हम इस बर्बर साम्राज्य का ध्वंस करना चाहते हैं…।"

"नहीं आनन्द," भगवान ने काटकर कहा, "दास को परिव्रज्या मत दो।"

आकाश और पृथ्वी एक हो गये। दास दास रहे गये। भगवान और आनन्द नहीं रहे। मोहन ने बरूचा का हाथ दाबकर कहा, "एक बात याद आ गयी।"

बेबी ने कहा—"सुननी पड़ेगी ?"

मोहन हंसा, कहा—"शैतान ?"

फिर दोनों जोर से खिलखिलाकर हंस पड़े। तांगे वाले ने कहा, "धीरे…अबे धीरे…"

घोड़ा धीरे चलने लगा।

× × ×

बरूचा सरककर बैठ गयी। अब सड़क सपाट हो गयी। मोहन ने कहा, 'वास्तविक जीवन की कठोरताओं में हमें यह सुयोग कभी नहीं मिलता।"

"खाने-पीने वाले की बात है"—बरूचा ने धीरे से कहा, "जो किसान इस चौखंडी के चारों ओर खेतों में हल चलाता है उसे इसकी ऐतिहासिकता का कितना ज्ञान-ध्यान है ? बताओ न कि वह अपने बारे में, अपनी स्त्री-बच्चों के विषय में अधिक सोचता है या अपने देश के गौरव के ?"

मोहन के दिल को चोट लगी। कितनी कठोर बात है ? सच ही तो है। उस किसान की सारी बुद्धि उसी के खेत में जोत दी गयी है। जिस तरह पुराने कायदे के हल के कारण पैदावार कम होती है उसी भांति इसकी बुद्धि के दो बातें ही निकलती हैं—एक जिन्दा रहना, दूसरी में जिन्दगी को जिन्दगी न समझकर केवल घिसटते जाना।"

उसे लगा हृदय विक्षोभ से फट जायेगा। यह क्या सोच रहा है ? लेकिन बेबी के दिमाग में तो अब भी यही बात है। वह मुझे प्यार कर सकती है। एक क्षण के लिये भी उसे यह अनुभव नहीं होता कि मोहन से आलिंगन करना भी एक पाप है। उसकी दृष्टि में पाप है। पर वह पाप की परिभाषा दूसरी है। यह जो चौखंडी के पत्थर खड़े हैं उनमें अपढ़ पड़ोसी देवता का निवास समझने लगे हैं, इसे ही वह पाप कहती है।

मोहन ने उदार चित्त से कहा—"हे ! हरिणराज बोधिसत्व ! तुम पशु होकर भी मनुष्य से अधिक बुद्धिमान थे, फिर क्यों आज मनुष्य पशु से भी अधिक मूर्ख होने के लिये बाध्य किया गया है ?"

एकाएक वह हंस दिया। वह वेवी के उस विचार की ओर मुड़ा कि यदि हिरन बेखटके छोड़ दिये जायें तो वह मनुष्य की सारी खेती खा जायें।

वेबी चौंकी। कहा, "क्यों हंस रहे हो ?"

"यों ही।"

"हाय रे !" बरूचा ने दोनों हाथ जोड़कर कहा, "अब तो ये यों ही हंसने लगे। कहीं मुझे यशोधरा की तरह छोड़ न जायें।"

मोहन प्रसन्न। वेबी फिर एक बच्चे की सी मुस्कान से कांपती हुई। सब बहुत अच्छा है। मनुष्य की ममता ही इस सब में एकत्व की भावना का प्रतीक है। यह जो पत्थरों को जाग्रत रखकर इनसे कुछ सुनने का प्रयत्न किया गया है, ममता ही तो है। क्या इस ममता में अमरत्व का लोभ नहीं है ? क्या विश्व चेतना का यह द्वार किसी आलोक प्रवेश के लिये ही नहीं है ?

वेबी को भय है। उस भय के पीछे सुख की निहित अभिलाषा है और इसी में और भी अधिक तीव्र है कि चारों ओर दुख ही दुख है। और जैसे मैं डूब रही हूं, सारा मानव समाज घृणा की लहरों में डूब रहा है, तू अपने प्यार की लकड़ी का तख्ता मुझे दे दे, मैं इसे पकड़कर यह भवसागर पार करने का प्रयत्न करूंगी।

मोहन मौन हो गया। आंखें फाड़कर देखा। चारों ओर उजाला है। धूप का हलका उज्ज्वल स्वरूप सामने है, पेड़ों की छाया है, हवा ठण्डी है, बेवी का गुदाज़ बदन है, तांगेवाले की हड्डियां उभरी हुई हैं, तांगे का घोड़ा चल रहा है, सब हैं, पर सब ऐसे नहीं हैं जैसे होने चाहिये थे, सब भयाक्रांत से, भय ही जिनकी आस्था बन गया है··· जैसे एक दिन मौर्य्य सम्राट् ने पाशविक बल को धर्म बल, भेरीघोष को धर्मघोष और विहारयात्रा को धर्मयात्रा में बदला था। राजधर्म उसकी शक्ति बन गया। धर्म की शक्ति राज बनकर फैल गयी, स्थिर बनी रही, और राज के लिये ब्राह्मणों के स्थान पर बौद्धों ने सम्राट् के सामने सिर झुकाया फिर···

अनिरंजित हो गयी कुछ यह कहानी, मोहन ने मन ही मन सोचा, जब लोग यही सब सोच सके थे तो उन्हें उन्हीं के पैमानों में जांचना पड़ेगा। आज के परिमाण कुछ भारी हो जायेंगे।

और बेबी की खाकी आंखें; ऐसे बैठी हैं जैसे डोंगरे का बालामृत का बच्चा···

मोहन ने अपने मुंह के सामने हाथ रखकर जंभाई ली। अर्थात् कुछ टकराहट थम गई है।

उसने कहा, "वेबी ! तुमने एक बात देखी ? चौखण्डी में कुछ खास बात !"

वेबी ने कहा, "बीचोबीच के कुएं की कहते हो ?"

"नहीं जी," मोहन ने काटकर कहा—"दीवारों पर लोग अपने नाम क्यों लिख

जाते हैं ?"

"इसीलिये कि और कहीं निकलता नहीं। जिसे लोग गौरव की वस्तु समझते हैं उससे अपने आपको निकट करना चाहते हैं···"

बेबी हंसी। मोहन भी।

मोहन सोचने लगा, जीवन क्या उस समय भी इतना ही कठोर नहीं लगता होगा ?

उसने देखा—दूर दो काषाय पहने नम्रमुख भिक्षु चले जा रहे थे। जाने क्यों हृदय को एक बार कुछ संतोष सा हुआ। बहुत अच्छा लगा। एक युग—युग की अबाध धारा आंखों के सामने से गुजर गयी। एक दिन रहा होगा जब इन्हें देखकर सभ्य संसार अपना सिर झुका देता होगा। 'होगा' 'था' में बदल गया। यह कालिक परिवर्तन था। तब इनकी वाणी सुनकर मनुष्य अपने आपको धन्य समझता था। आज भी वह सुनता है किन्तु यदि भय नहीं है तो ज्ञान इनकी सत्ता पर प्रश्न क्यों करता है।

मोहन ने कहा—"यह हम लोगों में विदेशी छाया है। हम अपने आपको सदा के लिये भूल जाना चाहते हैं। यदि सभी मनुष्य इतने सहनशील और सौम्य हो जायें तो संसार में यह दुख ही क्यों रहे ? किन्तु दुख की आस्तिकता में जो अनात्म पलकर बढ़ा है, वह क्या अपने ही आधारों पर प्रहार कर सकेगा ? और फिर याद आया।"

यही भिक्षु एक दिन साधारण मनुष्यों की भांति एक दूसरे मनुष्य से लड़े थे जो अपने आपको ब्राह्मण कहते थे।

सिन्धु अरब सागर की बजाय बंगाल की खाड़ी की तरफ चली, गंगा अरब सागर की ओर। दोनों टकरा गयीं। सारे आर्यावर्त्त में भीषण जलप्लावन हुआ और उस समय के देशों की सन्तान इस समय भी है किन्तु न वे प्रभु कहते हैं, न भन्ते।

मोहन के मुख से एक शब्द निकला—"बेबी।"

बेबी कुछ ऊंघ सी रही थी। स्वर कानों के पर्दे पर अटक गया और बया के घोंसलों की तरह लटकते इयरिंग हिल गये।

सड़क पर कुछ गांव वाले जा रहे थे। मोहन उन जैसा नहीं है, बेबी उन औरतों जैसी नहीं है, दोनों के दो-दो रूप हैं। उस युगल में उनकी पहचान उनकी अपनी मनुष्यता की माप है जिसे यह दोनों भारतीय मध्ययुग के सामंतवादी स्वरूप का दलित आकार कहेंगे और जो दोनों में एक सामंजस्य है वह आपस की गुलामी का एक तार है, जो निरन्तर बज रहा है, जैसे इतिहास की विराट वीणा पर आज फिर समुद्रगुप्त जैसे विजयी की उंगलियां चल कर वह स्वर गुंजा रही हैं जिसकी कोई भाषा नहीं है, जो स्वर मात्र है, जिसकी स्थिरता जिसकी गति है और फिर गति में एक लचक है···

मोहन ने व्याकुल होकर देखा। शोषण के दो रूप हैं। एक के हाथ में देवत्व है पर उसकी पहचान नहीं, दूसरे में अपना दर्द है, अपने के साथ-साथ उस गांव वाले के दुख का भी दर्द समाया हुआ पिंजरे में से बोल रहा है, छटपटा रहा है।

मोहन ने देखा, दूर चौखण्डी खड़ी है वह ऐसे ही खड़ी रहेगी। शताब्दियां बीत जायेंगी किन्तु फिर भी कारवां की तरह चलता मनुष्य एक न एक बार उसकी ओर

मुड़कर अवश्य देखेगा। प्रत्येक शताब्दी में एक अहंकार है, मनुष्य का वैमनष्य उसे आज तक एक दूसरे के ध्वंस की शक्ति देता रहा है, क्योंकि उसे यही नहीं मालूम था कि वह जी जो रहा है, क्या यह पुण्य है अथवा पाप? क्या इस निरवधि उपहास की कोई सीमा भी है जो वह कहीं जाना चाहता है पर जा नहीं सकता क्योंकि उसके हाथ बंधे हैं, पैर बंधे हैं, और सबसे ऊपर भाषाओं की तरह विभिन्न होकर मन भी बंध गया है।

मन में आया वह चिल्ला उठे और उस विराट गौतम की पाषाण की मूर्ति की भांति उसका स्वर उठ जाये। भय की आक्रांत वेदना में न जाने किस तिमिर का इतना-इतना उद्वेग है कि नीरवता में कोई प्रफुल्लता नहीं। क्या प्रफुल्लमना परिस्थिति केवल तृष्णा है जो मनुष्य को व्याकुल करके पराजित कर देती है?

और मोहन उत्तर नहीं पाता क्योंकि वह एक कर्मचारी मात्र ही तो है इस दलित भारत में अंगरेजों का, जिनके भिक्षुत्व पर फिर एक सम्राटत्व है। किन्तु क्या इतिहास की भूलों को ठीक करके फिर उन पर नहीं चला जा सकता? उनको फिर प्रयोग में नहीं लाया जा सकता?

बेबी बैठी है। होगी कोई चिरंतन छाया। उसे तो यह सोच है कि क्या वह दुख भी कोई दुख है कि मन नहीं भरता। यदि सब का पेट भर जाये तो क्या मन भी भर जायेगा?

उत्तर है—नहीं।

कुछ का पेट भरा है, बहुतों का नहीं।

जिसका पेट भरा है उसका मन नहीं भरा। जिसका पेट नहीं भरा उसे मन भर की फुर्सत नहीं है। न उसके पास मशीन है, न पूंजी की चिन्ता करने की ही उसे आवश्यकता रही है।

तो क्या जिसका पेट भरा है वह आगे बढ़ता जाये? बढ़ेगा कौन?

व्यक्ति या समाज? व्यक्ति या समाज?

घोर अट्टहास है यह इतिहास मनुष्य की आततायी वासना का।

मोहन बेबी की ओर देख रहा है, बेबी आकाश की ओर, आकाश वहीं नहीं, अनन्त तड़पन, सिर में दर्द, और युग एक लेप चाहता है, और सारनाथ का खंडहर पूछता है···क्या तुम रक्त की बात कहते हो?

गौतम की शपथ, मोहन निरपराध है?

मत कहो कि मनुष्य का निर्वाण उसके पास से खो गया है। पिता से पुत्र की परम्परा भी तो दीपक से दीपक का आलोक है।

वेदना से मन जर्जर हो रहा है। आज जब संसार में इतनी हलचल मच रही है तब क्या सोच रहा है यह मोहन? क्या उसे एक क्षण भी अतीत की ओर देखने का अवकाश है?

'है,' आश्वासन का गंभीर स्वर बोल उठा है—'निस्सन्देह ही है।'

मनुष्य अपनी पीढ़ी में अपना आदि और अन्त बांधे नहीं खड़ा था और होगा के

बीच की एक कड़ी मात्र जो उसका 'है' है उसको वह काटकर नही रख सकता जैसे जड़ और चोटी के बीच के बोधिवृक्ष के तने को अकेला नहीं काटा जा सकता, जैसे बहते हुए महानद की प्रत्येक लहर एक दूसरे से गुंथी हुई है और समय भी इन्हीं लहरों के समान है, जिसकी धारा में सब कुछ बहा जा रहा है किन्तु उठाकर देखने का प्रयत्न करो, केवल तरलता, जिसमें क्रान्ति की आग पड़ते ही वह भी नहीं रहती और केवल हवा··· हवा···भंवर मारती हवा ही वात्याचक्र बनकर घूमने लगती है।

मोहन ने कहा---"वेबी ! न जाने क्यों मैं व्याकुल हो उठा हूं।"

वेबी को भय नहीं हुआ। उसने विश्वास से हाथ पकड़कर कहा---"खंडहर देखते समय यह न भूलो कि तुम खंडहर नही हो। जितनी वास्तविकता आज है उतनी ही उस दिन भी अपने अलग रूप में रही होगी। उसमें तिनके की तरह न बहो।"

किन्तु, मोहन सोचता है, यह पत्थर की मूर्तियां तिनकों की तरह बहकर हमारे पास आई है या भारी जहाजी बेड़े की तरह डूब गई थीं और हमने उन्हें निकाल लिया है।

वेबी यानी वरूचा ने तिनककर कहा, "लगता है कुछ सोच ही रहे हो ? मुझे तुम्हें गम्भीर देखकर शंका हो रही है।"

मोहन ने हंसकर कहा---"यह शंका ही तो विश्वास का अनात्म है।"

सारनाथ के खंडहर जैसे कराह उठे। मोहन हंस रहा था।

2

तांगा रुक गया। दोनों उतर गये मोहन ने आगे बढ़कर कहा---"म्यूज़ियम।"

वरूचा मुसकरायी।

घूम-घूमकर वे बरामदे में रखे प्रस्तर खंडों को देखते रहे। मोहन का हृदय पराजित हो रहा था। पत्थरों की उन अप्रतिम कल्पनाओं को देखकर लगा, हृदय की गति एकबारगी रुक जायेगी। किसी के हाथ का कौशल यदि शताब्दियों तक जीवित रह सकता है, एटम युग के मनुष्य के हृदय पर भी अपनी सौन्दर्य-कृति का वही रहस्यमय प्रभाव डाल सकता है तो यही जीवन की समस्त शक्ति और वासनाओं का चरम उत्कर्ष है। मनुष्य का जीवन भी इसके सामने क्षणभंगुर तो था ही, अब व्यर्थ लगने लगा है क्योंकि निर्माता का निर्मित से तादात्म्य, प्रथम की हार और द्वितीय की घोर विजय है।

हाथ फिराया। स्पर्श की लोच में एक भी सुख का कंपन नही। वेबी के हाथ का स्पर्श एक ओर, समस्त संसार की ऐतिहासिक कला का सौन्दर्य एक ओर। शरीर की आदिम पिपासा का केन्द्र तो इन जड़ टुकड़ों में नही है। दृष्टि का केन्द्र पत्थर है, पत्थर इतिहास है, तो क्या मनुष्य का इतिहास केवल पाषाण ही है ?

शताब्दियों की इस जड़ता का आधार क्या है ? एक दिन रहा होगा-जब सही पत्थर अपने समस्त अनगढ़ रूप में पहाड़ों में पड़ा रहा होगा। हवा इस पर से बहती होगी। उससे भी सहस्रों वर्ष पूर्व इसका जन्म हुआ होगा। फिर एक दिन प्रभात की

शीतल गुहार में किसी ने इसे देखा होगा, उठाया होगा और फिर शिल्पी ने आनन्द-विभोर होकर जयनिनाद करते हुए इसमें प्राणों का आवाहन किया होगा। आज वही जड़ता एक चेतना बनकर खड़ी होने का दुस्साहस कर रही है ? किन्तु उस दिन तो सुन्दरी ने नयन विस्फारित कर देखा होगा कि अमिताभ ! मेरी गोद में भी तेरा जैसा एक अमित आभावाला बालक खेले जो संसार में तेरी ही भांति आलोक फैला दे। प्रत्येक माता की यह प्रार्थना, यह अधिकारवंचित हाहाकारमयी तृष्णा भी क्या उस पत्थर को सवाक् कर सकती है ?

'नहीं।' दीवारों की प्रतिध्वनि मन का मौन बन गयी है। कोई नहीं सवाक् कर सकता। अमिताभ भी शायद अपनी मूर्ति देखकर लज्जा में पानी-पानी हो जाते, क्योंकि अमिताभ का रूप नष्ट हो गया, कलाकार का मन अपने सौन्दर्य की प्रतिकृति गढ़ने लगा और धर्माचार्यों ने क्या किया ? गौतम के सत्य को कुचल देनेवालों ने उसकी हड्डियों को जगह-जगह बांट दिया जैसे सम्राट जगह-जगह विजय-स्तम्भ बनाते फिरते हैं। मन खट्टा हो गया। बरूचा ने मन्त्रमुग्ध होकर कहा —"कितना सुन्दर है यह सब !"

और उन्होंने देखा कि किसी गहन अन्धकार में कोई शिल्पी बैठा है। हाथ की छेनी चल रही है। उसके मन का रूप धीरे-धीरे आकार ग्रहण करता जा रहा है। पाषाण और भक्ति की वासना का सामंजस्य उसकी उपचेतना का सबसे बड़ा संवेदक है। सापेक्ष रूप का अर्द्धनग्न नृत्य जिसमें अर्द्धनग्नता केवल वासना को प्रज्वलित करने के लिए ही है और कुछ नहीं, और कुछ नहीं···

पहाड़ों के सामने खड़े हुए यात्री, यदि तू नहीं है तो पहाड़ तेरे लिए नहीं है, किन्तु पहाड़ तो फिर भी है, निरन्तर है और बदलता जा रहा है तेरी ही भांति। किन्तु तू तो उसे देख नहीं पाता ? सारा संसार जाग उठना चाहता है। अध्यात्मवाद की तपिश में हड्डियां आज चटक जाना चाहती हैं क्योंकि बोलते पत्थरों की भूख की मर्य्यादा के लिए मनुष्य एक दिन अपने मनुष्यत्व को पांवों से कुचलने के लिए तैयार हो गया था और उसने उन्हें अपने जीवन की चरम आसक्ति समझकर जिसके एक खण्ड को गौतम समझ कर, जिसके एक खण्ड को गौतम बनाया था, उसके दूसरे खण्ड को बन्दीगृह की कठोरतम प्राचीर बनाया।

पाषाणों की इस गरिमा में युगांतर की संस्कृति अप्रतिहत गीत बनकर बही आ रही है।

मोहन सुन रहा है। वाहिनी का तुमुल निनाद, कवि का आवाहन, नारी के नूपुरों का मादक क्वणन, और धर्म का गम्भीर घोष सब आज मौन हो गए हैं। किन्तु इस पत्थर के टुकड़े पर अशोक आता है, कुषाण सम्राट सिर झुकाते है, संसार को हिला देनेवाले विराट आंदोलन अपने आप सामने से गुजर जाते हैं।

फिर भी एक प्रश्न है : बेवी समझ सकेगी ?

"किन्तु," मोहन ने बरूचा के कन्धे पकड़ कर कहा—"बेवी ! संस्कृति की यह परम्परा हमारे जड़ का अविनश्वर स्वरूप है या हमारी गति का प्रेरक रूप ?"

किन्तु दार्शनिक हठात् कुंठित हो गया। पुरुष का प्रश्न लय हो गया क्योंकि बेबी के कंधों पर मोहन को इस स्वच्छन्दता से हाथ रखे देखकर पास खड़ा नौकर मुसकरा रहा था। बेबी ने हाथों को हटा दिया। बेबी के मस्तिष्क में विचार आया—काश वे यूरोप में होते जहां स्त्री और पुरुष समुद्र तीर पर नग्नप्राय घूमते हैं क्योंकि वे स्वतन्त्र हैं उनके मन स्वतंत्र हैं और स्त्री की जंघाओं में उनके लिए इतना आकर्षण नहीं रह गया है। क्या यह सत्य है कि पौरुष के अप्राकृतिक मेल के कारण नारी को पुरुष की वासना जगाने के लिए वहां जंघा तक खोल देनी पड़ती है? कितनी उलझन है!

लेकिन आज यूरोप से उन्हें डर लग रहा है। लगता है वहां का मनुष्य और कुछ नहीं जानता। रोटी ही उसकी एकमात्र पुकार है। उस भौतिकवाद में वह सब भूले जा रहे हैं। उन्हें आज कोई लज्जा नहीं है। किन्तु मारनाथ के युग में तो स्त्रियां अपने उरोजों को खोले फिरती थीं। कितनी निर्लज्ज रही है हमारी प्राचीन संस्कृति।

तब एक ठोकर लगी। पूर्वजों के प्रति घृणा हो आई कि जब वे स्वतन्त्र थे तब वे भी उतने ही भयानक रूप से कामुक थे। गणिका को सौन्दर्य की देवी कहने वाले। ओ योगी! आत्मा का धन कहां है? क्या तेरे जंगलों में पक्षियों के कोमल मर्मर में मनुष्य का मोक्ष है? किन्तु आत्मा तो किसी में लय नहीं होती। उसका निर्वाण होता है। होता है लय, उधर से दूसरी पुकार आ रही है और मोहन नहीं समझ सका कि बेबी अचानक ही सिहर क्यों उठी।

क्या है हमारी संस्कृति? अस्ति या नास्ति? आत्म या अनात्म। आज जो हिन्दुत्व का गढ़ दृढ़ करने का प्रयास हो रहा है क्या स्वतन्त्र मतों का सिर काट कर सब धड़ मिलाये जा रहे हैं कि पता नहीं कौन शत्रु है कौन मित्र?

यह भेद आज एक भी भेद नहीं लगता क्योंकि जो ज्ञान भेद का कारण है वही लुप्त हो चुका है, उसके कोने मोड़कर उसे गोल कर दिया गया है और वह लुढ़कता है, लुढ़कता है जैसे ढाल पर गिर गया हो, कोई नहीं जानता कि जैसे-जैसे वह नीचे गिरता है उसका वेग बढ़ता जाता है···

और मारनाथ का समस्त वैभव चिल्लाने लगा मानो पराक्रमी सम्राटों का शीश भूमि पर कटकर गिरते समय विजेता की सेना की गर्व से भरी हुंकार फूट निकली हो।

विदेशी और स्वजातीय एक हो सके थे। आज नहीं हो सकते। एक ही हारेगा या दोनों ही कभी के, कभी के हार चुके हैं। मुझे देखकर हंसो नहीं। एक दिन मैंने भी गौरव देखा है। कौन नहीं करता है, मृगदाव? एक दिन समस्त एशिया तुम्हारा मुख देखता था किन्तु उस शक्ति का क्या उपालंभ है जिसने ध्वंस की धूलि पर खड़े होकर कहा कि किस आत्मा का वर्णन कर रहे हो? शक्ति ही उसका मूल है। उसका आधार मनुष्य का विश्वास है! मनुष्य का विश्वास, क्या उसका भी कोई विश्वास किया जा सकता है? सदा से प्रत्येक युग में वह अपने को ठीक समझता रहा है और प्रत्येक नवीन पीढ़ी ने घृणा की है, घृणा को भय ने दाबा है, वही श्रद्धा बन गई है।

बेबी ने उदास स्वर से कहा—"मोहन! तुम समझते हो यूरोप के एक आदमी

का हृदय इन वस्तुओं से इतना ही प्रभावित होगा ?"

"पूर्व और पश्चिम की संस्कृति का भेद क्या है ?" मोहन ने कहा। बेबी ने आंख उठाकर देखा। मोहन ने फिर कहा—"मनुष्य का अज्ञान ही उसकी संस्कृति का गर्व है। वास्तव में मेरा और तेरा कुछ नहीं। जो कुछ सामूहिक मनुष्य ने आज तक उपजाया है वह प्रत्येक मनुष्य की संपत्ति है। यदि कपड़े और भाषा का बन्धन लिया जाए तो वह क्या भारतीय संस्कृति में नहीं, सांस्कृतिक रेखा कहीं नहीं ? पंजाबी पठान के अधिक निकट है द्राविड़ के नही ?" बेबी देर तक एकटक देखती रही। फिर कहा— "देखो न यह कितना कौशल है ?"

मोहन ने उपेक्षा से कहा, "किन्तु इस कौशल का भी कोई मोल नहीं। मनुष्य का हृदय घृणित है, कुरूप है। अतीत की यह तृष्णा शायद उस बर्बरता की पिपासा है जिसकी ओर वह लौट जाना चाहता है। मन्दिरों में षड्यन्त्र हो रहे हैं। पत्थरों की तरह की इन सदियों को उखाड़-उखाड़ कर बाहर फेक दो ! आओ इन गड्ढों में चलकर ढूढ़ें। कौन है वह शिल्पी ? सम्राट के सामने सिर झुकाये खड़ा है। कलाकार किमी के सामने आत्मा का सम्मान झुका दे ? वह सृजन करने वाला है। वह अनन्त सुख का स्वप्न मनुष्य के लिए सजीव निर्मित करता है। मैं नहीं समझता बेबी, मनुष्य ने भारत में आगे खोज करने का प्रयत्न ही क्यों नहीं किया। जो किया तो यही कि शून्य आकाश में कुछ नही है, बताओ इसमें बुलबुल है या कौआ। एक अद्वैतवाद है, दूसरा विशिष्टाद्वैतवाद।" वह कठोरता से हंसा, फिर कहा—"कुछ नहीं है," फिर कहा—"है, हो गई पूर्व मीमांसा और यह उत्तर मीमांसा।" हंसी फूट निकली। उसने उमी व्यंग से कहा, "परिनिर्वाण की महत्ता में सिर घुटा दूं या पुनर्निर्माण के लिए बालों में कंघी फेरना प्रारम्भ कर दूं।"

बेबी ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"इतने निष्ठुर न बनो मोहन ! आखिर हम किसी सौन्दर्य को देखने आए हैं। लौटकर वही वात कर लेंगे।"

मोहन कुण्ठित हो गया। तो वह चाहती है कि निबाह दिया जाए यहां। हां, ताली दोनों ही हाथों से बजती है। समझौता भी एक वस्तु है। उसका अपना महत्व है। बेबी आखिर तो स्त्री ही है। कहीं मोहन का यह रूप ही उसकी अन्य विशेषताओं को दवा गया तो ? किन्तु मोहन का हृदय नहीं मानता। उसने बेबी का हाथ पकड़ लिया। और उन्होंने एक-दूमरे की ओर देखा। भरी-भरी आंखों मे, कि बस पूछो मत।

मोहन मिद्धार्थ नहीं है, बेबी यशोधरा नहीं है। देखने को वही दृश्य लगता है। वम इनके कपड़े बदलवाने की देर है। और फिर हुआ एक स्पंदन। मरते हुए आदमी की जैसे सांस फिर से चलने का यत्न कर रही हो।

"एक दिन इस द्वार-शाखा के नीचे से किसी सम्राट का आकार निकला होगा। बेबी ! यह मैं क्या देख रहा हूं। मेरा मन आज फट जाना चाहता है।"

संसार में कितने ऐसे आदमी हैं जिनका मन फटना है। मां के सामने बच्चे का खून होना है, विधवा को सामने करके उससे बलात्कार किया जाता है···फिर भी बने रहने की लालसा जीवित रहती है जैसे अपमानित पत्थर हों, जैसे यह करोड़-करोड़ जनता

केवल किसी संस्कृति का खंडहर बनकर बची रह गई है, अपने आप में अर्द्धमूर्छित, बौराई-सी···

"देखते हो यह सुहावटी ?" बेबी ने कहा—"क्षान्तिवादी नामक तपस्वी के रूप में बुद्ध अपने उक्त पूर्वजन्म मे बनारस के राजा कलाबू की स्त्रियों को सन्तोष का उपदेश सुनाकर उन्हें भिक्षुणी बना रहे हैं फिर उसी अपराध में उक्त राजा द्वारा उन्होंने अपना हाथ कटवा दिया।"

मोहन हंसा। बिल्कुल ही बर्बरता से कहा, "कैसी प्रतारणा है। उस राजशक्ति के विरुद्ध उठने का साहस नहीं होता इन लोगों को। बस आत्मा और संतोष खोजने लगते हैं। और बुद्ध ने कहा था— ज्ञान ही तो जीवन का असन्तोष है···"

और दूर सूखे पेड़ों के पीछे सूरज कांप रहा है। कितना प्रशांत और भव्य है, जैसे संतोष का अंधियारा अब उन रंध्रों को मूद देगा जिनमे से आलोक की ये किरणें भीतर घुसती चली आ रही थीं धँसती चली आ रही थीं। अब वह द्वार सदा के लिए बन्द हो जाना चाहता है। संध्या का यह शिथिल नूपुरशिंजन झूम रहा है। मोहन हंसा। अच्छा है संध्या ऊंचा एड़ी का जूता पहनकर खटखट तो नहीं करती! वायु के झकोरों में जैसे उलझते हुए यौवन की पुकार है। कितना रहस्य है जो आज के संसार की ठोकर से डरकर एक बार उन पाषाणों के पीछे छिपकर बैठ जाना चाहता है कि कोई फिर घोड़े पर चढ़कर रूंदने का प्रयत्न न करे।

उफ! घृणा की कचोट! "ओ बेबी!" मोहन पुकार उठा। बेबी ने दूसरा हाथ भी उसके उसी हाथ पर रख दिया। नौकर इस समय शायद बाहर है। तभी कोई चिन्ता नही। क्या कभी दुनिया में स्वर्ग का कानून भी चलेगा कि बस और कोई नही। हम तुम। किन्तु जब यम ने यमी के खण्डित संयम की वासना को पाप कहा जिसे आज तक सब सुख की चरम सीमा समझते थे तो फिर यह दोनों ऐसे क्या अनोखे हैं जो?

तब बेबी ने कहा -"मोहन! एक दिन जो हो चुका है, वही क्या हमारे जीवन का सबसे सुखद चिह्न है?"

मोहन इसका उत्तर देना चाहता है पर दे नहीं सकता क्योंकि अपर्याप्ति की यह सुख-भावना मन को भयंकर कष्ट देती है, पूछो उससे जो भूखा ही रहता है जिसको कभी यह सोचने का अधिकार नहीं मिला कि वह भी मनुष्य है।

एक ने कहा—हां, तो बराबर है।

पर उस साम्य का क्या अर्थ कि तुम सब पत्थर की एक मूर्ति को समान भाव से देख सकते हो। आंखें पथरा जाएंगी कि पत्थर से कोई किरन न आज तक कभी फूटी है, न फूट ही सकेगी।

अज्ञान का भयानक अजदहा जिस तरह सदियों पहले मनुष्य को चबा रहा था आज भी उसी तरह चबा रहा है। किन्तु आज एक सबसे बड़ी बात है! मनुष्य का ज्ञान आज एक घोर अज्ञान के बल पर खड़ा है, अगर आज सारे बंधन तोड़कर हम उसे नहीं बचा लेते तो वह सदा के लिए नष्ट हो जाएगा और मनुष्य फिर खोहों में जा छिपेगा

क्योंकि फिर प्रकृति का भयानक परशुराम कुठार लेकर उसका ध्वंस करने के लिए उसके पीछे हाथ धोकर पड़ जाएगा।

कोष्ठक में बांधकर जो सभ्यता के सवालों का कठिन रूप दे दिया गया है उसे बालक समझे तो कैसे ? और आगे चलकर तो वह क्या समझेगा जब उसके मस्तिष्क में रूढ़ि के केंचुए चलने लगते हैं, रेंगने लगते हैं।

किन्तु ज्ञान का कष्ट अपने आप में कम है, अपनी अपूर्णता मन को कचोटे क्या यह कम दुख है, और दूसरी ओर यही न मालूम हो कि अभी हम अपूर्ण हैं अतः आगे बढ़ने के स्थान पर वहीं सड़ा जाए, गला जाए। कौन-सा पथ अच्छा है। ओ मध्यमा-प्रतिपदा के अनुस्वार सम गुंजन ! बता दे, मैं किसे मर्यादा कहूं ? क्या यही लन्दन का वैभव है, या गांवों की निर्जीविता। दोनों का सत्य है---ममता की अज्ञान छाया। सत्ता के भयानक भेड़िये ! अपने आप को फाड़ खाना चाहता है ?

वेदना की नश्वरता पुकार रही है। बेबी ने मोहन का हाथ छोड़ दिया। वह मुसकराई। उस मुसकान में एक वैषम्य है, एक विषाद है। शायद आलिंगन करने की एक चाह है कि शरीर की मांसल कोमलता, एक कठोर दृढ़ता से दबकर फैल जाए और ऊष्मा की तृप्ति अपना घर कर ले।

किन्तु नौकर लौट आया था। संसार का बाह्य व्यापार हो सकता है। दुनिया का काम आंतरिक व्यापार के लिए है पर संस्कृति कहती है कि वह पाप है।

"तुम तो कभी कविता लिखते थे न ?" देवी ने कहा।

मोहन ने कहा—"सच मुझे याद आया। बहुत दिन पहले एक गीत लिखा था जिसका भाव कुछ-कुछ याद रह गया है। अब तो वैसी चीजें चाहूं भी तो नहीं लिख सकता क्योंकि मन का व्यक्तित्व अब न उतना एकांगी है न उसमें इतना दर्प ही शेष है। पर एक दिन जीवन की अवस्था, किसी परिस्थिति की वह सच्ची अनुभूति थी इसी से उसे सुनाता हूं।"

'आज कोई अगम के अनल से ढूंढ़कर प्यार का एक कण लाया है।

आकाश नीली अंगड़ाई ले रहा है। पृथ्वी की पलकें अलसा गई हैं। ओ अनोखे ! तू मेरी खेया वहां ले चल जहां कोई विषाद नहीं हो।

जहां अनन्त आलिंगन है, जहां केवल सुख का चिर स्पंदन है, ओ पागल ! जहां पीली धूप बिछी हो, तू उस सलोनी छाया में मेरी खेया को ले चल।

सागर चरण चूम रहा है, तारिल आकाश छाया करने के लिए चंदवे की तरह टंग गया है, मृदुल समीर का मंथर स्पर्श थरथरा रहा है, चारों ओर यौवन की काया ओजस्विन हो रही है।

अरे मेरे जीवन ! सुन्दरी ने उषा में शिथिल सद्म फेंक दिए है, जा तू अब भीम वेग में जाकर नवल शतदल ले आ, हे मेरे नाविक ! उस ओर ले चल जहां पिपासा का नर्तन गूंज रहा हो।'

बेबी हंस दी। उसने कहा—"लेकिन मांझी ! आज समुद्र के सम्मोहन का प्रसार

हो रहा है। इसलिए धारा में खेना होगा मांझी ! जहां नये शतदल खुल जाने के लिए फड़क रहे हों, जहां तिमिर के पगचिह्नों का आलोक मिटा दिया हो, उस नई छाया में चलो मांझी ! केवल फिर गंभीर धारा हो, सिंधु नीर ही ओर और छोर हो आए, किन्तु एक ही गीत की लय हिलोर में, हे मेरे मांझी ! तू मेरी नाव को खे चल।"

मोहन विस्मित-सा सुनता रहा। आह ! आज यह कैसा अश्रुत संगीत अपने समस्त निरावलम्ब आकर्षण से आह्वान दे रहा है। आज मानो भवबंधन तोड़कर रूप नया आलोक प्राप्त कर जाग उठा है। उसके मुख से निकला—

'आज सत् का चिनमय आनंद
बुद्ध जागा है शांत अशोक
आज जड़ जंगम मे हो व्याप्त
गूंजता है यह तन्मय गान
मुक्त कर तन के सोये प्राण;
धार लेकर झर झर निर्झर
जगा दे सोये स्वप्न उदार
कि जिनमे वे जीवन के सत्य
मुंदे है, खोलें सीधे द्वार,
छोड़ कलुषो की भीषण राह
युगों तक सुन लूं बस यह गान
आज मिल गए कर्म तन प्राण।'

दोनों फिर चुप हो रहे।

देर तक वे कुछ नही बोले। नौकर ने उन्हें देखा। एक बार इधर से उधर गया फिर उधर से इधर आया। किन्तु मौन शायद टूटना नहीं चाहता। निःशब्दता की यह सरलता सबसे बड़ा रहस्य बनना चाह रही है।

वह हटकर खड़ा हो गया।

मोहन ने आंख उठाकर देखा फिर कहा, "कोई पार क्यों नही मिलता ? क्यों नहीं मन सोचना वह कुछ पा गया है।"

किन्तु सामंजस्य कहां है इस छलना का ? कही नहीं। इस छेद को जितना ही ढंको उतना ही यह बड़ा होता जाता है क्योंकि इसके नीचे समुद्र का जल है जिसके दबाव को केवल आकाश का सा प्रसार झेल सकता है, साधारण रोक उसके सामने नितांत असफल है। और छेद छेद ही है उसमें से कुछ घुसेगा, और डुबाने का ही प्रयत्न करेगा।

एक सरकार है। वह कानून बनाती है कि एक-एक हजार रुपये के नोट जिसके पास हैं वे बेकार हैं किन्तु बैंक के मैनेजर उन्हें लाइसेन्स देते हैं, हर नोट पर सौ-सौ रुपये बनाते है···

कौन कहता है कि यह जर्जर कपड़ा सिलने की भी कूवत रखता है। अब नहीं क्योंकि संध्या का अन्धकार अब फिर दूर से चुनौती दे रहा है। सदियों के बाद भी यह

समस्या ऐसी ही बनी रहेगी क्योंकि मनुष्य की समस्या कोई-न-कोई जीवित रही ही ही आएगी। उसके बिना मृत्यु है, जैसे आज इन खंडहरों के पास शिकवे हैं कोई सवाल नहीं। यह कहीं भी रखे जा सकते हैं पटने में या बम्बई में, किन्तु इनको किसी से कुछ नहीं कहना, न ये सुनना चाहते हैं। चाहना तो किसी का भी अपना अधिकार है, पर अधिकार की निर्वीर्य्यता आज फिर कचोट उठी है।

बेबी ने हठात् उसका हाथ पकड़कर कहा—"ओह, लवली! शृंगार!"

स्त्री की वह अनिंद्य सुंदर खण्डित मूर्ति।

पुरुष की किस घृणित वासना ने इसे खण्डित किया होगा। क्या उसकी जहरीली आंख से पत्थर के उरोज को भी नहीं देखा गया? किस उदासीन तृष्णा का वह भयानक हलाहल होगा कि केवल उसीको तोड़कर उसे लगा होगा कि अब उस भूख की तृप्ति हो गई। तृप्ति भी उसकी जिसके प्राकृतिक रूप को पाप कहा गया और लोहे के फलक से पाप मिटाने को फिर एक पाप किया गया।

मोहन कांप उठा। कितना अपमान था। मनुष्य का कैसा घोर पतन था। उसे लगा वह मर कर भी मुक्त नहीं हो सकेगा।

स्त्री और पुरुष युग-युग से बद्ध हैं। दासत्व की भीषण पराजय ने उनके हृदय में घोर घृणा के सामंजस्य को रहस्य में परिणत कर दिया है। मोहन ने सोचा—मानों वह आज उस पुरुष का प्रतिनिधि है जो सैकड़ों वर्ष पूर्व इस मूर्ति की अधनंगी स्त्री के सामने खड़ा रहा होगा। स्वामी बनकर, स्त्री को, दासी को, अपनी स्वामिनी कहकर।

लोहा लोहे पर बजना चाहता है।

तुम नग्न हो और मैं भी नग्न हूं। और हम सारी सृष्टि को देख रहे हैं। तुम अब भी रूठ रही हो, मैं मना रहा हूं। फिर आज पुरातन ही आज फिर नवल हैं।

पुरुष पुकार रहा है कि मेरा यह भुजबन्धन छोड़ दो, मैं तुममें यों नहीं समा सकूंगा क्योंकि यौवन भयानक रूप मे क्रीड़ातुर हो उठा है। तब आज क्या इसे गला घोटकर मार देना ही हमारी विजय है? हे माध्यमिक पथप्रवर्त्ती बोल कि वन-वन में तन्द्रा छाई हुई है, नारी अपने विराट रूप मे कोमल जाल फैला रही है, पुरुष का हृदय सागर गर्जन कर रहा है, और लहर-धार स्त्री के किनारों मे टकराकर चूर-चूर हुई जा रही है।

मैं जिस रात का अन्धकार हूं वह मेरी प्रतिच्छवि लेकर लगती है कि वह उस अवमान की शृंखलाधात्री एक नये विहान का प्रसार है, जिस प्रकार सागर की फेनिल लहरें फैल जाती हैं, लहरों की गुलेल चलानेवाला फिर रबड़ को पीछे झटका देकर खींच लेता है। नारी के अचल पगों के चारों ओर समुद्र विक्षुब्ध हो उठा है।

अन्तराल का प्रसार आलोक में घुलता जा रहा है। आकाश ने डालों पर ठोड़ी टेक दी है। ओ यौवनमयि पाषाणी! आज भी तुझमें आवाहन की मरीचिका शेष रह गई है।

कोई कुछ समझना चाहता है किन्तु समझ उस लकड़ी के जाले की तरह है जिसे दूर से देखकर लगता है कि यह विश्व है किन्तु वह मक्खी के फंसते ही उसका गंदा रस

चूस लेती है। एक सिहरन।

बेबी ने कहा—"मोहन ! दुनिया आज क्या है ? हजारों साल बीत जाएंगे और तब भी मनुष्य इसी प्रकार अपने अतीत को देखकर भय किया करेगा। ज्ञान की कोई भी अवस्था नहीं। जब मनुष्य को अपने अतीत की ओर देखने की भी लालसा जाती रहेगी, वह निर्माण के लिए सदा ही गोते मारकर दम घोटनेवाले पानी में घुसा करेगा।"

और मोहन ने काटकर कहा—"यही मनुष्य की प्रकृति पर विजय है अन्यथा जो हम आज सोचते है वह कभी भी नहीं सोच पाते।"

लगा गौतम के अभिमान का पत्थर अन्तिम बार नहीं, बार-बार इसी तरह मनुष्य के इस भय को देखकर हंसा करेगा और मनुष्य प्रतिध्वनि को सुनकर भय से ही आंखें विस्फारित कर देखेगा और जब-जब बुद्धि पराजित होगी तब-तब वह चीत्कार कर उठेगा—'देव ! तुम महान हो···'

और आज वह महान है जिसने एक दिन महानता की जड़ खोदने को अपना धर्म कहा था, संघ की आड़ ली थी।

मोहन ने कहा—"बेबी ! आज रूप की चेतना से प्राण हार गयेहैं। तुम कहोगी मैं अपरूप चिन्तन करता हूं, पलायनवादी हूं। मेरे हृदय मे यौवन का सा पवित्र तूफान उठ रहा है। लाओ मुझे रूप की वाणी दो, कि रूप गा उठे आज और मेरी छवि तन्मय होकर उसमें लय हो जाये। आज मैं नग्न रूप का वह अमर रूप देखू कि फूल और भ्रमर दोनों मत्त होकर गूज उठें और कहें—कवि ! आज भी मधु का साज नही दे सकोगे ?"

बेबी ने कहा—"उड़ रहे हो अब तुम। अच्छा जरा उतर आओ तो हमारी समझ में भी आये।"

"मैं पूछता हूं बेबी, यदि यह मनुष्य की समस्या नही तो वह इस सबके ऊपर इस रूप में सोच कैसे लेता है ? क्या यह सोचना भी अपने आप को धोखा देना है ?"

किंतु बेबी अपनी आंखो मे अपने आवाहन का समस्त बल डाले खड़ी थी।

उसने कहा—"जीवन ! मनुष्य का व्यक्तित्व एक चंचल लहर है, उसमें हृदय मछली की तरह बहता है और वह तरंग उसे कभी-कभी किनारे पर छटपटाने को छोड़ जाती है फिर अपने में खींच ले जाती है। तब लगता है सब इन्द्रजाल है। और यौवन का खुमार ढलने पर परंपरा के शैशव पर दुलार बढ़ता है तब व्यक्तित्व भिक्षुक के समान हाथ मे छिन्न पात्र लिये अमृत-सा लौट आता है।"

मोहन ने टोककर कहा—"नही बेबी ! अतीत भी हमारे ज्ञान का मापदण्ड है। हमारे पथ का बसन्त है। इन पाषाणों को चढ़ाने के कारण ही लगता है कि भविष्य में अभी भी कुछ बाकी है। जीवन धनुष है, स्त्री प्रत्यंचा है, पुरुष बाण है। स्त्री घर्षण करके लचकर, पीछे हटकर, टंकार करती है, और वह हत्यारे का सा हाहाकार लिये मुक्त भ्रमण करता है।"

नौकर ने आगे बढ़कर कहा—"आइये बाबूजी ! भीतर के कमरों में देख लीजिए।"

वह उनकी भावुकता को देखकर प्रभावित हो रहा था। उन खंडहरों में वही आते हैं जो पत्थरों से बातें करने का हौसला रखते हैं। उसे तो कभी कुछ नहीं सूझा। उसे रटा हुआ है सब कुछ। वह बड़े गर्व से समझाता है जैसे जो कुछ है वह सब उसी की माया है और उसके मुख पर एक गंभीरता लोटने लगती है। उसके मन में पहले कुतूहल हुआ फिर उपहास की स्पर्धा और अन्त में वह दब गया था। अनेक भिक्षुओं का सौम्य रूप उसके मन पर एक गहरी छाप डाल चुका है। जब बाहर की दुनिया में आदमी इतनी छीछा-लेदर करता है, यह लोग कैसे इतने गंभीर रह पाते हैं? कैसे इनकी सारी इच्छाएं मिट चुकी हैं। वे धीरे-धीरे चलते हैं। किन्तु यह दो पथिक, जो अभी यहां खड़े हैं फिर अभी ही चले जायेंगे, कुछ और किस्म के हैं। क्या देखते हैं, पत्थरों को इतना आंखें फाड़-फाड़ कर। और एक वह स्वयं है जो भूखे पेट के कारण ही उन पत्थरों से बंध गया है।

मोहन ने कहा—"बेबी!"

बेबी ने बढ़कर कहा—"अरे हां, चलो भीतर देखेंगे।" कैसा बचपन है, और मोहन ने मन ही मन सोचा—

इस समस्त वैभव को ले जाने दे क्योंकि संध्या में लूट मच रही है। ओ मन! सूनेपन की इस ज्वाला पर मुसकरा कर इतराना होगा।

नीरवता का ऐश्वर्य है। प्राणों का स्वर गीत बन गया है। ओ यौवन! कल ही तो पतझर है। तुझे फिर हंस-हंसकर मुरझाना होगा।

सपने पंखुरियों की भांति बिखर जाते हैं। वह प्यार कराह उठता है। ओ जीवन, इस भूली हुई मादकता में तुझे फिर से सब कुछ ठहराना पड़ेगा।

मोहन ने देखा। बेबी! टीसों की डगर पर जैसे यौवन चल रहा था।

रूप की ही साम्य ध्वनि से चेतना का राग तुलता है। रूप की लाज से ही हृदय आकुल होकर बिछलने लगता है, रूप प्राण बन जाता है।

3

दिन का पग श्रांत हो गया है। गोधूलि मलिन हो चली है। मेरे पथ के अंचल का पुलिन भी धूममय हो गया है। संध्या की मृदुल मुसकानों में पगचिह्नों से भरे पथ पर पेड़ों में से छनता प्रकाश म्लान वसन हो चुका है। इसका प्रकाश ही अधकार का विकास हो जाएगा। इसका परिवर्त्तित हुलास नग्न रूप को भर देगा। अनेक टिमटिम करते व्याकुल पिपासित नक्षत्र आकाश में बिखर जायेंगे। सारे अरमान विफल होकर डूब गये हैं। नैनों के पार प्रतिध्वनि हो रही है। जीवन का श्रांत शिविर सो रहा है। मन में तिमिर व्याप्त है।

कमरे में घुमकर देखा। गाइड ने कहा—"बाबू! यह अशोक का सिंह-शिखर है। देखिए इस पर आज भी कैसी पालिश है। दो हजार से भी ज्यादा बरस बीत गए लेकिन चमक में कोई कमी नहीं। आजकल भी लोग इसे देखकर चक्कर में पड़ जाते हैं।"

कौशल! मोहन ने सोचा। सचमुच इसकी पालिश अद्भुत है जो अभी कत

तनिक भी नहीं बिगड़ी। कैसे भव्य सिंह हैं। कितने पुराने जमाने में ही मनुष्य ने कितनी अच्छी चीजें बना ली थीं। और प्राचीनता की स्मृति उसे ले गई मोहन-जो-दड़ो की ओर, पिरैमिड की ओर। वह तो इससे भी बहुत पुरानी बात है। और एक ताज भी है। लेकिन अभी उसे बने जुमा जुमा कुल तीन सौ बरस हुए हैं। वह कहां ? ताज किसी के प्रेम की स्मृति है। पिरैमिड किसी की मरकर भी सुख की कल्पना का फल है। और यह सिंह-शिखर ? आज गाइड ने केवल अशोक कहा है। क्या वह केवल अशोक ही था ? नहीं। उस समय यह कहीं बाहर भटकता और अशोक ? वैभव ! साम्राज्य !! भिक्षुत्व का अभिमान !! करुणा !!! आकाश के नक्षत्र उसने नहीं तोड़े केवल मनुष्यों का रक्त बहाया था। डाकू ने प्रायश्चित किया। उसे क्षमा मिल गयी।

और बेबी ने सिंह-शिखर के सिंहों पर हाथ फेरा जैसे उन दोनों में से कौन अधिक चिकना है इसकी तुलना कर रही थी। अचेतना के किसी स्तर में यह नहीं भी हो सकता है। मोहन का विचार क्या कोई अपने आप में ऐसा पूर्ण है ?

इसी समय म्यूज़ियम के बाहर मोटर रुकने का शब्द सुनाई दिया।

गाइड ने कान लगाकर सुना, और कहा—"वह देखिए, वह कुषाण, बोधिसत्व है। कुषाणों ने राज किया था—कनिष्क राजा था···"

बेबी ने कहा—"हां कनिष्क था, उसका बेटा हुविष्क था।"

गाइड ने बेटे में कोई दिलचस्पी नहीं ली। कौन जाने कौन कनिष्क था। होगा कोई और जब वे कुषाण-बोधिसत्व की विराट मूर्ति को देख ही रहे थे उसी समय एक अधेड़ अंगरेज, उसकी बीवी, तथा एक पंजाबी परिवार ने भीतर प्रवेश किया। पंजाबी परिवार उनका मित्र लगता था। पिता के बाल खिचड़ी थे, लड़की भड़कीली रेशमी सलवार पहने थी और माता की भौं का गर्व पूरी तरह से तना हुआ था।

पंजाबी वयस्क ने खड़े होकर कहा, "देखा आपने मिस्टर विली ? यह है हमारा प्राचीन गौरव। मैं जब टैक्सिला (तक्षशिला) में खुदाई करा रहा था तब पहली बार मेरी आंखें खुलीं। उफ ! पुराने जमाने में आदमी कितना सभ्य था आज उसका दो पर-सेंट (प्रतिशत) भी नहीं।"

"ओह नो (नहीं)" मिसेज विली ने हंसकर कहा—"ऐसा क्यों सोचते हैं आप?"

"मैं आपको बताता हूं," वयस्क ने आश्चर्य की मुद्रा में कहा—"टैक्सिला की खुदाई में हमने देखा नीचे की इमारत पर ऊपर की इमारत खड़ी है, दोनों की अलग-अलग बनावट है···"

"अक···ख···हहह" अजीब तरह से मिसेज विली हंसीं। "न्यूयार्क में आसमान चूमने वाले बड़े-बड़े घर हैं।"

उस हंसी के प्रहार से वयस्क का सिर झुक गया, लगा वह बड़े दुख में पड़ गये हैं। उनकी बहुत हानि हुई है और वे चाहते हैं कि कैसे उसे पूरा किया जाय।

मोहन को उनका वह रूप बहुत पसंद आया। बेबी उस पंजाबी लड़की की ओर देख रही थी। अब धीरे से बोली—"यह लड़की है ? या तितली कितने रंगीन तो

कपड़े हैं फिर गालों पर इतना भकभूसरा पाउडर, होंठों पर इस कदर ललाई और बालों को देखो जरा, क्या कहने हैं। कमबख्त ! तुझ पर खुदा की मार हो।"

मोहन गले के भीतर ही हंसा। दोनों ने जब मुड़कर देखा तो गाइड उन लोगों की सेवा में चला गया था और यह दोनों यों ही रह गये थे। दोनों एक दूसरे की ओर देखकर मुसकराये।

बेबी ने धीरे से कहा—"हम तांगे में आये हैं। मोटर में आते, सट से उतरते, कैसा रोब रहता, मजा आ जाता···"

मोहन ने कहा—"धीरे बोलो ! कोई समझेगा कबाड़िये घुस आये है।"

बेबी झेंप गई। किंतु आंखों में शायद वह सपना अभी भी जीवित था कि एक मोटर सर्र से आकर रुकी। बेबी को देखकर गाइड दौड़कर आया ··

पंजाबी लडकी किसी बात पर हंस दी थी। माँ सिर्फ मुसकरायी थी। मिस्टर बिली कुछ कह रहे थे। मिसेज़ बिली और वयस्क पंजाबी गंभीर विस्मय से सुन रहे थे।

मोहन और बेबी को लगा जैसे उनका अपमान हुआ है। वे लोग आगंतुकों की तुलना में कुछ हीन हैं अन्यथा वह इन लोगों को छोड़कर जाता ही क्यों ?

फिर याद आया। गया है क्योंकि इसके पीछे भी एक इतिहास का कठोर स्वरूप है। वही बात जानकर मोहन कह सकता है, किंतु उसका मूल्य उतना नहीं हो सकता जितना मिस्टर बिली की बात का। वह गोरा है, उसकी नस्ल लंदन में चलती है, लंदन में हिंदुस्तान के शासक रहते हैं। यह भावना फिर उसी कठोरता की ओर खींचे लिये जा रही है जिसके विरुद्ध अभी तक मन ने संघर्ष किया है, तन घायल हो-होकर उठा है। सभ्यता की चरम सीमा अधिकार है। शासन का अधिकार होने से एक के स्वर में बल भरता है, दूसरे का कंठ निर्बल हो जाता है। इस शासन का वल अधिकारहीनता की एक ऐसी भावना है जो स्वयं उसके मन को कचोट उठती है कि वह बराबर नहीं है। संसार में अनेक राष्ट्र हैं, उनके रहन-सहन, भाषा, भाव सब भिन्न-भिन्न हैं। तब सभ्यता का माप क्या है ? बड़ी-बड़ी बातों पर यह मिस्टर बिली भी संभाषण कर सकते हैं और व्यवहार के समय कुछ और ही आचरण इनके आचार को ढंक लेगा। कितना वैषम्य है ! एक दिन क्लाइव नाम का एक अंगरेज आया था। धोखे से सब कुछ उसने इधर का उधर कर दिया। आज वही सब न्याय्य हो गया है। उसके विरुद्ध प्रश्न करने को गांधी हैं, अनेक हैं किंतु प्रश्न का उत्तर प्रश्नकर्त्ता का लहू है और कुछ नहीं। फिर जातियों में क्यों न रहेगी रक्त की यह घृणित परंपरा ? कब होगा मनुष्य के विश्वबंधुत्व का सपना पूरा। क्या करे मनुष्य ? कितनी उलझी हुई है समस्या उसकी। इतना ज्ञान क्यों सीमित कर लिया है उसने, कि आज वह स्वयं उसके हाथ में कार्य्य-कारण के ज्ञात विश्लेषण में केवल एक कठपुतला मात्र रह गया है ?

किंतु फिर उत्तर मिला। जिस दुर्मद अहं का, युगों से विभिन्न संस्कृतियां, त्याग करने के लिए इतना घोर प्रयत्न कर रही थी आज वह स्वयं ही विच्छिन्न हो रहा है। तभी अहं का मोह इस नवीन की व्यष्टि को बुरा कहने लगता है। इस ज्ञान में कितनी

कठोरता है कि व्यक्ति परिस्थितियों का दास है। वह और कुछ नहीं। यही तो एक दिन कृष्ण ने कहा था कि तू नियन्ता नहीं है, मात्र निमित्त है। तब जो स्वीकार किया था, इसीलिए कि व्यक्तिवाद के ढांचे को पूरा खड़ा करके फिर उसे झुठा देने की प्रार्थना की गई। आज व्यक्ति का निमित्त ही उसका नियंतास्वरूप है जो पुराने आकारों पर हाथ रखकर खड़े होते समय हमारी समझ में आने में इनकार करने लगते हैं। दोनों का संतुलन ही मध्यस्थ बनता है किंतु अबके क्षमा नहीं है, कर्म का प्रतिशोध है।" किसी पाप को मिटा डालने की प्रेरणा है। मन की शुद्धि की युगों तक चेष्टा हो चुकी है कि चोरी न करो? किंतु आज सारे रोमांस का जाल फाड़कर कहा जाता है—'ऐसा निर्माण करो जिसमें चोरी करने के लिए मनुष्य को विवश ही होना पड़े।'

यह नहीं हो सकता है। असत् से ही सत् की भीख ली जाये। वे जो कहते हैं समन्वय ही अपने भीतर से नये सौन्दर्य्य को जन्म देता है, वे एक ही प्रत्यय को हर जगह लगाकर अपना काम निकाल लेना चाहते हैं जो असंभव है। क्रान्ति की घोर अपेक्षा से जीवन की निर्बलता बढ़ती है, व्यक्तित्व के भीतर और भी अधिक अंधकार बढ़ता है और फिर मनुष्य पुकार उठता है कि मैं कुछ नहीं हूं, मैं कुछ नहीं हूं···

किन्तु 'मैं' की चट्टान दृढ़ रहती है तभी उसकी भीमकाया से त्राण पाने के लिये संसार का सारा अवसाद हाथ-पांव पटकने लगता है।

'मैं' की दुर्मद शिला को खंड-खंड करके पीस दो। जिस दिन वायु में उड़ते कण अपना हाहाकार करना छोड़ देंगे उस दिन जनता का त्रिविक्रम का सा स्वरूप प्रबल शक्ति में एक बनकर हुंकार उठेगा उस दिन ईश्वर और आत्म के छोटे आकारों के परे एक ध्वनि गूंजेगी कि हम ही 'मैं' है, हम ही 'मैं' है और शब्दों का खेल मिट जायेगा, क्रिया अपना आलोकित स्वरूप लेकर प्रगट होगी······

बेबी का चेहरा उतर गया था। उसे उस पंजाबी लड़की से घृणा हो रही थी जो सुनने से पहले हंसती है और गर्दन टेढ़ी करके नखरे करती है। उसे लगा सारनाथ के पवित्र खंडहरों का घोर अपमान हो रहा है। फिर विचार आया कि जब यहां उन दिनों सामंत लोग आते होंगे तब साधारण व्यक्तियों का यही तो एकमात्र परिणाम होता होगा। ज्यादा से ज्यादा रहमदिली करके उन्होंने मोहन के कंधे पर हाथ रखकर दो सवाल पूछ लिए, मोहन धन्य हो गया। और बेबी यदि पसंद आ गई तो लेकर अंतःपुर में डाल लिया या फिर दो दिन रखकर छोड़ दिया···

उसने मोहन की ओर देखा। देखा वह कितनी असहाय थी। सारे संसार में पुरुष का उस पर घोर अत्याचार है, किन्तु सब कुछ सहती है यह स्त्री और उसके सुख की भी चरम कल्पना है सत् पत्नी, वीर प्रसू, किन्तु माध्यम होकर सृष्टि चलाने वाली फिर भी तो उस पुरुष के चारों ओर ही अपना संसार बनाती है। क्यों नहीं करती वह अपने ऊपर अत्याचार करने वाले से घृणा क्योंकि एक दिन गौतम ने यशोधरा को घृणित समझकर छोड़ दिया था और संसार ने यशोधरा की इसलिए इतनी प्रशंसा की कि वह उस बर्बर के प्रति ही अपने आप को बलिदान दे चुकी थी? क्योंकि है ही स्त्री इतनी

घृणित ! और यदि घृणा ही उसके जीवन का एकमात्र कारण है तो क्यों पुरुष उसी को रहस्य कहता है, क्यों वह पुरुष के ही चारों ओर चक्कर काटती है ?

क्योंकि स्त्री निस्सहाय है। अपना मानने की परवशता इसीलिये है कि वह भी दो टुकड़ों की दासी है और यदि इस बंधन को स्वीकार नहीं करती तो उसे समाज का भेड़िया फाड़कर खा जाये और वह प्रकृति की भूख।

विद्रोह करना जो भूल जाता है उसकी सांस्कृतिक चेतना दूसरों के पैरों के नीचे छटपटाना भी पाप समझती है। प्रयत्न यही रहता है कि कुचलने वाले के पांव में कोई चोट न आ जाये।

कारण ?

कारण एक ही है। स्त्री और पुरुष का दर्जा समाज में बराबर नहीं है। अपने लाभ को पुरुष ने उसे स्वामिनी कहा है जैसे अंगरेजों ने हिन्दुस्तान में अपने अनेक पिट्ठुओं को रायसाहबी और रायबहादुरी बांटी है।

दोनों में से कोई रहस्य नहीं है। दोनों साधारण हैं। किन्तु अपनी व्यवस्था में उन्होंने इतनी उलझन खड़ी कर ली है कि उससे निस्तार पाना उनके लिए असंभव हो गया है।

एक लड़का है, एक लड़की है।

लड़की की आंखों में तृष्णा है कि उसे चूम ले, उसे भींचकर उससे आलिंगन करे, अपने शरीर को प्राकृतिक सुख दे। किन्तु क्योंकि यह पाप समझा जाता है वह आत्मा के बंधन का अभिनय करती है, पुरुष कहता है— तुम स्वर्ग की चेतना हो। तुम शरीर के कलुषों से परे हो। स्त्री समझती है यह उसकी विजय है। पुरुष समझता है यह उसकी हार है।

पुरुष का यौवन उससे वही चाहता है। किन्तु उसे जब समाज के बंधन जकड़ते हैं, जब वह व्यवस्थाओं के विरुद्ध छटपटाता है तब वह कहता है —स्त्री मायाविनी है। मनुष्य का मोक्ष निरासक्ति है। और स्त्री हारने लगती है। पुरुष का 'योगी अहं' चिंघाड़ उठता है जैसे हाथी को शराब पिलाकर मस्त कर दिया हो।

किन्तु असंख्य करोड़ गरीब जो कुछ सोच-समझ नही पाते उनके लिये स्त्री न रहस्य है, न पुरुष एक एक दुर्भेद्य गढ़। वहां स्त्री पुरुष की दासी है, स्त्री को स्वीकृत है; वहां यौवन का छल ही उनके जीवन की परम्परा है। वहां मन की प्रतारणा नहीं। वहां समाज के कार्यों में तन्मयता है, काम करना है क्योंकि दोनों की घोर समस्या है रोटी। खाते हैं, पीते हैं, यौन संबंध करते हैं जैसे पशु हैं और पशुत्व का जंजाल हटाने को उन्होंने उच्चवर्ग के सिद्धांत के बिना समझे हुए रट लिये हैं, पुरुष है स्त्री के लिए, स्त्री है पुरुष के लिए, क्योंकि यह भी एक भूख है, और बहुत भयानक होने पर भी आवश्यक है, क्योंकि यह जीवन के रसों का एक स्थायी भाव है, सारा वातावरण उसका संचारी मात्र है। पुरुष और स्त्री के प्रेम का साधारण कारण उनके सम्मिलित प्रयत्नों का फल —बच्चा है। यदि स्त्री आत्मा है, पुरुष परमात्मा है, एक प्रकृति है, दूसरा पुरुष

है, सभी आलय विज्ञान है। प्रतीत्य समुत्पाद नहीं। जिसका हेतु यहां परम्परा है वहां क्षणिक होते हुए भी समाप्ति पर प्रारम्भ नहीं है क्योंकि प्रवाह की च्युति कहीं भी नहीं होती। जहां काट करने का प्रयत्न होता है, जो स्वयं जनमता है वहां परोक्ष का अंधकार फैलता है। क्योंकि कारण या तो कार्य का अन्त है या आरम्भ। मनुष्य का अनुभव उसका ज्ञान है, रूढ़ि बनकर वह संस्कार बनता है।

"क्या सोच रही हो?" मोहन ने पूछा।

"कुछ खास नहीं," कुछ रटी-रटाई बातें दिमाग में घूमने लगीं।

पंजाबी वयस्क और मिस्टर विली अब भी ऊंची-ऊंची बहसें कर रहे थे। एक भारतीय संस्कृति के पीछे पड़ गया था, दूसरा पश्चिमी के। दोनों में वाक्‌युद्ध हो रहा था।

मोहन ने कहा —"चलो बेबी! भीतर का कमरा देखेंगे।"

भीतर अन्धकवध, शिव की विशाल मूर्ति को देखकर बेबी ने कहा —"यह मूर्ति देखी तुमने? तुम्हारा क्या विचार है?"

मोहन ने कहा —"मुझे अच्छी नहीं लगती, इसके मुंह पर जो दाढ़ी बनाने को यह छोटे-छोटे गोले-गोले से बनाये गये हैं न जाने क्यों इनको देखकर मैं घृणा से सिहर उठा हूं।"

बेबी ने चेत कर कहा —"मैं समझती हूं मनुष्य का यह विचार एक बहुत ही प्रौढ़ स्वरूप है शक्ति की कल्पना का। एक ओर यही शिव इतना भयानक है, दूसरी ओर कितना शांत···"

मोहन हंसा। उसने कहा—"भस्म में से सृष्टि का जन्म होता है, उस जन्म के पीछे फिर संहार है, वह घृणा करता है, संसार का सबसे बड़ा है प्रेमी···कल्पना ··कल्पना···सदियों का चिंतन···"

"लेकिन," बेबी ने काट कर कर कहा —"यह विचारों की विभिन्नता का परिचायक है। इसके अनुयायियों ने एक समय जाति-बंधन को काफी तोड दिया था। मुझे यह इस गौतम के जीवन की एकरूपता से कही अधिक रुचता है। दोनों ही आज हमारे लिये कहानी हैं। दोनों ही दिलचस्प हैं। चलोगे नहीं।

"अरे यह देखो," मोहन ने झुककर कहा—"देखो न शीशे के बक्स में। लगता है हाथी दांत का है। नाखून के बराबर के पत्थर पर एक बुद्ध और फिर और भी छोटे-छोटे बुद्ध वंडरफुल (अद्‌भुत)।"

तब बेबी ने वह काले पत्थर का स्त्री का सिर देखा, देखा···फिर देखा ·· पत्थर···पत्थर···

तब इस सबका प्रयोजन? यह सब क्यों हुए···क्योंकि इनके माता-पिता हुए··· क्योंकि···फिर एक रहस्य···वहीं मनुष्य का अज्ञान···और तभी मोहन के हाथ का स्पर्श···इसीलिये तो जीवन है···रहने के लिए···जीते क्यों हैं···क्योंकि मरते नहीं··· मर जाने पर···हम जियेंगे नहीं···एक अंधी दौड़···वही ज्ञान···व्यक्ति और समूह···

वह सिहर उठी। उसने कहा—"मोहन ! चलो न ? बाहर भी देखना है न ?"

"ओह यस (अरे हां)," मोहन ने कहा ! और दोनों बाहर की ओर चले। जब वे द्वार के पास पहुंचे विली आदि भीतर घुस रहे थे। उन्होंने इन्हें निकल जाने को रास्ता दिया। पंजाबी लड़की ने टोककर कहा—"माफ कीजिये, देख लिया आपने ?"

तनिक कुंठा से बेबी ने कहा—"जी हां।" जैसे आपकी इस सहानुभूति में उसके आत्मा को कुछ कष्ट हुआ है। वह इसको कभी नहीं चाहती थी।

मिस्टर विली ने हंसकर कहा—"पत्थरों की कहानियां पढ़कर क्या अजीब-अजीब सा लगता है ? एक बार जब मैं अमेरिका में था मैंने वहां की 'माया सभ्यता' के वीरान खंडहर देखे थे। उसमें काफी भारतीयता की छाप थी।"

पंजाबी वयस्क की बाछें खिल गईं। हर्ष से गद्‌गद होकर कहा—"एक दिन था जब हमारे भारत की संस्कृति से सारा संसार ढंका हुआ था।"

फिर वह ऐसे चुप हो गया जैसे क्या बतायें। अब वह युग नहीं रहा। न जाने किस वेला में उस वैभव और ऐश्वर्य ने हमसे आंखें चुरा लीं। और आज तो इन गोरों के हाथ में सारा प्रभुत्व पहुंच गया है।

तब मोहन ने सोचा कि एक दिन जब आर्य्य अभिमान से भरकर खड़े होते थे तब क्या द्रविड़ और दास, सब कुछ समझते हुए भी, उनके सामने ऐसे ही खड़े नहीं होते होंगे, जैसे आज हम इनके सामने खड़े हैं।

बेबी ने बनावटी मुस्कान से कहा—"इतिहास से बढ़कर दुख देने वाला और कोई नहीं। कभी कोई क्या था और अब क्या है—दोनों ही तो कचोटते हैं।"

बात ने प्रभाव नहीं डाला क्योंकि बेबी के मुख पर वैसी भव्य बनावट नहीं विराज सकी जो ऐसे वर्ग के लिये बात करते समय आवश्यक है। और मोहन सोच रहा है कि क्या बेबी ने यह ठीक कहा है ? क्या हम लोग वही हैं जो तब थे और क्या हम लोगों के लिए आवश्यक है कि जो वे थे वही हमारे आदर्श बने रहें और हम ऐसे जकड़े खड़े रहें कि न आगे चल सकें न पीछे ?

मि० विली ने क्षण भर देखा और फिर वे हठात् मुस्कराकर कह उठे—"इतिहास ! इतिहास हमारे दोषों का भंडार है जो अब हम दूर से देखते हैं तो हमें वह सब भी अच्छा और पुनीत प्रतीत होता है।"

पंजाबी लड़की तब व्याकुल सी लग रही थी। उसकी आंखें कभी मोहन की ओर जातीं, कभी बेबी की ओर। वह शायद यह आंक रही थी कि यह दोनों पति-पत्नी हैं, जो लगते नहीं, या भाई-बहिन हैं, वह भी नहीं लगते और भारतीय विधानवाद के अनुसार मित्रता ऐसी होती नहीं। फिर ?

लोग ऐसे काम छिपकर किया करते हैं फिर यह खुले आम कैसे ?

उदास मोहन को कोई दिलचस्पी नहीं। विली की ओर मुंह करके पंजाबी

वयस्क ने कहा—"लेकिन इतिहास हमें बताता है कि हम क्या हो सकते हैं···।"

"वह राजनीति होती है," हठात् मुंहफट तरीके से बेबी कूद पड़ी कि दूध इधर उधर फैल गया और जैसे दूध गर्म था वह भी उसमें गिर कर छटपटाने लगी।

एक बार तिक्त व्यंग से तनी हुई भवें और तनी हुई दिखाई दीं। मां ने उपेक्षा से देखा जैसे वह बहुत ऊंची मीनार से गिरते प्राणी को देख रही हों जो निस्संदेह नीचे गिर कर चूर-चूर हो जायेगा और उसी समय मिसेज़ विली आगे बढ़ गईं।

एक दुखद प्रसंग छिड़ जाने वाला था। यहां वैभव का दासत्व नहीं। चोट पर चोट पड़ने वाली है। अच्छा है बदलते जमाने में उसे जहां तक हो टाल दिया जाये। सोलह बरस का होने पर लड़का भी बाप का दोस्त हो जाता है तो हिन्दुस्तानी तो डेढ़ सौ बरस का हो चला है।

"ठीक है," पंजाबी लड़की ने कुछ न समझकर कहा।

"बिल्कुल ठीक है।" मिस्टर विली ने रही-सही बात को टाल दिया।

उस समय नौकर दूसरे नौकर से कह रहा था—"बस, साहब लोगों के देखते ही म्यूज़ियम बंद कर दूंगा।"

जैसे मोहन और बेबी यहां नहीं थे, उनको सारनाथ के खडहर देखने का भी अधिकार न था, अधिकार भी था तो उसका न मूल्य था न महत्त्व, जैसे बाप की जली हुई हड्डियों को आज लड़का बटोर कर उन्हें फूल कहने की कल्पना का भी अधिकारी न था···

मोहन ने देखा, बेबी चुप खड़ी थी।

और बेबी के मौन ने सुना, उसका हृदय गौतम की छाया में प्रतिशोध के लिये पुकार उठा था।

4

जब मोहन और बेबी बाहर आये तब अंधेरा सा छा गया था। दोनों ही उस समय चुप थे। अब वे किसी कारागार में नहीं हैं। उन्हें किसी प्रकार की हीनता का अनुभव करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। वे स्वतंत्र हैं। फिर भी गुलामों की स्वाधीनता एक उपहास अवश्य है। अब न नौकर की उपेक्षा मिलेगी न गोरों के प्रभुत्व की छलना। क्यों न वे सारनाथ के खंडहरों में ऐसे घूमें जैसे सारनाथ उनकी संपत्ति नहीं है वरन् वे पत्थर जो इतिहास के किसी काल विशेष का भस्मीभूत गौरव बन कर पड़े है उनसे आधुनिक मनुष्य का वहीं तक अपनत्व है जहां तक वे उसके हृदय में घृणा की आग नहीं धधका सकते।

अंधकार सर्वत्र छा गया है। नीला आकाश गहन हो गया है। आलोक का पीलापन क्षीण होकर नभ में कभी का घुल गया है। अंधकार का अभियान हो रहा है, लंबी शाखायें सघन हो चली हैं। पत्ते झूम रहे हैं। झूमती झंकार मुखरित हो उठी है। स्तब्ध समीरण के हलके स्पंदन तारों के उर को छू कर मानो स्वप्नों का भार ढो रहे हैं।

आकाश में बंकिम शशी एकाकी है। मोहन उन्मन है। बेबी भी एकाकार चाह रही है। बेबी की अवस्था उस प्राचीनकाल की राधा की सी थी जो गा उठी थी कि जब तुम बजा-बजा कर थक जाओगे उसे उठा कर अनजान सी हंस दूंगी। हृदय के द्वार खोल दो। पिया तुमने मुझे कैसे पहचान लिया ? बाहर देखती हूं नयन मचलते हैं, अंदर देखती हूं तुम हृदय में छिप जाते हो, ओ मेरे सलोने प्यारे ! हृदय के वातायन खोल दो। मेघों के नूपुर आज बजेंगे नहीं, बिजली नहीं झिलमिलायेगी। भोर का सुंदर सुहावन रात के अंधेरे पट के भीतर मग्न होकर मचल रहा है। स्वर्ण के आकाश में तुम रश्मि बनकर फूटते हो। लहरों में न जाने कौन मोती बहा जायेगा ? मेरे अंधकार भरे घर में तुम्हारी रश्मि आई, कण-कण उजागर हो गया, हृदय में मुक्ति छा गई। बादलो, छाओ और बादलों के नीड़ मे विहग कलरव करनेवाली दामिनी, तू ऐसी ज्योति की आह्लादिनी झंकृति कर कि मुझ पर और प्राण पर एक ही आलोक-तार गूंज उठे। अरे मैं आज भी उसी प्रवासी की स्मृति में रो रही हूं। इन मेघों पर मैं दामिनी से लिख रही हूं। यौवन की कैसी सुलग है ? कोई पार नहीं दिखाई देता।

अंधकार की स्वप्निल अलसाहट में नीरव स्वर बार-बार उठकर पल-पल धूमिल होता हुआ पुकार उठता है। भ्रांत दिशाएं मौन हैं, उन्माद तरल अनबूझ है। मानो सूने-पन का अवसाद, भरे हुए कुहरे से पूछ उठता है —कौन ?

अंधेरे में विलीन मोहन व्याकुल होकर सोच रहा है। टिम-टिम से झलमल शान क्षीण दीपक आकाश में खेल रहे हैं, वे तारे हैं, जलते हुए हृदय हैं। जग की अनंत पीड़ा के नये प्रतीक संध्या के वृद्ध बटोही श्वासों से तरुण गगन भर रहे हैं।

अब समीर फिर सनसना उठा है। स्वर बार-बार फैल रहा है। विषाद की बेला है।

ओ सूने मानस ! अब फिर लौट चलना है जिनको स्वप्नों मे भी प्राप्त करना असंभव है उनकी इच्छा सदा के लिए सो जा। कही राह में ही रात न आ जाये, कही अचानक ही पलकें भारिल न हो जायें। आयु की सिकता पर खड़ा हुआ मनुष्य समय की लहर को लौटते हुए देखता है।

ओ अभिमानी ! विष का प्याला पिला दे। मैं तेरे घर में स्मृति का दीपक बन कर जलूंगा। मेरा सपना तेरी कायरता में स्फूर्ति भरेगा।

आज वह नूपुर की रुनझुन सुनाई नहीं देती। अब दीपक नही जलते। जैसे यहां गति की लिप्सा थक कर, आज पराजय में छिपकर सो गई हो। सम्राटों का प्यार कहानी बन कर रह गया है। अब वीणा का राग उलझ कर मानव करुणा मे रुदन नही कर रहा। वासवदत्ता का रूप बुझ गया है, किन्तु न जाने मुझे क्यों लगता है कि किसी की सुधि करके यह पत्थर भी बराबर सूने में रो उठते हैं !

एकाएक बेबी सिहर उठी। वे लोग बाहर रखी हुई मूर्तियों के पास जाकर रुक गये थे। अधिक कुछ दिखाई नहीं देता। केवल इतना ज्ञात है कि ब्राह्मण मूर्त्तियां यही बाहर रखी हुई हैं।

क्या आज भी ब्राह्मण बौद्ध शत्रु हैं ? और तब मोहन को कुहनी से अपनी ओर आकर्षित करके बेबी ने कहा—"क्या यह तुम आज सोच सकते हो कि एक दिन यहां ब्राह्मण और बौद्ध परस्पर घोर शत्रु थे जब कि ब्राह्मण का धर्म था क्षमा और बौद्ध का करुणा ? परस्पर फिर भी वे निर्लज्ज से लड़ते थे। सच आज जो उनके गीत गाता है, मुझे तो वह बिल्कुल नहीं सुहाता।"

मोहन हंसा। उसने कहा—"तुम धन का मूल्य नहीं जानतीं। धन वह गौरव है जिसमें गौतम की सहस्र मूर्तियां तुम्हारे द्वार पर प्रहरी बन कर खड़ी रहेंगी।"

बेबी विक्षुब्ध हुई। कहा—"जिस पर हम प्राचीन संस्कृति कह कर आज इस दासत्व में दिल बहलाते हुए गर्व करते हैं वह भी अपने काल में इतनी ही द्वन्द्वात्मक अवस्था थी जितनी आज किसी भी दुरूहता की है।"

मोहन ने उपेक्षा से मुंह फेर लिया।

बेबी ने कहा—"मोहन !" स्वर में प्रताड़ित फूत्कार था।

"क्या है ?" मोहन ने मुड़ कर कहा।

बेबी ने कोई उत्तर नहीं दिया। अभिमान ने उसका कंठ अवरुद्ध कर दिया। तो मोहन उसे मूर्ख समझता है !

"कहती क्यों नहीं ?"

"कुछ नहीं।"

"मैंने समझा तुम किताब पढ़ रही हो।"

एक बार अंधकार में नई दृष्टि कांपी और मोहन ने हंस कर कहा—"पगली, रुठ गई ?" सुसंस्कृत मनुष्य में से आदिम पुरुष क्षण भर को बाहर आ गया था। अब वह फिर उपचेतना में लय हो गया।

"चलो, मंदिर देखेंगे। कहते हैं दीवार पर बहुत अच्छे चित्र बने हैं। सुना है किसी विदेशी ने बनाये है···क्या नाम था उसका···याद नहीं आता······"

"काश इतना ही दिमाग होता," बेबी ने चोट की। मोहन ने प्रतिहिंसा को समझा।

कुछ दूर चलने पर उन्होंने अनुभव किया है कि अंधेरा हो गया है···

"अब," बेबी ने कहा—"तस्वीरें क्या दिखेंगी, अंधेरा तो इतना हो गया है !"

मोहन का मौन एक स्वीकृति है।

"तो ?" दोनों का एक ही प्रश्न है।

"कहीं कुछ मिल जाये···" बेबी ने कहा। घर बनाने की प्रवृत्ति नारी में सदा से रही है। पुरुष कहता है अरे दो दिन को क्या परेशानी, दो-तीन साल की बात हो तो चिंता भी की जाये। स्त्री कहती है दो-दो दिन करके जीवन बीत जाता है। प्रत्येक क्षण को अपना समझो। किसी पर से पांव धरकर लांघ जाने का प्रयत्न न करो।

फिर बाहर की ओर चलना पड़ा। एक छोटी सी दूकान में छोटा सा मद्धिम दिया जल रहा था। एक बच्चा बैठा कुछ गंदी सी चीज़ खा रहा था। गाहक सामने जा

खड़े हुए।

युवती स्त्री ने आंख उठा कर देखा, मानो कटाक्ष किया और फिर मोहन के पीछे ही बेबी रूपी चौकीदार को देख कर सिहर उठी।

"क्या चाहिये बाबू ?"

"अंधेरा हो गया है न ?" बेबी ने आगे बढ़ कर कहा। स्त्री अपने पुरुष को सदैव उच्छृंखल समझती है। वह यह नहीं सोचती कि पुरुष भलमनसाहत के कारण उसी के प्रति आसक्त है। वह समझती है वह भी कुछ शक्ति रखती है। उसे अपने वर्ग की चंचलता पर कभी विश्वास नहीं होता।

"तो···" मोहन ने कहा किन्तु काट कर बेबी कह उठी—"मोमबत्ती-ओमबत्ती कुछ है।"

युवती स्त्री दोनों को देख रही थी। विवाहिता स्त्री को अविवाहित पुरुष से एक प्रकार की घृणा होती है क्योंकि वह उसे डरती है, क्योंकि वह उससे पालतू जानवर नहीं समझती। युवती स्त्री की आंखों में नवविवाहित-से दंपति को देख कर एक सुख फैल गया। उसने मोमबत्ती ला दी।

मोहन हंसा। उसने चलते समय कहा—"वह तुम्हें मेरी···"

बेबी ने लजाकर कहा—"तो क्या हुआ ?"

मोहन मुसकराया। कहा—"यदि उसे ज्ञात हो जाता कि विवाह अभी हुआ नहीं होगा तो ?"

"तो !" बेबी की भौंह तन गई, आगे आकर मिल गई।

"तो वह तुम्हें बदचलन समझती।"

"तुम्हें नहीं ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"दुनिया ने उसे यही सिखाया है।" बात समाप्त हो गई। मंदिर आ गया। बेबी ने मंदिर में घुसते समय बाहर के घंटे को थपथपाया फिर लकड़ी के दंड को उस पर बजा दिया। एक गंभीर धीमी आवाज़ हलके में गूंज गई।

मोहन ने मोमबत्ती जला ली !

अंधेरे में उजाला कांपने लगा।

बेबी ने कहा—"इस धुंधले प्रकाश में क्या तस्वीरें दिखेंगी।"

"अब जो भी हो।"

लाचार। विवश।

"काश दो दिन यहां रह पाते।"

"शाबाश ! तुम भिक्षुणी निकली कि मैं ?"

"बड़ी शांति है।"

"गौतम ने स्त्री को कोलाहल माना था।"

वे घूम-घूमकर देखने लगे। बेबी ने मोहन की बात पर ध्यान नहीं दिया। मोहन ने ठीक ही कहा था।

प्रकाश दीवारों पर कांप रहा था जिसके कारण चित्र उतनी स्थिरता से आंखों में गड़ नहीं गये जितना दिल में दिख पाते। फिर भी वे अत्यंत सुंदर थे। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उन चित्रों को देख कर मस्तिष्क झनझना उठा। किताबों में यही चित्र छप कर बेढंगे लगते हैं। अच्छी ; तकृति में स्वयं जीवन बोल रहा है।

यह किस ˙ ˉनाये थे ?

कोई नहीं जानता।

क्या गौतम का चित्र लोग पहचानते ?

नहीं।

किन्तु चित्रकार तब क्या था ?

सामन्तों का दास।

और अतीत का सत्य···

गौतम की माता की भांति आज की स्त्री नंगी अवस्था में खड़ी नहीं हो सकती···

छोड़ो। अब किसी में इतना साहस नहीं कि यह प्रश्न पूछे। लोग कहेंगे देखो कहां के बुरे विचार इसके दिमाग में भरे है···पर हम आज अश्लील हैं···वे नहीं···क्यों नहीं···?

कितनी सुंदर गढ़न है···

गौतम घर छोड़ कर जा रहा है। यशोधरा को उसे वीर कहना चाहिये या कायर ?

बेबी कायर कहेगी।

मोहन ? वीर ही। आखिर पुरुष ही है न ? स्त्री ने अपने ममत्व का त्याग नहीं किया। उसने देखा पुरुष हठी है। हार मानी जीत पाई। परिणाम क्या हुआ···

देखो मोमबत्ती बुझ न जाये।

मार का भयानक रूप अपनी विकरालता को लिये प्रहार कर रहा था। गौतम ने प्रकृति के उपकरण को पाप कहा। जो शिव का दूसरा स्वरूप है वही मार है। शिव भी उसे भस्म करता है किन्तु गौतम तो शिव-पथ के अनुगामी न थे। तप किया था तब वे ब्राह्मणों की ही नकल कर रहे थे। क्या इन्हीं साधनों के परिणामस्वरूप प्रात: मध्यमा प्रतिपदा को पाकर उन्हें अपने पथ की पुरानी मंज़िलों से घृणा हो गई।

चित्र भावनाओं का प्रतीक है। इतिहास उसकी पृष्ठभूमि है···

और फिर निर्वाण का वह चित्र जिसमें कुत्ता तक रो रहा था। कितना करुण। कितना दयार्द्र करुणा का यह धीमा संगीत देश मे फैल गया। परन्तु निर्वाण के समय यह दुख ? और भी, गौतम के शव के घेर कर सांसारिक वेदना ? अनर्थ। घोर अनर्थ। झूठ हो गया, सब झूठ हो गया। इससे तो ब्राह्मण का झूठ अच्छा जो अपने अज्ञान को

साफ तो झलका देता है।

हृदय भर आया था उन सबका। और निर्वाण की पहचान ? गौतम अजीर्ण से समाप्त हुए थे। खाने के प्रति उनकी लालसा समाप्त नहीं हुई थी। क्या एक दिन गांधी भी अजीर्ण से चल बसेगा ? हिश···सरासर मूर्खता···जैसा जिया वैसा मरा···मोहन हंस दिया।

वेबी ने चिढ़ कर कहा—"तुम तुच्छ-बुद्धि हो। महान आत्माओं से जलते क्यों हो ?"

अजंता की प्रतिकृति का प्रभाव जहां पड़ना था वहां पड़ चुका था। वेबी अवाक्-सी देख रही थी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मोमबत्ती के हिलते प्रकाश में सचमुच वह इस युग मे नहीं थी और सुदूर ढाई हजार वर्ष पहले के संसार में लौट गई थी।

चित्र सामने है। अब वे जीवन बन गये हैं। हाय क्या वास्तव मे हम उधर लौट नहीं सकते। क्या वे बर्बर न थे जिन्होंने इस सौंदर्य के स्रोत को ठोकर मार कर चूर कर दिया। कितना सुन्दर रहा होगा वह युग जिसमे व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के लिये सब कुछ करता था। आज की भांति नहीं कि किसी भी बात में सुलझन ही नहीं···

भिक्षुत्व का गर्व मनुष्य के मुख पर उसकी सौम्यता है। उसका अहंकार क्या वास्तव में चूर हो जाता था ?

पवित्र है यह भावना···

और हठात् उसके मस्तिष्क में आया 'छलना'···

देखा, फिर देखा···

क्या हम उसे छलना कह कर दंभ नहीं करते ?

गौतम ने संसार को नूतन ज्ञान दिया था, हम क्या कर सके अभी तक ? कार्ल मार्क्स ने कहा है, या गांधी ने कहा है, या···

अपना क्या···?

मोहन कहेगा, इसमें व्यक्ति की पराजय नहीं। दूसरे की ठीक बात को अपनाने में दोष नहीं, अपनेपन के लिये गलत रास्ता चला देना असभ्यता है···

मोमबत्ती आधी से अधिक जल चुकी थी। उसका प्रकाश एकबारगी अधिक तीव्र होता हुआ दिखाई दिया। चित्र जल्दी जल्दी समाप्त हो गये हैं। वे सामने वेदी पर बैठे गौतम की मूर्ति के सामने आ गये। पाषाण पर स्वर्ण वर्ण की पालिश थी। लगता था धातु की मूर्ति थी। कितना दिव्य ! कितना गौरव !

पवित्र। हृदया को शांति मिल रही है क्यों ? क्या यह भी मनुष्य का हृदय चाहता है, या हमारी संस्कृति की परंपरा बन कर उपचेतना तक में समाई निधि है। किसी पंजाबी कन्ट्रेक्टर को लाकर खड़ा कर दो। समझ सकेगा वह इतनी बात ?

गौतम महान ! विभ्राट का तेजपुंज ! तुम्हें नमस्कार ! हम ज्ञान के लिये छटपटाते हुए कीड़े हैं। तुम अपने इतिहास के गौरव के कारण हमारे हृदय पर एक न एक क्षण प्राप्त करके अद्भुत प्रभाव डाल देते हो। हम तुमसे एकमत नहीं थे। पर तुम

महान हो, इसमें कोई संदेह नहीं।

और बेबी ने सोचा यदि वह भी विश्व-प्रसिद्ध होती तो क्या वह तब भी इतना ही रुआब खाती ?

तभी। स्त्री और वह भी पुरुष के मुख पर ? मोहन घूर रहा था। उसने कहा—"बेबी ! इस गौतम की ग्रीवा कुछ पतली है।" वह हंसा। कहा—"सारे भारतीय वीरों के मूंछें हैं, बस राम और कृष्ण के चित्रों में नहीं मिलतीं। तीसरा वीर गौतम है। किंतु देखो, जो मूर्ति प्राचीनों ने बनाई है वह कितना दिव्य पौरुष लिये हुए है। यहां हार हो गई।"

बेबी ने नतमस्तक सोचा।

भारतीय शिल्प की समरसता में कितनी पूर्णता थी। फिर याद आया। उन्हीं भारतीयों ने यूनानियों से संसर्ग होने पर उनसे जो सीखा जा सकता था सीख लिया। अब जो हमारे सामने अनेक सभ्यताएं आ चुकी हैं क्या हम उनको त्याग दें ?

मोहन गंभीर था। उसे अभी तक शोक हो रहा था। भारतीय कलाकार ने आगे चल कर स्त्रैण जीवन की ओर इतनी अभिरुचि क्यों दिखाई ? भक्ति नाम की कोमलता ने क्या उसे 'वीर' से दूर नहीं किया ?

एक बार मोमबत्ती फफक उठी और फिर धीरे-धीरे अंधेरा लौ को सब ओर से भीचने लगा। धीरे-धीरे लौ दम घुट कर छटपटाने लगी।

मोमबत्ती बुझ चुकी थी।

अंधकार मे दोनों विस्मृत से खड़े रहे। एक दिन धर्मकीर्त्ति ने इसी प्रकार चिंतन किया होगा। न जाने कितने व्यक्ति इसी चिंता में ऐसे ही खड़े हुए होंगे···

मोहन और बेबी अंधकार की बढ़ती सनसनाहट में चुपचाप समीर की झूम सुन रहे हैं···

भय नहीं लगता। एक दिन जो एक व्यक्ति ने अपने को बुद्ध कह दिया था उसका प्रचंड प्रभाव आज भी मनुष्य का हृदय सरलता से दहला सकता है।

धीरे-धीरे दोनों को ध्यान हुआ।

मोहन और बेबी बाहर निकल आये।

एकाएक बेबी ने कहा—"कुछ याद है !"

"क्या ?"

"लौटना नहीं है ?"

स्त्री को घर की याद अवश्य आती है और वह भी तब जब पुरुष स्वर्ग की ओर चलने लगता है।

"अरे वह तांगे वाला" बेबी ने आतुर कंठ से कहा—"कहीं चला न गया हो··· वर्ना···"

मोहन ने काट कर कहा—"वह भी क्या कोई तुम्हारी तरह पागल है ? आने का किराया नहीं लेना है उसे ?"

"अरे हां, मैं तो भूल ही गई थी। बेचारा! खड़ा ऊब गया होगा। उसको तो इतनी समझ ही नहीं। कितना कठोर है जीवन?"

"बात कम।"

"चलो जल्दी चलो।"

सामने से एक गंभीर भिक्षु जाता हुआ दिखाई दिया। उसके शरीर पर काषाय था। सिर काफी बड़ा था। आंखों पर चश्मा लग रहा था। धीर सुस्थिर पग रखता हुआ वह विदेशी अपने चिंतन में मग्न था।

"एक बात रह गई," मोहन ने सोचते हुए कहा—"हमने अभी चीनी मंदिर नहीं देखा।"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

"गलत रास्ते से आने का फायदा।"

"यानी?"

सामने ही चीनी मंदिर था। दोनों भीतर घुस चले। चीनी स्थापत्य कला में सुदूर की वह मैत्रायणी सभ्यता उन्हें कुछ अपनी ही प्रतीत हुई, जैसे उसमें कुछ उनका अपना सौहार्द था। ऐसा नहीं लगा जैसे अंगरेजी गिरजों में जाने पर अचानक ही एक नूतनता, अपरिचय का भाव होता है। और वेवी को उस सदियों से जलती अग्नि की स्मृति हो आई! जो आज तक नहीं बुझी जो एक दिन प्रताड़ित पारसी लेकर आये थे। वेवी को अपने पूर्वजों की स्मृति हो आई।

एक बंगाली दर्शक द्वार पर अपनी चप्पलें पहन रहे थे, अपने बच्चों की बिखरती हेड़ को इकट्ठा कर रहे थे।

मोहन को उन्हें देखकर हंसी सी आई। उनकी शकल बूढ़े चौकीदारों की सी थी। वे कभी बड़बड़ाते थे, कभी चिल्लाते थे; अजीब से थे उनके हावभाव। उनकी व्यस्तता में लग रहा था कि वे शायद सारनाथ से बिल्कुल प्रभावित नहीं हुए थे।

उनकी कुरूप किंतु सुहागिन लड़की जैसे वह भी एक दासी की मूर्ति ही हो, झुककर अपने सैंडल बांध रही थी। कैसा भी आज का मध्यवर्ग हो वह 'भारतीयता' के हावभाव और वेशभूषा से तो दूर ही हो गया है। क्या वह भी हमारा अपमान ही है? क्यों देखते ही मजदूर या किसान का सा रूप सामने नहीं आ जाता?

इस चिंतन में एक आधार है जिस पर मोहन इस समय विचार नहीं करना चाहता क्योंकि वह एक नीरस विषय है। पूंजीवाद। साम्राज्यवाद। मोहन मन ही मन हंसा। वेवी ने अपने जूते उतार दिये। बंगाली परिवार चला जा रहा था! वृद्ध क्रुद्ध मंत्रपाठ सा कर रहे थे।

दोनों इधर-उधर देख कर मंदिर में घुस गये। सामने गौतम की विराट मूर्ति थी। उस कमरे में एक ऐसा औदार्य्य था कि उनके मन पर उनका एक चिन्मय प्रभाव पड़ा। वे स्तब्ध हो गये से देखने लगे। दीपकों का झिलमिल प्रकाश हृदय पर कांप रहा था।

गौतम जीवन की कृत्रिमता का सबसे बड़ा उपहास है। निराकार साकार में आकर पराजित हो गया था।

और उस निस्तब्धता के पंख फैल गये। वे चीन में नहीं हैं। चारों ओर भूर्जपत्र नही पड़े हैं परन्तु वे फिर भी अनुभव करते हैं कि जहां वह खड़े है वहां जीवन इतना आतुर नहीं जितना कलकत्ते की चित्तरंजन एवेन्यू में। यहां आंख चूकते ही जान नहीं जाती। यहां मनुष्य मशीन नही है। यहां जो आत्मा की समवेदना का आत्मनिग्रह है वह सर्वथा आज दूर होता चला जा रहा है। क्या इसे भी हम सभ्यता की प्रगति कहें ?

वृद्ध चीनी भिक्षु कुछ गुनगुना रहा था। दीपशिखा का मद्धिम प्रकाश उसके चमकते हुए ललाट पर मार रहा था जिसके कारण वह प्रदीप्त सा लगता था। भव्य था उसका वह नम्र विग्रह, काषाय का पीलापन आलोक मे जगमग हो उठा था।

और हाथ की घंटी धीरे-धीरे बजती रही अपने अनेक मरोड़ लिये और 'टिनटिन-टिन्न-टिनान···' का अविरत गुंजन मानो गौतम के चरणों को छूकर धीरे-धीरे अतिथियों के हृदय मे उतर कर उन्हें अपनी ओर खीचने लगा।

आराधना की गरिमा हृदय को संकुचित करने लगी। उसका गीत समझ मे नहीं आया पर शायद चीनी भाषा के शब्द रहे हों। समझ मे नही आये। किंतु सुनने में अच्छे लगते थे। यूरोपीय गीत सुनने मे अच्छा नही लगता। औरतें ऐसे चिल्लाती है जैसे कुतिया भूक रही हो। पत्थरों को घिसने का सा शब्द करते हैं वे गायक पुरुष। यह कितनी सांत्वना देता है। आखिर तो सौंदर्य्य की सूक्ष्मता जितनी एशिया वाले समझते हैं उतनी वह लोग क्या समझें ?

मोहन को याद आया कि दक्षिण के वैष्णव पांचरात्र मंदिरों मे भी पुजारी ऐसे ही घंटी लेकर अपने देवता के सामने मंत्रपाठ किया करते है। वह स्वर भी सुनने मे बहुत अच्छा लगता है।

और वे लौट चले।

"तुम्हें तो याद होगा," बेबी ने कहा—"प्राचीनकाल में अनेक ब्राह्मण 'मिशनरी' बन कर दूर-दूर के देशों में जाया करते थे। कितने विस्तृत दृष्टिकोण थे उनके। कुएं में मेढ़क कूदा नहीं कि बस खतम।" बेबी ने हाथ नचा कर इंगित किया। कहते हैं एक दार्शनिक था जिसने अनेक वर्ष चीन में एक दीवार को ताकते हुए ही बिता दिये। शून्य पर कितना भयानक तन्मय केन्द्रीकरण था मन का ? आज कोई कर सकेगा ? क्षण-क्षण दिमाग फिसला करता है···।

और मोहन ने देखा, समय के पथ पर आज ब्राह्मण और बौद्ध अपनी पृष्ठभूमि के एक आधार के कारण एक दूसरे को गालियां नही देते क्योंकि दोनों का बाह्याचार अब जनसाधारण को 'धर्म' के नाम से ज्ञात होता है। 'धर्म' का अर्थ भले ही समझाया न जा सके किंतु भारतीय को उसकी एक विशेष अनुभूति सी होती है जिसके बिना वह अपने जीवन को अधूरा समझता है, निरर्थक, भग्न। वह आज नही जानता कि बौद्धों के धर्म मे ईश्वर नहीं होता पर मूर्तिपूजा होता है, आत्मा नही होता पर पुनर्जन्म होता है,

अहिंसा होती है पर अशोक ने खड्ग नीचे नहीं रखा था। वह अंतिम समय तक सम्राट बना रहा।

और ब्राह्मण और बौद्ध होते हुए भी वे प्रायः एक थे।

एकाएक बेबी ठिठक कर खड़ी हो गई।

"क्यों ?" मोहन ने उसका हाथ पकड़ कर कहा-- "ठोकर लग गई ?"

"नहीं।"

"तो ?"

"जाने का मन नहीं करता।"

"वह देखो राजा बिड़ला की बनवाई धर्मशाला आ गई। अब तो आ गये समझो। लगता है यह धर्मशाला भी उसी युग की वस्तु है।"

"पूंजीपतियों की टांग हर जगह घुसी रहती है," बेबी ने उपेक्षा से कहा। शायद धनहीनता इस समय बेबी के हृदय में एक हीनत्व की भावना-सी भर गई थी।

"तो तुम्हें क्या करना है ?" मोहन ने चिढ़ कर कहा—"जिन श्रेष्ठियों के बनाये विहारों में गौतम श्रमण-विश्राम करते थे वे और क्या थे ? बस यही था कि पूंजीवादी रीति से वे शोषण नहीं कर पाते थे, किन्तु साथ ही सामंत काल में मनुष्य को, प्रजा को नागरिक अधिकार तक नहीं दिये गये थे।"

"वह युग ही और था।"

"तो यह युग भी और ही है।" मोहन ने रुक्ष स्वर से कहा—"समझता नहीं किसी भी बात को। हर बात में टांग अड़ाना। चाहे जरूरत हो, चाहे न हो, इससे कोई बहस नहीं। नहीं बोलेंगे तो घट जो जायेंगे।"

अंधकार में मोहन का मुख नहीं दिखा पर बात बेबी को अच्छी लगी। क्यों ? शायद वह स्वयं नहीं बना सकती।

उसने कहा—"क्यों जी, तुम इसे ठीक समझते हो ?"

"मैं सब ठीक समझता हूं। समाज की व्यवस्था में व्यक्ति एक सीमा तक रुचि का प्रभाव डालता है, यह मानना पड़ेगा।"

बेबी हंसी जैसे वह मान कर उठेगी जो एक दिन राधा ने किया था कि मैं अमर विष की एक प्याली हूं, बालम तनिक इसे पीकर तो देख कि रग-रग में जीवन नाच उठे, अल्हड़ यौवन गीत से पागल हो जाये।

तू मेरी प्यास बुझा जा। सारा सागर विक्षोभ से गरज रहा है, किन्तु नीर फिर भी लुब्ध है। ये चिर अतृप्ति की लाज कि सोया हुआ यौवन जल जल उठता है, तृष्णा की सुलगन मच उठती है। भिनसार तक प्रतीक्षा हो चुकी, जागकर ही सारी रात बिता दी, किन्तु व्यक्ति की प्यास फिर भी नहीं बुझी।

उसने मोहन की बात का उत्तर नहीं दिया। मोहन को उस समर्पण में आत्मीयता की झलक मिली।

विश्रांत गगन। यौवन लुट रहा है। सुधि से भी धुंधले तारक जाग उठे हैं;

स्वप्निल-सी उन्मत्त सिहरती संध्या बेसुध होकर अपनी कबरी खोल उठी है। मूक तिमिर नूपुरध्वनि-सा गूंज रहा है। व्याप्ति। कण-कण गूंज रहा है। जीवन असीम है! गगन अब फिर मलीन हो चला है।

प्यासे चुंबन मिलन को उन्मुक्त नहीं कर सकते। रंग मिट-मिट कर वरदान बन गये हैं। हे आकुल! तुझे राह दिखाने मेरे पथ के गीत व्याकुल हो उठे हैं। मेरे अंचल के सारे शूल मेरे उर में व्याप गये हैं, तेरे लिए सुमनमात्र शेष हैं। होंठों में व्यथा के फेनिल कंपन मात्र।

मन एकाकी है, पांव अभिभूत हो चले। पुराने पथ फिर नये क्यों लगते हैं? बीते हुए दिन अतीत के अंधकार में फिर जाग उठे है। मेरा शून्य गगन तारों से दीपित करके किसने बांध लिया। इतने दीपक किसलिए जल रहे हैं। आज आंसू मेरे जीवन का यापन हैं।

किन्तु फिर भी वह मनमोर मेघमलार गाकर फलक अनल जल अवनी सबको स्वर से एकाकार कर देना चाहता है, आधार न मिले न सही। तरु-मुरली में साकार शब्द भर गया है, जो हृदय का तार बनकर झूमता हुआ पुकार उठा है।

"वेवी!" मोहन उच्छ्वसित हो उठा था। "एक दिन ऐसे ही अंधेरे में अशोक का पुत्र कुणाल भटकता था। उस दिन कंचना उसका संबल थी, आज मेरे साथ तुम हो।" वेवी ने मुड़कर देखा। और मोहन गा उठा—

"मेरे प्राणों का रूप वही
जो हर सुंदर का होता है
मेरे जीवन का रंग वही
जो चिर प्रकाश में सोता है
मेरे भीतर बस एक नाद
करता कल्लोल सदा मानी
जो प्रलयनिनादी अट्टहास
से इस ईमन तक होता है
मैं प्रलय निशा में सोता हूं
पर शांति उषा में हूं उठता
मेरी गति की ही परछाई
सूरज चन्दा में पोता है"

गीत की लय अंधेरे में करुणा की भांति लय हो गई।

जीवन का उल्लास आज नवीन हो गया है। फिर वह खोई हुई मूक स्मृतियां पास लौट आई हैं। आज विहंगम के स्वर में भी राधा लास कर रही है। सखी, जीवन का आनंद मुखरित हो रहा है।

वेबी ने देखा! अमराइयों में कुछ लोग आग जलाकर ताप रहे थे।

हम निर्बल हैं। संसार को बदलना चाहिये। धुआं पेड़ों में घुस रहा होगा। इस

आग की लपटें कितनी सुंदर हैं। गौतम के युग में भी उद्यानपाल ऐसे ही बैठे रहते होंगे···

विचार फिर भटकने लगे। एक ओर विक्षोभ है, दूसरी ओर मोह। तीसरी ओर 'हम' किन्तु केन्द्र में 'मैं' है, जो एक बड़ा धोखा देकर सबका अपने व्यक्ति के सुख के लिए असंभव समन्वय करने का प्रयत्न कर रहा है।

गहरा प्रशांत अंधकार कण-कण में नितांत व्याप गया है। अंतर्तम में आलोक मूक है, आंखों में अमिट भूख भर रही है। मन-घर से आंख तक सभी भ्रांत होकर तृप्त से मानस में लौट जाते हैं।

हम एक, दोनों एक ही समान हैं। मुझमें जीवन की निशीथ है, तू मुझे आलोक का गीत सुना। हे प्रकृति, जब तू मुझसे दूर होती है तब मैं दीनहीन हो जाता हूं। मेरी शक्ति तेरे कारण है।

डाल, कुछ ज्योति मेरे मन में, इस जीवन नाटक को कुछ संबल दे। दिन का भटकता जीवन रात में कैसे झपक जाता है, देखूं तो सूर्य्य के आलोक में खिले सरसिज सांध्यरश्मि में कैसे ढल जाते हैं।

पग तम और श्रांत है!

मन दरिद्र है। संसार दरिद्र है। दारिद्र्य की इस बात को बार-बार दुहराने में बात का मजा फीका पड़ जाता है।

भूखे को ही खाना अच्छा लगता है।

मध्यवर्ग की शैतानी ताकत ने हंस कर अपना सिर उठाया फिर गुनगुनाई।

सुना। मन की गहराइयों में सुना। ध्वनि का आलोक अब मौन का अंधकार बन चला।

प्रलय की भूखी तृष्णा, तुझे खंडहर पर किसलिए शोक हुआ है? करुणा की वंशी दूर बज उठी है। सूना मन जाग कर अधीर हो उठा।

वे वैभव के स्वर्णिम सपने विध्वस्त हो चुके। गाती तो है पर विहाग का सुर भीतर ही घुट जाता है।

अपमानित जीवन पथ पर मन में थोड़ी-सी आशा संचित है। जो प्याला भर कर होंठों तक उठाया वही बार-बार गिर गया। जो पीड़ा मुझमें है वह कोई सुखिया क्या जाने। रात की निर्जनता में दुख के गीत गूथा करती हूं।

ओ भूखे-प्यासे पंथी तार टूट-टूट कर क्यों जुड़ रहा है?

पागल तेरा प्यार कि कोरों में आंसू छलकते ही रहे, और अभिमानी मन निर्धूम सा सुलग उठे।

मैं अगरुधूम सी मतवाली जीवन का अणु-अणु सुरभित करती हूं। अरी मैं आंसू की वेला वरुनी, सागर की सी मुझमें हलचल है। काली पीड़ा उलझन के मीठे तारों को नहीं सुलझा सकती। व्याकुलता भी मेरा विलास है, ला खुमार से ही मेरी प्याली भर दे! ज्वालामुखी फूट रहा है। कितना सघन धूम उमड़ रहा है। कल तो कुछ भस्ममात्र

बचेगी, आज ही दीपावली मना ले मेरे मन !

और मोहन।

हे कंचना तू नयन बन जा, कुणाल मेरा मन है। हे प्रिया ! अपना नूतन शरीर होगा। तू पहले अपनी आंखें भर ले, फिर धीरे-धीरे मेरे मन को भर देना। संसार कितना कठोर है।

अब नयन प्राचीनता के स्वप्न हो गये हैं। तुम कहो। क्या अब भी जीवन में कंपन होता है। तुम कहती हो संसार का कण-कण सुन्दर है। मन मात्र भारमय पीड़ा का खुमार है। नहीं, नही। थक जाने के कारण ही तेरा ऐसा विचार है।

मानव ही क्यों सब ही यहां नश्वर है।

और टिमटिमाने वीर बालको !

नयन के दीपको आलोकित हो उठो।

जब रात के तम में पांवों का पथ पथरा जाता है तब तुम्हीं मेरी आंखों के समीप आकर ज्योति बन जाती हो।

तारा खिली हुई मुक्त शिखा सी आंखों की पुतली में खुल जाती है। अपने तल में अंधकार छोड़कर निशीथ आकाश को आलोकित करने लगती है।

प्रिय ! क्या यह मन तेरा ही शलभ नहीं जब आंखों में भी तेरा ही प्रतीक है ?

तेरी नयन-ज्योति में डूब-डूब कर बार-बार जीवन जाग्रत हो।

दुखद है यह कुणाल का गीत। अब सामने यशोधरा और गौतम हैं।

आधारहीनता पर निरालम्ब गगनारोहिणी कल्पना ऐसे ही उठ रही थी जैसे गई गुजरी बात का भूत मंड़रा रहा हो।

दोनों इस समय अपने आपको भूले हुए हैं। संसार का शायद कोई भी तीसरा आदमी उनकी भावनाओं को समझने में असमर्थ है। वे अपने में तन्मय । व्यक्ति की वासना अपने आपको सबसे अलग करने का घोर प्रयत्न कर रही है किन्तु क्या वह कभी सफल होगी ?

नहीं, नहीं, सौ बार नहीं।

दोनों ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वे अपने रंग में डूबे हुए थे।

कल्पना ने सिर उठाया। अंधेरे में युवक स्त्री और पुरुष आवश्यकता से अधिक अनुभूतिवान हो जाते हैं···

और पुरुष और नारी। पुरुष को लग रहा है कि अहर्निशा पूर्णचन्द्र नारी के नयनों में खेल रहे हैं। उसी के मधुरतम आलोक से दिशा-दिशा में पौरुष ज्योनित है। जीवन-रस उमड़ रहा है। उस तन्द्रिल छबि में ममता की द्विगुणित कारा है। स्फुलिंग की भांति तंतु-तंतु की शक्ति भ्रमित सी भीतर पुंजीभूत हो गयी है।

ओ नारी ! तू महारंध्र में से निकली जीवन रागिणी के समान है। लज्जा के आंचल में प्रदीप्त सी तू सूर्य्य-किरण सी फूट रही है। तू आनन्द की मधुरिम छबि है, केवल एक शृंखल अनुभूति सी। मेरे महामार्ग की विश्रांति मिटा दे।

मैं प्रखर दिन सा भीषण हूं। तू महानिशा का गम्भीर संगीत है। रंगीन सांझ सा महामिलन तुझमें महान हलचल भर रहा है। नारी! तेरी अंगड़ाई में कोमल विकास फूट रहा है।

तू एक गहन नींद है, मैं खोया हुआ जागरण हूं। ओ सुकुमारी, मैं अमृत में पूर्ण मग्न हूं। तू ज्योत्स्ना सी रुचिर है। प्रश्न: अकर्मक!

और नारी! ओ पुरुष! हिमाच्छादित गिरि पर बादल लोड़न कर रहे हैं, जिस पर कोई नीला प्रकाश झिलमिल-झिलमिल चमक रहा है। तेरे हाथों में भीषण तूफानी झंझा है, तेरे श्वासों में आंधी का महाशोर कांप कर नाच रहा है। मैं जिस पथ पर विनाश करता हूं तुम उस पर सजल विकास करती हो।

तेरी छाया लहरों में कितनी गहरी होती जा रही है। मेरे क्षितिजों में अवनी की छाया हंस-हंस कर सिहर उठी है।

जीवन की कोमल मधुर भूमि! मैं वह तरु हूं जिस पर यौवन है। आकांक्षा के खग चहक रहे हैं। जीवन भरमा रहे हैं···

तभी अंधकार में घोड़े की टाप पटकी और दोनों ही आसमान से लुढ़क कर फिर धरती पर आ गये। दुनिया फिर सामने आ गई थी। आखिर शुतर्मुर्ग को बालू में से सिर निकालना ही पड़ा। वह व्यर्थ समझने लगा था कि तूफान गुजर गया। अब वही नीरसता। वही हाट बजार, वही कोलाहल, दुनियादारी, सम्राटों की वाराणसी नहीं, अंगरेजों का बनारस जहां 'नगराधीश' नहीं, 'आई० सी० एस०' का राज्य है। लड़ाई की महंगाई से प्रत्येक व्यक्ति परेशान है। उसे कुछ भी समझ नहीं पड़ता। वह एक जड़ता का, अपनी चेतना का सबसे सशक्त रूप समझने लगा है। बहुत कुछ कहा जा सकता है किन्तु सबका सारांश यही है कि वह नितांत विकृत है, निकृष्ट है। वह अपने द्वंद्व में दोनों ओर ही अंधकार देखता है। क्या करे? कहां जाये? दुकानों में पैसे की मशीनें बैठी होंगी, और भूखे और मजदूर पैसे देकर भीख मांग रहे होंगे···

विषम है यह विडंबना···दलित विमर्दित अपमानित और ऊंघते हुए तांगे वाले ने दबे हुए स्वर से कहा—"बाबूजी घंटों लग गए। क्या कोई खेल थेटर था क्या···बड़ी देर लगी···" और वैसी ही बेवकूफी भरी बड़बड़ाहट। गौतम की महानता चकनाचूर होगी।

और मोहन को लगा कि गौतम के विषय में इतिहास ने यह सच कर दिखाया कि घर का जोगी जोगड़ा आन गांव का सिद्ध। चीन, हिन्दचीन, सुमात्रा, जावा, बाली, बरमा सब में तो—'त्रिपटक का डंका बजा दिया, उस पीली कम्ली वाले ने', परन्तु भारत में लोग उसे उतनी ही आसानी से भूल गए जैसे कल सुबह क्या साग खाया था यह याद ही नहीं पड़ता।

तांगेवाले ने कहा—"बाबूजी, बहुत देर हो गई।"

मोहन इसका अर्थ समझ गया—यानी ज्यादा किराया मांगेगा।

उसने कहा—"हां, जगह ही ऐसी थी।"

तांगेवाले ने समझ लिया कि बाबूजी बहुत हुज्जत करेंगे।

"मैं इधर काफी आया हूं।"

"और लोग ऐसे ही देखकर चले जाते हैं।"

"आप कुछ साथ ले आए हैं क्या?"

मोहन कुढ़ा।

"तुम क्या जानो।" बेबी ने उपेक्षा से कहा।

"हां बीबी हम गंवार ठहरे। एक दिन हमने भी देखा सब टूट-फूट गया है। कुछ मूरत जरूर धरी है।"

स्वर उठा और जैसे एक दिन गौतम का स्वर सुनकर ब्राह्मण खलभला गए थे, संस्कृति के रक्षक बेबी और मोहन दोनों ही चौंक गए और जैसे ब्राह्मणों ने घृणा से अट्टहास किया था मोहन और बेबी भी अभिमान में भर कर हंस उठे, तांगेवाला भी हंसा।

सारनाथ का खंडहर ही क्या सारा भारत एक खंडहर बनकर पड़ा था।

मोहन ने कहा—"बेबी," फिर कुछ सोचकर अंगरेजी को अपना लिया—"यह आदमी भी कुछ अजीब लगता है।"

बेबी ने अंगरेजी में ही उत्तर दिया—"मूर्ख है, इसकी बात पर ध्यान देने की जरूरत?"

"कुछ नहीं। मैं तो योंही कह रहा था।" तांगेवाले के खटक रही थी दिल में एक पत्थर की नोक। क्या चित्त आया है मौके पर। बिल्ली ने शेर को सब सिखा दिया था सिर्फ पेड़ पर चढ़ना नहीं सिखाया। उसने विक्षोभ से घोड़े के चाबुक फटकार दिया। घोड़ा, जैसे कुछ नहीं हुआ। बेबी और मोहन के सामने जो तांगेवाला, तांगेवाले के सामने वही घोड़ा···

तभी बेबी ने कहा—"कुछ भी हो, मजा आ गया···"

पवित्र सारनाथ का इससे बढ़कर अपमान शायद नहीं हो सकता। क्या करता? आखिर वह खंडहर था!

और तांगेवाला सोच रहा था। आखिर इस लड़की को ऐसा मजा कैसे आया··· क्या···

और दयनीय घोड़े पर चाबुक फिर बज उठा।

कौन जाने घोड़ा गौतम को निर्वाण-पथ पर ले जाने का श्रेय स्वयं ले लेना चाहता था···

('47 से पूर्व)

अमरता—एक क्षण

प्रासाद की शिल्प सज्जामय प्राचीरों से घिरा वह छोटा प्रकोष्ठ अगरु की सुगन्धि से महक रहा था। सांझ हो चली थी। अभी दीपक नहीं जले थे। अधलेटी-सी राजकुमारी ने कुछ न समझकर कहा—"अरे! क्या बात है? कुछ कह न?"

व्रीड़ा ने अपनी चंचल आंखों को अल्हड़पन से नचाते हुए कहा—"देवी! यह तो कहती है मैं अमर होना चाहती हूं।"

"ओह!" राजकुमारी ने कहा—"कोई हुआ है बोली आजकल? पगली है। इसे जाकर वृद्ध पुरोहित को दिखा। इसे कोई उपदेवता तो नहीं लग गया?"

उसके स्वर में डूबा हुआ विषाद मानो एक बार फिर बाहर आने की व्यर्थ चेष्टा करके फिर भीतर ही डूब गया। किन्तु व्रीड़ा हंसकर बोल उठी—"देवी! आप उसे गुस्सा कर देंगी। बेचारी भोली बच्ची···"

वह खिलखिलाकर हंस दी। नीला के कपोलों पर सौन्दर्य स्नान करता हुआ भाग चला। राजकुमारी ने देखा। फिर धीरे से कहा—"नीला सखी! कितनी काली हैं तेरी आंखें, अथाह नदी से भी गंभीर, लहरों से भी तरल···"

नीला रोककर कह उठी—"और आप राजकुमारी! ये काले-काले केश, यह स्वच्छ रंगीन वस्त्र, यह यौवन का श्यामल प्रवाह···"

और इतना भारावृत हो गया यह प्रलाप कि राजकुमारी ने टोककर कहा—"चल हट! व्यर्थ की बातें किया करती है।"

नीला ने स्वर बदलकर कहा—"ओहो! मैं जैसे कुछ जानती ही नहीं! कभी महानद के गर्जन को किसी ने नहीं सुना, शुभ्र ज्योत्स्ना को देखकर आंखें बंद कर ली हों, दोष किसका है? बोलो सखी।"

राजकुमारी लजा गई। उसने मुंह फेर कर कहा—"दुर पगली! न जाने क्या-क्या सीख गई है जो वसंत के कोकिल की भांति रात-दिन कूकती फिरती है।"

नीला बैठ गई। उसने घुटनों में सिर छिपाते हुए कहा—"किन्तु राजकुमारी के हृदय में हूक क्यों उठती है?"

राजकुमारी अचकचा कर कह उठी—"दुष्ट!"

व्रीड़ा और नीला उठकर हंस दीं। तरल हास्य की उफान में ही नीला ने कहा, "पहले मैं भी उसे चाहने लगी थी व्रीड़ा, किन्तु राजकुमारी जिस फूल को उठा ले उसे

भला नीला छूने वाली कौन ?"

व्रीड़ा ने कहा—"क्यों यौवन पर यह बन्धन ? जाने कैसी हो तुम लोग ?"

"ओह," नीला ने मुंह बनाकर कहा—"जैसे तुम तो कुछ जानती ही नहीं । युद्ध में गए हैं, वे राजकुमारी ! भुजाओं में अतुल पराक्रम भर कर । आखिर व्रीड़ा ने ही तो उन्हें जाते समय पुलकित किया था । सेनानी निरुद !!" स्वर खिंच गया और फिर एक धीमे श्वास के बाद कहा—"सचमुच नीला ही एक अभागिन है ।"

व्रीड़ा ने उसकी वेदना को नहीं समझा । उसने मुसकराकर कहा—"देखा देवी ! यह तो ठंडी सांसें छोड़ने लगी !"

राजकुमारी ने नीला के सिर पर स्नेह से हाथ फेरा और कहा—"तुम सुहागिन हो न व्रीड़ा । तुम्हें तभी तो भय है । सचमुच हम लोगों के ऐसे भाग्य कहां ?"

"क्यों देवी," व्रीड़ा ने पूछा, "मन फिर गया ?" सुहागिन थी वह । वेदना की कचोट से उसका हृदय अनभिज्ञ था ।

राजकुमारी चुप हो गई । व्रीड़ा सोच रही थी, इतना सुन्दर शरीर, वह कोमल मुख, वह नील नयन, पिंगल केश और सबके ऊपर वह भोली दृष्टि···फिर भी···

और नीला सोच रही थी—राजकुमारी इतनी उदास है ! आखिर क्यों ?

प्रकोष्ठ में न वेदना का धुआं दीखता था, न आग ही ।

2

उन दिनों आर्य्यों का आक्रमण हो रहा था । नित्य ही नये-नये संवाद आकर लोगों के हृदय में खलबली मचा देते थे । द्रविड़ों में उन विजयेच्छा रखने वाले बर्बरों के प्रति घृणा दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी । एक सप्ताह पूर्व असंख्य आर्य्यों ने छिपकर आक्रमण किया था किन्तु सेनापति निरुद के प्रचंड पराक्रम ने उन्हें खेत की मूली की भांति काट गिराया । लोग रणक्षेत्र में घायल पड़े आर्य्यों को कौतूहल से देखने गए । कौन हैं यह लोग ? कहां से दल के दल बांधकर चले आ रहे हैं ? कुछ लोग इन्हें देवता कहते है । जब स्त्रियों की भीड़ उन्हें देखने गई, चारों ओर आनन्द की किलकारियां गूंज उठीं । किन्तु राजकुमारी की दृष्टि एक घायल पर टिक गई । उसने व्रीड़ा को बुलाकर पूछा—"व्रीड़ा ! सेनापति से पूछ तो यह कौन है ?"

सब लोग वहीं आ एकत्र हुए ।

सेनापति निरुद ने वृद्ध पिता की एकमात्र पुत्री की चपलता को देखकर कहा—"राजकुमारी की दया हिरन पर होनी चाहिए, गैंडे पर नहीं ।"

लोगों ने समवेत स्वर से स्वीकार किया । किन्तु राजकुमारी फिर भी खड़ी रही । वृद्ध शिन्थाल ने आगे बढ़कर कहा—"अरे यह निरीह तो गाता फिरता था । मैंने इसे उस दिन जंगल में छिपकर देखा था । और एक दिन इसी ने मुझे छोड़ दिया था ।"

वृद्ध हंस पड़ा । लोगों को विस्मय हुआ । बर्बर दया करना भी जानते हैं !

उस समय नीला ने आगे बढ़कर कहा—"यह बर्बर हमें दास बनाने का अहंकार

रखते हैं ? हम इन्हें दास बनाएंगे।"

राजकुमारी का वक्षस्थल गर्व से फूल गया। भीड़ छंट गई। घायलों की कराहों के बीच जब राजकुमारी ने घायल को पानी पिलाया, उसकी आंखें पागलों की भांति चंचल थीं।

वृद्ध शिन्थाल पास आकर घुटने टेककर बैठ गया। उसने कहा—"देवी! सेनापति निरुद के प्रहार से चट्टान टरक सकती है। फिर इसका क्या ? देवी ! मैं अनेक भूखंडों को देख चुका हूं। जिस समय मूर्छित होकर यह घोड़े से गिरा था उस समय लगा था जैसे भोर की पहली स्वर्णिम किरण से रंजित हिम-शृंग टूट पड़ा हो।"

राजकुमारी सुनती रही। निस्पंद अवाक् ! वह देख रही थी उसके नील नयनों में चमकती हुई तारा, जैसे निस्तब्ध गगन में एकाकी सांध्यतारा टिमटिमा उठा हो···

उसे लगा जसे नील सागर में आशा की लघु नौका डगमगा रही हो···

और वे घायल को प्रासाद में उठा लाए। उन्होंने उसके सिर पर पट्टी बांधी और उसे दूध दिया। उन्हें ज्ञात हुआ वह अपनी वेदना खो चुका था।

राजकुमारी सूनी आंखों से उसे देख रही थी। उसका हृदय बिल्कुल निस्पंद हो गया था, अभिभूत···निर्द्वंद्व···अवाक्···क्या उसने पागल को दास बनाकर सचमुच आर्यों का अपमान किया था !!!

3

रात की नीरव अंधियारी में राजकुमारी उठ बैठी। नीद नहीं आ रही थी, हृदय व्याकुल हो रहा था। वह उठकर बाहर चली आई। प्रहरियों ने आदर से सिर झुका दिया। उद्यान में वह जाकर दूर्वा पर बैठ गई। आकाश में अनेक नक्षत्र घूम रहे थे, रह-रहकर समीर कांप उठता था। एकाएक राजकुमारी चौंक उठी। उसने पुकार कर कहा—"कौन है ?"

"कोई नहीं देवी ? मैं हूं।"

व्रीड़ा पास आ गई। राजकुमारी मन-ही-मन खिन्न हुई। पूछा—"इस समय तू यहां ?"

"देवी आपको कहीं नहीं पा सकी थी।"

व्रीड़ा बैठ गई, कहा—"मैं जानती हूं।"

राजकुमारी ने विस्मय से आंखें उठाई। पूछा—"क्या जानती है ?"

"आप," व्रीड़ा ने कहा—"उस दास को···"

"व्रीड़ा !" राजकुमारी का स्वर कठोर हो गया। व्रीड़ा चुप हो गई। राजकुमारी ने कहा—"व्रीड़ा ! वह शत्रु है।"

व्रीड़ा ने सुना। कहा—"मैं यही कहने आई थी। अब जाती हूं।"

उत्तर की प्रतीक्षा के बिना ही वह चली गई। देर तक राजकुमारी वहीं लेटी रही। तारे झुकने लगे थे। न जाने क्यों एक बार राजकुमारी की आंखों में पानी छलक

आया और उसके होंठों से फूट निकला···शत्रु···

उद्वेग से भरी जब वह प्रकोष्ठ में लौटकर आई उसने देखा, घायल भूमि पर सो रहा था। उसने देखा और देर तक देखती रही।

उसी समय किसी ने कहा "देवी !"

राजकुमारी ने देखा, व्रीड़ा थी। और राजकुमारी उसके कंधे पर सिर धर कर रो उठी।

4

राजकुमारी ने अपनी शैया पर लेटते हुए कहा—"नीला ! युद्ध समाप्त नहीं हुआ ! न जाने क्या होगा।"

नीला चुपचाप बैठी थी। उसने कहा—"देवी ! संवाद अच्छे नहीं हैं।"

राजकुमारी उद्विग्न हो गई।

"वह कहां है ?"

"[illegible] घूम रहा है।"

"राजकुमारी," व्रीड़ा ने धीरे से कहा—"निरुद ने तुम्हारे दास को पागल बना दिया है, मुझे खेद है। किंतु निरुद तो तुम्हारा ही अनुचर है। उसे क्षमा करो।"

"क्षमा क्यों व्रीड़ा," राजकुमारी ने कहा—"यदि वह घायल होकर मूर्छित न हो जाता तो वह, वह मुझे मिलता ही क्यों ? वह आर्य्य है। उसे अपने वर्ण का अभिमान है विदेशी से प्रीति क्यों करेगा वह ? इसी की जाति ने हमें कुचलने को खड्ग उठाया है। वह ठीक होता तो मैं उससे घृणा करती व्रीड़ा, पर वह पागल है, वह तो कुछ भी नहीं समझता। मैं कहा करती हूं, उसके पिंगल केशों को एकांत में सहलाती रहती हूं, पर वह बालक-सा अजातशत्रु बना मेरे पांवों के पास बैठा रहता है···"

"किंतु यदि यह किसी को ज्ञात हो गया तो ?"

राजकुमारी कांप उठी। उसने आशंका से देखा। व्रीड़ा गंभीर थी। नीला कुछ सोच रही थी।

आकाश भी उदास था। कोई बाहर गा रहा था—

"व्याकुल मन-वेदना इतनी दुस्सह क्यों हो गई कि तू रो रहा है।

लहरें किनारों से टकराकर क्यों बिखर जाती है, ज्योत्स्ना की मधुर हिलोरें हूकों को बार-बार क्यों सुलगा देती है···

रह-रहकर विसुधा तड़पन भर रही है···

अरे ! वह बातें तो बिना सीखे ही पहचानी-सी आ रही हैं।

ओ विवश हृदय ! कौन सुलझायेगा इसे ? यह तो चिरअभिमानी की उलझन है···

सूने यौवन तू कुछ मत कह, कुछ मत कह···"

गीत धीरे-धीरे करुणतम होकर लय होने लगा।

"कैसा मधुर संगीत है!"

"कौन गा रहा है व्रीड़ा, देख लो।"

द्वार पर कोई बोल उठा—"जो आंखें खोलकर भी नहीं देख पाता।"

"शिन्थाल!!" राजकुमारी पुकार उठी। वृद्ध भीतर घुस आया। उसने मुसकराकर कहा—"राजकुमारी का हृदय बहुत अनमना है क्यों?"

"नहीं तो शिन्थाल।" कौमार्य्य लाज से दुरने लगा।

वृद्ध हंस दिया, जैसे उसकी आंखों से कुछ भी छिपा नहीं है। राजकुमारी उठकर बैठ गई। वृद्ध ने कहा—"राजकुमारी! शिन्थाल के हृदय ने भी कभी किसी के चरणों की लय पर नृत्य किया था। वह क्या बूढ़ा होने से ही जीवन की उच्छृंखलता को भूल सकेगा? यौवन की आकांक्षाएं आकाश मे बिखरे असंख्य नक्षत्रों मे भी अधिक होनी है, यौवन महानद की उत्ताल तरंगों से भी अधिक भीषण होना चाहता है, किन्तु देखा है कभी शतदल पर डबडबाता नीहार-कण, वही है यौवन···मानव जीवन की शाश्वत अमरता का एकमात्र क्षण, एक अल्प आभास···"

"अमरता!" नीला ने कौतूहल से कहा—"क्या हो सकता है मनुष्य अमर? अमर हो सकता है वह?"

वृद्ध कहता रहा—"अधिपति होकर, पुरोहित होकर, कवि होकर, सेनापति होकर भी मनुष्य इस बदलते हुए संसार में अमर नही होता। आकाश मे असंख्य तारे हैं किंतु उनमें क्या? रूप तो तभी बिखरता है जब भोर की पहली किरण फूटती है, कलरव सांझ में ही सुहावना होता है नीला। जीवन का एक क्षण जब मनुष्य प्यार करता है, और उसके हृदय में सागर की लहरों की सी टीस उठती है और सुरभिश्लथ मलय की भांति उसकी व्याकुलता झूम उठती है, केवल वही अमरता है, अमरता—एक क्षण···"

वृद्ध ठठाकर हंस पड़ा। नीला भय से पीछे हट गई। वृद्ध चला गया था। राजकुमारी व्याकुल-सी पुकार उठी—"फिर मनुष्य आपस में क्यों लड़ता है···क्या मिलता है उसे···"

किंतु शिन्थाल उस समय दूर हो गया था।

5

दूसरे दिन जब सांझ की किरनें सिमटने लगीं, नीरवता को तोड़ते हुए व्रीड़ा हंस दी। आज नगर में आतंक छाया हुआ था। वह उसे भूल जाना चाहती थी, सहसा उसने कहा—"देवी, पागल आ रहा है।"

"मैं उसे चंद्र कहती हूं," राजकुमारी मुसकरा दी।

पागल युवक भीतर आ गया। हर्ष को छिपाते हुव राजकुमारी ने कहा—"चंद्र!"

"स्वामिनी!" पागल ने उत्तर दिया। एक बार उसने अनजान नेत्रों से व्रीड़ा

की ओर देखा और अपने स्वभाव के अनुकूल राजकुमारी के पांवों के पास आकर बैठ गया। राजकुमारी उसके बालों से खेलने लगी जैसे वह भी उसका पालतू चीते का बच्चा था।

"यह ज्वाला तेरे शीश को जलाती नहीं?"

पागल ने नहीं समझा। उसने उस अनार्य्य भाषा को सुनकर अबोध नेत्रों से देखा। अभी वह सात-आठ शब्द ही सीख पाया था। राजकुमारी ने फिर कहा—कितना भोला है तू? अरे यह पिंगल केश।"

नीला और व्रीड़ा ने एक बार एक-दूसरी की ओर देखा और फिर वे बाहर चली गईं। एकान्त का सूनापन राजकुमारी के हृदय में धधक उठा।

राजकुमारी ने फिर कहा—"हठीले! कितना सुंदर है तू?"

पागल ने सिर हिला दिया।

"पर मेरा हृदय तो जानता है, सच मैं बड़ी अभागिनी हूं। लोग मुझे राजकुमारी कहते हैं, पर इसी से क्या मैं हृदयहीन हूं। बर्बर! तू यदि पागल न होता तो तू भी मुझसे घृणा करता। तेरी हत्या मैं करूं? इससे अच्छा तो यही हो कि मैं देवता की बलि हो जाऊं जिससे अधिपति और प्रजा का कल्याण हो। वास्तव में तेरा भ्रम ही तेरी सफलता है। सच कह, तू कुछ नहीं समझता?"

चंद्र ने शून्य दृष्टि से देखते हुए सिर हिलाया।

"किंतु यह हृदय तो नहीं मानता, जाने कोई कहता है यह सब कुछ नहीं है। केवल झूठ है, पर अभागिनी तृष्णा चिल्ला उठती है—'जल-जल, उन्मादिनी तड़प-तड़प कर अपनी ज्वाला में आप ही झुलस।' मैं तुझे प्यार करती हूं पागल। नहीं समझता? उस कहानी का ही क्या जिसका कोई सुननेवाला न मिले। निर्जन वन की मर्मर को बादल, रसभरा बादल भी क्या समझेगा? तेरा पागलपन कितना अच्छा है। न होता तू पागल, न होता मेरे मन को बांधनेवाला बंदी। तब तू आर्य्य होता, हमसे घृणा करता बर्बर! अच्छा जाने दे। तेरा नाम क्या है?"

"पागल।"

"ऊंहु। पागल नहीं।"

"चंद्र।"

"नहीं। और बता?"

पागल ने फिर सिर हिला दिया। राजकुमारी ने हंसकर कहा—"तू आर्य्य है?"

"नहीं, बंदी।"

"तू मुझे मार डालेगा?"

चंद्र फिर चुप हो गया। राजकुमारी ने फिर कहा—"मैं कौन हूं?"

"स्वामिनी।"

"जायेगा? यदि वह आ गये तो चला जायेगा?"

"नहीं।"

राजकुमारी पुकार उठी—"मैं तुझे नहीं जाने दूंगी। आह, कितनी मादक है यह संध्या! जीवन वन का मोहक कलरव इस यौवन की जलन क्या समझे ? सभी तो समझदार बनते हैं। मेरे पागल, रह तो, यह ज्वालामुखी क्षण भर शीतल हो सके। लोग कहते हैं राजकुमारी ने आर्य्य को अपने पास रखा है, यह बर्बर संसर्ग अपशकुन है, पर पागल, मेरा हृदय तो कहता है कि डाल पर आकर धारा के लिए निर्झर बनना ही आवश्यक है, गाता हुआ सारा उन्माद पिपासा के फेनों से ढंक जाय, चंद्र! मेरे जीवन सर्वस्व···"

आनंद की विभोर व्याकुलता में राजकुमारी के नेत्र मुंद गये।

एकाएक उन्मत्त रक्त से भीगी व्रीड़ा ने प्रवेश किया। वह चिल्ला उठी, राजकुमारी! तुम्हारे इस बर्बर संसर्ग के कारण ही आज हमारी पराजय हुई है। बर्बर विजयी हुए हैं। जानती हो मेरा निरुद भी मारा गया। नगर में श्मशान का भीषण दृश्य है। उन्होंने आग लगा दी है। वे बच्चों और बूढ़ों की भी हत्या कर रहे हैं। और तुम ? तुम एक बर्बर के अपवित्र शरीर को अपने शरीर से सटाकर···राजकुमारी मन में आता है तुम्हारी हत्या कर दूं··· किंतु···मैं तुम्हें नहीं मार सकती···तुम्हें मेरा मन नहीं मार सकता···एक बार···"

एक बार कटार का फलक चमक उठा और व्रीड़ा ने कठोर स्वर में कहा—यह कटार बाहर आकर वैसे ही भीतर नहीं जायेगी···इस पागल का रक्त···"

उन्माद के आवेश में वह जोर से हंस उठी। राजकुमारी ने भय से चिल्लाकर कहा—"पागल हो गई है तू व्रीड़ा! नीला! नीला!!"

"नीला अब नहीं रही राजकुमारी। बर्बरों ने उसकी हत्या कर दी है।" व्रीड़ा हंस दी—"वह मर गई है, प्रासाद-उपवन सब उजाड़ दिया गया है, बर्बर अब यहां भी आ सकते है। यह आर्य्य···"

उसने वेग से आर्य्य पर प्रहार किया। बिजली की सी गति से राजकुमारी की उठी भुजा को काटकर छुरी कंधे में घुस गई। पागल ने व्रीड़ा से छुरी छीनकर फेंक दी।

व्रीड़ा ने आर्त्त स्वर से कहा—"राजकुमारी!"

किंतु राजकुमारी ने मुड़कर कहा—"तुझे तो नहीं लगी चंद्र ?"

रक्त वह रहा था। राजकुमारी पृथ्वी पर बैठ गई। उसने कांपते स्वर से कहा, "व्रीड़ा, मुझे भूल जा···"

उसी समय धुंधलके मन में किसी ने लड़खड़ाते हुए आतुरता से प्रवेश किया। वह शिन्थाल था—रक्त से नहाया, जर्जर, घायल।

"शिन्थाल!" राजकुमारी चिल्ला उठी—"यह तुम्हें क्या हुआ ?"

वृद्ध दोनों हाथों से पेट को दाबे कराह रहा था। लड़खड़ाते हुए दुर्बल स्वर से उसने कहा—"भागो राजकुमारी! इस बर्बर को छोड़कर भाग जाओ, वह आ रहे हैं,

यहीं आ रहे हैं···कुल को कलंकित न करो···उन्हें मालूम हो गया है कि राजकुमारी यहीं रहती है···आह···जाओ देवी !" वह कांपने लगा था। क्षीण स्वर से उसने अंतिम बार कहा—"वे बर्बर हैं··"

स्वर अटक गया। वृद्ध गिर गया। व्रीड़ा चीत्कार उठी। वह मर चुका था। व्रीड़ा की आंखों में पानी भर आया। उसने करुण स्वर मे कहा—"राजकुमारी !!" विषाद की घुमड़ती कसकन में अथाह तड़पन थी।

कितनी ममता ने उसमें अपनी ज्वालाएं न सुलगा दीं। राजकुमारी ने सुना। रक्त बहुत बह गया था। एक बार उठने का प्रयत्न किया किंतु मूर्छित होकर वहीं लेट गई।

बाहर घोर कोलाहल मच रहा था, पास आ रहा था। कठोर गर्जन करते योद्धा लूटते हुए घुसे चले आ रहे थे। एकाएक द्वार पर कोई दिखाई दिया। व्रीड़ा चिल्ला उठी। पागल ने खड्ग उठा लिया। अंधकार में कोई भीतर आ गया। पागल ने खड्ग उठाया किंतु इससे पहले कि वह प्रहार करता एक कठोर प्रहार हुआ। पागल सिर पकड़ कर चिल्लाता हुआ लुढ़क गया।

प्रकोष्ठ में अनेक आर्य्य घुस आये थे। उनके हाथों में मशालें जल रही थीं। अभी भी 'मारो मारो', 'हटो सामने से' का रव थमा नहीं था। इन लोगों को देखकर उन कठोर योद्धाओं ने हर्ष से चीत्कार किया।

किसी ने गरजकर कहा—"घेर लो इन्हें।"

शीघ्र ही वे रक्त से भीगे खड्ग लिये उन्हें घेरकर खड़े हो गए। सहसा ही पागल चिल्ला उठा, "ऐ रानी ! बृहदाश्व, वह देखो, वह वृक्षों के पीछे द्रविड़ आ रहे हैं, घोड़े मोड़ दो, शीघ्रता करो···"

एक बलिष्ठ व्यक्ति ने उल्का के प्रकाश में झुककर देखा और कहा—"कौन ? श्वेताश्व।"

उपस्थित योद्धा हर्ष से जयनिनाद करने लगे।

बृहदाश्व ने फिर कहा—"हम विजयी हुए हैं।"

श्वेताश्व के मुंह से आनंद से निकला—"पुरंदर···"

बृहदाश्व ने युवक को सहारा देकर खड़ा किया। फिर कहा—"तुम बंदी थे, प्रलोमा ने हमसे कटुवचन कहे। किंतु वह बड़ी अभिमानिनी है। तुम्हारे ही लिए यह प्रतिशोध लिया गया है। लोग कहते थे उन्होंने तुम्हें दास बनाया था।"

"दास !" श्वेताश्व ने घृणा से कहा—"आर्य्य ! इनका दास !!"

"यह कौन है ?" प्रलोमा ने राजकुमारी की ओर देखकर पूछा, वह पुरुष-सैन्य सज्जा में थी।

श्वेताश्व ने हाथ का इंगित करके कहा—"मैं क्या जानूं ?"

व्रीड़ा कुछ नहीं समझती थी, किन्तु हाथ के इंगित ने उसे आभास दिया। कहा, "विजय के दुरभिमान में भूले युवक, एक चोट ने तुझे बर्बर से पागल बनाया था,

दूसरी ने तुझे पागल से फिर बर्बर बना दिया।"

श्वेताश्व ने अपनी बंकिम भ्रू को और टेढ़ा करके उसकी ओर देखा और कहा, "यह कौन है बृहदाश्व! पराजय ने इसे दुर्बल और विक्षुब्ध कर दिया है, क्यों?"

प्रलोमा ने हंसकर कहा—"डर रही है।"

व्रीड़ा ने घृणा से फिर कहा—"बर्बर! तुझसे बात करना भी मनुष्यता का अपमान करना है। जानता है वह मूर्छिता तेरी कौन थी?"

राजकुमारी चैतन्य-सी बैठ गई थी। एक आर्य्य ने व्रीड़ा को कुछ-कुछ समझा। उसने अनुवाद सा किया।

श्वेताश्व ने मुख विकृत करके कहा—"हूं! अनार्य्य कलुषित रक्त और इसका साहस कि इस स्त्री को मेरा कहे?"

प्रलोमा ने संदिग्ध दृष्टि से देखते हुए राजकुमारी की ओर उंगली दिखाकर कहा—"तुम सचमुच नहीं जानते यह कौन है? अग्नि की शपथ करके कहते हो?"

"प्रलोमा," श्वेताश्व चिल्ला उठा, "तुम आर्य्य होकर आर्य्य पर अविश्वास करती हो? यह नीच स्त्री मेरी हो सकती है? मैं इसे नही जानता, फिर भी इससे घृणा करता हूं···"

और उसने घृणा से उस पर थूक दिया। राजकुमारी ने देखा और वह व्याकुल-सी हंस उठी।

"राजकुमारी!!" व्रीड़ा ने आतंक भरे स्वर से कहा—"तुमने पागल को स्नेह दिया, वह अब तुम्हें नहीं पहचान सकता···"

"राजकुमारी! कौन? कहां?" राजकुमारी हंस उठी। पागल की भांति वह प्रलाप कर उठी—"टूट गई न-पतवार? कहां है शिन्थाल? ओह, वह भी चला गया! विजय की पताका को भी तो रंग चाहिए न? रक्त···पागल···"

वह शिथिल हो चली थी।

व्रीड़ा ने एक बार अत्यन्त करुण स्वर से कहा—"राजकुमारी!"

"नहीं व्रीड़ा, मैं बहुत प्रसन्न हूं। जानती है क्यों? क्योंकि मैं आज अमर हूं··· शाश्वत···"

राजकुमारी का गला भर आया। व्रीड़ा जोर से फफककर रो उठी। राजकुमारी मर गई थी। फिर सहसा ही व्रीड़ा हंस उठी। उसने एक बार श्वेताश्व की ओर देखा और कहा—"तुम जीते हो? पर तुम तो अमर नही हो···"

किन्तु किसी ने भी उसकी बात नही समझी। वे सब व्यंग और आनंद से ठठाकर हंस पड़े।

['47 से पूर्व]

मरघट के देवता

बीमार बच्चे के कमरे से निकलकर दूसरे कमरे में आते हुए डाक्टर जोशी ने डाक्टर नागर से कहा—"तो कहिये टायफॉइड है? डाक्टर, मेरी अक्ल तो बिलकुल काम नहीं कर रही है।"

डाक्टर नागर ने स्वर की व्यथा को पहचानकर विस्मय से कहा—"आप तो खुद डाक्टर हैं। आखिर इतना घबराने की वजह?" वह उस चंचलता का कारण नहीं समझ पा रहे थे। डाक्टर नागर की पत्नी ने आंखों में आंसू भरे हुए प्रवेश किया।

डाक्टर नागर ने शंकित होकर कहा—"टाइफाइड? याने कि करीब 21 दिन?"

डाक्टर जोशी ने झुंझलाहट दूर करते हुए उत्तर दिया—"जी नहीं।"

"तो ग्यारह तो जरूर?"

"जरूर ही।" डाक्टर जोशी ने लाचारी में मुस्कुराते हुए कहा—"आखिर मर्ज तो उतरते-उतरते ही उतरेगा?"

डाक्टर की पत्नी ने करुण स्वर से कहा—"तब तो बच्चा बहुत दुबला हो जायेगा?" उनके स्वर में ममता फफक रही थी।

"आपको," जोशी ने कहा—"इस वक्त हिम्मत की जरूरत है। बिस्तर को झाड़कर बच्चा ढूढ़ने की नौबत नहीं आयेगी," डाक्टर हंसा, उसने हाथ हिलाकर कहा—"घबराइये नहीं, आपका बच्चा बिल्कुल ठीक हो जायेगा। अगर भगवान ने चाहा तो कोई डर नहीं। हम करने वाले कोई नही होते। दवा का असर तो आगे के रास्ते पर चलते हुए मर्ज को सिर्फ उसके ठीक रास्ते पर लगाये रखना ही है न?"

डाक्टर की बात का महत्व खो गया क्योंकि चंपा रो रही थी। उसने आंचल से आंसू पोंछते हुए—"डाक्टर साहब, तो अब आप फिर कब आयेंगे?"

डाक्टर जोशी को ऐसे वाक्य सुनने का काफी अभ्यास हो चुका था। उन्होंने मुसकराकर तपाक से कहा—"आप जब मुझे बुला भेजेंगी, मैं तभी हाजिर हो जाऊंगा।"

डाक्टर नागर ने रुककर कहा—"डाक्टर!"

"वैल?" जोशी ने आंखें उठाकर पूछा।

"अच्छा," पत्नी चंपा ने धीरे से कहा।

"जी हां," डाक्टर जोशी ने फिर कहा—"बच्चे के कोई जुबान तो है ही नहीं जो वह कुछ कह सके। बेजान ही समझिये उसे, तभी तो उसकी यह हालत है। कितनी तकलीफ है बिचारे को। अब आप ही लोग इसका अंदाज़ लगाये रखिये। वर्ना···"

"वर्ना !" चंपा ने चौंककर पूछा।

"वर्ना," डाक्टर जोशी को सहसा ही अपनी बात की असंगति का ध्यान आया। उन्होंने बदलकर कहा—"कहा न मैंने, कुछ नहीं। बच्चे के साथ ही साथ आप भी सहने की कोशिश करिये। अच्छा तो आप जरा नौकर मेरे साथ भेज दें।"

"अभी लीजिये," डाक्टर नागर ने कहा—"कंपाउडर बाहर बैठा है, उसे लेते जाइये। और आपकी फीस···उफ ! मैं सब भूला जा रहा हूं।"

"अजी फीस-वीस रहने दीजिये," डाक्टर जोशी ने हाथ बढ़ाते हुए कहा—हम तो एक ही व्यापार करते हैं, हमें तो एका रखना चाहिए,···अच्छा···"

डाक्टर नागर ने उनका बढ़ा हुआ हाथ थाम लिया।

जब डाक्टर जोशी चले गये, कमरे में निस्तब्धता छा गई। डाक्टर नागर कुर्सी पर अधलेटे से बैठ गये। एकाएक उन्होंने कहा—"तुम यहां क्यों हो ? बच्चे के पास कौन है ?"

चंपा ने झांककर कमरे में देखा और धीरे से कहा—"बच्चा सो रहा है। धीरे बोलो।"

फिर कुछ देर के लिये निस्तब्धता छा गई। डाक्टर नागर ने सिर हिलाकर कहा—"घबराने की कोई बात नहीं है। सब ठीक हो जायेगा।"

सोना ने भीतर झांका। फिर कुछ कहना चाहा, किन्तु साहस नहीं हुआ, चुपचाप लौट गया।

चंपा ने बात शुरू की—"इस डाक्टर को तुम खूब जानते हो ?"

"हां, यह शहर का नामी डाक्टर है।"

"तुमने कभी इसकी बीवी से हमारी मुलाकात नहीं कराई ?"

"इसके बीवी ही नहीं है।"

"तो ?"

डाक्टर ने झुंझलाकर कहा—"क्या बिना बीवी के कोई आदमी रह ही नहीं सकता ?"

चंपा ने ध्यान ही नहीं दिया। विषय बदलकर पूछा—"तो यह मर्ज ठीक बता गया है ?"

"लगता तो ऐसा ही है ?"

"यह क्या बात कही तुमने ? अभी तुम्हें परवाह ही नहीं है। उधर बच्चा बीमार पड़ा है, इधर तुम्हें ध्यान देने की भी फुर्सत नहीं है ? तुम्हें अपनी प्रैक्टिस में बाधा पड़ने का गुस्सा है।"

डाक्टर नागर ने तिनककर कहा—"चंपा!"

किन्तु चंपा कहती गई—"मैं कहती हूं कि आखिर यह मेहनत और कमाई फिर किसलिये? तुम्हीं एक बिरले हो? तीन महीने से लड़का एक फाउन्टेनपैन मांग रहा है, लेकिन यह भी एक दिल है जो अपने पेट के जन्मे की ही इच्छा पूरी करना नहीं चाहता। अरे पड़ोस में देखो। सभी जगह बच्चों की खुशी पहले देखी जाती है। वह रहे तहसीलदार साहब। आप रखते हैं पांच का कलम, लड़का रखता है पारकर ड्यूफोल्ड।

"आह!" डाक्टर ने व्यंग से मुख विकृत करके कहा—"बड़ा अच्छा नतीजा पाया है। बेटा सिगरेट भी तो पीता है!!"

"उसके लिये क्या है? आजकल सभी पीते हैं। आखिर मेरा बेटा दूसरों से हेठा बनकर तो रहेगा नहीं?"

डाक्टर ने आखिरी तीर मारा—"कल जरा बहू आ जाने दो तब देखेंगे।"

"भले ही कुछ सही," चंपा ने हाथ फैलाकर कहा—"कम-से-कम एक चुल्लू पानी तो मरने के बाद चढ़ायेगा?"

"...ऱ लिया? मेम लायेगा मेम।"

"तुम्हें जाने कौन सी दुनिया हमेशा रखनी है, मुझे तो छाती पर धरना भाता नही।"

"नहीं तो पछताओगी।"

"पछताने को अब क्या कमी है?"

"देखो जी।" डाक्टर ने तड़पकर कहा— "मैं भी डाक्टर हूं और हारी-बीमारी के बारे में तुमसे लाख दरजे ज्यादा जानता हूं। मेरा दिमाग न खाओ। अजी अभी उस डाक्टर ने मेरी घबराहट देखकर मुझे सिड़ी ही समझा होगा। मर्ज तो आते वक्त देर नहीं करता। एकदम धर दबाता है!" उन्होंने हाथ से धर दबाने का इंगित किया फिर ऊपर हाथ उठाकर पूछा—"घर गिरने मे क्या देर लगती है? फिर बनाते वक्त क्या आसानी से बनता है? चाहे दस लाख मजदूर लग जाएं मगर एक मिनट में एक कोठरी भी नहीं बना सकते। अब तो भाग्य में जो है, वही सहना पड़ेगा।"

बाहर जूतों की खटखट हो रही थी। वह पास आने लगी। चंपा की आंखों में एक स्नेह की चमक कांप उठी।

डाक्टर समझ गये। उन्होंने मुंह फेर लिया। द्वार पर खड़े होकर हरी ने धीरे से कहा—"अम्मा!"

वह बिल्कुल अपटुडेट था। मां ने स्नेह से कहा—"हा, बेटा!"

"क्या हालत है?" उसने संदिग्ध स्वर से पूछा।

"डाक्टर साहब आये थे। टाइफाइड बता गये हैं।"

"तब तो बड़ी गड़बड़ी है।"

डाक्टर नागर ने सिर हिलाकर ऊबते हुए कहा—"वह तो है ही।" जैसे तुम्हें

क्या ? तुम तो कुछ करोगी नहीं ?

"कितने दिन लग जाएंगे ?" हरी ने फिर पूछा।

"यही कोई ग्यारह-बारह।" डाक्टर नागर ने ऐसे कहा जैसे कोई बात ही नहीं, व्यर्थ क्यों हमदर्दी दिखा रहे हो ?

हरी पिता का रुख समझ गया। मुड़कर कहा—"वह अम्मा ! वह ग्रुपफोटो लेना है न कालेज का—उसके लिए मुझे ढाई रुपये दे दो।"

डाक्टर ने कुर्सी के हत्थे पर हाथ फेरा जैसे वह लाचार था, नितांत विवश।

"ले बेटा," चंपा ने ताली बढ़ाते हुए कहा—"ताली ले ले। अलमारी में से निकाल ले जा, मगर चाबी लौटाना भूल न जाना।"

चंपा ने देखा। वह हंस दी। हरी ने चाबी ले ली और सीटी बजाते हुए दूसरे कमरे में चला गया।

डाक्टर नागर ने भौं सिकोड़कर कहा--"देखा ?"

चंपा ने उपेक्षा से कहा--"तुम बड़े रूखे आदमी हो जी।"

सौना फिर घुस आया। चंपा ने उसकी ओर देखा जैसे क्या है ?

सौना ने डरते हुए कहा--"बाबूजी !"

डाक्टर नागर ने पूछा--"क्या है ?"

"वह बुढ़िया बार-बार आती है।"

"उससे कहो," चंपा ने कहा--"डाक्टर साहब को बहुत काम है, नहीं आ सकते।"

"जी हां, मैंने कह दिया।"

"तो," डाक्टर फिर झुंझला गए।

"वह दो बार आकर लौट चुकी है। कहती है कि इतना रुपया मुझ गरीब से ले लिया है तो एक ही बार, बस नाम के ही लिए एक बार देख जाएं।"

चंपा ने कठोर स्वर में कहा—"कह दो जाकर कि डाक्टर साहब उसी का दिया नहीं खा रहे हैं। अच्छे-अच्छों की मोटरें खाली लौट जाती हैं।"

"जी हां, मैंने कहा था !" सौना ने फिर कहा।

"तुम कहते क्यों नहीं जी जाकर ?" चंपा ने क्रोध से कहा।

"जी हां, कहने पर रोती थी। कहती थी कि डाक्टर साहब पर बच्चे की ही नहीं, मेरी भी हत्या लगेगी।"

चंपा उठ गई। भीतर जाते हुए कहा—"हत्या और जीवन देनेवाले डाक्टर नहीं, जाकर कहो भगवान है।"

डाक्टर नागर ने मौन तोड़ा। कहा—"सौना !"

"हजूर !"

"जाकर पानी रखो। पूजा का वक्त हो चला है। उससे कहो फिर कभी आये।"

सौना ने निराश आंखों से देखा।

डाक्टर ने फिर कहा --"सुनो।"

"जी।"

"कहां से आई है ?"

"पिछवाड़े ही तो रहती है।"

"अच्छा जाओ।"

सौना चला गया।

"सुनती हो।" डाक्टर ने कहा।

"आई" के साथ चंपा फिर कमरे में घुम आई।

"वच्चे का क्या हाल है ?"

"विलकुल वेहोश-सा चुपचाप सो रहा है।"

"आज मैं खाना नहीं खाऊंगा," डाक्टर नागर ने अन्यमनस्कता से कहा—"मेरी तवियत ठीक नहीं है।"

"तो कुछ दवा क्यों नहीं खा लेते ?"

"नहीं मुझे ऐसे ही रहने दो।"

"तुम्हें मेरी कसम। मुझे दिक न करो। यह एक इल्लत ही काफी है। तुम और कांटे न बोओ।"

"नहीं," डाक्टर दृढ़ता से बोले—"जरा रेशमी दुपट्टा तो निकालो। आज मैं एक हजार आठ बार गायत्री का जप करूंगा।"

"लेकिन," चंपा ने कहा—"ताली तो बड़ा मुन्ना ले गया था ?"

"वापिस नहीं दे गया न ?" डाक्टर ने रूखे स्वर से पूछा।

"लाती हूं।" चंपा ने दबकर कहा—"इतनी जरा जरा सी बात पर क्यों बिगड़ते हो ?"

चंपा भीतर गई। सड़क पर उसी समय कोई कुत्ता भयावने स्वर में रो उठा। डाक्टर के हृदय पर घूसा-सा लगा। उन्होंने कहा—"सौना! देख तो, इसे भगा दे।"

कुत्ता अभी भी रो रहा था। सौना के चिल्लाने की आवाज सुनाई दी, किंतु उसी समय पिछवाड़े शोरगुल होने लगा। डाक्टर क्षण-भर सुनते रहे। फिर उन्होंने चेतकर पुकारा—

"सौना!"

सौना लौट आया। उसने कहा—"जी!"

"यह क्या शोर है ?" डाक्टर ने ऊबते हुए पूछा।

"सयाना बुढ़िया के बच्चे का भूत उतारने की कोसिस कर रहा है हुजूर।"

डाक्टर के मुंह से फूट निकला---"गंवार!"

एकाएक फिर शोर होने लगा। सौना तेजी से बाहर चला गया। चंपा चाबी झुलाती हुई कमरे में आ गई। उसने चाबी देते हुए कहा—"लो!"

डाक्टर ने चाबी ले ली। डाक्टर ने फिर कहा—"सौना! जाकर कहो कि

डाक्टर साहब का बच्चा बीमार है। वह सो रहा है। इस तरह फिजूल के शोर से वह जाग कर तकलीफ पाएगा। उफ, कितनी सर्द हवा चल रही है।" चंपा भीतर के कमरे में चली गई।

"बाबूजी !" सौना ने सिर उठाकर कहा।

"क्या है ?" डाक्टर ने घूरकर कहा।

"बुढ़िया का लड़का तो मर गया है ?"

डाक्टर पर वज्र गिरा। उनके मुंह से फूट निकला—"मर गया ?"

हवा के ठंडे झोंके में उनका शरीर कांप उठा। चंपा चिल्लाती आ रही थी— "आपको कुछ खयाल भी है ? बच्चे के कमरे की खिड़की खुली पड़ी थी। उफ ! सारा कमरा ठंडा हो गया है।" एकाएक पति का रंग उड़ा चेहरा देखकर सहमे स्वर से पूछा— "क्या हुआ ?

सौना ने फिर कहा—"बुढ़िया का बच्चा मर गया।"

चंपा के मुंह से निकला—"हाय राम !"

"जी हां," सौना के होंठों पर तिरस्कार था।

"उफ ! कितने दर्द की बात है। क्या होगा उसकी मां का ?" डाक्टर नागर का सिर झुक गया।

"मर गया ?" चंपा ने करुण स्वर से कहा—"सच कह सौना ? मेरी छाती पर सांप लोट रहा है। हाय रे।"

तीनों चुप हो गए। पिछवाड़े कोई हृदय फाड़कर रो रही थी जैसे अब उसका सब कुछ लुट गया था।

2

निवेदन—अब यह मानना एक आसान बात है कि डाक्टर का बच्चा भी ठंडी हवा लग जाने के कारण मर जाता है और डाक्टर के घर में हाहाकार मच उठता है।

3

जीवन के खेल—

मस्जिद के मुल्ला ने बाहर निकलकर चारों तरफ देखा। कोई नहीं वही पुराना भवानी चेहरे पर नया मुहर्रम लिए खड़ा था। अब्दुर्रहीम पल भर में मस्जिद का बाहरी दरवाजा भेड़कर सीढ़ियों पर से उतर पड़े। भवानी नदी के किनारे बीड़ी सुलगाने लगा। मुल्ला जोर से खखारते हुए भवानी के पास जा खड़ा हुआ। भवानी ने दीर्घ दृष्टि से मुल्ला के मुख की ओर देखा। मुल्ला के मुख पर एक कुटिल हंसी खेल गई। उसने कहा— "भवानी ! आज इतना उदास क्यों है ?"

भवानी चुप रहा।

मुल्ला ने फिर कहा—"भवानी, नदी कैसी मस्ता रही है, देख तो।"

भवानी चौंक उठा। उसने कहा—"दादा! मुझे आज बड़ा सूना-सा लग रहा है।"

उसकी ढीली उंगलियों में से बीड़ी छूट गई।

मुल्ला ने कहा—"भवानी! दुनिया की खुशियां एक दिन इसी मरघट में खेलने आती है और हमेशा के लिए परवाने की तरह बरसाती रात में खत्म हो जाती हैं। सुबह तुम ही उस राख को बटोरकर नदी में फेंक देने के लिए व्याकुल हो जाते हो। भवानी, क्या सोच रहे हो?"

"मैं," भवानी ने कहा—"उस चिता की ओर देख रहा हूं दादा। करोड़पति,राजे-महाराजे सब चुपचाप यहीं आकर सो जाते हैं। अभी दस मिनट पहले जो आदमी था वह अब मिट्टी है। जिन्दगी कितनी चलती हुई है? दादा आदमी कितना भूला हुआ है। उसे मालूम है कि दो दिन बाद उसे जिस बदन पर नाज़ है वह मिट जाएगा।"

"लेकिन," मुल्ला ने हंसकर पूछा-"फिर दुनिया कैसे चलेगी?"

"तो क्या इसी अंत के लिए दुनिया का चलना जरूरी है?" भवानी ने झुंझला कर कहा।

"अंत नहीं है," मुल्ला ने विश्वास से कहा—"शुरू और आखीर आदमी के बस की बात नहीं है। यह तो एक खेल है।"

भवानी ने आंख उठाकर मुल्ला की ओर देखा। मुल्ला ने फिर कहा—"भवानी! सब लोग जहां से आए हैं वहीं लौट जाएंगे। मैं कफन ओढ़कर जाऊंगा, तुम जलकर जाओगे। मगर उससे क्या? मौत ही जिंदगी की आखिरी तमन्ना नहीं है। आदमी दुनिया में आया है आदमी बनने।"

भवानी ने हाथ से इशारा करके कहा—"दादा! मैं नहीं जानता कि दुनिया में और भी कुछ है। बचपन में चिता जलते देखकर मेरा दिल कांप उठता था। और आज वही मैं इस जवानी में जाड़ा, गर्मी, बरसात झेलकर इस मरघट में पैसे वसूल करने को पड़ा हूं। वसंत के नये पत्ते, दुनिया कहती है, खुशी के दूत बनकर आते हैं, मगर मैं देखता हूं कि वही पत्ते अचानक ही जलती चिताओं में आ गिरते हैं। दुनिया कितनी जल्दी मरती है? दादा मैंने यहीं सैकड़ों को जलते देखा है। लेकिन वहीं मैं अपने बाप की मौत देखकर रो पड़ा था। चिता की गर्मी से अब मेरा दिल नहीं पिघलता। सब मरते हैं और जो जितनी जल्दी मरा वह उतना ही अच्छा है। सारे दुखों से छुटकारा। एक तरफ तमाम दुनिया और उसकी खुशियां रख लो, दूसरी तरफ मेरा अकेला मरघट काफी है।"

मुल्ला कुछ देर सोचता रहा। फिर कहा—"लेकिन दिल को कड़ा कर लेने ही से तो चैन नहीं मिल जाता। इस जिंदगी नाम के मुसाफिर को तो बड़ी-बड़ी कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं। भवानी उम्र चाहिए उम्र। तुझमें जवानी का जोश अभी भड़क रहा है। रुपया देखकर तेरी आंखें चौंधिया जाएंगी। औरत देखकर तेरे मन में गुदगुदी हो उठेगी। वही जिलाता है, वही मारता है, जो दुनिया को बनाकर बैठा-बैठा देखता रहता है। आज से नहीं हमेशा से देखता रहता है। आज से नहीं हमेशा से दुनिया अल्लाह के

लिए ही चलती है। वह यह, यह वह, सब जहां जाकर एक हो जाते हैं।"

"वहां की नहीं दादा," भवानी ने कहा, "यहां की कहो। पैसा होता तो क्या मैं मरघट में जिंदगी बरबाद करता?"

मुल्ला हंस दिया। उसने व्यंग्य से कहा—"और तू कहता है कि दुनिया एक चिता है। अर्थी का चंदन, कपाल किरिया का घी खाकर मोटा होना चाहता है अंधे?"

भवानी ने बात बदलते हुए कहा—"नहीं दादा! वह देखो! वह सामने की चिता बुझ चली है।"

मुल्ला मुसकरा दिया। उसने फिर कहा—"लेकिन जानता है अभी यहां कितनी चिताएं और जलनी हैं? जितनी जिंदगी है, उतनी मौत है। न आदमी मरते हुए थका, न कभी जलते और जलाते। भवानी! अगर बादल बरसेगा नहीं तो करेगा क्या?"

भवानी के कठोर हृदय पर फिर जाली चढ़ गई। वह मुसकरा उठा।

मुल्ला ने कहा—"मैं अभी आता हूं। जरा हाथ-मुंह धो आऊं।"

अच्छा हो आओ।"

मुल्ला चला गया। कुछ लोग एक अर्थी को लेकर आए। एक आदमी पास आ गया।

उसने कहा—"इसे जलाना है।"

भवानी ने कहा—"हां, हां, तो टाल पर से लकड़ी क्यों नहीं ले आते?"

आगंतुक एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। उसी आदमी ने कहा—"यह गरीब का लड़का है।"

"लेकिन तुम तो गरीब नहीं हो?" भवानी ने अविचलित स्वर से कहा।

हमीं लोगों ने इसका इंतज़ाम कराया है। अनाथ था यह। कहां तक रुपये लगाएं! क्या तुम इसे जलाने भी न दोगे?"

भवानी ने कहा—"लड़के का ब्याह हो गया?"

"हां, दो साल पहले मुंहबोला हो गया है।"

"तो उससे क्या?" भवानी ने कहा—"तुम्हारी तो बेकार की ज़िद है। और बिना पैसों के लकड़ी तुम्हें कैसे दे दूंगा? अपना हाथ बचाकर तुम चिता में आग दे सकते हो, मैं ही घर फूंकने बैठा हूं? मेरे मालिक को अगर मालूम हो गया तो? चुंगी मुफ्त में तो ठेका दे नहीं देती? उसे तो मरे-जिंदे से मतलब है, अमीर-गरीब से क्या? मैं गरीब हूं। मोल है पैसा। यही सबका मोल है। तुम लोग इसे लाए हो। देखो, मोह मत करो। भरी नदी है, पत्थर बांधकर डुबा दो। आंख से परे, दुनिया खतम।"

आदमी ने अपने साथियों की ओर देखा। वे लोग आपस में बातें करने लगे—"कल्लुआ! मैं तो पैसे भी नहीं लाया। यह कोई तीन आने हैं बस।"

"मुर्दा लौटा लेना तो बड़ा असगुन है।"

"अबे क्या बक रिया है। अब तो ये ही करना पड़ेगा।"

"हां-हां, आई बिपदा में यह भी धरम है।"

"ठीक है, डुबा देना ही ठीक है।"

"बात तय हो गई। उन्होंने अर्थी में पत्थर बांधकर उसे नदी में फेंक दिया। क्षण भर खड़े रहे। फिर चले गए। भवानी ने देखा, मुल्ला लौट आया था।

मुल्ला ने कहा—"भवानी चुप कैसे खड़ा है?"

"सोच रहा हूं," भवानी ने कहा—"अभी तक कोई बोहनी तक नहीं हुई। दोपहर हो आई। आज जाने परमात्मा इस दुनिया कमाइत भूल ही गया?"

"क्यों? अभी वह लोग आए थे न?"

"आया क्यों नहीं। एक आया था। मगर लकड़ी के पैसे मांगने पर कुछ न दे सका। अपनी सोचें कि दूसरों की? मैंने जलाने नहीं दिया। नदी में फेंक गए।"

मुल्ला दर्द भरी आवाज में कराह उठा, "हई अल्लाह! हई अल्लाह! हिन्दुओं में तो मरे को पानी देते हैं, तू तो आग भी नही देता?"

"पानी तो मरे को मिल ही गया दादा," भवानी हंस पड़ा। "मिट्टी" उसने कहा—"पैसे के मोल चलती है, रियायत के बल पर नहीं।"

"तो, दिल गवाही देता है?"

"दिल नहीं है मेरे। दिल के साथ एक पेट भी है।"

जोर से भवानी हंस उठा। समस्त मरघट गूंज उठा, मानो पुरानी हड्डियां जाग उठीं। उसने उसी व्यंग से कहा—"राम-राम सत्त है, और सब असत्त है।"

मुल्ला ने अपेक्षा से कहा—"बेवकूफ! तू अंधा है।"

भवानी ने कहा—"मौत और जिन्दगी में ज्यादा अंधा कौन है दादा? तुम जाओ। दोपहर की धूप तेज होने लगी है।"

मुल्ला खांसता हुआ लौट पड़ा। भवानी कठोर दृष्टि से दूर शून्य की ओर देखता रहा। ढीली मैली सलवार, स्लीपर, मैला मलमल का कुर्त्ता, काली वास्कट, ऊंची टोपी पहने मुल्ला दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ मस्जिद की सीढ़ियां चढ़ने लगा। मस्जिद जैसे मुसकरा रही थी। आदमी सदा सुख-दुख समझने का प्रयत्न करता है, किंतु समझता नहीं।

आकाश गहरा होकर गंभीर हो गया। उस उदासीनता में विश्व का कोलाहल मरघट के देवताओं के मुक्तिगीत को महामाया की धोखेभरी गोद में छिपाने लगा।

4

आक्रोश—बुढ़िया का बेटा पानी में बहा दिया गया। जहां कठोरता ही मनुष्य की रोटी है वहां जीवन भीख और करुणा पर नही चल सकता।

5

स्वर्ग की सीढ़ियां—

मरघट में संध्या। एक शव की अंतिम लपटें बीभत्स छाया बुन रही थी। दो-चार गंदे कुत्ते इधर-उधर घूम रहे थे। मुल्ला रस्सी में बंधी हंड़ियों को पानी से भर लाया

और एक बुझी चिता पर पानी डालता हुआ, लकड़ी से राख कुरेद कर हड्डियों को बुझाने लगा।

एकाएक मुल्ला ने पुकार कर कहा—"देख तो, रात भर पानी पड़ चुका है। मगर कसम कि अभी तक आग ठंडी नहीं हुई।"

वह हंस पड़ा।

भवानी ने दूर ही से पूछा—"किसकी लाश है ?"

मुल्ला ने मुसकरा कर कहा—"आओ पहचानो तुम।" उसने मिट्टी और राख को कुरेद कर थोड़ा पानी और डाला।

भवानी ने शांति की सांस छोड़ते हुए कहा—"चलो जल तो गई। बाप रे! डालू कहता था कि हवा-पानी ऐसा पहले कभी नही पड़ा। एक बार एक साधू अपने कपड़े उतार कर चला गया था। तब भी ऐसा ही तूफान उठा था।"

मुल्ला ने आश्चर्य से कहा—"डालू पक गया और जमादारी उसने यों ही तो की है। तभी लड़का मर गया।"

"अरे सो कोई मोल नहीं। उसकी भला क्या बात ?"

मुल्ला ने इधर-उधर देखकर कहा—"टाल पर कोई नहीं है ? क्यों ? जा तो चंदा देख।" और पलटकर चिल्लाया—"अरे साले कुत्ते···हट···तेरी···"

एक ढेला उठाकर मारा। भवानी टाल की ओर बढ़ गया। मल्ला गुनगुनाने लगा—

"मौत का एक दिन मअय्यन है
नींद क्यों रात भर नहीं आती ?"

पीछे खांसी की आवाज सुनाई दी। धूमिल सा गंभीर वृद्ध, डालू, सफेद दाढ़ी, मुर्गी की दुमनुमा, चिकनी, मूंछें साफ। जुल्फें नदारद। बाल कटे व गालों की उठी हुई हड्डियां। गड्ढे में चमकती हुई आंखें। उसने खखार कर थूककर पूछा—"बूढ़ा फकीर कहां गया है ?"

मुल्ला ने हाथ रोककर सिर ऊपर उठाया। कहा—"जमादार! आज तो वह कुछ नाराज सा था।"

"हां," डालू ने सिर हिलाकर स्वीकार किया—"भवानी ने उससे पूछ-पूछकर उसे कल नाराज कर दिया है। फिर भी कुछ कह गया है ?"

"मैंने कहा था—बाबा बता दो। उसने कहा—क्या जानेगा बोल ?"

"क्या के कितने हुए ?"

मुल्ला ने खीझ कर कहा—"सुनो तो कि इतने में किसन आ गया। फकीर बिगड़ गया उसे देखकर।"

"क्या बोला ?"

बोला—"अबे जा नाली में एक हजार बार मुंह धो आ।"

"तब तो बिंदी लगा दूं ?"

"पहुंचे हुए फकीर हैं। हो जाए आधा साजा, बताने का बट्टा···" डालू ने कहा—"अच्छा, अच्छा। देख तो कौन आ रहे हैं?"

आगंतुक एक उदासीन व्यक्ति था। पास आकर उसने कहा—"क्यों जी यहां गाड़ने की जगह है?"

"हां बाबू, जो कुछ है यही है।" और पुकार कर कहा—"किसन!"

जांघिया पहने एक युवक सिक्ख टाल से निकल आया। उठती रेख मुख पर। गिट्ठा-सा। घिरघिरी आवाज में उसने कहा—"क्या है?"

"ले जा," डालू ने कहा—"गाड़ने की जगह बता दे।"

किसन ने घरघराती आवाज में कहा—"आओ।"

डालू बैठ गया।

किसन आगंतुक को लेकर चला गया। मुल्ला ने उठते हुए कहा—"अच्छा तो फिर मैं चला।"

"कहां?" डालू ने टोका।

"जरा टाल का हिसाब देख आऊं।"

उधर कीचड़ पर फावड़ा चलने की चीखती सी ध्वनि आर्त्तनाद कर उठी। डालू ने कहा—"जा भवानी से पीपल पर दीपक जलाने को कह दे।"

मुल्ला ने चलते-चलते हंसकर चिताओं की ओर इशारा किया और कहा—"अच्छा! इतने दीपक जल तो रहे हैं।"

डालू ने घूरकर देखा। क्षण भर चुप रहा फिर आवाज लगाई—"भवानी! ओ भवानी!!"

भवानी पास आ गया। पूछा—"जमादार बुलाया था?"

"हां। तनिक बता दे वे कहां गाड़ने गए हैं?"

"उहां," भवानी ने उंगली से इंगित किया।

डालू ने देखा। कहा—"ओह! अच्छा तो रोटी बना ले भाई। मरघट में क्या धरम छोड़ना होगा? तू तो बिगड़ चला। मुल्ला के साथ ही खा रहा था परसों। राम! राम!!"

"क्या हो गया जमादार।" भवानी ने हंसकर कह—"तुम घिस न गए, मैं घिस न गया। रहे वही के वही।"

"अबे चल रहने दे। मुझे यही बातें अच्छी नहीं लगतीं। कल ही ब्याह को मना करता था!"

"ब्याह किसलिए जमादार? अगर रोटी की कठिनाई हो तो बात है, वैसे तो···"

"हां, हां, मुझे ही शौक है न औरत रखने का? अरे देख लिहाज़ कर!" बूढ़े ने दाढ़ी पर हाथ फेरा। भवानी मुसकराया। डालू कह रहा था—"तेरे भले के लिए ही कहता था।"

"क्यों जमादार ?" भवानी ने कहा—"इस जिन्दगी के लिए एक डकैती करने की जरूरत पड़ेगी ?"

"डकैती कैसी ?" डालू ने चौंककर पूछा।

"बच्चों से कहना पड़ेगा, राम-रहीम अलग-अलग हैं। यहां तो मुझे कोई फरक नहीं लगता।" और उसने चिता की ओर इशारा किया।

"अरे सब फिजूल बक रहा है," डालू ने दृढ़ स्वर से कहा—"दो दिन की जवानी है, फिर झुक जाएगा। दो लकड़ी भी आड़ी-तिरछी न ठोंक सकेगा। तुझे यहां दुख मिलता है ? मौत से डरता है ? हम तो फूल चढ़ाते हैं पागल ! भोले ! औरत से डरना है ?"

"मैं डरता नहीं। फिर भी तुम्हारी बातों से दहशत सी जरूर होती है।"

डालू ठठाकर हंस पड़ा। मुल्ला वहीं आ गया। उसने कहा "जमादार ! मैं तो इससे दीपक जलाने को कह गया था। इसी ने नहीं जलाया। कहता था जिसे भूत होना हो वही भूतों की सेवा करे।"

"अरे तूने ही बिगाड़ा है इसे।" डालू ने सिर हिला कर कहा।

"लेकिन तुम हंसते क्यों थे ? ' मुल्ला ने पूछा।

डालू ने हंसकर कहा—"शादी करने से डरता था।"

"क्यों रे ?" मुल्ला ने भवानी से कहा—"शादी कर ले। यहां से जलाकर जाया करियो। दो पल हंसियो और फिर नई चिताओं के लिए तैयारी कर डालियो।"

"वही तो," भवानी ने मुसकरा कर हां में हां मिलाई—"ब्याह करके क्या होगा ? आदमी पाप करके जाए, दुनिया को और पापी बनाने ?"

"वह पाप नहीं है रे," डालू ने उपेक्षा से कहा—"क्या तू अपने कंधों पर दुनिया भर को संभाले है ? बड़ा प्यादा है न ?"

"जमादार !" मुल्ला ने सिर मटका कर कहा—"प्यादे से फर्ज़ी हुआ टेढ़ा-टेढ़ा जाय।"

और मुल्ला और भवानी हंस पड़े।

"जमादार !" मुल्ला ने फिर कहा—"इसने कभी औरत के दिल पर हाथ नहीं रखा। तभी ऐसा कहता है।"

"चुप गधे, सूअर," डालू बिगड़कर चिल्ला उठा—"अपने बाप से मज़ाक कर रहा है ?"

"बाप रे," मुल्ला ने तारी बजा कर कहा—"मज़ाक कैसा ?"

"मांस खा-खाकर तेरी अकल में चर्बी चढ़ गई है। तेरी भी कोई जात है जो ?" डालू का क्रोध अभी शांत नहीं हुआ था।

"मेरी कोई जात नहीं।" मुल्ला ने व्यंग से कहा—"और तुम तो बामन के साथ बैठकर खाते हो ?"

"अरे मुल्ला," भवानी ने कहा—"जमादार पत्थर का है। इसका तो दिल कभी

पड़ गया है। बाढ़ के जमाने में जब लोग मुर्दे को झटके मे उछाल कर पानी में फेंक देते थे, मेरा तो दिल कांप उठता था।" कहते-कहते वह सिहर उठा।

"अरे भली कही," मुल्ला ने कहा—"बुड्ढा जवान हो गया था। बिना देखे ही खुद मुंह में आग भर देता था।"

"किसी के मुंह में रे," डालू ने कहा—"मिट्टी में तू चूल्हा नही जलाता ? कह न, डरता है ? बक-बक लगा रखी है।"

उस समय किसन उसी व्यक्ति के साथ लौट आया। उसने फिर उसी घरघराती आवाज में कहा—"जमादार, काम हो गया।"

डालू उठकर खड़ा होते हुए बोला—"भगवान खैर करे। बाबू दुख न करो।" और एक सूखी सी हंसी उसके होंठों पर रो उठी।

व्यक्ति ने किसन की ओर देखकर कहा—"क्या ..."

डालू के फैले हुए हाथ पर बटुए में से निकाल कर आठ आने रख दिए और किसन से कहा—"ऐ! जरा उनसे कहो नल पर चलें। कहीं नहाने का घाट है?"

डालू ने कहा—"बाबू अब और क्या कहें। आपकी मर्जी है।"

व्यक्ति ने एक आना और रख दिया। डालू ने झुककर सलाम की और कहा—"भगवान आपको यहां कभी न लाए। किसन!! अरे हां नल!! भैया पास ही है, नदी की धारा के किनारे ही।"

व्यक्ति चला गया। डालू भी टाल की ओर चल पड़ा। जब वह चला गया खुल कर बातें होने लगी।

"अरे बड़ा काइयां है। मेरा दिल तो ऐसा नहीं है।"

"पेट का भाव है मुल्ला। सौदा कठिन है। इस बाजार मे तो सभी को सुख मिलता है। यहां कौन नही आता।"

"अरे!" मुल्ला ने मुंह विकृत करके कहा—"ये वही है जो रेशम से सोने की जरी खोदकर निकाल लेता है।"

"जाने दो" भवानी ने कहा—"अपना-अपना ईमान है।"

उसी समय मुल्ला ने चौंककर कहा—"यह कौन है?"

मुड़कर देखा। डालू और एक आदमी। दोनों इधर ही आ रहे थे। फिर वे रुक गए।

भवानी ने कहा—"अरे यह तो कल उस बच्चे को दफना गया था न ? वही तो है यह ?"

"हां है तो वही। कैसा मुरझा गया है ?"

"क्या है ?" भवानी ने उत्सुकता से कहा—"पूछें न ?"

"अरे ठहर," मुल्ला ने कहा—"देख तो। डालू रो रहा है। बात क्या है ? आदमी भी रो रहा है ?"

भवानी विस्मित हो गया था। उसने धीरे से कहा—"कुछ खास बात लगती

है। आज से पहले तो डालू कभी रोता हुआ दिखाई नहीं दिया।"

अभी वह देख ही रहे थे कि डालू आ गया। मुल्ला ने आगे बढ़ कर दूर पहुंचे हुए उस आदमी की ओर इंगित करके पूछा—"क्यों जमादार! यह आदमी यहां फिर क्यों आया था!"

"मुल्ला! तू जीत गया। मैं हारा हूं।" उसकी आंखों में पानी छलक आया था।" "यह बच्चे कितना दुख देते हैं। पता भी नही पाते कि वे सदा के लिये करवट ले गये।"

हिचकियों ने उसके कंठ को अवरुद्ध कर दिया।

"आखिर बात क्या है?" मुल्ला ने विस्मय से आंखें फाड़कर पूछा—"कहो न?"

"कहता था, बच्चा बड़ा प्यारा था। देखा था किसन?"

किसन ने घरघराती आवाज में कहा—"याद नही पड़ता जमादार। कल तो कई बच्चे आये थे।"

"कल," डालू ने फिर कहा—"उसके घर में बच्चे की मां को सपना हुआ कि बच्चा जिंदा हो उठा। सो आज वह यही पूछ रहा था। आह, ये बेदिल बच्चे! मैंने कहा—'बाबू! बहुत प्यारा होगा?' "

"तुमने जाना डालू जमादार?" मुल्ला ने कहा—"सबके दिल होता है। अरे मौत पर तो जानवर भी रो देते हैं।"

"धरम है मुल्ला। इन्हीं के लिये एक ब्याह, जैसे वे ही पुन्न है···सुरग की सीढ़ियां," भवानी के शब्दों में विक्षोभ फूट पड़ा—"जमादार! फिर तुमने क्या कहा?"

डालू ने कहा—"मैंने? वही कहा जो कह सकता था।"

सब उसकी ओर देख उठे। डालू अपनी जलती आंखों में शून्य दृष्टि लिये बड़-बड़ा उठा—"भगवान किसी को बच्चे न दे। मां-बाप को नरक ही भला हो।"

वह ज़ोर से खांस उठा।

6

मर्म की वेदना—डाक्टर का बच्चा जीवित नही हो सकता। यहां पर सब एक है। किन्तु यहीं जीवन का अंत नही है। मैं मरघट मे पराजित नही हूं।

['47 से पूर्व]

गुलाम सुलतान

किले की एक बुर्ज के मामने की छोटी छत काई से काली हो चुकी थी। पीछे की ओर ऊंची-ऊंची डोरियां थी जिनमें अलग-अलग सूराख बने थे। बुगरा खां धीरे-धीरे टहल रहा था। रात के घंटे बज उठे। बाहर बाजे बजने लगे। बुगरा खां चौंक उठा।

अरे! आधी रात बीत चली। उमने ऊपर देखा। तारे! क्या जाने यह हृदय का गीत? न जाने कितने वर्षों से निमम 'मूर्खों की भांति घूम कर भी इनका वैभव टिम-टिमाने में आगे नहीं बढ़ा। बहुत रोये, बहुत टूट गये। निरीह!

बुगरा खां हंम दिया। और फिर उसने मन ही मन कहा—ओह, आज की रात कितनी निस्तब्ध है। निःशब्द सा गहरा आकाश, मनसनानी वायु। किमी में भी इतना मोह नहीं कि क्षण भर ठहर कर प्यार कर ले। केवल दौड़, केवल दौड़···और एकाएक उसके मुंह से शब्द निकल पड़े—"अरे अभी तक नहीं आई?"

और एक-एक क्षण भारी हो चला।

न जाने क्यों आज हृदय इतना व्याकुल हो रहा है। किले में आज किमी के भी हृदय में शांति नही है। सब डरे-डरे से। क्योंकि सुल्तान ने आज अपना पांव रखा है। आज किले पर उनके स्वागत को नगाड़ा बजा था। आज विजय का भार उनके ताज का प्रकाश बन कर फैल गया है। और बुगरा खां कमला से भी स्वतंत्रता से नहीं मिल मकता। क्योंकि वह एक हिंदू है। इस्लाम का अनुयायी केवल अपने धर्म की स्त्री से प्रेम कर सकता है। क्योंकि बिना धर्म बदले मनुष्य के रूप में स्त्री भी स्त्री नहीं रहती।

वह हंम उठा। फिर नीरवता छा गई। एकाएक बुगरा खां चौंक उठा। एक हल्की पगध्वनि हो रही थी। उसने धीरे से कहा, "कौन? कौन है यहां?"

"मैं हूं शाहजादे।"

बुगरा खा ने व्याकुल स्वर से कहा—"तुम आ गईं कमल? मैंने तो समझा था कि तुम नही आओगी।"

"क्यों?"

"क्योंकि आज सुलतान आए हैं न! आज बंगाल फतह हो गया है। इसकी प्रसन्नता में हम तुम छिप कर मिल रहे हैं।" और वह व्यंग्य से हंस दिया।

कमला ने दीवार से पीठ टेककर कहा—"आप नहीं जानते मैं कितनी छिप कर,

बचती हुई, यहां आई हूं। मुझे जल्दी ही लौट जाना होगा।"

"कमल, मन नहीं करता कि तुम मुझे छोड़ जाओ और मैं चुपचाप देखता रहूं। तुम्हें देख कर मेरे हृदय की भयानक आग भी ठंडी हो जाती है। बहुत प्रयत्न किया कि तुमको भूल जाऊं किंतु असफल रहा। कोई कहता था तुम शाहज़ादे हो। तुम्हें किसी की भी क्या कमी? स्त्री तुम्हारे गुलदस्ते का केवल एक फूल है। लेकिन मन ने स्वीकार नहीं किया। तुम्हारे सामने मैं सदा पराजित के रूप में उपस्थित हुआ हूं," और उच्छ्वसित आवेश में बुगरा खां ने कमल के हाथ पकड़ लिए। अंधकार में हवा चलने लगी थी।

"आज आप इतने व्याकुल क्यों हैं? सुल्तान तो यहां सदा नही रहेंगे। उनके चले जाने पर हम फिर स्वच्छंदता से एक-दूसरे से मिल सकेंगे।"

"लेकिन," बुगरा खां ने कहा—"मैं एक बात सोचता हूं। वह मेरा हृदय भीतर ही भीतर खाये जा रही है।"

कमला ने उत्सुकता से पूछा—"वह क्या शाहज़ादा?"

"तुम जानती हो," बुगरा खां ने कहा—"सुल्तान एक कठोर प्रकृति के शासक हैं। फिर भी वह महमूद को जितना चाहते हैं उतना अपने इस छोटे बेटे को नहीं। मैं जन्म भर तुम्हें कभी भी विवाह करके सुखी नही कर सकूंगा। तुम अपने हिन्दू पिता की एक-मात्र संतान हो। इसलिये तुम तो इस्लाम स्वीकार नही कर सकती। मैं हिंदू नही हो सकता। और मैं सुल्तान का बेटा होने के कारण एक साधारण हिंदू स्त्री से विवाह नहीं कर सकता। तो क्या यह प्रेम कुछ दिन का छिपा हुआ पाप मात्र ही है?"

और विषाद से आर्त्त हृदय अपनी विवशता की घोर कचोट में हंस पड़ा। कमला पास आ गई। उसने शंकित स्वर मे पूछा—"मैं सदा तुम्हारी हूं मेरे खान। मैं तुम्हें चाहती हूं, इसलिए नहीं कि तुम सुल्तान के बेटे हो। किंतु एक बात पूछूं?"

"पूछो कमल।"

"क्या जीवन भर हम तुम ऐसे ही एक दूसरे से नही मिल सकते? मैं इससे नही डरती कि तुम विवाह कर लोगे और अपने सुख में सब कुछ भूल जाओगे। शाहज़ादा मुझे भूल जाये किंतु खान नही भूल सकेगा। मेरा प्रेम तुम्हें कभी भी नही भूल सकता। जीवन भर तुम मेरे सामने बने रहो, मैं तो दासी होकर ही सुखी हूं।"

"उफ! तुम क्या कह रही हो! मैं सोच-सोच कर पागल हुआ जा रहा हूं कमल, किंतु कुछ भी नहीं सुलझ पाता। जीवन भर हम एक-दूसरे से प्रेम करेंगे। आसमान के तारे देखेंगे कि मैं तुझे कभी भी नही छोड़ूंगा।"

"अब मैं लौट जाऊं? मुझे फिर छिप कर आना होगा।"

कमला भय से हाथ छुड़ा कर हठात् पीछे हट गई। उसके मुख से फूट निकला—"सुल्तान!"

बुगरा खां स्तंभित-सा खड़ा रहा। सुल्तान बल्बन सामने आ गया था। उसके खल्वाट शीश को देख कर लगता था कि वह धातु का बना है। पीछे ही अंगरक्षक फीरोज़ था।

सुल्तान ने एक बार गूढ़ दृष्टि से कमला को घूर कर देखा और कहा—"मैं हूं तुम्हारा सुल्तान। चौंकते क्यों हो बुगरा खां? बूढ़ा हो गया हूं न? रात को जल्दी नींद नही आती। इसी से सोचा कुछ घूम कर देखू। तुमने तो किले में कमाल का पहरा रखा है। इधर तुम न होकर मुझे कोई दुश्मन ही मिल जाता, तो क्या तुम अपने पिता को जीवित देख पाते?"

बुगरा खां ने सिर झुकाकर कहा—"सुल्तान! किले में कोई बाहर का आदमी नही घुस सकता।"

"बाहर का आदमी," सुल्तान ने मुसकरा कर कहा—"आज पत्थरों में नही, सुल्तान के खान्दान में घुस गया है।"

"मैंने आपका मतलब नही समझा।"

सुल्तान बल्बन ने कठोर स्वर से कहा—"इधर आ लड़की। मैं तुझे देखना चाहता हूं।"

कमला ने देखा, बुगरा खां सिर झुकाये खड़ा था।

"आओ!" स्वर फिर गूज उठा।

कमला ने एक बार व्याकुल दृष्टि से देखा और फिर आगे खड़ी हो गई।

सुल्तान ने फिर कहा—"तेरा नाम?"

कंठ अवरुद्ध हो गया। केवल कहा—"कमला।"

बल्बन ने मुड़ कर कहा—"फीरोज़!"

फीरोज़ ने झुक कर कहा—"सुल्तान!"

सुल्तान ने सिर हिला कर कहा—"लड़की निडर है। सुदर है। पर मैं सोचता हूं यह ठीक नहीं है।"

फीरोज़ ने उसी तरह कहा—"आपकी बात हुक्म बनती है।"

सुल्तान ने उसकी बात पर कोई ध्यान न देकर बुगरा खा से कहा—"यह तुम्हारी कौन है, बुगरा खां?"

बुगरा खां का सिर और झुक गया। वह कुछ भी नहीं कह सका। तब कमला ने सिर उठा कर कहा "मैं इनकी दासी हू।"

"लेकिन," वृद्ध ने कहा—"सुल्तान का बेटा दासी से अकेले में छिप कर तो नहीं मिलता। तुम अवश्य मुझसे छिपा रही हो। पर सुल्तान बल्बन ने अपने उन्तालीस कट्टर दुश्मनों को मूर्खता से हराकर हिंदुस्तान की रक्षा नही की। सल्तनत में कोई ऐसा काम नहीं जिसे बल्बन नही जानता। इसाफ के लिये मैंने कभी भी रियायत करना नहीं सीखा। निडर होकर मुझसे कहो, तुम किसकी बेटी हो?"

"जयपाल के पुत्र सामंत कुमारपाल मेरे पिता हैं।"

"जो" सुल्तान ने वाक्य की समाप्ति के साथ ही वाक्य प्रारंभ कर दिया—"बीमारी के कारण मेरे बुलाने से मेरे हकीमों से इलाज करवाने को किले में पड़े है, और उनकी पुत्री उनकी यहां सेवा कर रही है। और तुम बुगरा खां! अपने मां-बाप के दोस्त

को मौत के बिस्तर पर पड़ा देख कर भी यही कर सके ? धिक्कार है तुम पर।"

किसी की पगध्वनि सुन कर वृद्ध चुप हो गया। उसने कहा—"फीरोज़!"

फीरोज़ ने आगे बढ़ कर कहा—"कौन है ?"

उत्तर आया—"हैदर।"

अधेड़ व्यक्ति बलिष्ठ था। उसने झुक कर सलाम किया।

सुल्तान ने पूछा—"इस वक्त ?"

"आपका हुक्म था। मैं अभी आपको जगाने गया था। लेकिन जासूस ने बताया कि आप यहां थे।"

एकाएक सुल्तान ने काट कर कहा—"हम तुमसे खुश हैं बुगरा खां। किले के मालिक को सब पर आंख रखनी चाहिए।" फिर कहा—"हैदर! बयान जारी रहे।"

"हिंदू सामंत मागंधपाल और उसकी बीवी बिंदुमती, दोनों को ही मैं गिरफ्तार कर लाया हूं।"

वृद्ध सुल्तान ने कहा—"शाहज़ादा सोच रहा है कि यही किसी को बुलवाने का कौन सा वक्त है। बुलाओ हैदर!"

हैदर सिर झुका कर चला गया। क्षण भर के लिये असह्य नीरवता छा गई। कुछ देर बाद मागंधपाल और बिंदुमती ने सुल्तान को झुक कर सलाम किया। सैनिक पीछे हट कर खड़े हो गये। हैदर ने धीरे से कहा—"सुल्तान!"

बल्बन कठोर सा खड़ा रहा।

हैदर ने कहा—"बिंदुमती और मागंधपाल हाज़िर हैं सुल्तान। वे आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

बल्बन ने कहा—"मागंधपाल, तुम राजभक्त हो। मैं तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हुआ हूं। आज तुमने बंगाले की बगावत का दमन करने में मेरी सेवा की है। मैं तुम्हें राजा बनाता हूं।"

मागंधपाल का सिर झुक गया। जैसे वह आनंद और दुख की द्वंद्वभरी चोटों को सहने में असमर्थ हो गया था। सुल्तान ने उसकी व्याकुलता को देखा और वह कहता गया, "लेकिन बिंदुमती! तुमने सोचा था कि रज़िया के बाद तुम ही सुल्ताना बनोगी। तुमने समझा कि तुगरिल खां सदा के लिये बल्बन को समाप्त करके सुल्तान बन जायेगा। वह देखो।" और सुल्तान का हाथ दीवार की ओर उठ गया। फीरोज़ एक कदम आगे बढ़ आया।

बिंदुमती ने भयार्त्त नयनों से दीवार के छेद में से झांका। बल्बन कहता रहा—"देख रही हो, उन मशालों की रोशनी में सूली पर टंग कर आदमी कितना सुंदर लगता है! वह है राज-दंड।" जैसे बात दोटूक हो गई। बल्बन ने फिर कहा—"अपने स्वामी से विद्रोह करके कोई भी बचा नहीं रह सकता। आज तुम इन कुत्तों की मौत मरते इन्सानों को देख कर नहीं पहचान सकतीं कि कल ये बड़े-बड़े जागीरदार और राजा थे। लेकिन बिंदुमती! तुम्हारे पति को मैंने आज राजा बनाया है। और तुम ?"

सुल्तान का हाथ गिर गया।

बलिष्ठ मागंधपाल ने सिर झुका कर कहा—"सुल्तान, वह स्त्री है। क्षम्य है।"

वृद्ध ने दृढ़ स्वर से कहा—"स्त्री होने से ही वह क्षम्य है ऐसा सोच कर तुम भूल कर रहे हो मागंधपाल। स्त्री तब स्त्री होती है जब वह चांदनी रात में पुरुष के आलिंगन में होती है, स्त्री तब स्त्री होती है जब वह बच्चे को अपनी गोद में धर कर दूध पिलाती है, लेकिन स्त्री तब स्त्री नहीं रहती जब वह तख्त और ताज के प्रलोभन के लिये अपने पति को धोखा देकर, दूसरे व्यक्ति से अनुचित संबंध रख कर, अधिकार, केवल अधिकार के लिये, राजशक्ति के लिये, कूटमंत्रणा करके षड्यंत्र रचाती है। क्या तुम ऐसे व्यक्ति के लिये क्षमा की प्रार्थना कर रहे हो? आज तुम एक राजा हो। क्या तुम इसी प्रकार अपनी प्रजा से न्याय करोगे मागंधपाल? कल तुम्हारी पत्नी तुम्हें भोजन में विष मिलाकर देने का प्रबंध करेगी और तुम निर्जीव से कहोगे कि स्त्री होने से वह क्षम्य है।"

मागंधपाल निरुत्तर था। उसने कहा—"सुल्तान से विवाद करके मैं स्वयं अपना विश्वास खो रहा हूं।"

"तुम जानते हो," सुल्तान ने पूछा—"इसका तुग़रिल से अनुचित संबंध रहा है?"

"नही सुल्तान!" मागंधपाल का स्वर कांप उठा। उसने मुड़कर कहा—"बिंदुमती! तुम? तुम?? उफ, सुल्तान आपके पास कोई प्रमाण…"

किंतु वृद्ध ने काटकर कहा—"प्रमाण! सुल्तान कभी प्रमाण नहीं देते। किंतु मैं तुमको फिर भी बता सकता हूं। तुग़रिल और बिंदुमती आज से तीन दिन पहले इसी ठौर पर छिपकर इसी समय मिले थे।"

बिंदुमती मुंह ढांककर रो उठी। मागंधपाल ने तड़पकर कहा—"और शाहजादा आप, आपने कुछ नहीं कहा?"

सुल्तान ने उसी स्वर से कहा—"शाहजादा उस समय किले के पश्चिमी बुर्ज पर अपनी इसी प्रेयसी कमला की प्रतीक्षा कर रहे थे।"

बुग़रा खां का सिर झुक गया। मागंधपाल का स्वर कंठ में ही भिच गया। वह कुछ भी नहीं कह सका। फीरोज़ ने धीरे से कहा—"सुल्तान! वक्त बहुत हो गया है।"

बल्बन ने कठोर स्वर से कहा—"आतुर न बनो फीरोज़!"

फीरोज़ फिर पीछे हटकर खड़ा हो गया।

"हैदर," सुल्तान ने कहा, "वह कुत्ता पकड़ लिया गया? उसको ले आओ।"

हैदर ने कहा—"जो हुक्म।"

जब वह चला गया सुल्तान ने कहा—"शोक न करो मागंधपाल! स्त्री एक अस्थिर और चंचल वस्तु है।"

"सुल्तान," मागंधपाल ने कहा—"मैं आपसे एक भीख मांगता हूं। बिंदुमती को क्षमा किया जाये। मैं उससे प्रेम करता हूं।"

"तुम मोह में फंसे हुए हो मागंध। वह स्त्री नहीं है, राक्षसी है। निर्बल और

भीरु ही अंधकार की शरण मांगता है, आंख खोलकर वीरता से खड़ा होनेवाला योद्धा अंधकार से घृणा करता है मागंध!" सुल्तान का स्वर कठोर हो गया था। इसी समय हैदर ने सेवकों के साथ प्रवेश किया। रस्सियों से बंधा हुआ तुग़रिल खां उनके बीच में था। इस समय उसके हाथ खोल दिये गये थे।

हैदर ने बढ़कर कहा—"तुग़रिल खां हाजिर है सुल्तान।"

"ठीक है। लेकिन तुमने उसे सुल्तान की इज्जत करने की तमीज नहीं सिखाई।"

हैदर ने गर्व-भरे स्वर से कहा—"तुग़रिल खां! अभिवादन करो।"

तुग़रिल सीधा खड़ा रहा। मागंधपाल ने कहा—"सुल्तान, यह उद्दंड है।"

तुग़रिल ने सिर उठाकर कहा—"बगावत करके तुग़रिल खां लज्जित नहीं है। खोखरों और मंगोलों के छक्के छुड़ानेवाला अपने भुजदण्डों के बल पर बंगाले का सूबेदार बना था। जीतकर भले ही सिर नहीं उठाता, किंतु पराजित होकर सिर झुका जाये, तुग़रिल खां ऐसा कायर नहीं है।"

बल्बन ने गंभीर स्वर से कहा—"लेकिन तूने उसी हाथ को काटने का प्रयत्न किया जिसने तेरे मुंह में रोटी रखने की करुणा दिखाई थी। तू भले ही भूल जाये लेकिन मैं नहीं भूल सकता कि एक दिन बल्बन ने तुग़रिल को तलवार चलाना सिखाया था। और तूने उसी नाव में छेद करना चाहा जिस पर बैठकर तू लहरों की छाती फाड़ता आगे बढ़ रहा था?"

"तुम्हारा जीवन ही," तुग़रिल ने दर्प से कहा—"मेरे विद्रोह का कारण रहा है। मैंने सोचा था कि यदि तू एक गुलाम से सुल्तान हो सकता है तो मैं क्यों नहीं हो सकता?"

"राजशक्ति प्राप्त करना कोई खेल नहीं है तुग़रिल," वृद्ध सुल्तान हंस दिया, "सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद एक बालक था जब सुल्तान इल्तुतमिश का स्वर्गवास हुआ था। बल्बन ने कभी अपने स्वामी पर प्रहार नहीं किया।"

"लेकिन तुम प्रतीक्षा कर रहे थे," तुग़रिल ने सिर हिलाकर कहा, "तुमने एक-एक करके अपने उन्तालीस साथियों को मरवा दिया और आज मेरे सामने यह ढोंग कर रहे हो कि तुम्हें राज्य का लोभ नहीं था?"

बल्बन ने सुना। वृद्ध के मुख पर एक भी विकार नहीं आया। उसने दोनों हाथ फैलाकर कहा—"बल्बन के अतिरिक्त उस समय कोई भी प्रजा को संभालने में असमर्थ था। सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद ने एक दिन इसी बल्बन को राज्य से निकाल दिया था, किंतु उसी दिन उसी क्षण सल्तनत में जगह-जगह आग लग गई थी और आज तू बल्बन को अपने प्रलोभन के जाल में फंसा हुआ राज का लोभी कह रहा है।"

"लेकिन," तुग़रिल गुर्रा उठा—"मैं कायर नहीं हूं।"

वृद्ध सुल्तान अब के हंस दिया। उसने कहा—"और यह स्त्री जो सामने खड़ी है उसका सतीत्व लूटना वीरत्व है? बालक और स्त्री को सोने की चमक दिखाकर पागल बना देना वीरता है? जुगनू की ज्योति को सूर्य का आलोक कहकर बहकाना साहस है?

मागंधपाल !"

मागंधपाल उद्यत नहीं था। एकदम चैतन्य होकर उसने उत्तर दिया—सुल्तान !"

वृद्ध ने उसी ढंग से कहा—"क्या तुम उस सर्प को प्यार कर सकते हो जो तुम्हारे गले में फंदा डालकर तुम्हारे सिर को डसने का प्रयत्न करे ? तुम्हारे कंठ में हाथ डालकर चुंबन करनेवाली स्त्री यदि वास्तव में एक जहरीला सांप हो तो तुम उसे क्षमा कर सकते हो ? शाहजादा तुम्हारी करुणा और निर्बलता को प्रबल विजयी प्रेम कह सकता है, लेकिन बल्बन इतना मूर्ख नहीं कि साधारण झूठों में भुलाया जा सके। यही स्त्री जिसकी तुम प्राण-भिक्षा मांग रहे हो, यही स्त्री जिसके अंगस्पर्श का सुख अभी तक तुम्हारे तन में ऊष्मा बनकर छाया हुआ है, यदि सफल हो जाती तो मेरे और तुम्हारे शव पर तुग़रिल खां की रखैल बनकर वैभव की चमक में नंगा नृत्य करती और विलास और मदिरा की झूम में न्याय का सिंहासन बंगाल की खाड़ी में डूब चुका होता।"

वृद्ध की बात प्रत्यक्ष थी। तुग़रिल सिर झुकाए खड़ा था। मागंधपाल ने स्वीकार किया—"आप ठीक कहते हैं सुल्तान।"

"तुमने उस पर," सुल्तान ने फिर कहा—"विश्वास किया, पर वह सुल्ताना बनने के लालच में तुग़रिल के साथ व्यभिचार कर रही थी। तुम अपने हाथों से जिस पेड़ को सींच रहे थे, वह उसी पर कुठाराघात कर रही थी। क्या तुम फिर भी उसे क्षमा करने का अपराध करना चाहते हो ?"

"नहीं सुल्तान," मागंधपाल ने सिर हिलाकर कहा—"आपने मेरी आंखें खोल दी हैं।"

"तुम स्वयं राजा हो मागंधपाल। तुग़रिल ने मेरे विरुद्ध विद्रोह किया है, वह मेरी प्रजा है; बिंदुमती ने तुम्हारे खिलाफ बगावत की है, वह तुम्हारी प्रजा है। मैं तुग़रिल को मृत्यु से कम कोई दण्ड नहीं दे सकता और बिंदुमती का दण्डविधान तुम्हारे ऊपर छोड़ना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं। बोलो मागंधपाल, हैदर प्रतीक्षा कर रहा है। भोर होने से पहले ही मैं दोनों का न्याय कर देना चाहता हूं।"

क्षण-भर मागंधपाल स्तंभित हो गया। उसने कहा—"मैं सुल्तान···"

"तुम ही मागंधपाल," सुल्तान ने स्वीकार किया, "तुमही।"

बुग़रा खां ने आगे बढ़कर कहा—"बोलिये सामंत ! आज आप राजा हैं, क्या अपने राजत्व को आप उस स्त्री के रक्त से प्रारंभ करना चाहते हैं जिसे आपने अग्नि की शपथ लेकर अपनी अर्द्धांगिनी बनाया था ? जिसके सुख-दुख में आपने निभा ले जाने का वचन दिया था ? यदि आप विद्रोह करते और वह राजभक्ता होती तो वह संसार का सबसे बड़ा पाप पतिद्रोह होता ? सुल्तान आपको आज्ञा दे रहे हैं, न्याय आपके शब्दों की प्रतीक्षा कर रहा है, बोलिये महाराज !!"

और मागंधपाल ने देखा कि बिंदुमती फफक-फफककर रो रही थी। उसने व्याकुल स्वर में कहा—"तुम रो रही हो बिंदु ?"

"मुझे क्षमा करो स्वामी," बिंदुमती सिसक उठी—"मुझसे भूल हुई। उफ ! यह

मैंने क्या किया ?"

"लेकिन तुम अपवित्र हो बिंदुमती," मागंधपाल का स्वर, विचलित स्वर उठ गया, "अपने सतीत्व को तुमने सोने के लिए बेच दिया है।"

"मागंधपाल !" तुग़रिल ने गंभीर स्वर से कहा—"उसने भले ही अपना सतीत्व बेचा हो, तुम ऐसा कह सकते हो, किंतु तुमने सोने के लिए अपने आपको बेच दिया।"

"बोलो मागंधपाल," वृद्ध सुल्तान ने धीरज भरे स्वर से कहा—"न्याय तुम्हारी आज्ञा के लिए व्याकुल हो रहा है।" कहते-कहते वह प्राचीर के पास जाकर खड़ा हो गया जैसे बाहर देख रहा था जहां उसके शत्रु शूली पर टंगे हुए थे।

मागंधपाल ने सिर उठाकर कहा—"उसे सूली पर चढ़वा दीजिये सुल्तान ! मैं उसे यही दण्ड दे सकता हूं।"

बुग़रा खां चिल्ला उठा—"महाराज !"

कमला कांप उठी। तुग़रिल की आंखों में चिनगारी-सी चमक उठी। सैनिक पीछे हट गये। स्वयं कठोर हैदर तक सिहर उठा किंतु सुल्तान पाषाण की भांति खड़ा रहा।

"नहीं, नहीं, शाहजादा," मागंधपाल ने हाथ उठाकर कहा—"मैं उससे डरता हूं। यह स्त्री तुग़रिल से भी अधिक भयानक है। इसे मृत्यु से कम कोई दण्ड नहीं मिलना चाहिये।"

बिंदुमती जोर से रो उठी। उस समय सुल्तान ने गंभीर गिरा से कहा—"शाहजादा सोच रहा है, तुम हार गये हो मागंध। लेकिन वास्तव में तुमने अपने झूठे मोह को ठोकर मारकर चकनाचूर करके न्याय के साथ न्याय किया है। मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूं मागंध। प्रेम एक भूल है जिसके लिए सबको प्रायश्चित करना होगा। हैदर !!"

"सुल्तान ?"

"इन्हें ले जाओ !" वृद्ध ने ऐसे कहा जैसे अत्यंत साधारण बात थी।

"ले चलो इन्हें।" हैदर ने बंदियों की ओर इंगित किया और सैनिक बंदियों को घेरकर हैदर के पीछे-पीछे चले गये। मागंधपाल व्याकुल-सा देखता रहा। वृद्ध सुल्तान ने मुड़कर कहा—"व्याकुल न हो मागंध। दूसरों के अधिकार छीनना पाप है, किंतु अपनों की रक्षा करना कोई पाप नहीं।"

"सुल्तान···," जैसे मागंध का सोता फूल निकलेगा। और वृद्ध ने कहा—"तुम जाकर विश्राम करो मागंध।"

"देखा शाहजादे !" बल्बन ने अपने हाथ बांधकर कहा—"तुम जिसे प्रेम कहते हो वह एक भूल है, एक तृष्णा है।"

"आप भूलते हैं सुल्तान," बुग़रा खां ने निर्भीक उत्तर दिया—"प्रेम इन छोटे-छोटे बंधनों में सीमित नहीं रहता। वह इन क्षुद्रताओं से कहीं अधिक ऊपर है।"

"बुग़रा खां को अपने पिता की भूलों को सुधारने का अधिकार न प्रेम ने दिया है, न राज्य ने ही।" और सुल्तान ने रुककर कहा—"कमला !"

"सुल्तान !" कमला ने कांपते हुए उत्तर दिया।

"जाओ अपने पिता की सेवा करो। जिस समय तुम्हारा बाप मर रहा है बिस्तर पर तड़प रहा है उस समय एक प्रेमी से आलिंगन कर रही हो ? तुम्हें शर्म नहीं आती ? जाओ ! बल्बन तुम्हारे अपराधों को क्षमा करता है। आइंदा तुम कभी भी इस बेवकूफ से मिलकर अपने आपको बरबाद नहीं करोगी, जाओ।"

कमला के पांव उठते हुए देखकर बुग़रा खां ने करुण स्वर से कहा—"तुम जा रही हो कमल ?"

वृद्ध ने उसकी बात पर कोई ध्यान न देकर कड़ककर कहा—"मैं कहता हूं लड़की तुरंत चली जा। कुमारपाल का मान मेरा मान है, वर्ना देख, बाहर देख..."

कमल ने बाहर देखा। सूली पर टांगी लाशों को देखकर उसने भय से चिल्लाकर आंखें बंद कर ली। सुल्तान ने कठोर होकर कहा—"जा और इस प्रेम को एकदम इसी क्षण भूल जा। सुल्तान का बेटा जिस दिन स्त्री से छिपकर मिलेगा, उस दिन से तलवार सदा के लिए छूट जायेगी। जा !"

कमला चुपचाप चली गई। और सुल्तान ने मुड़कर कहा—"मेरे अजीज ! देख लिया स्त्री का प्रेम ?"

बुग़रा खां ने सिक्त स्वर मे फुत्कार किया—"वह बालिका है।"

"और तुम," सुल्तान ने व्यंग से कहा—"एक नासमझ बालिका को फुसलाने में अपना समय नष्ट कर रहे हो ? सल्तनत तुम जैसों की शक्ति पर निर्भर है, बल्बन के पुत्र आज कायर हो रहे हैं ?"

"नहीं, नहीं," बुग़रा खां पुकार उठा—"मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। नहीं चाहिए मुझे तख्त, नहीं चाहता मैं यह हृदयहीन ताज, जहां न्याय के आडंबर मे मनुष्य प्रेम नही कर सकता, केवल भय करता है..."

"बुग़रा खां," वृद्ध ने मनुहार की—"तू मेरा पुत्र है। बल्बन कभी दिल का गुलाम नहीं था, तभी वह सुल्तान हो गया। लेकिन तू सुल्तान का बेटा होकर भी सिर्फ एक गुलाम है कायर !"

"मैं, मैं नहीं जानता मैं क्या हूं। मुझे छोड़ दीजिये, मैं सब कुछ छोड़कर चला जाऊंगा।"

वृद्ध ने सुना। उसने कहा—"फीरोज़ !"

अंगरक्षक आगे बढ़ आया। वृद्ध ने फिर कहा—"मैं बहुत थक गया हूं फीरोज़ ! ऐसा लगता है जैसे बहुत दूर से चलते-चलते मैं जर्जर हो गया हूं।"

बुग़रा खां ने कहा—"सुल्तान को याद रखना चाहिये कि मैंने बगावत की है। मुझे भी प्राणदंड मिलना चाहिये।"

"बुग़रा खां !" सुल्तान का स्वर खिंच गया—"तू मेरा पुत्र है !"

"पुत्र," बुग़रा खां हंसा। उसने कहा—"बस ? सारा न्याय समाप्त हो गया ?"

बल्बन ने सिर झुका लिया। उसने धीरे से कहा—"उफ ! फीरोज़ ! मुझे

यहां से ले चलो। बल्बन हवा से नहीं लड़ सकता। बुग़रा खां! मैं जानता हूं कि तुम अपनी हार को भूल से अपनी जीत समझ कर हंस रहे हो, लेकिन मैं तुम्हारी पराजय से ही हार गया हूं..."

बुग़रा खां व्याकुल सा सुल्तान के पैर पकड़ कर चिल्ला उठा—"सुल्तान!"

उसे लगा पत्थर चटक कर पानी ऊपर निकलने वाला था। वृद्ध ने कांपते हाथ को उसके सिर पर फेरते हुए कहा—"पुत्र!" स्नेह से सिक्त स्वर से ही उसने फिर कहा—"तूने पिता बल्बन से बगावत की है मेरे लाल! काश, एक बार सुल्तान बल्बन से भी करता तो देखता कि बल्बन आज तक कभी नहीं हारा..."

पत्थर कांप कर और गहरा उतर गया था, कठोर, नितांत कठोर...बल्कि चट्टान हो गया था। बुग़रा खां आर्त्त स्वर से कराह उठा। गुलाम वास्तव में सुल्तान हो गया था।

['47 से पूर्व]

समुद्र के फेन

सांझ की सुहावनी वेला में आकाश स्वर्ण की भांति दमक रहा था। वायु अट्टहास करती हुई हाथ फैलाये हुए समुद्र की तरंगों पर दौड़ रही थी। जल हरहराता हुआ तीर पर वेग से चढ़ जाता। फेनों से बालू ढंक जाती। अनेक युवक-युवतियां फेन से खेलते उन्माद से ठहाके मार कर हंस उठते। लहरें झेंपती हुई पीछे लौट जातीं। आकाश की छवि छाया लहरों पर मुसकरा उठती, और वायु के थपेड़ों से जल क्रुद्ध हो फुफकार उठता।

तंगवल्ली तट पर अकेली ही बैठी उंगली से बालू पर चित्र बना-बिगाड़ रही थी। 'एक्वेरियम' (चलचरी) का। भीड़ का हल्का शोर गूंजता हुआ धीरे-धीरे उसके कानों में टकरा रहा था। उधर रेस्तरां में लोग बैठे हुए 'मसाला दोशे' और काफी खा-पी रहे थे। उनके लिए जैसे जीवन एक मौज मात्र था। पर तंगम् को उन्हें उस तरह खाते-पीते देख कर उनसे घृणा हो रही थी। उसके हृदय में एक क्षोभ-सा भर रहा था। सहसा वह उनके अज्ञान पर धीरे से मुस्करा उठी। उसके गालों में गढ़े पड़ गये, जैसे लहरें चक्कर मार कर ही स्थान पर दबती चली जाती हैं। जैसे जल का सारा वेग, समस्त गति का सौंदर्य एक ही केन्द्र पर रहस्य बन कर कांप उठता है।

तंगम् आज बहुत दिनों के बाद इधर आई है। उसने इसी वर्ष बी० ए० किया है। अपने गेहुवें रंग के शरीर पर जब वह छपी हुई धानी साड़ी उत्तरी ढंग से बांध कर आईने के सामने जाती है, तो उस समय वह अपने आपको ही शीशे में देख कर मुग्ध हो जाती है। उसे अपने रूप पर गर्व हो जाता है।

उसकी बूआ ने उसे अतीव लाड़ से पाला और पोषित किया है। बूआ की एक छोटी सी जमींदारी है। एक काश्तकार को ही उन्होंने उसका मैनेजर बना दिया है। वही वक्त पर रुपये लाकर दे जाता है। उसी से सब कुछ होता है—निर्विघ्न, निर्विवाद।

तंगवल्ली देर तक वहीं बैठी रही। उसने देखा, उसके साथ हंसने-बोलने वाला कोई नहीं था। बूआ नहीं रहेंगी, तो संसार में वह नितान्त निरावलम्ब हो जायगी।

तट पर अनेक युवक-युवतियां बालू पर दो-दो करके बैठे बातें कर रहे थे। तंगवल्ली ने उन्हें देखा, और उपेक्षा से मुंह फेर लिया। ये लोग और कुछ नहीं जानते, न जानना चाहते हैं, बस प्रेम की छलना में डूबे रहते हैं!

जब अंधेरा घिरने लगा, तो तंगवल्ली उठी, और सामने के कालेज के बाईं तरफ चली पड़ी। सड़क पर अनगिनती मोटरें खड़ी थीं—काली, नीली, लाल···

लेकिन उसने उधर ध्यान नहीं दिया। वह रुक गई, और ट्राम की प्रतीक्षा करने लगी।

बूआ का नाम था सुब्बलक्ष्मी। अधेड़ आयु थी। गालों पर झुर्रियां पड़ चुकी थीं। दो दांत टूट चुके थे। पर नयनों में एक ऐसे स्नेह की अभिव्यक्ति थी कि देख कर सहज ही माता की ममता की अनुभूति होने लगती थी।

तंगम् भीतर घुसी। देखा, बूआ छत से लटके झूले की ओर सतृष्ण नयनों से देख रही थी। तंगम् पास जाकर बैठ गई। बूआ चौंक उठीं, देखकर मुस्कराईं, और न जाने क्यों उनकी आंखों में अपने आप पानी छलक आया।

तंगम् ने कहा—"अत्तै ! क्या हुआ ?"

बूआ ने कुछ देर तक कुछ भी न कहा, चुपचाप उसकी ओर देखती रहीं। तंगम् उस दृष्टि का अर्थ कुछ-कुछ समझती थी। जब किसी युवती कन्या की ओर घर की बड़ी-बूढ़ी स्नेह से आंख भर कर देखती हैं, तो उसका अर्थ होता है, 'तेरा विवाह' होना चाहिये !'

तंगम् लजा गई, पर उसने अनजान बन कर अपनी लाज को छिपा लिया।

बूआ ने कहा—"बेटी, तुझे मैंने अपनी बेटी करके पाला है। है न सच ? तू भी मुझे मां की तरह प्यार करती है न ?"

तंगम् ने सिर हिलाकर स्वीकार किया। एक कोने में कुत्तीवलक्क (एक प्रकार के दीपक) जल रहे थे, जिनके प्रकाश में चमकते हुए फर्श पर पुरा हुआ कोलम (चौक) झिलमिला रहा था। अलगनी पर बूआ की सफेद साड़ी टंगी हुई थी। इस घर में अठारह हाथ की 'मड़शार' (रंगीन) साड़ियां केवल दो हैं। एक एक सौ पांच रुपये की है। उस पर मूल्यवान जरी का काम हुआ है। दूसरी तीस-पैंतीस रुपये की है। तंगम् अंग्रेजी पढ़ी युवती है। वह इतनी लम्बी साड़ी का बोझ क्यों लादे फिरे ?

बूआ के माथे पर विभूति लगी हुई थी। उसके ऊपर कैंची से कटे सफेद, काले छोटे-छोटे बाल थे, जिनको देख कोई भी स्त्री कांप उठ सकती है, क्योंकि विधवा होना एक भयानक बात है।

बूआ ने गद्‌गद होकर कहा—"बेटी, अब तू बी० ए० भी हो गयी। आज तक मैंने कभी तेरी मर्जी के खिलाफ कोई काम नहीं किया। क्या अब भी तू मेरी बात नहीं मानेगी ?"

तंगम् समझ गई। उसने मुंह फेर लिया। इससे उसकी स्वीकृति थी, जिसकी पृष्ठभूमि में नारी की युगान्तर की घर बसा कर रहने की प्रवृत्ति थी।

बाहर किसी के खांसने की आवाज सुनाई दी। अधेड़ आयु के, आबनूसी रंग के अलगप्पा ने भीतर प्रवेश किया। वह एक धोती पहने था, जिसके आगे के भाग में किसी समय अच्छी जरी का काम होने का अनुमान-मात्र ही अब आभासित हो सकता था।

शरीर पर एक कमीज थी, और अधिकांश मदरासियों की भांति वह नंगे पैर ही था। सिर के पीछे मोटा चुट्टा था, और आगे से कुछ गंज आ जाने के कारण चौड़ी-चौड़ी विभूतियां लगी थीं, जिनको देख कर लगता था, जैसे गहरे आकाश में धुंधली स्वर्ग-गंगा प्रवाहित हो रही हो। उसके हाथों पर अत्यधिक बाल थे। नाटा होने के साथ ही वह स्थूल शरीर का था। उसकी आवाज मोटी थी, और वह बहुत जल्दी बोलता था। वही बूआ का काश्तकार और मैनेजर था।

बूआ ने प्रणाम-नमस्कार के बाद बैठने का इशारा किया। वह ऐसे बैठा, जैसे कोई भरा हुआ बोरा किसी ने लद्द से पटक दिया हो।

अलगप्पा बहुत बातूनी था। तंगम् को उसकी सूरत देखते ही कुछ बुरा-सा लगता था। वह उसे घोर मतलबी समझती थी। ये लोग कभी किसी के नहीं होते। अलगप्पा खेतों में काम करने वाले चमारों को अक्सर पिटवा देता था। तंगम् को उसकी यह आदत बिल्कुल पसन्द नहीं थी।

अलगप्पा की पत्नी का नाम आन्डालम्मा था। एक नम्बर की लड़ाकू औरत थी। घर बरबाद करने की ही दीक्षा लेकर उसने ससुराल में पांव रक्खा था। जो जोर-जबर करके अलगप्पा घर में लाता था, उसे रईसी में आन्डालम्मा बरबाद कर देती थी। पर उसकी पुत्री भामा अतीव सुन्दरी थी।

बूआ ने कहा—"कहो भैया, घर में तो सब ठीक-ठाक हैं ?"

अलगप्पा ने बात समाप्त होने के पहले ही कहना प्रारम्भ कर दिया—"तुम मेरी अत्तै नहीं हो, मालकिन, मेरी मां के समान हो। तंगम् के फूफा मुझे बेटी करके मानते थे। अपनी औरत और पुत्र से भी कोई उतना स्नेह नहीं कर सकता। वह तो देवता थे, देवता !"

चोट ठीक पड़ी। बूआ की स्मृतियां उभर आईं। उनकी आँखों में पानी आ गया। अलगप्पा कहता गया—"घर तो नहीं बनेगा, मां ! वह जो डायन बैठी है, डायन !"

बूआ मुस्करा दीं। तंगम् हंस पड़ी।

"सच कहता हूं," उसने फिर कहा—"जो जैसे आता है, वैसे ही चला जाता है। अब भामा बड़ी हो गई है। वर की तलाश में हूं। कोई कुछ मांगता है, कोई कुछ। समझ में नहीं आता कि क्या करूं, क्या न करूं। पास में एक धेला भी नहीं ! और बहुत से तो कहते हैं—'लड़की कुछ पढ़ी नहीं है। कम से कम सेकण्ड फार्म तक पढ़ी होती ?' "

अलगप्पा ने एक लम्बी सांस ली, और उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। कोई कुछ नहीं बोला। बूआ अपने ही विचारों में तल्लीन थी। उन्होंने थोड़ी देर बाद गम्भीर स्वर में कहा—"अलगप्पा, तुम्हें तो सब मालूम है ! नरसप्पा का पत्र आया है। रुपया मांगा है।"

तंगम् ने सुना। कुछ समझ में नहीं आया। उसने पूछा—"यह नरसप्पा कौन है ?"

अलगप्पा ने कहा—"तुम नहीं जानतीं ? अरे वह तो कभी इस घर का ऋण नहीं चुका पायेगा ! तेरी बूआ ने ही उसे इतना बड़ा किया है।"

बूआ ने गर्व से तंगम् की ओर देखा, फिर कहा—"कुछ भी हो, अलगप्पा, पचास रुपये तो उसे भेज ही दो। वह भी तो अब अपना ही है।"

अलगप्पा ने पल भर अकचका कर आंखें उठाईं, जैसे वह कुछ विरोध करना चाहता था पर हठात् बूआ की ओर देख कर बोल उठा—"मालकिन, दिल तो आपने पाया है ! एक आण्डाल है, जो घर की होकर घर को नहीं समझती, और एक आप हैं ! सचमुच आप देवी हैं।"

और उसने उठ कर एक लम्बा साष्टांग दंडवत किया। तंगम् कुछ उपेक्षा और तिरस्कार से देखती रही।

तंगम् के हृदय में भी उस अज्ञात युवक नरसप्पा के प्रति एक कौतूहल जाग उठा। कौन है वह, जिसे बूआ इतना मानती है ? कैसा होगा वह ?

जैसा प्रकृति का नियम है, वैसा ही हुआ। युवती की दृष्टि में उठ कर सदा ही एक अनजान युवक का भी चित्र अत्यन्त सुन्दर होकर उपस्थित हो जाता है।

दूसरे दिन जब वह समुद्र-तट पर गई तो उसके शून्य हृदय में जो एक चित्र था, किसी काल्पनिक सुन्दर युवक का, वह शीघ्र ही उसे भूल गई। उसकी उदास आंखें फिर बनती-बिगड़ती लहरों का खेल देखने लगीं। फेन से तट भर जाता था। फेन बिखर जाता था। फिर लहरें आकर उस पर छा जाती थीं।

उसने कालेज-जीवन में भी कभी किसी लड़के से मित्रता नहीं की। उसे अपने चरित्र पर गर्व था। उसकी शून्यता भीतर ही भीतर उसको जब कचोटने लगती थी, तो वह दुख के भार से व्यथित होकर उपनिषद् पढ़ने लगती थी। पर कुछ देर बाद ही कीट्स की 'एन्डिमियन' की कड़ियां उसके कानों में गूंज उठतीं। चन्द्रदेवी का उस गड़रिये के प्रति प्रेम उसकी निभृत वेदना पर लहरों के जाल की तरह छा जाता। वासना के उबलते फेन बनने-बिगड़ने लगते।

द्वंद्व के इस विषाद की छलना हमारे समाज का बंधन है, व्यक्ति का दासत्व है।

कभी-कभी वह सोचती, 'आज के साम्यवादी कहते हैं कि यह समाज आर्थिक बन्धनों पर टिका है। शोषण इसकी शक्ति है, और बलात्कार इसका धर्म।' फिर ये विचार चले जाते। उसका अपनापन सत्य के भार को न सह सकने के कारण पंगु-सा हो, लड़खड़ा कर दयनीय हो उठता। मद्रास नगर का वह वैभव उसे ज्वाला के समान झुलसता हुआ लगता। वह चाहती थी ममता, स्नेह, प्यार।

घर आकर देखा, बूआ भामा को पास बैठाकर बातें कर रही थीं। भामा ने तंगम् को देखा और धीरे से मुस्करा दी। तंगम् भीतर से 'आनंद-विकटन' (तामिल की एक पत्रिका) ले आई, और पास ही बैठ कर तस्वीरें देखती हुई बातें करने लगी।

भामा ने कहा—"अत्तै ! तंगम् का ब्याह कब करोगी ?"

तंगम् हँस दी। उसने सिर उठाकर कहा—"ओहो ! तुझे मेरी बड़ी चिन्ता हो गई ! कभी अपने बारे में भी सोचा ? तेरे पिता तो तेरे पीछे पागल हुए जा रहे हैं !"

तंगम् के स्वर में व्यंग था। भामा को लगा, जैसे वह उसकी दरिद्रता पर हमला कर रही है। उसके हृदय से क्रोध आया जो विक्षोभ बन कर आंखों में मौन हो गया। तंगम् ने जो कहा है, इसीलिए न कि वह जमींदार है, घर भी उससे कहीं अच्छा है, उसका बाप उसी के यहां नौकर है, और खुद पढ़ी-लिखी है।

उसने कहा—"हमारा क्या, हम तो गरीब हैं। ब्याह नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे पास दौलत नहीं है। किन्तु तुम तो ऐसी नहीं हो। लोग कहते हैं, जब लक्ष्मी के रहते सरस्वती भी आ जाती है, तो वह स्थान ठीक नहीं रहता।"

"क्या मतलब ?" तंगम् ने भौंहें सिकोड़ कर पूछा। उसका नीचे का होंठ कुछ निकल आया।

भामा ने कहा—"यही कहती हूं कि हमारे यहां बड़ी उम्र तक ब्याह नहीं होते, तो लड़कियों के लोग नाम धरते हैं। तुम भी तो स्त्री ही हो। क्यों, अत्तै," उसने मुड़कर कहा—"लोग क्या-क्या नहीं करते ? मेरी तो बात ही और है। क्या तंगम् की कहीं बातचीत भी नहीं चली ?"

तंगम् ने कुछ नहीं कहा। बूआ बोल उठीं—"हां-हां, चली क्यों नहीं ? नहीं चली, तो अब चलेगी। चलाये से चलेगी कि अपने आप ? तंगम् का ब्याह होगा, तेरा भी होगा। तू क्या हमसे कुछ अलग है ?"

भामा ने लज्जा से सिर झुका लिया। पुरुष के प्रति उसका इतना स्नेह देखकर तंगम् को अच्छा नहीं लगा। वह उठ गई।

संध्या जब समुद्र के ऊपर से अपना रंगीन आंचल हटाकर स्नान के लिए वस्त्र उतारने लगी, तो तंगम् उठ खड़ी हुई। जाकर वहीं समुद्र-तीर बैठ गई। सैंकड़ों व्यक्ति वहां थे, पर तंगम् को जैसे उन सबसे कोई सम्बन्ध नहीं था। आज तक उसके पीछे किसी कालेज के लड़के ने चक्कर नहीं लगाये। वह सुन्दर थी अवश्य, किन्तु उसमें आकर्षण नही था। तंगम् सदा ही ऐसे समझती रही है।

धीरे-धीरे सूर्य समुद्र की उत्तंग लहरों को पकड़ने का अंतिम प्रयास करके विफल-सा खिसक कर अंधकार में डूब गया। लहरें अधिक नील हो गई। आकाश में तारे चमक उठे, जैसे मुंह खुलने पर उज्ज्वल दांत चमक उठते हैं। उम बढ़ती हुई नीरवता में समुद्र की एकांत हहर उसके अंतराल में एक महान संतोष बनकर व्याप्त होने लगी। वह विमुग्ध सी बैठी रही देर तक।

घर आने पर तंगम् ने देखा, दीपक जल रहे थे। काश, यहां बिजली होती ! शहर में रहकर घर में बिजली का न रहना उसे बड़ा बुरा लगा। अब वह अवश्य बिजली लगायेगी। बी०ए० तक बूआ की ममता ने उसे पढ़ाया था, उनके विचारों ने नहीं। तंगम् के स्नेह ने समाज के सारे प्रतिरोधों के बावजूद बूआ को उसे पढ़ाने के लिए विवश

किया था।

भीतर झांककर देखा, बूआ चुपचाप सो रही थीं। उसे विस्मय हुआ। अभी तो रात प्रारम्भ ही हुई है। चुपचाप भीतर जाकर वह कपड़े बदलने लगी। रसोई में जाकर देखा, केवल पौंगल (खिचड़ी) बनी रखी थी। वह खाने लगी।

बूआ का लेटा रहना अकारण नहीं था। उन्हें रोज शाम को धीमा-धीमा ज्वर आ जाता था। आज वह तीव्र हो गया था। उनके शरीर में पीड़ा हो रही थी। वह बिस्तर पर पड़ी थीं। उनके नयन अधमुंदे से, थके-मांदे से कभी-कभी खुल जाते थे। उन्होंने तंगम् की ओर देखकर कहा—"तंगम् बेटी!"

तंगम् ने पास आकर कहा—"सो रहो, अत्तै! तुम न जाने क्या-क्या सोचा करती हो?"

बूआ ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर आंखें मीच लीं। उनके होंठ खदकते पानी की तरह कांप उठे, जैसे ममता का ताप बहुत बढ़ गया हो।

तंगम् ने उठकर देखा, घड़ी में एक बज रहा था। उसने अपने सिर को जैसे अनजान में ही हिलाया। उसी समय बूआ कराह उठीं।

बूआ के पास जाकर वह खड़ी हो गई, कहा—"अत्तै, वैद्य की दवाई खाते-खाते आज एक महीना हो गया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। कहो तो किसी डाक्टर को बुला लाऊं।"

बूआ के होंठ सिकुड़ गये। आंखें खोलकर उन्होंने एक बार स्थिर दृष्टि से तंगम् की ओर देखा। कहा—"बेटी, तू अंग्रेजी पढ़ी-लिखी है। मैं तो वही पुरानी गंवारिन हूं। जन्म से आज तक तो कभी अंग्रेजी दवा खाई नहीं। अब खाकर भी क्या करूंगी? एक तेरा ब्याह करना था। उसी के लिये जीवित रहने की इच्छा थी। अन्यथा इस अभागिन विधवा से संसार को लाभ ही क्या है?"

तंगम् झुंझला उठी यह सोचकर कि उसके विवाह की समस्या न होती तो बूआ को जीवित रहने की वास्तव में कोई आवश्यकता न थी। फिर जैसे बूआ की अपने प्रति अगाध ममता से भरकर उसने कहा—"तुम बहुत अच्छी हो, अत्तै!"

अलगप्पा ने घर में प्रवेश करते हुए कहा—"अच्छी नहीं, देव कहो, बेटी, देवी!" और पास आकर बैठते हुए कहने लगा—"अब तबीयत कैसी है? बेटी तंगम्, अब तो मालकिन कुछ अच्छी हैं न?"

तंगम् ने निराश से सिर हिला दिया। अलगप्पा की आंखों के सामने जैसे एक काली छाया घूम गई। वह सोचने लगा, "बुढ़िया मर गई, तो? तंगम् अपना विवाह कर लेगी। फिर जमींदारी का क्या होगा?" यह सोचकर उसके दिल मे एक डर समा गया। सिर हिलाकर उसने कहा—"तो भी कोई चिन्ता नहीं! भगवान सब अच्छा करेंगे! घबराहट से काम नहीं चलेगा। दवा तो वैद्य की ही हो रही है न?"

तंगम् ने कहा—"हां, उससे कोई लाभ नहीं हो रहा है। मैं कहती हूं, डाक्टर को बुला लें। पर अत्तै डांट देती हैं कि तू लड़की है, कुछ नहीं समझती!"

"सो तो है ही !" अलगप्पा ने कहा। तंगम् एकदम चौंक पड़ी। अलगप्पा अपने फटे स्वर से कहता ही गया—"तुम क्या जानोगी, बेटी ! रुपया क्या आसानी से आता है ? आगा-पीछा सोचकर खर्च करना चाहिए। डाक्टर का क्या है ? वह मिल मिलते ही उस्तरा तेज करने बैठ जायेगा !"

तंगम् अवाक रह गई। बूआ ने करवट बदलकर कहा—"अलगप्पा, अभी तंगम् का ब्याह करना है। और कहीं मैं चल बसी, तो क्रिया-कर्म के लिये रुपया चाहिए। घर में डाक्टर आने जाने लगे, तो क्या बच पायेगा उनसे ?"

अलगप्पा ने हां में हां मिलाकर कहा—"बेटी तो अभी छोटी ही है, अत्तै ! बी०ए० पास करके ही दुनियादारी हासिल हो सकती है ? क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता। ऐसे समय भी यदि मालिक के कुछ काक न आया, तो नरक का ही अधिकारी हूं मैं ! और मालिक भी साधारण मालिक नहीं ! सचमुच यह पापी अलगप्पा तो नरक ही जायेगा। इसके लिए और कही कोई ठौर नही है। मन में बस मालकिन की ही लौ लगी रहती है। लेकिन वह जो घर में डायन है न ! बस, जीवन है या······"

बूआ ने बीच में ही टोककर कहा—"ऐसा क्यों कहते हो, भैया ? अपना-अपना स्वभाव और अपना-अपना भाग्य है। जो दूसरों को दुःख देता है, वह स्वयं भी कभी आराम से नहीं रहता।"

अलगप्पा चला गया। तंगम् दीपक जला कर लक्ष्मी के सम्मुख बैठ, जोर-जोर से पाठ करने लगी। बूआ पड़ी पड़ी सुन रही थी। तंगम् को इन बातों में तनिक भी विश्वास न था; पर आजकल उसके हृदय में एक भय की छाया समा गई थी, जिससे उसकी भावनाएं निःशक्त हो उठी थी।

दीपक के धुंधले प्रकाश में उसने देखा, बूआ के मुंह पर सूजन आ गई थी। वह जानती थी कि स्त्री के मुख पर बीमारी में सूजन आना कितनी भयानक बात है। वह कांप उठी। फिर एक बार हृदय की समस्त गति से शिव की प्रार्थना की।

उस सन्नाटे में तंगम् का मन डांवाडोल हो रहा था। अपने आगे उसे अंधकार के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता था। बूआ के बाद जो संबंधी आज तक उनके डर से चुप रहे हैं, उनकी जबान पर से ताला हट जाएगा। अब भी तो समाज में स्त्रिया उनकी ओर घूर कर देखती हैं। उनकी दृष्टि में एक विद्वेष की भावना रहती है। पुरुष उसकी ओर घोर घृणा की दृष्टि से देखते हैं, जैसे लड़कियों का कालेज में पढ़ना कोई पाप है। तो क्या वह विवाह करेगी ? किन्तु जाति वाले तो मुश्किल से उससे अपना संबंध करेंगे। फिर जब कोई सिर पर नहीं होगा, तो काम कैसे चलेगा ? वह अपने आप अपना विवाह कैसे करेगी ?

बूआ के मुंह से एक कराह निकली। तंगम् भय से कांप उठी। उसने बूआ का हाथ पकड़ लिया। देखा, उनकी आंखें मिच रही थीं। उन्हें पानी पिलाकर बड़ी देर तक देखती रही। उस समय उसके हृदय में एक भीषण आंधी चल रही थी। बूआ के नयन खुले, जैसे अंधेरे कमरे में दीपक जल गये हों।

तंगम् ने कहा—"अत्तै !"

बूआ ने फिर आंखें बन्द कर लीं। तंगम् और कुछ भी नहीं सोच सकी। रात के गहरे अंधकार में पड़ोस में रहने वाले वैद्य को बुलाने के लिए चल पड़ी, किन्तु हृदय आशंका से कांप उठा। वह बूआ को अकेले छोड़कर कैसे जाय? यदि इसी बीच में सब समाप्त हो गया तो संसार कहेगा कि जब बूआ मर रही थी तब तंगम् सैर करने गई थी। कोई सच बात का विश्वास नहीं करेगा।

उठा हुआ पग रुक गया। मन में आया, न जाय। किन्तु फिर हृदय में क्रोध ने सिर उठाया। कहने को तो यह संसार आ जाएगा, किन्तु इस समय जब बूआ बिना औषधि के सांस तक नही ले पा रही हैं, क्यों नहीं आता है कोई उसकी मदद को ?

वैद्य ने आकर कोई दवा पेट में उतार दी, और अपनी फीस लेकर चला गया। तंगम् सिरहाने बैठी रही।

आधी रात का अंधकार जब आकाश और पृथ्वी के बीच अजगर की भांति फुफकारने लगा, तो उसने देखा, बूआ फिर हिल उठीं। फिर उन्होंने तंगम् की ओर देखकर कहा—"बेटी, एक काम करोगी?"

तंगम् ने कहा—"क्या अत्तै ?"

बूआ ने कहा— "बेटी, मेरा अब कोई ठीक नही है। एक महीना भी जीवित रह सकती हूं, एक घण्टा भी। और क्या जाने अभी···" वह थककर हांफ गई, और फिर धीरे-धीरे बोलीं—"बेटी, एक पत्र लिख दे। मैं बोलती हूं।"

तंगम् ने कहा—"कल लिखा लेना, अत्तै ! ऐसा क्या जरूरी है ?"

बूआ ने सिर हिलाकर कहा—"तू नहीं जानती, बेटी ! तू अभी बच्ची है। चल उठ !"

तंगम् ने कोई विरोध नहीं किया। कलम-दवात लेकर बैठ गई। सोचने-विचारने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। कहा—"अत्तै, तुम बोलती जाओ, मैं वैसे ही लिखती चलूंगी। हां, लिखवाओगी कैसे ?"

बूआ ने कहा—"और कौन है, बेटी ? वही नरसप्पा है। अब मैं सचमुच नहीं बचूंगी। तू अकेली सब कैसे संभालेगी? नरसप्पा अनाथ बच्चा था। मैंने ही उसे पाला है। उसे रुपया भेजती रही हूं। वह क्या अब भी आकर घर नहीं संभालेगा ?"

तंगम् ने कुछ नहीं कहा।

बूआ लिखाने लगीं—

"बेटा नरसम्—बहुत दिन से तू मेरे पास नहीं आया। आज इस दुख की घड़ी में और हमारा कौन है। तंगम् तो लड़की है। वह क्या-क्या करेगी ? जमींदारी है, उमको भी तो संभालना है। तू आ ! सब कुछ तेरा ही है। मेरा क्या ? मैं तो मरण-शैया पर पड़ी हूं। तभी तंगम् से यह लिखवा रही हूं। तंगम् का ब्याह कराना है। मेरे बाद तू ही उसकी देखरेख करेगा। तुझे मैंने अपना बेटा करके माना है। यदि तू भी नहीं आयेगा तो और कौन हमारा है ? मैं तो अब बहुत दिन तक नहीं जिऊंगी···"

तंगम् लिखती रही। बूआ ने अन्त में कहा—"बेटी, इसे कल ही डाक में डलवा देना। अब मैं सुख से मरूंगी।" कहकर उन्होंने आंखें मीच लीं, जैसे बहुत थक गई हों।

दीपक की ज्योति धुंधली पड़ चली। तंगम ऊंघ गई।

प्रातःकाल तंगम् की आंख खुली, तो पत्र उसने उसी समय उठकर बाहर सड़क के लेटर-बक्स में डाल दिया।

दिनभर बूआ निश्चल पड़ी रहीं। बहुत जोर देकर तंगम् ने उन्हें चार-पांच चम्मच कंजी पिलाई।

रात और भी भयानक होकर आई। बूआ की सांस जैसे किसी आशा पर अटकी हुई थी। अकेली तंगम् चुपचाप भयाक्रांत हो देखती रही। दूसरे दिन जब सूरज बीच आकाश में पहुंच गया, तो द्वार पर कोई पुकार उठा—"अत्तै !"

बूआ ने आंखें खोल दीं। नरसप्पा आ गया था। तंगम् उठकर खड़ी हो गई। उसने देखा, आगन्तुक उससे आयु में कुछ अधिक था। गोरे रंग के साथ-साथ उसके मुख पर लावण्य भी था। वह बिलकुल साधारण कपड़े पहन था।

बूआ ने आंखें खोल दीं, और प्रसन्नता के मारे उनका गला अवरुद्ध हो गया।

तंगम् ने कहा —"अत्तै ! मामा (दक्षिण भारत में लड़कियां अजनबी युवक को मामा कहकर सम्बोधित करती हैं। वहां मामा अपनी भांजी से ब्याह भी कर सकता है) आ गये !"

युवक पास बैठ गया। फिर मुड़कर तंगम् को देखकर बोला—"मालूम देता है, तुम कई रातों से जागी हो। जाओ, थोड़ा सो रहो। जरूरत होगी, तो बुला लूंगा।"

और कोई ऐसा कहता, तो तंगम् तुरन्त अस्वीकार कर देती। किन्तु नरसप्पा की बात वह न टाल सकी। कमरे में जाकर वह लेट गई और थोड़ी ही देर में सो गई।

रात के एक बजे के सन्नाटे में किसी ने उसे हिलाकर जगा दिया। देखा, भामा पास में खड़ी है। घबराकर तंगम् ने उससे पूछा—"क्या है ?"

भामा ने कहा—"सोने को बहुत समय मिल जायगा, तंगम्। उठो न !"

"बात क्या है ?" तंगम् ने चिंतित होकर कहा। फिर जाकर बूआ के कमरे में देखा, नरसप्पा, आन्डालम्मा और अलगप्पा निश्चेष्ट से बैठे थे। बूआ बिस्तर पर चेतना-हीन-सी हाथ-पांव पटक रही थीं। दौड़कर तंगम् ने बूआ के पैर पकड़ लिए।

क्षणभर बाद ही एक भयानक कुहराम मच गया। आन्डालम्मा ने रो-रोकर छाती पीटना प्रारम्भ कर दिया। नरसप्पा सिर पकड़ कर बैठा रहा। अलगप्पा दाह-क्रिया का प्रबन्ध करने में जुट गया। भामा अपनी मां के दुख से विचलित होकर उसे सान्त्वना देने का प्रयत्न कर रही थी। तंगम् बूआ के पैरों पर सिर रखे रो रही थी। उसे कोई सान्त्वना देने वाला न था।

समुद्र में भयानक तूफान उठा था। पोत डूब चुका था। भग्न खंडों का सहारा ले अनेक यात्री अपने-अपने प्राणों की चिंता कर उत्तुंग लहरों पर हाथ-पांव मार रहे थे।

पर तंगम् ने हाथ-पांव नहीं चलाये। उसे जैसे जीवन का कोई मोह नहीं था।

उसने अपने को छोड़ दिया उन कठोर और निर्मम लहरों की दया पर, जिनके आघात से उसका पोत डूब चुका था, जिस पर उसके अमूल्य मणिमाणिक लदे हुए थे।

रात के सन्नाटे में रोने की वह दर्दनाक आवाज डरावनी बन पड़ोस में फैल गई।

क्रियाकर्म की विषाद-कालिमा जब होम-धूम्र के साथ घर से उड़ गई, तो तंगम् ने देखा कि अब वह पहले से भी अकेली थी। उसका अब वास्तव में कोई नहीं था, दिन हो या रात अब वह कभी बाहर न निकलती, चुपचाप कमरे में पड़ी रहती। उसका हृदय भीतर ही भीतर कचोटता रहता। आंखों के सामने एक शून्यता छायी रहती, जिसमें प्रकाश की एक भी रेखा दिखाई न पड़ती।

नरसप्पा से उसकी कभी कोई बातचीत नहीं हुई, फिर भी वह उसे पसन्द करने लगी थी। उसके हृदय के न जाने किस अनजान कोने में उसकी छाया का भी अस्तित्व आ बैठा था, जिसे वह अकेले में स्वीकार करने को कभी भी तत्पर न होती। पहले ही दिन जो उसने उसे स्वाभाविक रूप से ही मामा कह दिया था, कभी-कभी यही सोच उसे एक लाज भी हो आती।

अत्तै की स्मृति ने उसे भीतर ही भीतर खा लिया था। जब उसकी आंखों के सामने बूआ की मातृ-ममता से भीगी आंखें नाच उठतीं, तो वेदना से उसका हृदय अपने आप कराह उठता। उस सुनसान में घर की एक एक ईंट अत्तै की याद बन कर गूंज उठती।

बाहर कुछ खड़खड़ सुनाई दी। उठकर देखा, नरसप्पा और भामा बातें कर रहे थे। न जाने क्यों उसे यह अच्छा नहीं लगा। उसने घूरकर देखा, और तुरन्त संभल गई। भामा उसे देखकर जैसे कुछ सकपका गई, किन्तु नरसप्पा वैसे ही खड़ा रहा।

तंगम् ने कहा—"कहो, भामा, आज कैसे आई हो ? इधर कई दिन से तो दर्शन ही नहीं दिये ?"

भामा ने कहा—"क्या करूं, मालकिन ? मां को तो आप जानती ही हैं। पिताजी आपके ही काम में फंसे रहते हैं। मुझे घर के कामों से ही फुरसत नहीं मिलती।"

'मालकिन' शब्द तंगम् के दिमाग में एक अपमान का व्यंग्य बनकर बज उठा। उसने घूरकर उसकी ओर देखा, और अपने आप उसकी दृष्टि नरसप्पा की ओर चली गई।

भामा ने फिर कहा—"पिताजी ने मामा को बुलाने के लिए कहा था। इसी से आ गई थी।"

क्षणभर तंगम् ने नरसप्पा की ओर, फिर मुसकरा कर भीतर लौट गई, जैसे उससे कोई मतलब ही नहीं।

शाम को नरसप्पा ने जाकर अलगप्पा का द्वार खटखटा दिया। भीतर से आकर भामा ने द्वार खोला। पलभर के लिए दोनों के नयन मिले। भामा ने मुस्कराकर कहा—"आइए ! पिताजी भीतर हैं।"

नरसप्पा भीतर जाकर बैठ गया। अलगप्पा देखते ही चिल्ला पड़ा—"ओहो! बड़ी प्रतीक्षा कराई, भैया! अरी, भामा, काफी तो ला!"

जब वे लोग काफी पी चुके, तो भामा उन्हें छोड़कर चली गई।

अलगप्पा ने उसकी ओर देखा। भविष्य की आशा उसकी आंखों में एक चमक बनकर खेल गई। उसने कहा—"तुम्हें यहां आने से तंगवल्ली ने रोका तो नहीं?"

नरसप्पा ने नादान बनकर पूछा—"क्यों? वह क्यों रोकती?"

अलगप्पा ने धीरे से कहा—"तुम नहीं जानते, नरसप्पा! वह लड़की अच्छी नहीं है। मैं तो कुछ नहीं समझ पाता कि अब वह क्या करेगी। बूआ की मौत का सोच तुमको नहीं हुआ कि मुझको नहीं हुआ? लेकिन वह तो ऐसी बनती है, जैसे उसके अतिरिक्त किसीको भी बूआ से कोई सहानुभूति नहीं थी। कैसे हो सकता है यह, भैया? तुम्हीं बताओ, अत्तै के चरणों पर कौन न्यौछावर नहीं है? बताओ, नरसप्पा! मैं उन्हीं के अन्न मे पला हूं। तुम भी तो उन्ही के पाले हुए हो। फिर क्या तुम यह सह सकते हो कि उनकी मृत्यु के बाद उनकी आत्मा का अपमान किया जाय?"

नरसप्पा सोचने लगा। किन्तु वह कुछ समझ नहीं सका। उसने कहा—"अपमान कैसा अपमान? तंगम् का तो विवाह मुझे कराना ही है।"

'कराना' शब्द सुनकर अलगप्पा जैसे जीवित हो गया। उसने उसके हाथ पकड़कर कहा—"तुम देवता हो, नरसप्पा, देवता! मुझे तो अपनी भामा की चिंता पड़ी है। मेरे भगवान्! ऐसा क्यों कर दिया तुमने? अब तो कुछ नहीं हो सकेगा? बेटी के ब्याह के लिए रुपया देना तो दूर, तंगम् शायद अब मुझे भी न रखे!"

नरसप्पा ने चौंककर पूछा—"क्यों? तुम्हें काम-काज के लिए नहीं रखेगी, तो कौन करेगा?"

अलगप्पा ने कानों पर हाथ रखकर कहा—"छि: छि:, भैया! वह बी० ए० पास है। अलगप्पा तो अंग्रेजी का एक फूटा अक्षर भी नही जानता। वह नये जमाने की लड़की है। उसे क्या हम लोग पसन्द आयेंगे? इसीलिए तो सोचता हूं भैया, कि शादी का रुपया तो दूर, हमें पेट के लाले पड़ने लगेंगे।"

नरसप्पा ने अलगप्पा को घूरकर देखा, और कहा—"यह नही हो सकता, यह कभी नही हो सकता! पढ़-लिख गई है, तो क्या हमारी ही छाती पर मूंग दलेगी?"

अलगप्पा ने हाथ हिलाये, मानो यह बात तो यों ही कट गई। फिर उसने कहा—"अब हम किसके अपने है, भैया? अपना करके मानने वाली तो चली गई। अब वह बातें कहा रही?"

नरसप्पा बोला— "नही, अलगप्पा, मेरा कहना वह नहीं टालेगी। मैं तुम्हें रुपया दिलवा दूंगा।"

"दिलवा दूंगा," कहकर अलगप्पा ज़ोर से हंसा। उसके व्यंग्य को देखकर नरसप्पा का सोया हुआ अभिमान प्रतिशोध बनकर जाग उठा। उसने उसका हाथ पकड़ लिया। अलगप्पा कह रहा था—'भैया! तुम अभी जवान हो, तुमने दुनिया नहीं देखी।

क्रिया-कर्म के अवसर पर तुमने नहीं देखा, तंगम् ने क्या उसी श्रद्धा से काम लिया, जो हमारी जाति की स्त्रियों में होती है ? हर बात में मुझसे सवाल-जवाब करती थी कि इतना खर्च क्यों हुआ ! तुम्हीं बताओ, क्या मैं चोर था ? भैया, स्त्रियों को अधिकार मिलना ही पाप का मूल है । मेरी स्त्री को ही देखो ! क्या छोड़ा है घर में ?"

नरसप्पा ने हाथ छोड़ दिया और कमरे में इधर-उधर टहलने-लगा । उसकी गति में एक प्रश्न था, उसके अंगचालन में एक आतुरता थी । उसने एक बार बढ़कर अलगप्पा के कन्धों को पकड़कर कहा—"तुम समझते हो कि वह मेरा कहना नहीं मानेगी ?"

अलगप्पा जोर से हंस दिया । फिर उसने कहा—"जाने दो, नरसप्पा, जाने दो! मैं तो तुमसे कह ही चुका हूं । लेकिन यदि तुम्हें विश्वास न हो तो जाओ, पूछ लो ! वह तुम्हें भी अपने घर से चले जाने को कहेगी !"

नरसप्पा पीछे हट गया, जैसे किसी ने कसकर एक चांटा जड़ दिया हो । अपमान से उसका मुंह स्याह हो गया । वह चिल्ला उठा—"वह यह साहस नहीं कर सकती, अय्यर ! वह यह साहस नहीं कर सकती ! मुझे उसी की बूआ ने पाला है ! और अंतिम समय में अपना समझकर बुलाया था । तुम समझते हो, तंगम् मुझे निकाल देगी ?"

"निस्संदेह ! मेरे साथ ही वह तुम्हें भी निकाल देगी !" अलगप्पा ने दृढ़ता से कहा—"यों न जाओगे, तो धक्के मारकर निकाल देगी । निकाल देगी, क्योंकि उसकी जमींदारी है । वह अंग्रेजी पढ़ी-लिखी है । उसको स्वतन्त्र जीवन चाहिए । हमारे कायदे-कानून उसे पसन्द नहीं । हमारे रहते अन्याय चलेगा कैसे ? इसी से वह हमे अलग कर देगी कि न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी !"

नरसप्पा उसकी बात सुनकर एकदम पागल-सा घूम गया । मुट्ठी बांधकर पल भर कुछ सोचता रहा । फिर एकाएक मुड़कर बोला—"अय्यर, वह तुम्हें निकाल देगी, तो क्या तुम भूखे मर जाओगे ?"

"और नहीं क्या करूंगा ?" अलगप्पा ने रुआंसा हो कहा—"मैं अब बूढ़ा हो गया हूं । तुम्हारी तरह जवान होता तो कुछ कर भी लेता; किंतु अब तो शक्ति ही नहीं रही । फिर तुम्हीं बताओ, क्या करूंगा ?"

नरसप्पा ने उसका हाथ पकड़कर निश्चय से कहा—"डरते हो, अय्यर ? मेरे रहते डरते हो ? मैं तुम्हारी पुत्री से विवाह करके तुम्हारे बोझे को हलका कर दूंगा और फिर तुम स्वतन्त्र हो जाओगे !"

अलगप्पा ने गद्गद होकर नरसप्पा के पैर पकड़ लिए, और उन पर अपना सिर भी टेक दिया ।

"हाँ-हाँ ! यह क्या करते हो, अय्यर ?" कहकर नरसप्पा ने उसे बड़ी कठिनाई से उठाया । अलगप्पा कह रहा था—"परमात्मा के आंख नहीं हैं ! अत्तै के स्थान पर तुम्हें न रखकर उस बदतमीज लड़की को रखकर उसने कितना बड़ा अन्याय किया है, यह तो हमारा ही हृदय जान सकता है ।"

नरसप्पा सोच में पड़ गया ।

कमरे का सन्नाटा अपने आप ही में घुट रहा था। तंगवल्ली उदास सी लेटी थी। उसके दिमाग में कितनी ही बातें सागर की लहरों की तरह उठ-उठ कर किसी अनन्त तृष्णा से तट की ओर भाग रही थीं कुछ पकड़ लेने, किंतु लहरें क्या तट को आलिंगन में बांध पाती हैं ?

तंगम् का मन उचाट हो गया। आज बुआ होतीं, तो क्या उसे अकेलापन इतना खलता ? नरसप्पा, जिसमे उसका सब कुछ वह बांध गई हैं, उससे इतना उदासीन रहता ?

इसी समय उसे किसी की पगध्वनि सुनाई दी। थोड़ी देर बाद वह पदचाप रुक गई। तंगवल्ली उन्मादिनी सी प्रतीक्षा करती रही, किन्तु कोई भीतर नहीं आया। वह कुछ देर चुपचाप पड़ी रही, फिर उठी। बाहर झांक कर देखा, नरसप्पा आकर चटाई पर लेट गया था। उसका मुख दीवार की ओर था। न जाने क्यों, हृदय में अपने आप कुछ कचोट उठी।

लौटने को पांव उठाया, किंतु हाथ की अभागिन चूड़ियां बज उठीं। नरसप्पा ने मुड कर देखा और बोल उठा—"तंगम् !"

तंगम् को लगा, जैसे आज नरसप्पा की दृष्टि में वह हीन थी। मन ही मन एक विद्रोह की आग सी दौड़ गई। फिर भी ऊपर से एक मुस्कराहट दौड़ गई, और गालों में गड्ढे पड़ गये।

नरसप्पा ने कुहनियां टेक कर हथेलियों पर अपने मुंह को टिका दिया, फिर कहा—"तंगवल्ली, मैं कल सदा के लिये यहां से चला जाऊंगा।"

कहना चाह कर भी तंगम् कुछ नहीं कह सकी। केवल निगाह भर कर देखती रही। सचमुच नरसप्पा सुन्दर था, ऐसा सुन्दर कि बिलकुल उत्तरी लगता था। बी० ए० पास करके जो स्त्री के हृदय में संकुचित गर्व होता है, वही तंगम् को भीतर ही भीतर कुरेद उठा। इतने दिन से वह यहीं था, तंगम् ने कभी भी उसकी ओर नहीं देखा। आज जब वह जाने की कह रहा है, तब वह एकदम इतनी विह्वल क्यों हो गई ?

नरसप्पा सन्नाटे से ऊब गया। उसने समझा कि तंगम् को कोई आपत्ति नहीं है। उसने फिर कहा—"कोई काम हो, तो मुझे बता दो। तुम्हारी बूआ बहुत अच्छी थीं। वह स्त्री नहीं देवी थीं। उन्होंने जीवन भर अपने लिये कुछ भी नहीं किया। तुम्हारे ही लिये वह सदा विकल रहीं। तुम उन्हें भूल न जाना !"

नरसप्पा तंगम् के नयन देखकर सहम गया। वह निश्चय नहीं कर सका कि वह भाव स्नेह का सुख था या घृणा का आत्म-सन्तोष। किन्तु एकाएक वह हंस उठा। वह विजय की भावना की एक स्पष्ट गूंज थी।

तंगम् घृणा से अपने आप सिहर उठी। उसे याद आया, जब बूआ बीमार पड़ी थी, उनका शरीर काला पड़ गया था, उस समय कोई आदमी ऐसा न था, जो वैद्य को बुला लाता। उस समय वह अकेली थी। रात की डरावनी अंधियारी में, जब बूआ का गला भर्रा उठता था, और वह भयानक रूप से कराहने लगती थी, तब कहां था यह बूआ

का सम्बन्धी, जो अब उसका दूर का मामा बनने का अधिकार जता रहा है? आत्म-सम्मान का आघात जब मर्म पर पड़ता है, तो स्त्री में युगों का सोया हुआ गुलाम जाग उठता है।

उसने तीव्र स्वर में कहा—"बहुत कहा, मामा! कह चुके तुम, सुन चुकी मैं! किन्तु जिसने तुम्हें रिश्ता न होने पर भी खिला-पिला कर बड़ा कर दिया, उसे तुमने बड़े होकर क्या दे दिया, जो मुझे ही सन्देह से देख रहे हो?"

"इसी की तो हविस रह गई है दिल में, तंगम्! इसी का तो पश्चाताप बचा रह गया है, जो हृदय को भीतर ही भीतर डस रहा है।"

तंगम् ने फिर प्रतिवाद किया—"गिरे दूध पर रोने से क्या होता है? जब समय था, तब तो तुम आये नहीं। अब वह मर गईं, तो सब सगे बनने लगे हैं।"

"पढ़ा कर उन्होंने तुम्हारा दिमाग खराब कर दिया, तंगवल्ली! किसने नहीं मना किया बूआ को कि मत पढ़ाओ, मत पढ़ाओ। मगर बेटी को बिना बी० ए० पास कराये उन्हें सब्र कहां था? तुम्हें क्या अब किसी की बात सुहायेगी? अपना-अपना भाग्य है। आन्डालम्मा के घर में क्या न था? मगर आज कुछ है?"

तंगम् तड़प उठी। आन्डालम्मा से उसकी तुलना! वह क्रोध से चिल्ला उठी—"बूआ का नमक खाकर ऐसी बातें कहते तुम्हें शर्म नहीं आती?"

"ओहो!" कह कर नरसप्पा तनिक जोर से और किंचित् व्यंग्य से हंस उठा, "बड़ा दर्द हो रहा है अब? ऐसा ही था, तो बूआ के साथ ही क्यों नहीं चली गई? अब तो छाती फट रही है, मैं क्या उसका मतलब नहीं जानता? इस जमींदारी के पीछे जो ऐंठ है वह व्यर्थ है, तंगवल्ली। तुम कानून नहीं जानतीं शायद? कुटुम्ब में पुरुष के होते स्त्री को कुछ नहीं मिलता। जानती हो? बी० ए० पास करने से ही सब कुछ नहीं आ जाता। पढ़ी-लिखी सैंकड़ों लड़कियां मैंने देखी हैं, जिन्हें न आचार आता है, न व्यवहार। फिर इसमें ऐंठ किस बात की? शहर में रहती हो, इसीसे इतनी जीभ चलती है। किसी गांव में होती, तो जाति से भी निकाल दी गई होती! गांवों में लड़कियां घर संभालती हैं। मगर बूआ ममता के जाल में असलियत देखना भूल गई। पर अब तो वह सब मैं नहीं होने दूंगा। तुम कहोगी कि तुम्हें किसी की चिन्ता नहीं, क्योंकि तुम पढ़ी-लिखी हो, कोई नौकरी कर सकती हो, मास्टरनी बन सकती हो, किन्तु संसार जानता है कि नौकरी-पेशा औरतों का चाल-चलन ठीक नहीं रह सकता! मैं देखूंगा कि कैसे दूध की धुली हुई रहती हो!"

तंगम् कुछ समझ नहीं सकी। विक्षोभ के कुहरे में अव्यक्त स्नेह छिप गया। क्या कह रहा है यह व्यक्ति? कल तक अनजान था, आज अचानक कैसे एकदम मालिक बन गया? और अपने ही घर में तंगम् एकाएक पराई हो गई? केवल इसलिए कि वह स्त्री है! उसने विक्षोभ की आतुरता से नरसप्पा को देखा। वह निर्निमेष उसकी ओर घूर रहा था। तंगम् लकड़ी की तरह निर्जीव हो गई। समाज कानून की आरी लेकर उसे बीच से चीरता नजर आया।

उसने अपना सिर एक निश्चय से हिलाया, और गंभीरता से बोली—"नरसप्पा, इस घर में तुम्हारा कोई अधिकार नहीं ! समझे ? इससे पहले कि मैं तुमसे निकल जाने को कहूं, यदि शर्मदार हो, तो अपने आप चले जाओ !"

नरसप्पा उठ खड़ा हुआ। उसने अपने अंगोछे को फटकार कर कन्धे पर रख लिया, और दृढ़ता से बोला—"तंगवल्ली, मुझसे कहती हो कि घर से निकल जाओ। लेकिन तुम यह नहीं जानती कि घर का उत्तराधिकारी अपने घर से निकल कर नही जाता ! जो उसकी करुणा पर पड़े रहते हैं, उन्हें ही जाना पड़ता है !"

तंगवल्ली की आंखो के सामने एक वार गहरा अंधेरा कांप उठा। फिर अचानक ही वह हंस उठी। उसने कहा—"तो यह घर तुम्हारा है ? बूआ के घर के टुकड़ों पर तुम पले हो कि मैं ?"

नरसप्पा ने अविचलित स्वर मे उत्तर दिया—"दोनों ! किन्तु तुम स्त्री हो, मैं पुरुष। मेरा अधिकार पहला है। तुम्हारा मैं दूर का मामा हू, किन्तु बूआ का मैं भानजा हूं।"

तंगवल्ली ठठाकर हंस पड़ी। उसने उसी उन्माद मे कहा—"नरसप्पा को नशा नहीं करना था ! और अगर शराब ही पीनी थी, तो पीकर भानजी के सामने नहीं आना था ! समझे ? तुम अपने को उनका भानजा कहते हो, लेकिन बूआ के भी कोई बहिन थी, ऐसा तो कोई नही जानता।"

नरसप्पा पीछे हट गया। उसने घूरकर कहा—"बेटी रानी की यह बात अजीब नही ! उसकी मां ही तो तंजाऊर की थी। तंजाऊर के लोगों को कौन नही जानता ? लेकिन नरसप्पा ने घास खोदकर इतनी उमर नहीं गंवाई है ! समझी ?"

तंगम् क्षुब्ध हो उठी। कितना लोभी है यह युवक और वह अपने आप पर क्षण भर के लिये लज्जित हो गई। इसी का वाह्य रूप देखकर वह इतनी विह्वल हो गई थी, इसके प्रति उसके हृदय में सौहार्द जाग उठा था। एक पल के लिये उसने सोचा था, वे दोनों सदा के लिए बंध जाते।···किन्तु आज ? यह नही हो सकता, क्योंकि सब कुछ होने पर भी आन्डालम्मा की बेटी का मामा मौजूद है। अब समझ मे आया कि भीतर ही भीतर कैसी यंत्रणा भरी कुचक्र की छाया डोल रही थी। ये लोग आज से नही बहुत पहले से भीतर ही भीतर षड्यंत्र रच रहे थे। और आज सब ओर से किलाबन्दी करके वे उसे ही निकालना चाहते है। यह कभी नहीं होगा। इसी से नरसप्पा अब सदा के लिए यहां आना चाहता है। पापी ! अब तंगम् कहां रहेगी ?

भविष्य का अन्धकार उसकी आखों के सामने गाढ़ा हो छा गया। एक-एक कर के समस्त छलना उसके सामने स्पष्ट हो गई। यह जो सुन्दर दीखता है, वास्तव मे भीतर से विषधर से भी अधिक भयानक है। अवरुद्ध क्रोध के कारण तंगम् की आंखों में आंसू छलक आये, जैसे किसी ने उसके अभिमान को मुट्ठी में भर कर मसल दिया हो।

नरसप्पा इस परिवर्त्तन को देखकर बोला—"मेरे टुकड़ों पर पड़ी रहो, तो किसी गरीब से ब्याह करा दूंगा ! नही तो किसी स्कूल में जाकर इज्जत बेचो ! मैं बूआ

का उत्तराधिकारी हूं। समझी? यह देखो।" कहकर नरसप्पा ने जनेऊ में बंधी चाबी से सन्दूक खोलकर एक कागज निकाला, और उसे खोलकर तंगम् की ओर उठा दिया। फिर कहा—"देखा, यह क्या है? यह मृत्युशैया पर पड़े-पड़े मेरी बूआ ने मुझे लिखवाया था। मालूम देता है, यह तुम्हारा ही लिखा हुआ है!"

तंगम् ने देखा। एक जोर का चक्कर आया। सिर पकड़ कर वह वहीं बैठ गई।

कमरे में नरसप्पा का वीभत्स अट्टहास दीवारों से टकरा कर गूंजने लगा। तंगम् अब सचमुच ही नरसप्पा की दया की भिखारिणी थी। वह अट्टहास स्त्री के अधिकारों पर वज्राघात के कठोरवाद की भांति तड़प-तड़प कर फैल रहा था। उस पैशाचिक विजय की कलुषित छाया में नरसप्पा ने देखा, तंगवल्ली मूर्छित पड़ी थी। एक बार उसने गर्व से उसकी ओर देखा और कागज मोड़ कर जेब में रख लिया। एक विषाक्त मुस्कराहट उसके होंठों पर कांप उठी।

['47 से पूर्व]

प्रवासी

बरसात की झड़ी का वेग आसमान से उतरकर फुलवाड़ी में व्याप गया। चार-चार सौ वर्ष पुराने, ऊंचे-ऊंचे पेड़ों के पत्ते धुल गए। संध्या की सुनहरी किरणें उनपर झलमलातीं, और फिर छोटी नदी की सतह पर फिसलने लगतीं।

यौवन के तीसरे पहर में गोपालन आज कुछ देख रहा था। आयु के इस शुष्क रेगिस्तान में उसकी सारी सरलता सूख चुकी थी। अनेक युवतियां आ-आकर पनघट पर पानी भरती रहीं। वे हंसकर बात करतीं, खड़ी-खड़ी अंगड़ाई लेतीं और फिर पर दो-दो, तीन-तीन घड़े रख ठुमकती-लचकती चली जातीं। उनका निखरा हुआ यौवन दरिद्रता में छिप न पाता।

गोपालन को ये स्त्रियां देखने में मोहक लगतीं। ये उसके प्रांत की स्त्रियों से अधिक सुन्दर थीं। किन्तु कभी उसने यह विचार प्रकट नहीं होने दिया। उत्तर भारत में आकर वह सदा अकेला रहा है। उसके मन ने जैसे कहीं भी अपनेपन का अनुभव नहीं किया।

आज इस सुन्दर प्रांत में अकेला पड़ा है। कोई उसका मित्र नहीं है। सब उसे परदेशी के रूप में देखते हैं। और वह स्वयं इस भावना का आदी हो गया है, क्योंकि वह यहां हिन्दी भाषा नहीं जानता।

मन्दिर प्रायः सूना हो गया। यहां उसने केवल भगवान की पूजा की है, पेट भरा है, और मंदिर ही की भांति उसका जीवन भी एक श्रद्धा के भार को वहन करता चला जा रहा है। इस नीरव कोने में जैसे संसार निस्तब्ध हो चुका है, मनुष्य की सारी हलचल समाप्त हो जाती है, और वह बिताए जा रहा है, बिताए जा रहा है ऐसी जिन्दगी, जो मन्दिर के पत्थरों की भांति कठोर है, जिसमें परिवर्तन होता तो हर क्षण है मगर दिखाई कभी नहीं देता।

रात हो गई। आकाश में अगणित तारे छिटक गए। पूजा करके गोपालन सोने चला गया। मठ के स्वामी पहले ही सो गए थे।

आज से दो सौ वर्ष पहले किसी व्यापारी ने यहां किसी दक्षिणी ब्राह्मण को गुरु बनाया था। तभी से शिष्य-परम्परा चली आ रही है। गोपालन यहां पुजारी के रूप में है।

आंख खोलकर देखा आकाश में एक बार जोर से प्रकाश की एक लीक कांपी और अन्धकार में विलीन हो गई। छत पर पड़े-पड़े गोपालन ने एक बार फुलवाड़ी के पेड़ों की ओर देखकर हाथ जोड़े, और आंखें बन्द कर लीं। व्यथा से उसका हृदय भर गया। यह जो एक तारा इस तरह टूटा है, ऐसे ही वह भी एक दिन समाप्त हो जाएगा। आज भी क्या उसका जीवन निरर्थक नहीं ? वह किसीका नहीं, कोई उसका नहीं। जैसे अपनी ही सत्ता में अपनी परिधि की समाप्ति है।

गोपालन के मुख से एक आह निकल गई। इतनी तो बीत चुकी। अब और है ही कितनी ? ऐसे ही वह भी बीत जाएगी। यहां क्या है ? अनेक बार घंटे बजते हैं, अनेक बार पूजा होती है, अनेक बार भगवान के दर्शन करने आकर 'उत्तरदारी' (उत्तर के रहनेवाले) 'महाराज' और 'स्वामी' कह-कहकर लौट जाते है। बात-बात पर दण्डवत् करते हैं, गन्दे रहते हैं, और धर्म-कर्म के विषय में कुछ भी नहीं जानते।

गोपालन मन ही मन हंस उठा। कौन-सा है वह धर्म, जिसके लिए मनुष्य-बलि हो ? कितने अच्छे हैं ये उत्तर के लोग, जो इतना स्नेह देते है ! हमारे यहां तो लोग आपस में ही एक-दूसरे को खाने दौड़ते हैं। आडम्बर ! आडम्बर ! और कुछ नहीं। उंह ! मुझे क्या ? जब तक मानो तभी तक परमात्मा; जब न मानो, तो कुछ नहीं !

वह मुस्कराया। हृदय में एक बार झोंका-सा लगा। दीपक की बत्ती हिलने लगी। वह व्याकुल हो उठा। उसे प्यास लग रही थी; प्यास वह जो अतीत की सारी कड़वाहट लेकर उसके गले में चटकने लगी। सूनापन सघन हो चला। गोपालन ने आंखों को बन्द करके उन पर हाथ रख लिया, जैसे वह बाहर का कुछ भी न देखना चाहता हो।

धीरे-धीरे उसे सारी बातें याद आने लगीं।

युवक गोपालन एक ब्राह्मण का बेटा था। पिता वैदिक आचरण से अपने जीवन के ढाल पर उतरते चले जा रहे थे, जैसे एक दिन गोपालन के पितामह की छाया में वह जीवन के चढ़ाव पर चढ़े थे। उनकी पवित्रता गांव-भर में प्रसिद्ध थी। वृद्ध नयनाचारी प्रातःकाल ही उठ बैठते, और स्नान आदि से निवृत्त होकर बारह तिलक लगाकर पूजा में प्रवृत्त हो जाते। सन्ध्या की झुकती बेला में जब लम्बे-लम्बे ताड़ के पेड़ों के पीछे आसमान लाल हो आता, अद्भुत शिल्प से सज्जित गुम्बदों के पीछे एक मंदिर पर आभा फैल जाती, वह बैठे-बैठे घंटों 'कम्ब रामायण' गाया करते। और रात को जब विशाल मन्दिरों से घंटों और शंखों का नाद गांव में उठता-गिरता गूंजने लगता, तो वह रामायण को महामहिमामयी शक्ति के चरणों पर डालकर अपने-आपको भूल जाते।

गोपालन अपने स्वस्थ और सुदृढ़ शरीर के कारण अपने को बहुत-कुछ समझता। वृद्ध नयनाचारी देखते, और मन ही मन पुत्र के उच्छृंखल यौवन को देखकर मुस्कराते, किन्तु ऊपर से कभी विचलित होते न दीखते। वह उस परम्परा में पले थे, जिसमें पिता पिता ही नहीं एक गुरु भी होता है। उन्होंने ही उसे गुरु-मंत्र दिया था। आज गोपालन को आवश्यक धर्म-कर्म सब ज्ञात थे।

संसार समझता कि गोपालन का आचरण उसकी आयु को देखते हुए अत्यधिक धार्मिक था। किन्तु जब वह मन्दिर की आड़ में अंधेरा होने पर छिपकर खड़ा हो जाता, और गांव में आकर रहनेवाले रिटायर्ड पोस्टमास्टर की पुत्री कोमल को देखता, तो उस समय वेद ब्रह्मा के मुख में लौट जाते, कर्म और धर्म पराजित होकर उसके उठते हुए यौवन के सामने हाहाकार करने लगते। गोपालन मुग्ध हो जाता।

ऐसे ही अनेक दिन बीत गए। गोपालन ने कभी अपने मुंह से कोमल से कुछ नहीं कहा। किन्तु सुन्दरी कोमल जानती थी कि तपे हुए तांबे के वर्ण का यह पुजारी केवल पत्थर के देवता का उपासक नहीं है वरन् उसके भीतर एक हृदय भी है, जिसकी वह एकमात्र अधीश्वरी है। और गोपालन का उदाम जीवन आशाओं को ठोकर मारकर जगाने की चेष्टा करता, जो पीड़ा से एक बार आंखें खोलती, और फिर करवट बदलकर सो जाती।

गोपालन का भाई वरदाचारी आज अनेक वर्षों से प्रवास में था। उसकी पत्नी राजम, जिसकी अवस्था ढल रही थी, अपने अधिकार की मादकता को सतृष्ण उन्माद से अपने हाथ से किसी तरह भी नहीं जाने देना चाहती थी। सब उसकी कर्कशता से परिचित थे। वह जब कभी अवसर मिलता, तो दूसरों के सामने अपने पति के गुणों का बखान करने लगती, और फिर रोती। किन्तु लोगों को शायद ही उसकी कोई बात छू पाती। वरदाचारी एक मस्त आदमी था, जो अपनी पत्नी को अपने योग्य न समझकर उसे छोड़कर कहीं अज्ञातवास कर रहा था। राजम माथे पर कुमकुम लगाती, गले में त्रिमंगल्यम पहनती। उसका सौभाग्य जैसे अक्षय था। यह अज्ञात सुहाग उसके नारी जीवन का एक विराट् षड्यंत्र था। वृद्ध नयनाचारी को जब वह पर्व के दिनों दण्डवत् करती, तो वृद्ध अपने दोनों हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद देता। वह पिता था। वरदाचारी उसका बड़ा बेटा था।···

गोपालन ने करवट बदली। चारों तरफ अंधेरा था। उसने फिर आंखें बंद कर ली। अंधेरा नाचने लगा।

···वरदाचारी जब से घर छोड़कर गया कभी लौटकर नहीं आया।

गोपालन नीचे गांव से ऊपर सात मील चढ़कर तिरुपथीमलय के विशाल श्रीनिवास के मन्दिर में काम करता। राजम घर का काम-काज संभालती। दो खेत पिता के थे और चार खेत राजम के दहेज के थे, जो यद्यपि नयनाचारी ने बेटे के प्रतिदान में मांगे नहीं, किन्तु बेटी का अक्षुण्ण अधिकार बना देने के लिए गर्विता मां ने अपने आप दे दिए थे। गोपालन निरपेक्ष-सा अपना काम किए जाता।

एक दिन घर आकर गोपालन ने देखा, पिता उदास-से बैठे थे। वह कुछ भी नहीं बोला। नहाकर उसने अपनी चोटी निचोड़ी, और खाने को बैठ गया। राजम ने उसकी ओर क्रोध से देखा, और ढेर-सा चावल सामने लाकर केले के पत्ते पर परोस दिया। गोपालन ने देखा, और समझा। वह जता रही थी कि मेरे ही कारण तुम लोगों को खाना मिलता है, नहीं तो तुम लोग कुत्तों की तरह भूखों मरते होते। गोपालन के हृदय में

तीर-सा चुभा। किन्तु फिर भी वह चुपचाप खाकर उठ आया। पिता आज चुप थे। आज उनके मुख से रामायण की एक पंक्ति भी नहीं निकली।

गोपालन लौट चला। धीरे-धीरे फिर सात मील की सीढ़ियां चढ़ने लगा। इधर-उधर अनेक यात्री इस समय पैदल और डोलियों में थके-मांदे उतर रहे थे।

एकाएक गोपालन ठिठक गया। कोमल भी ऊपर चढ़ रही थी।

वह अकेली थी, और ऐसा लगता था जैसे थक गई थी! गोपालन को प्रतीत हुआ, जैसे सचमुच ही राह बहुत लम्बी थी और वह स्वयं नहीं चढ़ सकता था। यात्रीगण 'गोविंदा! गोविंदा!' पुकारते धीरे-धीरे उतरते चले जा रहे थे। गोपालन को लगा, जैसे वह नदी की बहती धारा थी, और ये दो पत्थर ऊपर की तरफ राह करके निकल जाना चाहते थे।

थोड़ी दूर चलकर कोमल थककर एक सीढ़ी पर बैठ गई। गोपालन जब उसके पास पहुंचा, तो कोमल ने उसे पहचाना। मुस्करा उठी। गोपालन ने कहा, "थक गई हो?"

कोमल ने लजाकर उत्तर दिया—"थकेगा कौन नहीं?···लेकिन तुम तो थके हुए नहीं दीखते!"

गोपालन को हर्ष हुआ। वह उस स्त्री के सामने एक पुरुष के रूप में खड़ा था, और इसे वह स्त्री अपने पूर्ण यौवन से स्वीकार कर रही थी। उसने उसकी ओर देखा और देखता रहा। कोमल ने संकोच से आंखें झुका लीं। गोपालन ने देखा, वह सुन्दर थी। आकाश में चांदनी फूट-फूटकर फैल रही थी। सीढ़ी के दोनों ओर पहाड़ के हरे-हरे वृक्ष सन्-मन्-मन् कर रहे थे। और वह सीढ़ी जो सात मील लम्बी थी, जिसकी बिजली की बत्तियां आज चांदनी के कारण नही जली थीं, सांप-सी कहीं करवट लेतीं, कहीं सीधी चलतीं सफेद-सफेद-सी ऐसी लगती थीं, जैसे आकाश-गंगा स्वर्ग से पृथ्वी को मिला रही हो। और सामने साक्षात् मीनाक्षी बैठी थी, जिसका वड्डयण्णम (सोने की पेटी) अपने ऊपर विचित्र नक्काशी लिए उस मनोहर प्रकाश में दमदमा रहा था। गोपालन को क्षण-भर अपनी दरिद्रता का आभास हुआ। ऐसी ही चीजों के लिए राजम मरती थी, अपने पति से नित्य झगड़ती थी, और अन्त में लाचार होकर वह घर छोड़ भाग गया था। कोमल की साड़ी के किनारे की जरी झलमल-झलमल कर गोपालन के मन पर जाल बनकर छा गई और वह विश्रांत-सी उसके सामने बैठी थी। वह देख रहा था मन भरकर जिसे आज तक कोई भी नहीं पाया।

कोमल उठी, और चलने लगी। गोपालन भी साथ-साथ चलने लगा। कोमल ने ही कहा—"तो तुम मन्दिर में अर्चना करते हो?"

"हां! और यही रहता हूं।" गोपालन ने धीरे से उत्तर दिया। फिर उसने रुक-कर पूछा—"आप कहां जा रही है?"

'आप' सुनकर कोमल ने मुड़कर उसकी ओर देखा। गोपालन का दिल न जाने कैसा होने लगा।

"मैं! मैं भी मंदिर की ही ओर जा रही हूं। पिता से मिलना है। उनको अपने होटल से फुर्सत कहां? पहले पोस्टमास्टर थे न! सो सुबह से शाम तक काम में लगे रहने की ऐसी आदत हो गई है कि छोड़े नहीं छूटती। आज वहीं सो जाऊंगी। 'वाहन' भी देख लूंगी। आज किसकी सवारी निकलेगी आयंगार? हनुमान की या गरुड़ की!"

गोपालन ने सोचकर उत्तर दिया—"आज तो शायद गरुड़ की निकलेगी।"

"गरुड़ की!" कोमल ने प्रसन्न होकर कहा—"मुझे बड़ी अच्छी लगती है गरुड़ की सवारी!"

गोपालन को अफसोस हुआ। आज उसीने शृंगार किया होता, तो कम से कम जता तो देता कि वह कितना निपुण था।

कोमल ने पूछा—"कितने बच्चे हैं तुम्हारे?"

गोपालन हंस दिया। बोला—"बच्चे! कैसे बच्चे?"

"क्यों?" कोमल ने आश्चर्य से कहा—"विवाह ही नहीं हुआ क्या?"

"नहीं!"

गोपालन को लगा, जैसे वे एक-दूसरे के और पास आ गए। उसे प्रतीत हुआ, जैसे कोमल ने यह प्रश्न उससे जान-बूझकर किया था।

धीरे-धीरे ऊपर बसे पेशेवर भिखारियों के झोंपड़े दिखाई देने लगे। कोमल फिर एक स्वच्छ शिला पर बैठ गई। इस समय कोढी और रोगी, असली और नकली, सब भीतर घुसकर सो रहे थे। चारों तरफ एकांत था। अद्भुत नीरवता छा रही थी। गोपालन भी खड़ा हो गया।

"बैठ जाओ आयंगार, बैठ जाओ। तुम तो, लगता है जैसे थकना ही नहीं जानते!"

वह बैठ गया। देर तक दोनों बातें करते रहे।

जब वे भगवान् श्रीनिवास के मंदिर के सामने पहुंचे, तो वाद्य-ध्वनि के साथ वाहन निकल रहे थे। कोमल चली गई। गोपालन मन की सारी ममता को दोनों हाथों से छाती पर दाबकर भीड़ की ओर देखता रह गया।

दूसरे दिन गोपालन ने देखा कि कुछ शहर के युवक मन्दिर में दर्शन करने आए हैं, उनमें से एक जरी का कीमती दुपट्टा गले में डाले है, और उसके काले हाथ पर सोने की एक घड़ी बंधी है। उसे पत्थरों पर नंगे पैर चलने में कष्ट होता है। वह अपने साथियों से कह रहा था—"अजीब हालत है! मन्दिर के कारण तो इधर-उधर भी जूता पहनकर पहाड़ पर चलने की आज्ञा नहीं है। प्राचीन काल में वैसा होता था, तो ठीक था। मगर अब ऐसा क्यों?"

गोपालन ने घृणा से नाक सिकोड़ ली। ये लोग थोड़ी-सी अंग्रेजी क्या पढ़ गए, धर्म-कर्म से हाथ ही धो बैठे। महागरिमामय श्रीनिवास इन्हें अवश्य दंड देंगे। और वह अपने काम में लग गया।

दोपहर के समय जब वह मन्दिर से बाहर निकला तो उसके पैर ठिठक गए।

कोमल के पिता उसी पढ़े-लिखे युवक से खूब हंस-हंसकर बातें कर रहे थे। और वह युवक कॉफी पीता, 'इडली' खाता, उन्हें कोई बड़ा दिलचस्प किस्सा सुना रहा था। वह भी होटल के भीतर घुस गया। वृद्ध पोस्टमास्टर उस समय प्रसन्न थे। उनके मुख पर एक चमक कांप रही थी, और स्थूल शरीर फड़क रहा था। गोपालन ने उन्हें नमस्कार किया। वृद्ध ने हाथ उठाकर कहा—"अरे गोपालन, तुम इतने दिन कहां रहे ? इन्हें देखा ? आओ, तुम्हारा इनसे परिचय करा दूं !"

गोपालन ने उस युवक की ओर देखा, और एक आशंका उसके हृदय में उतर गई।

वृद्ध ने फिर कहा—"ये हैं वेंकटरामन ! मद्रास में पढ़ाई समाप्त कर दी है। एम० ए० है, एम० ए० ! अब यहीं तिरुचानूर में रहकर अपनी जमींदारी संभालेंगे। आना विवाह में ! जल्द ही हो जाएगा। मेरी तो सारी चिन्ता मिट गई। कोमल के योग्य तो मुझे कोई दिखता ही नहीं था। अन्त में उसीने इन्हें देखा। भाई, वक्त बदल गया है न ! तभी। भगवान की मर्जी है, वर्ना हमारे समय में क्या यह सब होता था ?"

गोपालन ने सुना। हाथ जोड़े। युवक ने हंसकर सिर हिला दिया, जैसे वह जमाई होने की लाज रख रहा था। गोपालन चला आया।

उस समय ब्रह्मचारी दिन में निकलनेवाले वाहन के चारों ओर चार दलों में खड़े होकर वेद-पाठ कर रहे थे, और नाक के श्वास से एक ही समय बांसुरी बजा रहे थे। जब एक दल ऋग्वेद के कुछ मन्त्र पढ़ चुकता था, तो दूसरा सामवेद प्रारम्भ करता था। और अन्तराल में वेदों का वह गम्भीर घोष गूंजकर, पाषाणों से सहस्रों वर्ष पुराना गौरव टकराकर, आकाश की ओर सहस्र रश्मियां बनकर फूट निकलता था।

गोपालन भीतर अन्धकार में एक विशाल स्तम्भ के सहारे बैठ गया। सिर चक्कर खा रहा था। पैरों के नीचे से धरती खिसक रही थी। हृदय में उन्माद घूंसे मार-मारकर हंस उठता था।

धीरे-धीरे सांझ हो गई। गोपालन फिर भी वहीं पड़ा रहा। वृद्ध ताताचारी अन्त में हाथ में दीपक लेकर उसे ढूंढ़ने निकल पड़ा। नित्य गोपालन दिन में अनेक बार उसके पास जाता, और कहता कि उसके अतिरिक्त मन्दिर में और कोई ऐसा न था जिसके प्रति उसकी श्रद्धा हो। ताताचारी वृद्ध हो गया था उसी मन्दिर की पूजा करते-करते, और उसे गोपालन से पुत्र का-सा स्नेह हो गया था।

वृद्ध की छाती पर जैसे किसी ने प्रहार किया। गोपालन उस नीरव अंधकार में पड़ा हुआ था। वृद्ध ने दीपक रख दिया, और घुटनों के बल बैठकर पुकारा—"गोपालन !"

गोपालन ने आंखें खोल दीं। वृद्ध ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"वत्स ! क्या हुआ है तुझे ? अंधेरे में क्यों पड़ा है ?"

गोपालन ने कुछ नहीं कहा।

वृद्ध ने फिर कहा—"पुत्र, तुझे ऐसी क्या पीड़ा है ? गोविन्द सबका मंगल करते

हैं ! मुझसे कह !"

गोपालन ने नीचे देखते हुए कहा—"स्वामी, मुझसे एक भूल हुई ?"

वृद्ध ने कहा—"क्या ?"

गोपालन ने दबे स्वर से कहा—"मैंने आकाश की ओर हाथ बढ़ाया था ! मैंने सोचा था कि कोमल से विवाह कर सकूंगा। मैं समझता था कि वह मुझसे प्रेम करती है।"

वृद्ध ने कहा—"तूने आकाश की ओर हाथ बढ़ाया, लेकिन यह नहीं देखा कि तेरे पैरों के नीचे जमीन तक नहीं है। पागल ! कोमल से तू विवाह करेगा ? मन्दिर का अर्चक एक पोस्टमास्टर की पुत्री से विवाह करेगा ! घर में तेरे है क्या, वृद्ध नयनाचारी को मालूम है कि उसका बेटा वह काम करने लगा है, जो प्राचीनकाल में राजा किया करते थे ? गोपालन, होश की बात कर, होश की !"

गोपालन ने गरदन झुका ली। उसका गला रुंध गया। वह कुछ भी नहीं कह सका।

वृद्ध कहता गया—"मैं तेरा ब्याह करा दूंगा। विश्वनाथ की कन्या अब चौदह बरस की हो चली है। पिता भी अर्चक है। मुझे आशा है कि वह तुझे अवश्य अपना जमाई बना लेगा। उठ, चल ! बेकार अंधेरे में पड़ा-पड़ा क्या कर रहा है ?"

किन्तु गोपालन नहीं उठा।

वृद्ध देर तक समझाता रहा। किन्तु जब कोई नतीजा नहीं निकला, तो यह बड़-बड़ाता हुआ चला गया।

आधी रात के बाद जब गोपालन बाहर निकला, तो हाथ-पांव टूट रहे थे। चांदनी देखकर लगा, जैसे चारों तरफ आग लग रही हो। पुष्करिणी पर चन्द्रमा की शुभ्र किरणें खेल रही थीं। ऐसे ही दमयन्ती के विरह में नल बैठ रहा होगा। ऐसे ही उसके हृदय में भी आग लग रही होगी।

वह उन्मत्त हो उठा। रात अंगड़ाई ले रही थी। वृद्ध तातानाचारी का उपहास अब भी उसके कानों में गूंज रहा था।

धीरे-धीरे भोर हो गई। ठण्डी-ठण्डी हवा चलने लगी। उसने देखा, कोमल घड़ा लिए पुष्करिणी की ओर आ रही थी। गोपालन को देखकर वह मुस्कराई। फिर उसने कहा—"कहो, आयंगार ! क्या रात सोए नहीं ? तुम्हारा मुंह पीला क्यों पड़ गया है ?"

गोपालन का श्वास भीतर घुट उठा। उसके मुंह से निकला—"तुम्हारा विवाह हो रहा है ?"

"हां-हां ! क्यों ?" उसने हंसकर कहा—"आशीर्वाद दे रहे हो आचारी ? निर-चानूर में ही होगा। कोई दूर तो है नहीं। बस पहाड़ से उतरने की देर है।"—और जैसे मन ही मन वह कल्पना के सुख में मस्त होकर मुस्कराई। फिर एकाएक उसने सिर उठाया। देखा, गोपालन का मुख और भी उतर गया था। लगा, जैसे उसका हृदय असह्य यन्त्रणा से छटपटा रहा हो।

"ओह !" उसके मुंह से निकल गया—"तुमको हुआ क्या है ब्राह्मण ?"

गोपालन गुमसुम खड़ा रहा। कोमल जैसे समझ गई। उसने विद्रूप से कहा—"आओगे विवाह में? वहां कई अर्चक होंगे! आना! खूब दक्षिणा मिलेगी? सच! मैं झूठ नहीं कहती!"

गोपालन के रोम-रोम पर किसीने अंगारे फेर दिए। फिर भी वह प्रतिकार की भावना को प्रोत्साहन नहीं दे सका। अपमान का घूंट उगल न सका। जैसे संसार को उस विष से बचाने के लिए वह उसे पी गया। उसके मुंह से केवल निकला—"आऊंगा, देवी! तुम्हारे सौभाग्य को दृढ़ करने के लिए मैं मंत्र उच्चारण करने आऊंगा!"

कोमल ने स्नेह से उसकी ओर देखा। जैसे उसकी शंका दूर हो चुकी थी।

गोपालन खड़ा नहीं रह सका। वह लौट आया। भीतर आकर एक स्तम्भ के सहारे खड़ा हो गया। लगा, जैसे वह भी पाषाण की एक मूर्ति हो! ···

···शहनाई बजने लगी। उसका तीव्र शब्द, मंगल का सूचक बनकर, कानों में गूंजने लगा। चारों ओर अगरबत्ती की मोहक गंध उठ रही थी। पके हुए केलों की गंध उठती और हवा के साथ कभी मंगल-कलशों पर जाकर थिरकती, कभी द्वार पर बंधे केले और आम के पत्तों को खड़बड़ा देती।

कोमल का विवाह हो रहा था।

गोपालन उदास-सा पास की धर्मशाला में बैठा शहनाई की आवाज सुन रहा था। जैसे यह समस्त वैभव, जो आंखों के सामने चल रहा है, इसमें उसका कुछ भी नहीं है, वह दलित और दयनीय-सा उठाकर किनारे रख दिया गया है कि अमृत की लहरें बहती जाएं, और वह केवल उनका कल-कल शब्द सुनता रहे, बोले कुछ नहीं, छुए कुछ नहीं।

ब्राह्मण वेद-मन्त्रों का उच्चारण कर रहे होंगे। अग्नि में घी पड़ते ही लपटें हर-हराकर किलकिलाती उठती होंगी, और धुएं से कोमल की आंखें लाल पड़ गई होंगी। अनेक युवक-युवती अच्छे कपड़े पहने वहां इकट्ठे होंगे। किन्तु गोपालन तो वहां नहीं जा सकता। वहां जाकर होगा भी क्या?

पीछे से वृद्ध ताताचारी ने कंधे पर हाथ रखकर कहा—"अरे गोपालन! तू अभी यहीं है? चलेगा नहीं? वहां तो अनेक ब्राह्मणों को बुलाया गया है। जो जाएगा, दक्षिणा पाएगा, कोई कम-ज्यादा नहीं। आखिर इस स्थान के वही तो पुराने जमींदार हैं। अब भले ही उतने नहीं रहे। एक समय था जब वही यहां के सबसे बड़े आदमी थे। तू तो तब था भी नहीं। तेरे बाबा इन्हींके यहां अर्चक थे, इनके निजी मन्दिर में। और खाना बनाना तो उन्होंने और मेरे बड़े भाई ने इन्हींके बाबा के यहां सीखा था। चल न!"

गोपालन ने कुछ नहीं कहा। वृद्ध ताताचारी के मुख पर एक बर्बरतापूर्ण हास्य खेल उठा। उसने कहा—"मूर्ख! तू मेरे पुत्र के समान है! क्या बेकार की बातों में पड़ा है? तुझे शर्म नहीं आती कि प्रेम करने चला है?"

गोपालन ने फिर भी मौन रहना ही सबसे अच्छा समझा। जाने क्यों वह बहुत कुछ कहना चाहकर भी कुछ नहीं कह सका।

अनन्त हाहाकार की तरह बाजे की आवाजें उसके कानों में गूंजती रहीं, जैसे उसके

प्राणों पर वज्रों का भयानक प्रहार हो रहा हो। वह दरिद्र था। कोमल एक धनी की पुत्री थी। सोचते-सोचते वह रो पड़ा।

घर पहुंचने पर राजम ने आंखों को कपाल पर चढ़ाकर, हाथ नचाकर कहा—"तुम तो जैसे 'वड़यवर' (रामानुजाचार्य) ही हो, जो तुम्हें कुछ भी चिन्ता नहीं! सभी तो गए थे। कम-से-कम बीस-बीस रुपया हर एक को मिला है। लेकिन तुमने तो जाने की जरूरत ही नहीं समझी!"—वह कहकर चुप हो गई। गोपालन के मुख पर असह्य व्यथा थी। लेकिन वह कुछ भी नहीं समझ सकी। अपार विस्मय में उसने देखा, वह सामने से हट गया। वह मुंह खोले ही खड़ी रह गई। अन्त में उसने कुछ समझने का प्रयत्न किया। मुस्कराई। किन्तु इस योग की असम्भवता पर केवल हंस दी। नहीं, गोपालन कुछ भी हो, इतना मूर्ख नहीं हो सकता। राजम को फिर भी उससे कुछ स्नेह अवश्य था। पति के चले जाने पर वह उससे बात-बात पर चिढ़ती तो थी, किन्तु कुछ अपना अधिकार समझकर ही तो उससे जो चाहे कह जाती थी। खाने के समय भी व्यंग्य कसती, किन्तु कभी उसे भूखा न उठने देती। ऐसा होता, तो रोती, लड़ती और अपनी करके ही रहती। जब कुछ समझ में नहीं आया, तो वह फिर अपने काम में लग गई।

गोपालन की व्यथा बढ़ती ही गई। वह रात को बहुत कम सो पाता। कोमल सामने आकर खड़ी हो जाती। सन्ध्या समय वह देखता, पति-पत्नी घूमने जाते। कोमल का गर्व से उन्नत मस्तक देखकर गोपालन का रहा-सहा धैर्य भी लुप्त हो जाता। मन ही मन वह तर्क करता, मैं क्या किसी से कुछ कम हूं? अरे, अर्चक का बेटा अर्चक ही तो होगा! पहले क्या हमारी कम इज्जत थी? अब जो लोग अंग्रेजी पढ़-पढ़कर धर्म को भूल केवल धन से मनुष्य के महत्व का माप करते हैं, वे ही हमारी उपेक्षा करते हैं। मैं अपना काम करता हूं, खाना-पीता हूं। किसीसे मांगने नहीं जाता। और फिर अमीर-गरीब होना क्या किसी के हाथ की बात है?

और सोचते-सोचते वह बड़बड़ा उठता, बूढ़ा ताताचारी सठिया गया है! कहता है, वेंकटरामन को रसोइए की जरूरत है, जाकर नौकरी कर ले! मैं कोमल की नौकरी करूंगा? मैं उसका सेवक बनकर रहूंगा?—और अपने आप से उसे घृणा हो आती। वह अंधेरे में मुंह छिपा लेता।

···धीरे-धीरे बात आई-गई हो गई। गोपालन का उद्वेग कभी उठता, कभी गिरता। वह बहुत कम बात करता। मन्दिर में ही अधिकांश समय बिताता। कभी-कभी जाकर पिता से मिल आता।

नयनाचारी अवसर पाकर गोपालन के सामने राजम को बुलाकर कहते—"बेटी, तेरे सामने तो यह बच्चा है। वरदाचारी इसे बहुत प्यार करता था। लेकिन ईश्वर की इच्छा! वह तो इसे छोड़ गया, अब तू ही इसकी मां है। क्यों नहीं इसका भी ठिकाना कर देती? मैं तो अब बूढ़ा हुआ। देख जाऊं इसका ठिकाना लगते भी, नहीं तो फिर···।"

गोपालन ऊब जाता। देख जाने की इस तृष्णा में पिता के वात्सल्यपूर्ण हृदय की

कितनी अथाह ममता थी, वह न समझ पाता। वृद्ध कभी अपनी बात के विरुद्ध कुछ भी नहीं सुनते, क्योंकि उन्हें अपनी आयु का गर्व था। वह औरों को अपने सामने बच्चा समझते थे। 'अभी क्या जानें वे? जाने क्या-क्या सोचते हैं! ऋषि-मुनियों ने भी यही तथ्य निकाला है। और इस संसार में है ही क्या?'

राजम इसे तुरन्त स्वीकार कर लेती। यह दिल ही दिल में सोचती, और प्रसन्न होती, 'आएगी एक और। घर भर जाएगा। गृहस्थी बढ़ जाएगी। जीवन की यह नीरसता दूर हो जाएगी और सबसे बड़ी बात यह होगी कि अधिक छोटों के होने पर वह अधिक बड़ी हो जाएगी, और अधिकार जताने को उसको अधिक लोग मिल जाएंगे। और फिर वह काम-काज से मुक्त होकर पूर्णतया स्वामिनी की तरह शासन कर सकेगी।'

किन्तु प्राय: जैसे बात उठती, वैसे ही दब जाती। गोपालन की अरुचि अधिक बढ़ती जाती। और राजम अपने विचार दौड़ाती, किन्तु कहीं अन्त न मिलता। वह हार-कर लड़ने लगती। वृद्ध कहते—"देख मेरी आत्मा भटकेगी!"—किन्तु गोपालन को यह विश्वास न होता कि आत्मा है भी या नहीं। एक दिन तो परमात्मा की सत्ता पर जो पहले अडिग विश्वास था, वह भी डांवाडोल हो गया। उससे डरकर गोपालन ने एक हजार आठ बार गायत्री का महाजप किया। तब कही मन का विकार दूर हुआ।

इतने सब पर भी उदासी दूर न हुई, और जीवन का रेगिस्तान तरल होता न दीखा।

एक दिन गोपालन जब खाने बैठा, तो राजम ने कहा—"कुछ सुना तुमने?"

गोपालन ने पूछा- "क्या!"

"कोमल के बाप की अपने जमाई से खटपट हो गई! बाप ने कहा— "हम एक ही जगह रहते हैं। फिर लड़की यहां चली आया करे, तो क्या हर्ज है?" मगर वेंकटरामन तो अंग्रेजी पढ़ा है। वह क्या बहू के बिना एक भी मिनट रह सकता है? लड़ाई हो गई। कोमल ने बाप को दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका! देखा, आजकल का जमाना? जन्म भर पेट काटकर खिलाया, और यह नतीजा हुआ।" और फिर दो क्षण रुककर राजम ने कहा—"लड़की भी क्या कभी किसीकी हुई है! यह तो पूर्व जन्म का दंड होता है कि खिला-पिलाकर लड़की को बड़ा करो और पैर पूज दूसरे को दान कर दो!"

गोपालन ने राजम की बात की सत्यता स्वीकार की। लड़की फैशन में पड़ गई है। नही तो क्या बाप की अवहेलना करती? किन्तु फिर दिमाग में खयाल आया, पति ही तो विवाह के बाद सब कुछ है। फिर भी व्यक्तिगत विद्वेष ने कोई सामंजस्य स्थापित नहीं होने दिया। गोपालन यह नहीं सुनना चाहता था कि कोमल वेंकटरामन से विवाह करके सुखी थी।

चार महीने बीत गए। गोपालन ने फिर एक बात सुनी। छाती के घावों पर मरहम-सा लगा। विद्वेष की धधकती आग बुझी। कितना निकृष्ट सुख था वह! किन्तु यह वह उस समय अनुभव नहीं कर सका।

कोमल का पति बीमार था। इलाज हो रहा था, किन्तु कोई लाभ होता नहीं

दीखता था। गोपालन की व्यथा फिर भड़क उठी।

अंधेरा हो गया। द्वार पर खटखटाहट सुनकर, कोमल ने आकर द्वार खोल दिया। गोपालन उसे देखकर सकपका गया। उन दिनों कोमल के घर बहुत कम लोग जाते थे। किन्तु गोपालन को देखकर उसने तनिक भी विस्मय नहीं प्रगट किया, जैसे उसे मालूम था कि वह आएगा।

उसने कहा--"कहो, आयंगार? कैसे कष्ट किया?"

गोपालन ने देखा, उसके मुख पर उदासी थी, और वह उद्विग्न-सी लग रही थी, जैसे भविष्य का भूत उसे रह-रहकर डरा देता हो, और वह आनेवाली आपत्तियों को झेलने के लिए तैयार हो रही हो।

गोपालन ने कहा—"कुछ नहीं! हाल पूछने आया था।"

"अब तो वह अच्छे हैं पहले से। डाक्टर कहते हैं कि जल्द ही अच्छे हो जाएंगे!"

गोपालन ने चलते-चलते कहा—"कभी आवश्यकता हो, तो मैं सेवा के लिए प्रस्तुत रहूंगा!"

"जानती हूं! किन्तु विश्वास तो तब होगा, जब तुम प्रत्यक्ष कुछ कर दिखाओगे। समय पर बुलाऊंगी, पीछे तो न हटोगे?"

"नहीं!" गोपालन ने चलते-चलते कहा।

कोमल ने 'नमस्कार!' कहकर द्वार बन्द कर लिया।

गोपालन सोच रहा था चलते-चलते, 'मुझसे वह क्यों कुछ आशा करती है? यह मान करने और रूठने का अधिकार उसे दिया किसने? विश्वास करती है, फिर भी शंका की चाबुक मारकर आहत करने का प्रयत्न करती है!'

कुछ दिन बाद घर-घर मे एक नई अफवाह फैल गई। गोपालन ने सुना। उसे विश्वास नही हुआ। मगर राजम छोड़ने वाली नही थी। उसने उसे देखते ही कहा—"अरे, सुना तुमने? कोमल का आदमी शराब पीने लगा है?"

"शराब!" गोपालन के मुंह से निकला। ऐसा लगा उसे जैसे आसमान फट गया हो, या जमीन खिसक गई हो।

"हां, हां, शराब, विलायती शराब! मैं तो पहले ही जानती थी। अब तो पोस्टमास्टर घमण्ड नही कर सकेगा!" और एक मुक्का सीने पर मारा, जैसे कोई कमाल किया हो, और मुस्कराती हुई गोपालन की ओर देखने लगी।

"क्यों पीता है वह शराब?" गोपलन ने धीरे से कहा—"ब्राह्मण का बेटा! एक पवित्र वंश में उत्पन्न होकर ये चांडालों के-से कर्म! क्या ऐसे ही वह बाप का नाम चला रहा है? पोस्टमास्टर तो कहते थे कि वह पढ़ा-लिखा है!"

"नाम तो तुम भी ऐसे ही चलाते! वह तो कहो कि अंग्रेजी का काला अक्षर तुम्हारे लिए भैंस बराबर है! वैसे भी क्या तुमने कभी बाप की बात मानी है? मैंने कितनी लड़कियां देखीं, लेकिन तुम्हारी टेक तो जैसे पत्थर की लकीर है?"

"गोपालन ने उस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। दो क्षण बाद उसने कहा—

"क्या यह बात सबको मालूम है ?"

"अरे बाप रे !" राजम ने हाथ बजाकर कहा—"मालूम कैसे न होगी ? क्या सब लोग जहर खाकर सो गए हैं ? वह पी-पीकर सड़क की नालियों में गिरता फिरे, और किसीको मालूम न हो !"

गोपालन का चित्त खट्टा हो गया। अतीव घृणा से उसके मुंह में भी एक कड़वाहट-सी फैल गई। यह क्या हुआ ? बेचारी कोमल को कोई सुख बदा नहीं है ?

बाहर आकर सुना, बात सचमुच फैल गई थी। ब्राह्मण समाज ने एक मत से उसका बहिष्कार करने का निश्चय किया था। फिर भी किसीको एकदम आगे बढ़ने का साहस नहीं होता था। वेंकटरामन को सब लोग धनी जो समझते थे। गोपालन विक्षुब्ध हो उठा।

करीब चार महीने और बीत गए। गोपालन के हृदय में एक तूफान सदा हाहाकार करता। ऊपर से देखने में वह पहाड़ की तरह गम्भीर और शान्त दिखाई देता।

एक दिन शाम को जब वह पहाड़ से उतरने लगा, तो ताताचारी ने रास्ते में उसे रोककर कहा—"वेंकटरामन मर गया। पोस्टमास्टर की बेटी विधवा हो गई।"

गोपालन हतबुद्धि-सा खड़ा रह गया। वृद्ध ताताचारी ने कोमल के प्रति उसके स्नेह को जानकर घृणा से मुंह फेर लिया। निस्सहाय कोमल के अंधकारमय भविष्य की बात सोचकर गोपालन का हृदय कांप उठा।

इसके बाद कुछ दिन चुपचाप बीत गए। फिर एक दिन गोपालन चौंक उठा। सामने एक लड़का खड़ा था। उसने लड़के की ओर बिना देखे ही पूछा—"कौन है तू ? कहां से आया है ?"

लड़का उसकी ओर निस्संकोच आंखों से देखकर बोला—"कोमलम्मा ने भेजा है।"

गोपालन जानकर भी अनजान बन गया। उसने अपरिचित की भांति सिर उठा कर पूछा—"क्या बात है ? कहता क्यों नहीं ? बेकार क्यों खड़ा है ?"

"उन्होंने आपको बुलाया है !" लड़के ने कहकर जीभ काट ली।

गोपालन हंस दिया। उसने कहा—"बुलाया है ! क्यों ? कह दो जाकर, गोपालन उसका नौकर नहीं है ! समझे ? जा, चला जा यहां से।"

लड़के की जीभ तालू से सट गई। वह कहना चाहकर भी और कुछ नहीं कह सका। इधर-उधर देखकर चला गया।

गोपालन का हृदय उन्मादजनित संतोष से भर गया। सोचने लगा वह, 'आज जब कोई साथी नहीं है, तब गोपालन की याद आई है ! किन्तु मैं तो एक दरिद्र अर्चक हूं ! वह तो धनी घर में पली है। रुपया पानी की तरह बहा सकती है। वह क्यों मेरी प्रतीक्षा कर रही है ?'—और उसको शांति-सी अनुभव हुई, 'आज वह विधवा है। आज वह किसी काम की नहीं है। आज समाज में उसका कोई स्थान नहीं है। दो दिन बाद पुष्करिणी में नहाकर गले में गीला आंचल डालकर आएगी, तब देखूंगा उसका

गर्व ! जब ब्राह्मण अपने हाथों से उसके गले का तिरमंगल्यम तोड़कर फेंक देंगे। जब उसका यौवन सिर धुन-धुनकर सुहाग के लिए तड़पेगा, तब देखूंगा उसकी शेखी! '—वह पागलों की तरह हंस उठा। और स्वयं वह ? उसके होंठों पर घृणा की हंसी सर्पिणी की तरह तड़प उठी—'क्या है गोपालन ? कुछ नहीं ! निरी मिट्टी ! '

इस द्वन्द्व ने उसे पराजित कर दिया। वह छत की ओर देखकर एक बार मन ही मन कांप उठा।

सहसा पगचाप सुनकर सिर मोड़ा। देखा, तो विश्वास नहीं हुआ। सामने वज्राहत-सी कोमल खड़ी थी। वह आज भी सिर में तेल डाले थी। माथे पर कुंकुम लगा था, हाथों में चूड़ियां थीं। पूरी सुहागिन बनी थी आज भी। किन्तु आज वह एक प्रेत के लिए अपने-आपको सजाए हुई थी, क्योंकि ग्यारहवें दिन ही धर्म के अनुसार वह अपना यह स्वरूप त्याग सकेगी।

गोपालन को लगा कि कोमल का सारा शृंगार ऐसा था, जैसे स्वर्ण चिता लपटें उछाल-उछालकर धधक रही हो। उसकी छाती धक से रह गई। उसने देखा, और देखता ही रह गया।

कोमल ने कहा—"आयंगार, मैंने तुम्हें बुलाया था। जानते हो क्यों ?"

"नहीं !" उसने कहा—"किन्तु सोचता अवश्य हूं ?"

"क्या ?" उसने निर्भीकता से पूछा।

"यही कि तुम एक जमींदार की पत्नी, और···"

"पत्नी नहीं, आयंगार," कोमल ने बात काटकर कहा—"विधवा कहो, एक मृत जमींदार की विधवा !"—और वह हंस दी।

गोपालन के शरीर में वह हंसी ज्वाला बनकर फैल गई। उसने नितांत कठोरता से कहा—"विधवा ही सही, किन्तु तुम्हारे स्वामी मरकर भी जमीन तो अपने साथ ले नहीं गए। उसकी तो तुम्ही स्वामिनी हो। धन तो तुम्हारे पास है ही। तभी तुम्हें आज्ञा देना आता है ! इसीसे बुलवाया था न ? मुझ जैसे ब्राह्मण खरीद लेना क्या तुम्हारे लिए कठिन है ?"

कोमल मुस्कराई और बोली—"नहीं आयंगार, यह गलत है ! यदि मैं अपने को घर के भीतर रखने का प्रयत्न न करती, तो संसार मेरी ओर उंगली उठाकर कहता कि देखो, मरने का आसरा देख रही थी। उसके जाते ही इसका रास्ता खुल गया।"

गोपालन ने सुना। पर वह कुछ नहीं समझ सका। वह चुप खड़ा रहा। कोमल ने फिर कहा—"जानते हो, मैं तुम्हारे पास क्यों आई हूं ?"

"नहीं ?" उसका स्वर गूंज उठा ! अब भी जैसे उसे उससे कोई संवेदना नहीं थी।

कोमल कहती गई—"जानते हो, मेरे स्वामी शराब पीने लग गए थे ?"

"जानता हूं। वह पापी था !" गर्व से उसने सिर उठाकर कहा।

"हूं !" कोमल हंस दी—"पापी कौन है, यह तो ईश्वर ही जानता है। मैं तो

केवल यह जानती हूं कि वह मेरे स्वामी थे !"

गोपालन ने सिर उठाया। देखा, वह तनिक भी लज्जित नहीं थी, जैसे चिता की राख कभी भी लज्जित नहीं होती, चाहे उसपर कुत्ते चलते रहें या गीदड़ !

"स्वामी !" गोपालन के मुंह से निकला—"तो वह शराब क्यों पीता था ?"

"डाक्टर ने कहा था कि दवा के रूप में पियो। किन्तु वह भी आदमी ही थे, आदत पड़ गई। बहुत पीने लगे। स्वास्थ्य गिर गया, किन्तु छोड़ नहीं सके। दोष तो मेरे सुहाग का है, उनका नहीं ! आखिर गलती आदमी से ही तो होती है !"

गोपालन ऊब गया। उसने पूछा—"तो तुम मुझसे क्या चाहती हो ?"

"पिताजी की उनसे लड़ाई थी, यह भी तुम शायद जानते हो और मैं पिता के घर नहीं जाती, यह भी तुम्हें शायद मालूम है। मालूम है न ?"

गोपालन ने सिर हिला दिया।

"आज उनकी मौत पर मेरे पिता ने हर्ष मनाया है ! सारा समाज उनकी ओर है, क्योंकि उनके पास पैसा है !"

"पैसा तो तुम्हारे पास भी है !" गोपालन ने व्यंग्य से कहा।

"कहां ! जब था, तब था ! अब तो नहीं है !"

"क्यों ? सब क्या हो गया ?"

शराब मुफ्त तो मिलती नहीं ?" और वह फिर हंसी। गोपालन अचरज-भरी आंखों से देखता रहा।

वह फिर बोली—"तुम्हारे धर्म में पिता पुत्री का शत्रु होकर भी धार्मिक ही रहता है ! लेकिन मैं भी सिर नहीं झुकाऊंगी ! देखते हो, जो गहने पहने हूं ! बेच दूंगी इन्हें। पति का क्रिया-कर्म तो करना ही होगा। नहीं मानती न सही; नहीं जानती, न सही ! किन्तु मनुष्य मरकर प्रेत नहीं होता यह भी तो नहीं जानती ! पुरखे जो कुछ करते आए हैं, उसे कर देना भी तो जरूरी है, आयंगार ! और फिर एक जमींदार का क्रिया-कर्म भी तो उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल और अनुरूप ही होना चाहिए न !"—वह रुक गई जैसे श्वास लेने के लिए।

"तो तुम तैयार हो ?" दो क्षण निस्तब्ध करने के बाद उसने कहा—"ब्राह्मण आते नहीं। मैं तो कहीं आ-जा नहीं सकती। तुम अपने ऊपर क्रिया-कर्म करा देने की जिम्मेदारी लेते हो ?"

गोपालन चुप रहा।

"नहीं होता साहस ?" उसने पूछा—"यदि तुम्हारा धर्म एक बात आवश्यक करके उसका साधन केवल रिश्वत के बल पर दिला सकता है, तो मैं कुछ नहीं कहती ! क्रिया-कर्म न होगा, तो न हो ! तब मेरा सुहाग भी समाप्त न होगा। जब तक वह प्रेत हैं, तब तक मैं विधवा नहीं हूं। मैं ऐसे ही शृंगार करती रहूंगी। तब एक दिन लाचार होकर तुम ब्राह्मणों को शायद मेरी हत्या करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जाएगा !"

गोपालन के हृदय को जैसे किसीने जोर से नोच लिया, 'प्रेत की पत्नी ! कौन कोमल ! नहीं, नहीं, यह अत्याचार नहीं हो सकता !' उसने सिर उठाकर दृढ़ स्वर में कहा---"जाओ, लौट जाओ ! मैं आऊंगा तुम्हारे सुहाग का अन्त करने ! जिस धर्म ने ब्राह्मण को सब कुछ बनाया है, उसीने ब्राह्मण का सबसे बड़ा अपराध धर्म के काम न आना भी कहा है ! तुम्हारा पति पापी था। मैं उसकी आत्मा को न केवल प्रेतयोनि से छुड़ाऊंगा, बल्कि उसे पवित्र भी करूंगा। युग-युग के अंधकार में वह नही भटकेगा। उसकी प्यास बुझेगी, उसकी भूख मिटेगी। और तुम्हारे सौभाग्य का कुंकुम मिटाकर मैं तुम्हें भी पवित्र कर दूंगा। तुम्हारी यातना को मैं मन्त्रों से केवल समाप्त ही नहीं करूंगा वरन एकादश के दिन स्वय प्रेत का यमभोज करूंगा, और वह सीधा स्वर्ग चला जाएगा !"-- कहकर गोपालन ने उसकी ओर इस तरह देखा, जैसे आशा कर रहा हो कि वह कृतज्ञता से नतमस्तक हो जाएगी, क्योंकि, एकादश का यमभोज अग्नि की भेंट किया जाता है, और परम्परा का विश्वास है कि पवित्र वैदिक रीति से चलनेवाला ब्राह्मण उसे खाकर अधिक दिन जीवित नही रहता।

किन्तु कोमल अप्रभावित-सी खड़ी थी। उसने सिर हिलाकर कहा—"वह सब तो नहीं होगा आयंगार ! जो खाली हो गया है, वह तो कभी भी नही भर सकेगा। हां, क्रिया-कर्म अवश्य हो जाएगा। मैं कृतज्ञ होऊंगी !"

गोपालन किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया। वह क्या कहे ?

तभी कोमल ने मुड़कर कहा—"तो, आयंगार, कल नवां दिन है। कल ही से काम प्रारम्भ होगा।"

"तुम निश्चित रहो ?" गोपालन ने उत्तर दिया।

कोमल झुकी और प्रणाम किया। उसकी आंखों से दो बूंद आंसू पृथ्वी पर टपक पड़े। उसने कहा "जाती तो हूं ! ···यह मैं जानती हूं कि मेरे आने के पहले तुम मुझसे क्रुद्ध थे। अब तो नहीं हो ?"

"नहीं !" गोपालन ने निर्विकार होकर कहा।

"तुम पूरे पत्थर हो ! तुम्हारा हृदय शायद मेरे अत्याचारों के कारण अब बिलकुल निर्जीव-सा हो गया है ?"

"नहीं !" गोपालन ने कहकर मुंह फेर लिया। फिर उसने एक क्षण रुककर कहा--"यह गर्व लेकर न जाना कि तुमने मुझे मूर्ख बना दिया है। जो कुछ मैं कर रहा हूं, वह केवल इसलिए कर रहा हूं कि ब्राह्मण होने के कारण लाचार हूं ! मैं तुमपर कोई भी एहसान नही कर रहा हूं ! और न मैं तुम्हें प्यार करता हूं।"

कोमल हंस दी। उसके होंठों पर एक तरलता सिहर उठी। उसने स्नेह-भरे स्वर में कहा—"बालक !"

जब वह चली गई, तो गोपालन काम में लग गया।

दूसरे ही दिन धूमधाम से क्रिया-कर्म प्रारम्भ हो गया। पहले जो ब्राह्मण हिचक रहे थे, अब वे अपने-आप आने लगे। गोपालन ने अपने हाथ से कोमल के गहने बेचकर

उसके सामने रुपये रख दिए। काम चल निकला। प्रारम्भ के सारे विघ्न राह से हट गए।

इन सबसे जो सबसे अधिक क्रुद्ध हुई, वह राजम थी। उसने पूछा—"क्यों, काफी मिलेगा?"

गोपालन ने उपेक्षा के भाव से कहा—"मौत का काम है, शादी का नहीं कि जिद करूंगा! जमींदार की विधवा जो दे देगी, ले लूंगा।"

"ओ हो! अब तो पूरे धर्मात्मा बन गए! यहां मुफ्त भरपेट खिलाती हूं न बाप-बेटे को, इसीसे दिमाग आसमान पर चढ़ा जा रहा है! अगर सौ रुपये लाकर मुझे न देना हो, तो यहां मुंह मत दिखाना! हयादार होगे, तो आप ही यहां लौटकर न आओगे! भली कही! रोज बड़े आदमी मरते हैं, न कि उनका भी काम मुफ्त किया जाए! देने को पैसे न हों, तो मान भी लिया जाए। जमीन तो छाती पर बांधकर ले नहीं गया! अभी बहुत है। फिर अभी से क्यों फटी जा रही है उसकी छाती? मरे का परलोक सुधारने में भी पैसा खर्च न करेगी! कंजूस कहीं की!"

"भाभी!" पहली बार गोपालन ने कठोर प्रतिकार किया—"मैं कुत्ता नहीं हूं! समझी?"

"तो मैं भी गाय नहीं हूं! समझे? बैल भी जब हल चलाते हैं तब खाने को पाते हैं। और यहां बाप और बेटे दोनों की जुगाली सुनते-सुनते मेरे तो कान पक गए! मैं तो कहे देती हूं···"

गोपालन से अधिक नहीं सुना गया। चिल्ला उठा—"भाभी! तेरा पाई-पाई चुका दूंगा! जब तूने खिलाया था तब मैं छोटा था, नहीं तो कभी वह जहर न खाता! पिता वृद्ध हैं। तू जो अपना सुहाग लिए फिरती है, सो अपने पति को तूने नहीं खिलाया था। इस बूढ़े ने ही अपनी हड्डी निचोड़कर उसे खिलाया-पिलाया था! समझी?"

राजम अवाक् देखती रह गई। गोपालन के चले जाने पर, उसने वृद्ध नयनाचारी को जा घेरा। कहा—"देवर वेंकटरामन के एकाह (एकादश) में बैठने वाले हैं!"

"सो तो उसे करना ही चाहिए! ब्राह्मण का बेटा है न!" वृद्ध ने कहा। उनकी वाणी हमेशा नम्र रहती।

"और पैसा कुछ भी नहीं मिलेगा!" राजम ने उकसाया।

"न सही!" वृद्ध ने प्रसन्न होकर कहा—"किन्तु धर्म का काम तो करना ही होगा। यदि पैसे के बल पर ही क्रिया-कर्म हो, तो मुझ जैसे गरीब का तो कभी न हो सकेगा!"

राजम लाचार हो गई। वृद्ध के पीछे ही वह बड़बडाती थी, सामने कुछ कहने का साहस नहीं होता था। उसने अंतिम बाण मारा—"देवर ब्रह्मचारी है। क्या उसका एकाह में बैठना उचित होगा? यदि वह भी नहीं रहेगा तो फिर वंश कैसे चलेगा? कौन देगा हम सबको पानी?"

वृद्ध चौंक उठा। उसने सोचकर कहा—"तो उस मूर्ख से किसने कहा कि वह एकाह में भोजन करे? किसने कहा उससे? बाप के रहते बेटा बैठ जाए, ऐसा तो कभी नहीं सुना! मैं बैठूंगा! घबरा मत! तेरे देवर का बाल भी बांका न होगा! न जाने मुझे कौन कहता था कि अब समय आ गया! सचमुच समय आ गया!"—और वृद्ध गम्भीर हो गया।

दिन बीत गया। सांझ बीत गई। रात हो गई। वृद्ध वैसे ही चिंता में मग्न-सा बैठा रहा, जैसे अपने लम्बे रास्ते को मुड़कर देख रहा हो, और अपने पिछले प्रत्येक कर्म को याद कर रहा हो, जैसे उसे उन पुराने पथों से मोह हो गया हो जो अब उसे सदा के लिए छोड़ देने होंगे। वह नहीं रहेगा, नहीं रहेगा, और दुनिया फिर भी चलती जाएगी, चलती जाएगी। किन्तु फिर भी उसे दुःख नहीं था, डर नहीं था। जैसे जीवन को उसने स्वीकार किया था, वैसे ही मृत्यु को भी वह चुपचाप स्वीकार कर लेगा। सारा जीवन एक खेल-सा लग रहा था। कल तक सबके केन्द्र वही थे, और कल जब वह नहीं रहेंगे, तो बेटा छाती पर पत्थर रखकर रो लेगा। और क्या करेगा बेचारा? सदा के लिए सब काम तो रुकेंगे नहीं। किन्तु इसके लिए क्या दुःख? यह परम्परा तो ऐसी ही चलती जाएगी। पिता पुत्र का संसार बनाए, और पुत्र पिता का परलोक बनाए। इसी-लिए तो इतने स्नेह, इतनी भक्ति की सृष्टि हुई है।···एकांत में बैठना होगा। ब्राह्मण होकर केवल धन के लिए मरे, तो वह कुत्ते से भी बदतर! आज ब्राह्मण जो लोलुपता दिखा रहे हैं, इसी कारण तो उनका मान नहीं रहा। अब बड्डन (भंगी) भी राहों पर आते समय आवाज देकर हट नहीं जाते। फिर मन में विचार आया—'क्या वे मनुष्य नहीं हैं? क्या अब उनकी छाया लगने से भगवान अस्पृश्य हो जाएंगे? नहीं!'—मृत्यु की महान् ममता के उच्च आदर्श के प्रकाश में वृद्ध ने उस जड़वाद को दुतकार दिया।

कल गोपालन याद करेगा कि वृद्ध यहां बैठता था, यहां पूजा करता था। और बैठकर घंटों सोचेगा, घबराएगा। किन्तु होते-होते सब ठीक हो जाएगा। समय अपने आप ठीक कर लेगा। वृद्ध का हृदय अतीव स्नेह से एक बार विह्वल हो गया। मृत्यु आकर सब कुछ समाप्त कर देगी। और पागल बेटा उस मिट्टी को चिता पर रखते समय रोएगा।

मृत्यु! वृद्ध के मुंह से वेद के महामृत्युंजय मन्त्र के शब्द फूट निकले—'त्र्यम्बकं···' जैसे आज वह अनेक शक्तियों से पूर्ण महारुद्र त्र्यंबक का यम को क्षणभर रोकने के लिए आवाहन कर रहा हो।

और जो कुछ अभी तक हुआ है, कल ऐसे लगने लगेगा जैसे कभी नहीं हुआ। राख को बहाकर जब पुत्र लौटेगा, तब संसार में नयनाचारी नाम का कोई चिह्न तक नहीं रहेगा। आज तक जिस सबको अपना समझा था, वह सब पराया हो जाएगा। सब पीछे छूट जाएगा, सब रह जाएगा। किन्तु केवल वही नहीं रहेगा—कल मैं ही एकाह में बैठूंगा! और वृद्ध वैसे ही बैठा रहा। जैसे आज जीवन मृत्यु का महान आवाहन कर

रहा हो !

राजम स्तंभित-सी, डरी-सी सोच-विचार में पड़ गई—यह बूढ़ा क्या करने वाला है ? क्या सचमुच वह जाकर एकाह में बैठ जाएगा ? एकाह का भोजन वे अग्नि की भेंट क्यों नहीं कर देते ? किन्तु उनकी बला से ! जब एक मूर्ख ब्राह्मण मिल रहा है, तो अग्नि में क्यों डालें ? और दक्षिणा के नाम पर दिखा देंगे सीग ! कुछ नहीं ! कौन देता है मिधाई से ?—और वृद्ध नयनाचारी और गोपालन के प्रति उसके मन में ममता जाग उठी—कुछ भी हो, अपने तो ये ही हैं ! ईश्वर की इच्छा ! जो होना होगा, वह तो होगा ही ।

एकाएक वह ब्राह्मण जाति को मन ही मन तिरस्कार से गाली दे बैठी। किन्तु फिर ध्यान आया कि यह ब्राह्मण की ही महिमा थी कि वे जान गए —मरने पर आदमी प्रेत होता है, और···वह डर गई, और प्रायश्चित्त के रूप में भगवान के समक्ष सिर झुकाकर हाथ जोड़ दिए ।

···यह चुपचाप देखती, गोपालन व्यस्त रहता । ब्राह्मणों को कोमल उसीकी राय लेकर दक्षिणा देती । सब काम वही करता । कोई-कोई स्त्री उसकी ओर संदेहपूर्ण दृष्टि से देखती कि इसे इस सबमें इतनी दिलचस्पी क्यों है । किन्तु वह शोक का काम था इसलिए उसकी चर्चा चल न पाती, वर्ना वहां कोई ऐसा न था, जो कोमल और गोपालन के सम्बन्ध के अनौचित्य की सम्भवता पर विचार करना पसन्द न करता हो ।

उन दोनों के सम्बन्ध के विषय में सन्देह लोगों को बहुत पहले से ही था । अब सन्देह सत्य-सा लगने लगा ।

राजम को क्रोध आया —'तभी सब काम मुफ्त किए जा रहे हैं । रांड से लगाव जो हो गया है ! देखो तो, ऊपर से कैसा चिकना बादाम लगता था ! मगर अन्दर की किसे खबर थी ?'

ग्यारहवां दिन अपनी पूरी भयंकरता के साथ सिर पर आ गया । जब कोमल को देखकर स्त्रियां इधर-उधर से आ-आकर छाती पीट-पीटकर रोने लगीं तब वाद्यार (पुरोहित) ने अग्नि में आहुति दी । खाना केले के पत्ते पर परोस दिया गया। कोमल चुप खड़ी रही । उसकी आंखों में एक भी बूंद आंसू नहीं था, बल्कि एक गर्व था कि देखो, किसीके किए कुछ न हुआ, क्रिया-कर्म हुआ और हो रहा है ।

वाद्यार और अनेक ब्राह्मणों ने मन्त्र पढ़ने शुरू किए । 'प्रेत' शब्द साक्षात कराल प्रेत बनकर आग से उठते धुएं को झकझोर गया । वाद्यार ने एकाएक पूछा—"एकाह में कौन-कौन बैठेगा ?"

ब्राह्मण एक-दूसरे का मुंह देखने लगे । किसीको नहीं मालूम था कि दक्षिणा क्या मिलेगी । व्यर्थ कौन मौत सिर पर मोल लेता ? शठकोपन ने बैठे-बैठे ही कहा—"अग्नि को होम करो बृहस्पति !"

"नहीं !" गोपालन ने आगे बढ़कर कहा—"मैं बैठूंगा !"

सबने अचरज से उसकी ओर देखा । वाद्यार रुककर बोला—"तुम्हारा नाम ?"

उसी समय गोपालन ने विस्मय से देखा, एक वृद्ध ने पीछे से कहा—"नयना-चारी!"

वाद्यार ने पूछा—"पिता का नाम?"

"विजयराघवाचारी!" उसके मुख पर एक मुस्कराहट फैल गई।

गोपालन चिल्ला उठा—"पिताजी, यह तुमने क्या किया?"

वाद्यार तब तक नयनाचारी पर यम का आवाहन कर चुका था। गोपालन का हृदय भर आया। वह बोला, "किंतु, पिताजी, तुम मर जाओगे! क्या तुम नहीं जानते कि पवित्र आचरण रखनेवाला ब्राह्मण इसके बाद अधिक दिन तक नहीं जीवित रहता?"

वृद्ध ने मुस्कराकर कहा—"श्रीनिवासन ने स्वप्न में जो कह दिया है, वह क्या झूठ होगा? जा, राजम तेरा विवाह कर देगी। इसके बाद मुझे पितृ-ऋण से मुक्त कर देना।"

किन्तु गोपालन नहीं हटा। वृद्ध ने धक्का देकर उसे हटा दिया, और खाने बैठ गया।

वाद्यार मन्त्र पढ़ता रहा। कभी-कभी अन्य ब्राह्मण भी स्वर में स्वर मिलाते। उनके गम्भीर शब्द से अग्नि थरथराने लगी, धुआं चारों ओर फैल गया, और प्रेत की अनन्त यात्रा सजीव होकर आंखों के सामने नाच गई।

जब वृद्ध खाकर उठा, तो वह मुस्करा रहा था। वाद्यार ने दक्षिणा देने को जब हाथ उठाया, तो वृद्ध ने अंजली लेकर सब ब्राह्मणों को बांटने का इशारा किया। प्रेतत्व धन पर हट गया। पच्चीस रुपये ब्राह्मणों में बंट गए।

वृद्ध चला गया। क्रिया-कर्म सम्पन्न हो गया। घर-घर नयनाचारी की तारीफ होने लगी! किन्तु राजम ने गोपालन और कोमल की बदनामी करनी शुरू कर दी।

वृद्ध घर पहुंचते ही शैया पर जा लेटा, और जाने क्यों इतना अशक्त हो गया कि उठ नहीं सका। तीसरे दिन जब राजम-गोपालन घर पर नहीं थे, हाथ-पैर फेंककर वह अपने विश्वासों पर बलि हो गया, मर गया।

घर आकर राजम और गोपालन ने देखा, और रो-धोकर उसका दाह कर दिया। किंतु क्रिया-कर्म के लिए रुपये नहीं थे।

गोपालन कोमल के सामने उपस्थित हुआ।

"सुना आयंगार! बहुत दुःख हुआ!" कोमल ने कहा—"तुम्हारे पिता मनुष्य नहीं देवता थे!" और बिना मांगे ही सौ रुपये निकालकर दे दिए।

गोपालन रो दिया।

कोमल ने कहा—"आयंगार, एक बात कहूं? बुरा तो नहीं मानोगे?"

"नहीं।" गोपालन ने उसकी ओर देखते हुए कहा।

"जानते हो, दुनिया हमें बदनाम कर रही है?"

"मालूम है!" गोपालन ने छोटा-सा उत्तर दिया।

"डरते तो नहीं?" उसने फिर पूछा।

"नही ! डरूं क्यों ? क्या हममें अनुचित सम्बन्ध है !"

"अनुचित सम्बन्ध तो है, आयंगार ! उसे तुम यों नहीं मिटा सकते !" कोमल ने उसके चेहरे पर आंखें गड़ाकर कहा।

"क्या कह रही हो ?" गोपालन का स्वर कांप गया।

"क्यों ?" कोमल ने कहा—"सम्बन्ध क्या शारीरिक होने से ही अनुचित होता है, मानसिक होने से नहीं ?"

"वह तो केवल धारणामात्र होती है," उसने सकपकाकर कहा।

कोमल हंस पड़ी। उसने सिर हिलाकर कहा—"तो तुम्हा प्रेम, उन्माद, पागलपन, सब केवल एक साधारण धारणा थी, जो आई और चली गई ? फिर जान देने पर क्यों तुले थे ?"

गोपालन लजा गया। कोमल ने ही फिर कहा—"हम बदनाम तो हो ही गए ! अब और किसी पर तो मैं विश्वास नहीं कर सकती। तुम्हारा ही भरोसा है। तुम्हीं जमींदारी का काम संभालो। जानते हो, मैं औरत हूं। सब काम अकेले नहीं कर सकती।"

गोपालन चुप रहा। अर्थात उसने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

राजम को चैन न आना था, न आया। पहले गोपालन रोटियों के लिए उसका मुहताज था, पर अब नहीं रहा। जमींदारी का इन्तजाम करना, और बड़ी खूबी से करता। सारा रुपया कोमल को दे देता। वह जो देती, ले लेता। बात पलट गई। पहले वह रोटियों को तरसता था, अब वह राजम को उल्टे रुपया देता। पहले राजम के दस काम करता था, अब राजम अकेली पड़ गई। इसी से जब कोई अधिकार जताने और लड़ने को नहीं रहा, तो वह व्याकुल हो उठी। सुहागिन वह अब भी थी, किंतु कुंकुम लगाकर क्या पत्थरों पर सिर पटकती ? वृद्ध जहां-जहां बैठता था, वहां-वहां उसे बैठकर एक विश्रांत की सान्त्वना-सी मिलती है। वृद्ध की मृत्यु का एकमात्र कारण गोपालन को समझकर वह और भी उसके विरुद्ध हो गई। ढल चली थी, मगर अभी बूढ़ी तो नहीं हुई थी। धीरे-धीरे उसको इस बात से सन्तोष होने लगा कि कोमल और गोपालन के सम्बन्ध की बात घर-घर चल रही थी। सब उस पाप को रोकना चाहते थे, किंतु कोई सिलसिले का छोर हाथ में नहीं आता था कि पकड़कर खींच लें, और सारा पर्दा सर्र से खुल जाए।

कोमल ने गोपालन को देखा, और चिन्तित स्वर में बोल उठी—"सुना आयंगार ? अब तो रहना भी कठिन होता जा रहा है ! ऐसे कब तक चलेगा ?"

गोपालन ने पानों पर चूना लगाते हुए कहा—"तुममें तो साहस था न ? फिर डरती क्यों हो ?"—कहते हुए उसने सुपारी मुंह में डालकर आठों पानों को मुंह में भर लिया, और चबाने लगा।

कोमल कुछ देर तक चुप खड़ी रही। फिर बोल उठी—"डरती हूं ! सच, आयंगार, मैं अपने मन में डरती हूं।"—वह हठात् चली गई।

गोपालन के हृदय में एक कील-सी चुभ गई।

सांझ बीत गई। दीपक जलने लगे। उनके धूमिल प्रकाश में गोपालन ने देखा,

कोमल चुपचाप खड़ी थी ! वह उसके पास चला गया ।

कोमल उसे देखकर सिहर उठी । कुछ देर चुप रहकर उसने कहा—"मैंने तुम्हें बहुत दुःख दिया है ! क्यों ?"

गोपालन ने सिर हिलाकर अस्वीकार किया । फिर मुंह खोला और बन्द कर लिया ।

"कुछ कहना चाहते थे ? कहते क्यों नहीं ? मैं क्या तुमसे कुछ कहती हूं ? तुम्हारी ही दया से तो सब काम ठीक तरह चल रहे हैं !" कहने को तो कह गई पर फिर नीचे का होंठ दांत से काट लिया ।

गोपालन ने वह सब नहीं देखा । वह बोला—"दया तो तुम्हारी है, कोमलम्मा, तुम्हारे पास रहकर मुझे जितना सुख मिलता है उतना और कहीं भी नहीं मिलता ।"

"क्यों ?" उसने उसे और उकसाया ।

"तुम मुझे बड़ी अच्छी लगती हो !" गोपालन ने कहा—"सच, बहुत अच्छी लगती हो !"

देखा, वैधव्य में भी वह वैसी ही सुन्दर थी, और उसकी मादकता अब भी धीरे-धीरे उस पर रेंग रही थी । गोपालन का हृदय आतुर हो उठा । धुंधला प्रकाश एक नशा-सा दे रहा था । दोनों आंखें खोलकर एक-दूसरे को ऐसे देखने रहे, जैसे चार दीपक जल उठे हों ! गोपालन ने आन्दोलित होकर कोमल का हाथ पकड़ लिया । कोमल ने बेसुध-सी होकर आंखें मूंद लीं । किंतु सहसा वह हाथ झटककर खड़ी हो गई ।

गोपालन चौंककर पीछे हट गया । कोमल की आंखों में क्रोध की भीषण ज्वाला धधक रही थी । वह ठठाकर हंस पड़ी । गोपालन भय से कांप उठा ।

कोमल ने उसकी ओर उंगली उठाकर कहा—"तुम ! तुम एक स्त्री को अकेली जानकर उसका अपमान करना चाहते थे ? तुम एक विधवा को अपवित्र करना चाहते थे ? तुम कहोगे शरीर से क्या होता है ? किंतु मन ? मन भी तो तुम्हारा सांप जैसा काला और विषैला है ! तुम, जिसे मैंने दया करके इतने दिन खिलाया, मेरी जड़ काटने पर उतारू हो गए ! पापी !"

गोपालन जड़ हो गया । चेहरे पर काला रंग पुत गया ।

किंतु कोमल चुप नहीं हुई । वह बोलती ही गई—"घर पर तुम कुत्तों की तरह भाभी की दया पर पड़े थे । एक दिन तुमने मेरी ओर हाथ बढ़ाया था, किंतु मैंने तुम्हें फिर भी अपना स्नेह दिया ! और अन्त में तुमने यह चाहा कि मैं कहीं की भी न रहूं !"

गोपालन का कण्ठ अवरुद्ध हो गया । वह कुछ भी नहीं कह सका ।

कोमल उसके पास आ गई । उसकी आंखों में आंसू थे । उसने रोते-रोते उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"मैं जानती हूं आयंगार । समुद्र-तीर की बालू पानी सोखती नहीं, तो क्या भीगने से बची रहती है ? तुमने मेरे पीछे ही सब कुछ त्याग दिया ! नाम भी छोड़ दिया ! मैं जानती हूं, तुम्हारे मन में मेरे लिए अटूट, अक्षय स्नेह है । एक काम करोगे ?"

गोपालन पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रहा।

कोमल ने फिर कहा—"जाओ, गोपालन ! आज मैंने पहली बार तुम्हारा नाम लेकर पुकारा है। सदा के लिए इस देश से चले जाओ। कौन है तुम्हारा यहां जिसके लिए रहना चाहते हो ? आग और फूस साथ नहीं रह सकते गोपालन ! मुझे डर है कि मैं इस अग्नि में भस्म हो जाऊंगी ! मैं तुमसे भीख मांगती हूं, मुझे अकेली तड़पने दो। जाओ, कहीं सुदूर चले जाओ। विवाह करके सुखी जीवन बिताओ ! ···जाओगे ?"

गोपालन ने सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया। वह निश्चल खड़ा रहा।

कोमल ने कमर से नोटों की एक गड्डी निकालकर कहा—"यह लो, गोपालन ! ले लो इसे।"

किंतु गोपालन ने नोटों को नहीं छुआ। वह द्वार की ओर चलने लगा।

कोमल ने हठ करते हुए कहा—"लेते जाओ इन्हें, नहीं तो दर-दर भटकोगे ! ···ब्राह्मण के बेटे को भीख लेने मे लाज क्यों ?"

गोपालन ने फिर भी उत्तर नहीं दिया। वह बढ़ता ही गया।

कोमल ने फिर कहा—"भूखों मर जाओगे ! यहीं कौन मालिक थे, जो इतनी अकड़ दिखा रहे हो ? मुझपर एहसान रहने दो ! तुम दरिद्र हो···"

किंतु गोपालन चला गया।

कोमल ने कुछ देर इधर-उधर देखा, और फिर फूट-फूटकर रो उठी।

अनेक वर्ष बीत गए थे। उसका हृदय अब भी अपमान से तड़प उठता था।

गोपालन ने आंखें खोलकर देखा। वही प्राचीन अंधकार अब भी छा रहा था। वह उठा, और छत पर घूमने लगा। सामने ही कुआं था नीरव। पेड़ भी निस्तब्ध थे, दूर किसी प्राचीन काल का वह ऐतिहासिक खंडहर भी मौन था। चारों ओर भयानक नीरवता थी।

'कहां है जीवन की ममता का उन्माद ?'—हृदय अहंकार से पूछ बैठा।

दूर कहीं फुलवाड़ी के किसी पेड़ पर बैठा उल्लू हंस उठा; एक डरावनी हंसी जो उस प्राचीन मन्दिर की ईंटों से टकरा गई।

और गोपालन विक्षुब्ध-सा देखता रहा अविश्वास के कगारों पर खड़ा, अपनी ही यन्त्रणा में घुटा-सा, चुपचाप।

अब वह परदेस में है। कहीं कोई उसका नहीं। जीवन यन्त्र-सा चलता जा रहा है। इसके अतिरिक्त और चारा भी नहीं।

('47 से पूर्व)

अधूरी मूरत

मैं जिस छोटी-सी दुकान में नौकर था वह शहर के उस हिस्से में बसी हुई थी जो बहुत ही पुराना था। बड़ी सड़कों की रौनक वहां घुस ही नहीं सकती थी; क्योंकि उनके लिए हाथ-पांव फैलाने की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। इसी से यह सोचना कोई कठिन काम नहीं है कि वहां कितने आराम-चैन से काम होता था।

मुहल्ला क्या था! एक जमाने में वहां के लोगों के सामने बड़े-बड़े सूरमा घुटने टेक देते थे। किताबों के ढेर में हिसाब लिखते-लिखते जब मैं सिर उठाकर बाहर देखता तो उस सामंतयुगीन नगर के पुरानेपन की वह स्नेहमयी सांत्वना मेरे हलचल से भरे हृदय में एक व्यक्तिगत संतोष बनकर उतर जाती। मुझे लगता यह उस जीवन का एक खंडहर है जिसके विषादों के ऊपर जिसकी ममता की एकांगिता है, जिसके धुंधलके ऊपर किसी की प्रतीक्षा में जलते हुए दीपक का कोमल प्रकाश है, जिसकी दासता में भी सुहा-गिन का छोह-भरा प्यार है।

और फिर पत्थर की मूर्तियां बनानेवाले दस्तकारों का वह अथक परिश्रम? जैसे उस पृष्ठभूमि में एक बहुत ही करुण तन्मयता थी जिसकी विवशता हो जाने की इच्छा-मात्र का वरदान बनकर अपने आप ही पत्थर पर तेज आरी बनकर घिस-घिसकर काटा करती थी!

बूढ़ा हरचरन सामने ही बैठता। उसके दो जवान लड़के, एक दस-बारह बरस का नाती, बगल में कमरे के जंगले से बंधी गाय, जो कभी बैठकर जुगाली करती, या उठकर सानी में रह-रहकर मुंह चलाती। पत्थर, सफेद-मटमैले। हरचरन की सफेद दाढ़ी के बाल उसके वक्षस्थल को ढंक देते, सिर प्रायः गंजा हो चुका था और आंखों पर काले फ्रेम का चश्मा लगाकर वह चुपचाप पत्थरों की मूर्त्ति को आखिरी उस्तादी हाथ लगाता, लड़के मूर्तियां गढ़ते। नाती अभी केवल पत्थर ही काटता। उस घर में स्त्रियां भी हैं, छोटे-छोटे बच्चे भी है, जैसे गाय के साथ बछड़ा भी···और एक अनवरत धार-सा चलता यह जीवन, जैसे समय एक तेज आरी है जो जीवन के कठोर पत्थर को काट देती है और फिर मनुष्य प्रयत्न करके उन टुकड़ों को नवजीवन देने का प्रयत्न करता है।

आज मुझे नौकरी करते अनेक दिन बीत गये हैं, मुझे अपने जीवन से उतना ही असंतोष है, जितना इस पथ को मोटरों का अभाव है, भेद है तो केवल इतना कि यह पथ

जानते ही नहीं कि मोटर है क्या, और मैं दुर्भाग्य से कल्पना भी करने का आदी हो चुका हूं।

वृद्ध हरचरन ने मुझे स्नेह से देखा था और कहा था—"जब मन करे तब चले आया करो बाबू।"

और मेरा दफ्तर, जिसे अपनी तपस्या का गर्व है कि वह भी संघर्ष के इस विराट चक्र से अपना दांत गड़ाकर अपना अस्तित्व बता देना चाहता है···और हरचरन की वह दूकान जिस पर एक सुबह की किरन आती है, दिन-भर कमरे में रेंगती है और सांझ हुए भारी कोहरे में ऐसे छिप जाती है जैसे कपड़ों में कोई गोरा बदन लाज से लिपटकर मुंह छिपा लेता है।

बूढ़ा हरचरन पुकारकर कहता—"बाबू! क्या हो रहा है?"

"कुछ बना रहे हो?" मैंने उस दिन केवल बात बदलने के लिए पूछा।

"कुछ नहीं बाबू," वृद्ध ने उठकर आगे आते हुए कहा—"वह हैं न सक्सेना बाबू, अमरीकनों के दफ्तर में नौकरी कर ली है न? सो एक तस्वीर दे गये हैं कि ऐसी मूरत बना दो। किसी गोरे को देंगे। वह ही बना रहा था।"

उठकर मैंने देखा, तस्वीर अमरीका की प्रसिद्ध 'आजादी की मूर्ति' थी। हाथ में मशाल उठाये।

"बनाई कुछ?" मैंने पूछा।

"चेहरा तो बनाया है।"

देखा, वह मुख स्पष्ट ही भारतीय था। मैंने हंसकर कहा—"लेकिन चेहरा तो हिन्दुस्तानी है।"

वृद्ध अप्रतिभ होने लगा। मेरे मुख से निकला—"तो क्या हुआ? हिन्दुस्तानी आजादी की मूरत सही।"

वृद्ध ने सुना फिर धीरे से कहा—"लेकिन बाबू, यहां लेगा कौन?" शब्द मेरे कानों में वज्र की कड़क की भांति गूंज उठे। और एक कलाकार कह रहा था···!

दोपहर का वक्त था। जाड़े की धूप की वह नीरव तन्द्रा मध्यकालीन संस्कृति की मुझे बार-बार याद दिला देती थी। इसी समय मेरा ध्यान टूट गया। अजनबी के स्वर ने प्यासे दिल का तार छुआ। और गूंज झनझनाती हुई फैल गई। मैंने देखा, वृद्ध बैठा अपना सितार टुनटुना रहा था। दलित जाति के उस दरिद्र कलाकार को देखकर न जाने क्यों मेरा मन भीतर-ही-भीतर रो उठा। युगों की संस्कृति को किस राख ने ढंक दिया है आज जो उसके भीतर के शोले को बुझा देना चाहती है! किंतु यह उस कंडे की आग है जो धूप में सूखकर कड़े हुए शरीर में तपिश बनकर समाई हुई है जो बुझेगी नहीं, नहीं बुझेगी, धुआं देती रहेगी, सुलगती रहेगी।

सितार पर वह उंगलियां चल रही हैं। मुझे लग रहा है कि सामने रखा पत्थर का टुकड़ा अब शीघ्र गा उठेगा। और वृद्ध मग्न होकर गा रहा था—

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो,
समदरसी है नाम तिहारो
चाहे तो पार करो……

स्वर चढ़ता है, स्वर उतरता है। उस आरोहन-अवरोहन में न जाने मनुष्य की कौन-सी पीड़ा कसक-कसककर रो रही है कि मेरी इस नीरसता की आधुनिकता को आज भारत की युग-युग की संस्कृति आत्मा का रोदन बनकर बार-बार कंपा रहा है जैसे वृद्ध की उंगलियां उस तार को, और दोनों की वह अज्ञात पुकार शून्य के निर्मल प्रसार में धीरे-धीरे घुली जा रही है, मिली जा रही है।

मेरी आंखों के सामने उस शांति का भव्य चित्र खिंचता जा रहा है जिसमें अपनी सीमित तृष्णा ही सन्तोष बनकर दीपक के नीचे का अंधेरा बनकर सिमटकर रह गयी थी।

गीत रुक गया। वृद्ध ने मुस्कराकर कहा—"क्यों मियां करीम ?"

एक मुसलमान हाथ में साइकिल लिये द्वार पर खड़ा था। हैंडिल पर दो थैले लटके थे।

आगन्तुक ने कहा—"वह तो खूब बिकी कल।"

"कौन सरस्वती ?" वृद्ध ने सिर उठाकर पूछा।

"खूब बनाई है गुरु," करीम ने कहा—"कल तो आफताब साहब भी फड़क उठे देखकर। पहले कहा करते थे कोई मुसलमान मूरत लाओ क्या रोज-रोज हिन्दू मूरत ले आते हो। गुरु, मैं कहता था कि मुसलमानों के यहां रिवाज ही नहीं है। और फिर पत्थरों में क्या हिंदू, क्या मुसलमान…"

वृद्ध गर्व से मुस्कराया जैसे उसके हाथ में पत्थर भी किसी संस्कृति का द्योतक है। मैंने अनुभवमात्र किया। नहीं जानता वृद्ध क्या सोच रहा था। उसने धीरे से कहा—"करीम मियां ! यह हवा बढ़ती जा रही है। हम तो ताजमहल भी बनाते हैं। सोचते ही नहीं कि यह किसी मुसलमान जगह की मूरत है।"

करीम ने कहा—"बकने दो गुरु ! करीम को तो हिन्दू मूरत पैसा देती हैं।"

"और" वृद्ध ने हंसकर कहा—"न कहोगे हरचरन ताज पर पलता है ?" दोनों हंसे।

"तो" करीम ने सोचते हुए कहा—"तीन और देना वैसी।"

वृद्ध ने नाती की ओर देखा। नाती उठा। तीन सरस्वती की छोटी-छोटी मूर्तियां निकाल लाया अलमारी से। करीम ने उन्हें सहेजकर थैले में रख लिया और कहा—"फिर मिलेंगे इन्शा अल्ला…"

वृद्ध ने सितार फिर उठा लिया और गा उठा—

'समदरसी है नाम तिहारो…' गीत अपने आप में पूर्ण है, क्योंकि मन की अतृप्ति उसका आधार है क्योंकि जो टीस है वही रागिणी है, जो गूंज है वही उसका

प्रसार है···

एक नदी है, एक नाला है जिसमें मैला नीर भरा है, किन्तु जब दोनों मिल जाते हैं, तब उनका नाम सुरसरि धार पड़ जाता है···

और मेरे अतीत की वह आत्मविह्वलता आज विश्वास बनकर गरज उठना चाहती है क्योंकि वह मनुष्य की उस सतह की बात है जहां मनुष्य अपने संकोचों मे पड़कर मनुष्य से मनुष्य की तो क्या, अपने सम्बन्धों में आये पत्थर तक से घृणा नही करता, क्योंकि दोनों के मनुष्यत्व को कायम रखनेवाली रोटी का सवाल है···भूख के सम्राट के अश्वमेध को रोकने का युद्ध है···

मैंने एक अंगड़ाई लेकर अपनी उदासी को दूर करने का प्रयत्न किया। वृद्ध उस समय गम्भीर होकर कुछ सोच रहा था। उसकी उस भव्य आकृति को देखकर मुझे कुछ क्षण के लिए मनुष्य की केवल एक झलक दिखाई दी, जिस सिर को काटकर थाल में रख दिया जाये तो पता भी न चले कि यह किसी प्राचीन ऋषि का है, या किसी प्रेम-विह्वल सूफी का, या मनुष्य की अपराजित चेतना के प्रतीक गुरुदेव का ··

सामने वही अधूरी मूरत रखी है। वही भारतीय मुख है। धीरे-धीरे ऊपर उठा हाथ बनता जा रहा है। एक दिन इसमें मशाल बन जायेगी और फिर आजादी की यह मूरत ··

किसीने कहा—"बाबू!"

देखा, एक औरत है। लेकिन मन नही किया देखने को। उसकी जवानी उसकी बाढ़-सी वृद्धावस्था के हाथों में एक धरोहरमात्र है जैसे महाजन के पास किसान का वह खेत, जो हैं किसान के ही नाम लेकिन जिनकी फसल पर उसका अपना कोई अधिकार नही है।

वह पैसा मांग रही है, देख रही है, इधर-उधर किसी को न पाकर जैसे मेरी जवानी पर रहम खाकर मुस्करा रही है, फिर मांग रही है, किन्तु कोई उत्तर न पाकर चली जा रही है, वैसी ही जैसे कि यहां कहीं से इस तरह, या किसी की ठोकर खाकर, गाली खाकर चलती चली आ रही है और आने-जाने की मेहनत पर आत्म-सम्मान-हीनता का मुलम्मा चढ़ाने के कारण ही जिसके पेट के भीतर की नागिन को रोटी नाम का वह जहर मिलता है जिसको चर के, निगल के वह फुंकारती है और इन्सानियत के घमण्ड करनेवालों की सभ्यता पर बार-बार फन मारती है, पटकती है।

चलते-चलते उसका हाथ उठ रहा है, वह उसकी ओर दिखा रही है जिसके लिए पूर्वजों ने लिखा था कि वह हर जगह है लेकिन वास्तव में जो कहीं नहीं है। उसका वक्ष-स्थल खुल गया है क्योंकि कपड़े उसके शरीर को जीवितावस्था में भी नहीं ढंक सकते जैसे कि मुर्दे को कफन···

और वह, मुझे लगा जैसे वह भी हाथ में मशाल उठाये एक अधूरी मूरत थी जिसको लेने को कोई तैयार न था क्योंकि इसके भी एक भारतीय चेहरा था···

मैंने देखा। वृद्ध ऐसा बैठा है जैसे वह किसी घोर चिन्ता में पड़ गया है। उसके

सफेद बालों पर धूल का एक छोटा सांधे में से छनता गोला चमक रहा है। लड़कों के पांव घुटनों तक पत्थर के बुरादे से सफेद हो चुके हैं, नाती का मुंह तक सफेद लग रहा है और सामने अधूरी मूरत रखकर कलाकार कुछ सोच रहा है, कुछ देख रहा है और न वह कुछ सोच ही पाता है, न देख ही; क्योंकि वह शायद भूल गया है कि उसे पत्थर काटना है, पिघलाना नहीं है, गलाना नहीं है···

सांझ हो गई थी। मैं बस्ती के पिछवाड़े के एक तालाब के पास की छतरी में बैठा था। देखा बूढ़ा, हरचरन सांझ की उठती धूलि में धीरे-धीरे पत्थर की उन दसियों बरस पुरानी सीढ़ियों पर टहल रहा था। उतरते अंधकार में पीछे बसे कुम्हारों के कच्चे मकानों के छप्परों में छन-छन करता सा धुआं मिलकर सारे गगन को उदास-उदास-सा कर देता था। बगल में एक फूल-वाटिका है ऐसी जैसी राजपूत-मुगल मिश्रित चित्रकला का कोई नमूना हो, जिसके बीच बारहद्वारी, एक शिवालय, एक कुआं और फिर उसमें कोई एकांत बस्ती। तालाब का पानी गंदला है।

वही भिखारिन वहां चुल्लू मे भर-भरकर पानी पी रही है। इस समय वह एक आवारे के साथ है जो उसे बच्चे के रूप में शायद भीख मांगने का एक नया बहाना रात उतरते ही सीढ़ियों पर ही दे जायेगा और भिखारिन समझेगी कि इक्के वाला सिर्फ दुअन्नी दे गया है, बाकी तो सब परमात्मा की देन है।

मैंने देखा, वृद्ध उन्मन-सा घूम रहा था। मैंने कहा—"क्यों गुरु कैसी रही?"

वृद्ध ने मुझे चौंककर देखा। कहा—"बदल गया बाबू। जमाना उनके हाथ नहीं रहा जिन्होंने उसे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया था।"

मैं नही समझा। वृद्ध छतरी पर आ बैठा। उस प्रशांत सन्ध्या की नीरवता में पक्षियों की लौटती गुंजार का कलरव, फिर अनन्त आकाश के प्रसार का वह दाहक सूनापन, और अंधकार के थपेड़ों में कांपता निस्वन प्रकाश—जिसके सामने वह भव्य वृद्ध, जिसकी उदासीनता युग की दुरूह उलझन के समान मुझे ही विह्वल कर उठी जैसे एक दिन नचिकेता यम के सामने उस जीवन और मृत्यु के प्रश्न करते समय अपने भावों से व्याकुल हो उठा होगा।

वृद्ध ने कहा—"एक दिन हम इसी ताल पर खेले हैं, यहीं जवानी में हमने भंग घोटी है, देवी के पाठ किये हैं, नौटंकियां हुई हैं। जब यहां चांदी की पाड़ें बांधी थीं, रात-रात भर भगत होती थीं···"

और एक दीर्घ निःश्वास।

"कहां गई वे सब गुरु?" मैंने पूछा।

"कहां गईं?" वृद्ध ने धीरता से कहा, "वही तो तुम नहीं समझ सकते बेटा। वह तुम्हारे पैदा होने के पहले ही गोरा मालिक ले गया। तुम तो कीचड़ में पैदा हुए हो···"

मुझे लगा जैसे मैं उस गन्दे जल पर भनभनानेवाला केवल एक मच्छर हूं और वृद्ध वह पुराना पेड़ है जो अपनी अनेक जटाओं को लटकाकर जल पर छा रहा है।

"वह दूर कैसी रोशनी है ?" वृद्ध ने पूछा।

"वहां आज कोई नेता जेल से छूटकर आये हैं। सेठ ने दावत दी है।" मैंने कहा।

"मगर सेठ तो लड़ाई के एक ठेके से लाखों कमा गया। अच्छा ही है। बड़े नेता पैसेवालों को ढूंढ़ रहे हैं जो पैसे देगा वही ताकत पायेगा।"

मैंने देखा, बूढ़ा एक बहुत बड़ा सत्य कह रहा था। लेकिन मन नहीं माना। नेता तो हमने बनाया है। सेठ तो कल सरकार के साथ था, मुंह से लड़ाई की निन्दा करता था छिपकर, रुपये कमा रहा था लड़ाई के बल पर, खुलकर हमीं तो कल भी नेता के लिए तड़प रहे थे। नेता हमारा है, आज तक हमसे लिया है। फिर ले ले। आज तक हमने अपना खून दिया है। आज हड्डियां देने को तैयार हैं। सेठ तो वह नफा देगा जो उसने मजदूरों का पेट काटकर बचाया है, चोरबाजारी करके निकाला है। हम पैसा देंगे, हमारी सरकार बनेगी।

वृद्ध ने फिर कहा—"बाबू ! दिन बड़े खराब आ रहे हैं।"

मैंने कहा—"गुरु, बुरा न मानना। जब से होश संभाला है तब से बुजुर्गों को यही कहते सुना है। न जाने अच्छे दिन कब आएंगे ?"

वृद्ध ने अन्यमनस्क होकर कहा—"यही तो रोना है कि अब वे शायद कभी नहीं आएंगे।"

मैंने देखा, आकाश और पृथ्वी, पेड़, छतरी, ताल, मैं, वृद्ध सब अंधकार में डूब गए थे। सबको जैसे समदरमी ने एक कर दिया था। किन्तु कैसी साम्राज्यशाही-सी है यह समदरसिता जिसके लिए इतने अन्धकार की आवश्यकता है। क्यों हम अभी तक केवल एक मैला नीर-भरा नाला हैं···क्या हमारा नाम कभी भी सुरसरि नहीं पड़ेगा, क्या सदा हीं जीवन ऐसे विभक्त होकर बहता रहेगा ?

और फिर कुम्हारों की बस्ती से किसी औरत के रोने की आवाज। वह आवाज ऐसी चौंका गई जैसे एकदम अन्तराल में कांप कर दीपक फक करके बुझ जाये और मनुष्य को लगे कि वह आकाश से पृथ्वी पर गिर गया है।

मैंने कहा— "गुरु, कौन रोती है ?"

"वही होगी," वृद्ध ने विचलित स्वर से कहा—"मुलुआ की मां ! मुलुआ कटौनी के खिलाफ मिल के हड़ताली मजदूरों में था न ? आज पुलिस ने गोली चलाई। जख्मी हुआ था। मर गया होगा।"

जैसे यह मौत का वर्णन उस घोर विवशता का दूसरा रूप है जिसे क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्ज की देशभक्ति कह-कहकर गोरे हर्ष से ताली पीटते हैं।

मैंने देखा। पूछा—"पुलिस को बुलाया, आपस में समझौता नहीं किया ? इससे तो अपना नुकसान है न ?"

"बीच में हिन्दू-मुसलमान का सवाल उठा दिया," वृद्ध ने रोककर कहा।

मैं कांप उठा। कहा—"लेकिन गुरु, यह तो फूट का रास्ता है। हम सब तबाह हो जायेंगे।"

वृद्ध ने कहा—"और मैंने कहा ही क्या है मेरे दुधमुंहे! तेरा वक्त था कि तेरी हथेलियां गुलाबी रहतीं और देखता हूं आज हिन्दुस्तान की जवानी की हालत, तो मन करता है नाखूनों से सीना फाड़कर बाहर नाली में फेंक दूं कि मैं यह सब नहीं देख सकता, नहीं देख सकता···

सीढ़ियों पर शायद कुछ हलचल है। अंधेरा है, भिखारिन है, इक्केवाला है···

और रात है, वृद्ध का हृदय इसलिए रो रहा है, कि मैं जवान हूं, जब मुझे किसी लड़की से प्रेम करना चाहिये, लेकिन मैं गुलाम हूं और मेरा यह अधिकार भी छीन लिया गया है···

और अंधेरा छा रहा है। क्योंकि समझौता करने का मतलब किसीके सत्ता-स्वार्थ पर चोट है, और फिर हराम का बच्चा पैदा नहीं हो सकेगा, ऐश की भूख बाप न बनेगी, औरत का मां होना पाप होगा और वह बच्चा होगी गरीबी···उस पर इंसानियत की झेप मिटाने का ढोंग—भीख, और अंधेरा गहरा होता जा रहा है।

दीपक का धुंधला प्रकाश कमरे की दीवारों पर कांप रहा था। दरवाजे जाड़े के मारे बन्द कर लिए थे!

मैं कुछ देर बैठा, फिर धीरे से मैंने पूछा—"तो गुरु, मूरत तो अभी अधूरी पड़ी है! आखिर पूरी होगी भी या यों ही पड़ी रहेगी?"

वृद्ध ने उदासीनता से कहा—"हो जाएगी।"

मैंने फिर कहा—"अपने-आप हो जाएगी?"

वृद्ध चुप रहा। कमरे में सन्नाटा वैसे ही हिल उठा जैसे दीवारों पर छायाएं हिल रही थीं। पत्थरों के कोने चमक रहे हैं, उनमें एक उज्ज्वलता जैसे मुस्करा रही है, वे कुछ कहना चाहते हैं, जैसे गुलामी भी, जो कुछ कराहना चाहती है आज खिले होंठों से, क्योंकि हर एक आंसू वही तापिश है जिसे निकालकर इंसान ने आज एक-दूसरे पर जुल्म करने के लिए परमाणु बम बनाया है और वह उसे पिघलाकर फिर से आंसू नहीं बनाना चाहता क्योंकि उल्लुओं को जागीरें देने से कहीं कठिन है इंसान के लिए झोंपड़ी बना देना।

वृद्ध ने चौंककर कहा—"बाबू! मुझे नहीं मालूम मुझे क्या हो गया है, लेकिन पूरी करने को मन नहीं करता।"

"यह पत्थर सफेद होता तो कहीं ज्यादा अच्छा लगता। कुछ मटमैला है। सफेद क्यों नहीं लेते?"

वृद्ध ने मुझे घूर कर देखा। शब्द बहुत सध कर निकले—"सफेद पत्थर गोरा मालिक अपने काम में लाता है, तभी उसकी मूरत भी अच्छी होती है।" वृद्ध चुप हो गया। भीतर कोई बच्चा रो रहा है। बाहर सन्नाटे की लाश पर कफन बनकर कोहरा अपनी सिमटनों को मिटाता जा रहा है क्योंकि लाश बढ़ती जा रही है, क्योंकि यह मुर्दा-पन भी किसी नये जीवन के लिए संघर्ष कर रहा है, जिसमें यह मजदूरियां किसी उगने-वाले सूरज का इन्तजार कर रही हैं···

मैंने कहा—"लेकिन मूरत अधूरी क्यों रहेगी ?"

वृद्ध ने खांस कर कहा—"अगर मूरत पूरी करने में रह जाऊंगा तो खाऊंगा क्या ?"

बात मुझे कचोट उठी। मैंने कहा, "तो क्या गणेश-वणेश ही बनाते रहोगे ? रटी-रटाई चीजें, सिर्फ इसलिए कि पैसा मिलता है ?"

वृद्ध ने मुड़कर दूसरी ओर देखकर कहा, "बच्चे हो न, तभी ऐसी बातें करते हो ? मैं मजदूर हूं। जो पैसा देगा उसका काम करूंगा ?"

"मैंने मना किया ?" मैंने पूछा—"लेकिन जिसका दाम सेठ और महाजन देगा वह सेठ और महाजन की चीज होगी ! वही जिसमें तुम सिर्फ रोटियों के गुलाम रहो, उसकी हिम्मत पर, और जिसके पैसे पर तुम होगे, वह तुम्हारी चीज होगी, जिसके पीछे तुम्हारी वह कुर्बानी होगी जो किसी अखबार में नहीं निकलेगी लेकिन तुम उस अधूरी चीज को पूरा कर सकोगे जिसको यदि नहीं करोगे तो बेकार है तुम्हारे हाथों की वह मेहनत जिसके पीछे तुम्हारे ईमान की कसम है।"

वृद्ध ने मेरी ओर तीव्र दृष्टि से देखा और कहा—"हिम्मत नहीं पड़ती।"

मैं हंस उठा। पूछा—"तो क्या इस मूरत की हिन्दुस्तान को कोई जरूरत नहीं ! हिन्दू-मुसलमानों में से कोई भी नहीं खरीदेगा ?"

वृद्ध चुप ही रहा। दीपक नहीं हिल रहा था; पर हिलती लौ की हिलती छाया के कारण, दीपक तो क्या, लगता है जैसे सारा कमरा थर्रा उठा है।

वृद्ध का बदन एक बार सिहर उठा जैसे वह कुछ भी नहीं सोच पा रहा था।

मैंने कहा, "तो क्या तुम्हारी कला तुम्हारे हुनर के मुंह से यही आवाज निकाल रही है ?"

वृद्ध कुछ नहीं बोला। उसने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा। आज शायद वह एक क्षण अपनी लम्बी यात्रा का एक अल्प त्वरित सिंहावलोकन कर रहा था—समय की वह धूप जिसमें ईमान का सारा कालापन आज दुःखों में पक-पककर सफेद हो चुका है, पवित्र···स्निग्ध···

मैंने उठते हुए कहा—"एक बार गोरा मालिक देखता कि जिसका हकदार वह अपने को समझता था आज हम उसीके घर में उसीको ललकार रहे हैं।"

"लेकिन घर तो हमारा लुट रहा है," कहते हुए वृद्ध ने कांपते हाथ से मेरा हाथ पकड़ लिया। देर तक मुझे देखा और वृद्ध के आकुल कंठ से निकला—"लेकिन मूरत अधूरी नहीं रहेगी···"

और भीतर बच्चा हंस रहा था।

['47 से पूर्व]

मृगतृष्णा

ईद की बहार में जीवन का दुःख जैसे समाप्त हो गया। चारों ओर ऊधम-सा मच उठा। वृद्ध सत्तार अपनी कोठरी से बाहर निकल आया। उसके सिर पर पट्टे कढ़े हुए थे। शरीर पर पुराना सिकुड़नदार मैला-सा कुर्ता था।

पड़ोस में खां साहब का मकान था। बगल में ही 'राशनिंग' के दारोगा थे। मैदान बाजार के पिछवाड़े से घिरा हुआ था। उधर जीवन बिकता है, बराबर शोर होता है, यहां तक कि मैं हाहाकार में आदमी अपने को आदमी समझना छोड़ देता है, इधर सन्नाटा। उस सन्नाटे में मैले-कुचैले कपड़े पहननेवाले ताशेवालों का सूखा पंजर ताशों के घोर अट्टहास में अपने आपको पीटे चला जा रहा है। समझ नही आता कि यदि यह कोलाहल भी उसके जीवन की हलचल नहीं है, तो फिर किस मर्यादा के चरणों पर सिर कटा देने के लिए समस्त अभिलाषाएं अभी जीवित हैं? और स्वर प्राचीन मुगलिया दीवारों से लौटकर उठता है, और मैदान के ऊपर गुम्बज-सा छा जाता है। बच्चे खेल रहे हैं। उनके कपड़े अत्यन्त चमकदार हैं। उन्हें आज सिमइयां प्राप्त करने की खुशी हो रही है। वह मिहतरानी हिन्दू है तो क्या, सिमइयों के लिए प्रातः से ही अपने बच्चों को खां साहब के द्वार पर छोड़ गई है।

सत्तार के जीवन ने भी कभी हलचल देखी होगी। आज सब उसे भूल गए हैं। अब सत्तार की सत्ता का एकमात्र अपेक्षणीय अन्त है—मृत्यु।

वृद्ध सत्तार खांस उठा। बालकों में कैसा उन्माद है। उसके शरीर में बहते गर्म रुधिर के लिए इसी कोलाहल की आवश्यकता थी, क्योंकि उनके मन का कोई भी भाग जर्जर नहीं है। सब कुछ चाहिए, यह सारी दुनिया उन्हीं के लिए है। और, सत्तार ने महसूस किया कि वह उस कुत्ते के समान है, जो घूरे पर से उठकर चांद की ओर देखकर भूंक भी चुका है, किन्तु जिसका कोई परिणाम नही निकला। स्वर एक तीर की भांति देखते-देखते उठकर कहीं अपने-आप खो गया।

वृद्ध बड़बड़ा उठा—'पहले···।' फिर मन-ही-मन दोहराया—

'पहले आती थी हाले दिल पर हंसी, अब किसी बात पर नहीं आती।'

वृद्ध ने आंखें पोंछ लीं। कभी-कभी वह शोर थम जाता, फिर मचने लगता। उस अनवरत बहती घुटन में जैसे एक कशमकश थी; जैसे बिल्ली की गर्दन दाबने पर वह

तड़पती हुई पंजे फेंकती है, या कि छिपकली की कटी हुई दुम अपनी जिन्दगी के पाप के कारण असह्य रूप से छटपताती है।

वृद्ध उठकर कोठरी में गया। आबखोरे से पानी पिया। बाकी को सुराही में डाल दिया। नल तो दूर है। बुढ़ापे में पानी भरकर लाना कोई हंसी-ठट्ठा नहीं। जितनी देर चल जाये उतना ही अच्छा। उसने ठण्ड महसूस की। अपनी पुरानी वास्कट पहन ली।

बाहर आकर देखा, मैदान में एक कुर्सी पड़ी है, जिस पर दारोगा साहब बैठे हुए गरज रहे हैं और सामने चपरासी एक बहुत ही गंदे मरियल आदमी को लिए खड़ा है। उस आदमी का चारखाने का तहमद है; दाढ़ी है, सिर घुटा हुआ। बदन पर बनियान है। और कुछ नहीं।

दारोगा साहब ने कहा—"हां जी, क्या कहा?" फिर मुड़कर उस आदमी से बोले—"तो गोया हम झख मारने के लिए तैनात किये गये है। आपकी यह तो है हुलिया, जिस पर चोर-बाजारी भी करेंगे और नफाखोरी भी। सपने तो रानियों के देख रहे हैं साहबजादे अश्फाक?"

"जी हुजूर!" चपरासी ने झुककर कहा।

"चालान करो इसका।"

"हुजूर!" उस दूकानदार ने कहा—"दो पैसे ही की तो बात है। दामियों में मेरा गला न कटाइए। ईद का दिन है, अल्लाह आपको···"

दारोगा साहब ने कर्कश स्वर मे कहा—"हरामजादे! जानता नहीं, यह तूने जेल जाने का काम किया है?"

"माई-बाप," वह व्यक्ति गिड़गिड़ा कर बोल उठा—"मारा जाऊंगा हुजूर! बाल-बच्चे भूखे मर जाएंगे।"

दारोगा साहब ठठाकर हंसे। जोर से पलटकर कहा—"सुना आपने खां साहब?"

आराम-कुर्सी पर लेटे हुक्का गुड़गुड़ाते हुए खां साहब ने कहा—"क्या हुआ जनाबेमन, गरीब से कुछ खता हुई?"

"वल्लाह!" दारोगा भारी स्वर में हंसे—"ईद के दिन बेईमानी कर रहा था।"

"कौन है?"

"अपने-आपको मुसलमान कहता है तिस पर···"

"शैतान की मार हो जालिम पर।" खां साहब ने तुनुककर कहा। फिर उनकी खांसी का कठोर स्वर गूंज गया।

दारोगा साहब फिर जोर से बोले—"कहता है, बीवी-बच्चे भूखे मर जायेंगे।"

"खुदा न करे, दारोगा साहब! सरकार ने आपको इन्साफ करने के लिए इंसपेक्टर बनाया है···।" फिर खखारकर थूकने का शब्द। तब तक दारोगा साहब की सुनने में तन्मयता।

"ईद का दिन है। आपकी तालीम का कायल हूं।"

"आप उम्रदराज हों। मैं एक अर्ज करता हूं। ईद के दिन जिसने बेईमानी की, अल्लाह उसे माफ न करेगा। फिर कमबख्त अपने घर को भी खींचकर फंसा लेना चाहता है। उन्होंने क्या जुर्म किया है ?"

"खां साहब !" बूढ़े सिद्दीक ने कहा-—"छोड़िये भी।"

और फिर बात बदल गई। दारोगा साहब उठकर खां साहब की बैठक में चले गये। कसाई जैसी गठीली देह वाले उनके चपरासी ने उस दूकानदार को चटाक-चटाक दो चांटे जड़ दिए।

छोटी बच्चियां ऊपर से झांक रही थीं। एकाएक खिलखिलाकर हंस पड़ीं। एक की पुकार एकदम गूंज उठी—"अम्मीजान ! बेचारे को मारा है।"

कहनेवाली बच्ची उतर कर जल्दी-जल्दी नीचे आ गई और खड़ी देखने लगी।

बूढ़े सत्तार ने एक सर्द आह खींची और आसमान की तरफ देखा, यह भी देखना था। अल्लाह ! दादाजान गोदी में बैठा कर सुनाते कि तब मुगलों का राज्य था, तब फिरंगी सिर्फ सौदागर थे···और सन् 57 में हिन्दू-मुसलमान एक हो उठे थे, कि अंग्रेजों के पैरों के नीचे से धरती खिसक गई थी। उसे एकदम क्रोध हो आया। क्यों नही फिर से एक हो जाते ? बावले ! भूखे···

और देखा, दूकानदार अब भी कांप रहा था। पिटकर भी उसे क्रुद्ध होने का अधिकार नही है। ईद के दिन ! कितना मैला !

चपरासी ने कहा—"बोल क्या कहता है ?"

बच्ची ने पूछा—"तेरा नाम क्या है ?"

"शमशीर, बीबी।" उसका गला भर आया, जैसे बालिका मे उसे अपनी बच्ची की प्रतिकृति दिखाई दे गई हो, जो गंदी होगी, गलीज होगी, जिसमें सड़ांध होगी और जो यदि घर बनी तो बनी अन्यथा बाजार से कुल्हड़ में खरीद लाएगी और तब तक चाट-चाट कर सब सिमई समाप्त करके मानेगी,' जब तक कि नाखून सफेद न पड़ जायें, और फिर किसीके घर के आगे बजते ताशे के सामने शोर सुनने को जा खड़ी होगी—ऐसे ही जैसे वह बच्ची खड़ी थी···।

"शमशीर !" बालिका ने कहा। उदास हो गई और बूढ़े सत्तार के पास जाकर कहा—"बड़े मियां ! तुम तो कहते थे कि शमशीर का चलना खेल नही, जब चलती है तो दोनों तरफ रास्ता साफ हो जाता है ?"

वृद्ध सत्तार ने स्नेह से बालिका के सिर पर हाथ फेर कर कहा—"मेरी बच्ची ! ईद मुबारक हो···।"

"मुबारक हो, मुबारक हो।" बच्ची ने हंसते हुए ताली पीटकर कहा। वह अपनी बात भूल गई।

वृद्ध ने उसकी बात का उत्तर देना ठीक नही समझी। वह जानता था कि यही सरकारी चपरासी पुलिस से पहले रिश्वत खाकर शहर में दंगे मचा दिया करता था।

इसीने एक बार एक शिया औरत पर हमला किया था। और, यह वह शमशीर भी कहां जो चले ? चले तो वह जिसकी धार पर पानी हो, जिसकी लचक में फौलाद की झनझनाहट कांपा करे।

फिर कहा—"हमारी अच्छी कुलसुम ने बालों में नीला फीता कैसे बांधा है ?"

"यह ?" कुलसुम ने कहा—"हमें रशीद मियां ने लाकर दिया है। वे बड़े अच्छे हैं।"

"लेकिन बेटी, यह तुम्हें अच्छा नहीं लगता।"

"क्यों ?" बालिका ने उदास हो पूछा।

"इसलिये कि तुम एक ऊंचे खानदान की हो। यह तो फिरंगियों की नकल है। तुम्हें तो सोना पहनना चाहिए।"

"ओहो, बड़े मियां,…"

फिर कठोर स्वर सुनाई दिया—

"सूअर के बच्चे, चला जा यहां से।"

मुड़कर देखा, चपरासी साइकिल पर बैठा शमशीर को पैर से हटा रहा था। और सच ही शमशीर बैठा रहा। चपरासी चला गया था।

कुलसुम ने कहा—"देखो बड़े मियां, एक बात कहें…!"

"कहो बेटी !"

एकाएक भारी स्वर सुनाई दिया—"बीबी कुलसुम, कहां चली गई तुम ? इधर आओ।"

कुलसुम ने भयभीत दृष्टि से इधर-उधर देखा और फिर आसमान में उड़ते हुए हवाई जहाज को देखती हुई सहमी-सी भीतर लौट गई।

वृद्ध ने माथे पर हाथ फेरकर एक बार जैसे यादगारों को उभड़ने से रोकने का प्रयत्न किया और चुप होकर नीचे देखने लगा।

शमशीर ने देखा और जब कोई नहीं दिखा तब सत्तार के पास आ बैठा।

वृद्ध ने ऊबी हुई दृष्टि से देखा। वह जानता था, यह भी एक नई दुःख की कहानी होगी, जिसका अन्त पेट की आग से होगा। न होता पेट, न शमशीर आज मिट्टी के मानिंद चटकनी। और न टूटे कुल्हड़ की तरह उसे कूड़े पर फेंका ही जाता।

शमशीर रो रहा था। उसने कहा—"बाप मानिन्द हैं आप। क्या यह इन्साफ है ?"

सत्तार मन ही मन हंसा—हिकारत की हंसी। कैसा बेवकूफ है ? इतनी हिमाकत कि इसे भी इन्साफ की जरूरत है ? इन्साफ को झेलने के लिए बादशाह की सूरत जिस चांदी पर, जिस कागज पर हो, उसकी जरूरत है।

इसी समय एक मोटे से आदमी ने आवाज दी—"दारोगा साहब ! ईद मुबारक ! आप कहां छिपे बैठे हो ?"

आगन्तुक कोई सेठ था। सफेद कपड़े पहने, सिर पर खद्दर की टोपी लगाये।

गले में सोने की जंजीर, एक लड़ी, दो लड़ी···

भीतर से आवाज आई—"मुबारक आपको भी ! आया सेठ साहब।"

सेठ भीतर चले गये। कौन नहीं जानता कि वे सैकड़ों-हजारों का माल हाथ की सफाई से इधर से उधर करते हैं और दारोगा साहब से उनकी पक्की दोस्ती है। पहली छोटी तनख्वाह देकर सरकार डांट मारती है, मगर अधिकार सौंपती है। दूसरी तनख्वाह देकर सेठजी दारोगा की खुशामद करते हैं, और यदि अधिकार नहीं दे सकते, तो उन्हें दारोगा की जगह डिप्टी-कलक्टरों के ठाठ देते हैं। और आज ईद की मुबारकबाद देने आये हैं।

सत्तार फिर हंसा। सारा जमाना एक जाहिल और कमीने झूठ की बुनियाद पर खड़ा है। वह रोज कालेज के होस्टलों में जाकर झूठ बोलता था। इसी बीच एक बहुत ही मैले कपड़े में रोगन भर कर कहता है—"हुजूर के दरवाजे-खिड़कियों पर पालिश···"

"नहीं, नहीं, आगे जाओ···"

और फिर सत्तार गिड़गिड़ा कर कहता—"मालिक, बच्चे भूखे है !"

मिल ही जाता कुछ न कुछ। कहां है इस कोठरी में बच्चे ? शायद चूहे के भी न होंगे। मगर बच्चों के नाम पर ही तो थोड़ी-सी इन्सानियत बाकी बची है, वरना बूढ़ों को खुदकुशी कर लेनी चाहिए। अगर अल्लाह का नाम कुछ नहीं दे सकता, तो बच्चों का ही सही···

और उसने कहा—"अमां ! बात क्या है ?"

"बात तो मालिक कुछ नहीं," शमशीर ने कहा—"सड़क पर बैठता हूं। टुकड़े बेचता हूं। यह चपरासी आया। मुझे क्या खबर थी ? दो पैसे ज्यादा दाम बता दिये। अल्लाकसम तुमसे झूठ कहें तो ईद के दिन दोजख मिले। पेट नहीं भरता कसम से। सो, यह यहां पकड़ लाया। अब कपड़े जब्त, मुहर लगा दी है और अब पैसे मांगते हैं, नहीं तो मुकदमा···"

"तो," सत्तार ने कहा—"तू भी तो रिआया का गला काटता है ?"

'खुदा की मार हो," शमशीर ने कहा—"बड़े-बड़े सेठ भूखा मारते है, तब दारोगा कुछ नही कहते। यहां दो डबल पर ही इन्साफ की तलवार झूल गई।"

"अबे, वे साढ़ू हैं एक-दूसरे के, समझा ? वे भी बचने को रुपया खर्च करते हैं।"

"वे तो मुसलमान हैं ?"

"होंगे ! मगर इस्लाम से रोटी नहीं मिलती। रोटी सरकार और सेठ देते हैं। वे और हैं, हम और हैं। और बेटा, तू कौवा होकर हंस की चाल चलेगा, तो यही होगा।"

शमशीर उदास-सा चला गया। उसकी वह विषाद-सिक्त-श्वास बाजार की विराट दीवारों के बीच से ऐसे निकल गयी, जैसे छोटे पटाखे अपना ऊपर का बख्तर छोड़ कर निकल जाते हैं—जगमगाते हुए और फिर आसमान में जाकर फूट जाते हैं, लय हो जाते हैं।

वृद्ध सत्तार ने टूटा मोढ़ा एक ओर खिसका लिया और देखा, सामने औरतें खड़ी लड़ रही थीं। वह हंसा। उस हंसी में कितना व्यंग था, कितना विषाद, जैसे आज सब कुछ लड़ रहा था। दो दिन से वह गेहूं नहीं पा सका था। राशन की भीड़ में घुसना उसके लिए असम्भव था। लेकिन यह भूख भी पार करनी है, क्योंकि जीना है; क्योंकि सल्त-नतों का उजड़ना एक मजहबी बात है, जैसे भरते-भरते घड़ा फूट जाता है···और वह फिर गुनगुना उठा—

'पहले आती थी हाले दिल पर हँसी····'

आंख उठाकर देखा, जैसे अब सब पर आ रही थी।

['47 से पूर्व]

इंसान

···आखिर हम इंसान हैं।

अगर अधजला दिल किसी के अरमान की वह भीषण चट्टान है जिसे चिता की भयानक लपटें भी नही जला सकतीं तो मनुष्य का जीवन भी ऐसी ही एक अगम पहाड़ी है, जिसे कोई भी बिजली कितने भी वेग से गिर कर चकनाचूर नही कर सकती। वास्तव में इस सत्य के पीछे एक कार्यकारणी की शक्ति से प्रेरित निर्ममता है। कितना भी उदाम हो यह यौवन, किन्तु क्या उसके एक क्षण के भूलेपन में योगों का असन्तोष स्वयं तृप्ति बनकर नहीं छा जाता ?

बात यह है कि जिस दिन दिलीप सतीश के घर से चला, उसका दिमाग तरह-तरह के विचारो मे डूबा हुआ था। दिलीप भी अजीब है। उसके विचारों का भले ही सबसे सामंजस्य हो जाय, भले ही वह हंस-खेल ले, उसे मालूम होगा कि वह पानी पर तैरता एक बुलबुला मात्र है, किंतु उसका मन न जाने क्यों स्नेह के बंधनों से बहुत दूर रहना चाहता है। विदाई के समय किसी की आंखों में अपने लिये कोई विशेष नमी नही देखी। शायद मनुष्य को इससे बढ़कर कोई सुख नही। कितना अच्छा होता है वह सपना, जो आंखों में आकर लय हो जाता है; और वह याद जो कसका करती है, दुख दिया करती है···

तो रक्खा उसने अपना अमरीकन बैग कधे पर और चल दिया स्टेशन की तरफ। राह में देखने को क्या कुछ भी नही था, लेकिन मजाल है, जो उसने कुछ देखा हो, उसे कुछ याद हो। उसकी धारा ही इतनी गहरी थी कि सांस लेने के लिये जब सिर उठाता था तो मन भीतर ही भीतर छटपटाने लगता था।

स्टेशन सुनसान था।

दिलीप ने इधर-उधर देखा। गाड़ी आने का कोई लक्षण नही। एक ओर मुसाफिरों की भीड़ बाहर प्लेटफार्म पर बैठी ऊंघ रही थी। एक बाबू को आते देखकर दिलीप ने अंगरेजी में पूछा : "मेल आने में कितनी देर है ?"

बाबू रुका नही। चलते-चलते कहा, "चार घंटे लेट है।

दिलीप ने मन ही मन कुछ अपमान का अनुभव किया। यह क्या बदतमीजी है ? हम पूछ रहे हैं और कमबख्त ढंग से जवाब तक नहीं देता ? फिर देखा। एक अंग्रेज

औरत ने आवाज दी—

"बाबू !"

बाबू ठिठक गया।

मेम की जीभ कुछ भीतर ही भीतर लड़खड़ाई और शब्द निकले : "मेल का किटना बजे arrival है ?"

बाबू ने नम्रता से, प्रश्न हिन्दी में होते हुए भी अंग्रेजी में उत्तर दिया, जैसे आप क्यों हिन्दी बोलने की तकलीफ करती हैं, मैं खुद अंग्रेजी बोलने की कोशिश करता हूं। "मैडम ! गाड़ी ढाई बजे आती है, लेकिन क्योंकि आज चार घंटे लेट है, लिहाजा साढ़े छ: बजे आयेगी।"

मेम ने बाबू को ऐसे घूर कर देखा जैसे यह सब बाबू की गलती थी। और बाबू सशंक नयनों से देखकर एक दफ्तर में घुस गया।

दिलीप को हंसी सी आई। बेचारा ! जिसे रेल के एक पुर्जे से अधिक समझना शायद भूल होगी, क्योंकि वह और कुछ नहीं।

कुछ देर खड़े रहकर ऊब जाने पर दिलीप प्लेटफार्म पर टहलने लगा। अनेक-अनेक प्रान्तों, रियासतों अथवा छोटे-छोटे देशों की मानवता के ये प्रतीक···इनके चेहरे पर उत्साह क्यों नहीं ? क्यों है यह निराकार अचेतना जो घुन बन, सब कुछ काट रही है ? सब व्यस्त हैं। सब अपने-अपने काम में मग्न, प्रत्येक एक-दूसरे को अपना शत्रु समझ रहा है।

इतने में एक ठहाके की आवाज ! वह फौजी हैं, वर्दी पहने। लोग उनसे बचकर निकलते हैं, औरतें घृणा से आंखें छिपाकर देखती हैं, डरती हुई सी, जैसे भेड़ियों को देखकर बकरी सहम जाती हो। वे लोग भद्दी गालियां बकते हैं···। दिलीप को लग रहा है, काश यह भी इंसान होते ! किन्तु इन सब को अपनी इंसानियत से मोह है, मोह ही उनकी जय का एकमात्र प्रतीक है, और यह जय पूंजीवादी समाज की देन होने के कारण केवल व्यक्तिगत सुख है, जिसमें हर रोटी का टुकड़ा खून से भीगा हुआ है।

एक बुढ़िया, उसके साथ एक औरत जिसकी उम्र जवानी की है, जिसका तन अधेड़-सा है, जिसकी आंखों में एक नीलापन है, जिसके सर्द गाल धीरे-धीरे खाकी होते जा रहे हैं। दोनों एक बक्स पर बैठी हैं। बुढ़िया बटुए में से दो उंगलियां डालकर तंबाकू निकाल कर पान भरे मुंह में डाल रही है। उनके साथ दो बच्चे हैं—एक लड़का, एक लड़की। वह कम उम्र औरत उनकी मां है। कभी-कभी देखने में नौकरानी-सी लगती है।

और दिलीप टहलता रहा।

एक व्यक्ति ने कहा—"बाबू पहली गाड़ी कौन छूटेगी ?"

"कहां को ?"

"आगरा ?"

"पैंसिजर लेट है। आने वाला है। पकड़ लेना बक्स !"—एक कुली ने दूसरे

कुली का सामान उतारते हुए जवाब दिया।

दिलीप तेजी से टिकट-घर की तरफ चला। आगे जाकर पैर ठिठक गये। उस घमासान को देखकर, शायद राणासांगा भी उसमें निहत्था घुमने से इन्कार कर देता। भयानक शोर हो रहा था। यह भी इंसान की जिंदगी की दौड़ थी, जो गरीबी मे बेतहाशा दौड़े हुए कुत्ते की तरह जीभ निकालकर हांफ रही थी। बाहर सीटी बज रही थी। दिलीप ने एकदम हाथ बढ़ाकर कहा: "आगरा कैण्ट, सेकेंड क्लास।" अन्दर मे बाबू ने कहनेवाले की ओर देखा और मुस्करा कर पीछे वाले बाबू से कहा: "अमा, तुम रेलवे की क्लर्की कर रहे हो। लड़ाई की नौकरी की होती।" दोनों जोर से हंस पड़े। मन खट्टा हो गया दिलीप का। गोया वह कोशिश करके भी रईस नही कहला सकता।

दरवाजे में से निकलते ही देखा, एक भयानक रेला रेल पर टूटा पड़ रहा था जैसे एक जैकारे के साथ अब भारतमाता की बेड़ियां टूटने ही वाली हों। दिलीप ने आव देखा न ताव, लपक कर डंडा पकड़ा और सेकेंड क्लास में घुस गया। सामने खड़े गोरे सिपाही ने घूरकर देखा और दिलीप की आंखों में एक तेज़ी आ गई। दोनों ऐसे खड़े रहे जैसे जनम-जनम के बैरी कुत्ते-बिल्ली में मुठभेड़ हुई।

जब दिलीप की नजर ने चैन लिया, डिब्बा भर चुका था। दोनों बच्चे खेल रहे थे। एक कोने में सामान, सामान पर सामान···सिर्फ सामान, औरतें खुद सामान, जिन्हें मर्द रख रहे थे, मर्द स्वयं सामान जिन्हें अभी-अभी कुली ने चढ़ाया था···

दोनों गोरे उतरकर चाय पीने चले गये थे। दिलीप को विस्मय हुआ। एक बर्थ पर चार औरतें, दूसरी बिल्कुल खाली, तीसरी पर सात आदमी, जैसे एक ही डाल पर बंदरों के अनेक बच्चे।

दिलीप ने कहा: "उधर क्यों जगह छोड़ दी आप लोगों ने?" बड़ी मूंछों के एक ठाकुर साहब ने समझदारी दिखाते हुए कहा, "दो गोरे बैठे हैं न साहब! क्यों ततैये को छेड़ा जाय, और क्यों वह डंक मारे?"

बगल में बैठे लालाजी ने हंस कर व्यंग से कहा: "आप ही न बैठ जाइये?"

दिलीप के हृदय में भीतर ही भीतर जैसे किसीने सुई चुभो दी।

लालाजी का सूट-बूट में लैस साथी हंसा। दिलीप को लगा जैसे जहर का काढ़ा पानी में उबल रहा हो। सारा हिन्दुस्तान सिमटकर एक कोने में बैठा है, क्योंकि हुक्मरान के बैठने का मतलब है उनका पैर फैलाकर आराम करना। दिलीप ने देखा, बंगाली बाबू ऊंघ रहा था।

जिस समय दोनों गोरे डिब्बे में घुसे, उनकी नीली आंखों पर डिब्बे का सन्नाटा छा गया। दिलीप गोरे की आधी सीट पर चैन से बैठा था।

गाड़ी चल दी। गोरों ने कुछ नहीं कहा। दोनों चुपचाप बैठ गये।

बच्चे ऊधम करने लगे थे। बुढ़िया दादी कभी-कभी हंसकर उन्हें डांट देती थी। लड़के ने कहा: "दादी! तुम तो कभी साइकिल पर चढ़ती ही नही।" डिब्बे में सब लोग हंस दिये। ऊंघते हुए बंगाली बाबू ने भी एक बार मुड़ कर देखा किंतु दोनों गोरे पत्थरों

की तरह बैठे थे। बच्चों की ओर उनका कोई ध्यान नहीं था।

वे प्यारे-प्यारे बच्चे। दूध से धुले हुए। लड़की ने लड़के से एक घूंघट काढ़े बैठी लड़की की तरफ दिखा कर कहा : "देख बन्नू, पर्दा!"

लड़के ने देखा। कहा : "हट, घूंघट!"

लड़की खिलखिलाकर हंसी। एकदम मां से कहा : "अम्मा! मुंह क्यों ढक लिया है ऐसे?"

सब नीरव। मां ने धीरे से फटकारकर कहा —"चुप रह।"

किंतु लड़की ने फिर कहा : "दादी! कैसा मुंह ढक लिया है?"

दादी ने मुस्कराकर कहा, "तेरा जब ब्याह होगा तब तेरे भी ऐसे ही घूघट डालेंगे हम!"

"धत्," लड़की ने शरमाकर कहा और सब धीरे मुस्करा दिये।

लड़के ने कहा : "मां! सीटी बज रही है।"

"सीटी कहते हैं?" मां ने रोककर कहा।

"तो?"

"विसिल।"

"तो सीटी नहीं कहते?"

"नहीं?"

लड़का कुछ सोचने लगा। डिब्बे में किसी के हल्के-हल्के गुनगुनाने की आवाज गूंज गई। पैसेंजर की उस मौत की सी धीमी चाल में वह गूंज ऐसे छा गई जैसे मरे हुए आदमी की लाश पर धीरे-धीरे बहुत दूर से गिद्ध उतरने लगता है। गोरे ने अपने साथी से कुछ कहा। एक कर्कश आवाज। दिलीप समझा, शायद और कोई नहीं।

बंगाली बाबू ने झुककर कहा : "कहां जा रहे हैं आप?" उनका स्वर बहुत धीमा था। अपनी सीमा में वह बादशाह थे। जोर से बोलना शायद उनके लिए असम्भव था। गोरे ने सुना फिर संक्षिप्त उत्तर दिया—"देहली," जैसे अब कुछ मत पूछना; इस बार उत्तर दे दिया है, इसे ही अपने ऊपर अहसान समझ लो।

मन उचट गया। दिलीप ने बाहर देखा। गोरे खामोश बैठे थे।

विलायत में लेबर सरकार है। और यह हमारे जैसे अब भी शासक हैं। दिलीप के मन पर जैसे छिपकली रेंग रही थी। गोरे बैठे रहे। फिर उन्होंने सिगरेट जला ली और खामोशी से पीने लगे।

बाहर खेत भाग रहे हैं। उनके पीछे गांव है। वे कभी नहीं भागते, उनके निवासी भी स्थिर हैं, जमीन और आसमान भी। सब लोग ऊंघने लगे। दिलीप उठा। अपने बैग में से एक किताब निकालकर पढ़ने लगा। गोरे ने बैठे ही बैठे पढ़ा Pushkin (पुश्किन)।

और उसने घूर कर दिलीप की ओर देखा। दिलीप ने कोई ध्यान नहीं दिया। उस हिन्दुस्तानी के हाथ में यह किताब। रूस के महान् क्रान्तिकारी कवि का अंगार स्वर! जार के साम्राज्य ने इस पर अपना पूरा वार किया था और एक दिन मजदूरों ने

उस साम्राज्य की जड़ों को खोद करके फेंक दिया···

गिद्ध बैठे हैं लेकिन पंजा नहीं गड़ा सकते क्योंकि अब तो लाश भी जिंदा है। क्योंकि उसमें पानी की जगह खून है, उसका गुस्सा भी ठंडा होकर तेजाब की तरह दीवाना हो चुका है।

आजादी का एक गीत। दिलीप पढ़ रहा है। गोरे देख रहे हैं। देख रहे हैं अपने वैभव के सामने सिर उठाते गुलाल की स्पर्धा। जिसके लिये उन्होंने कोड़ों की मालाओं का इनाम दिया था। आज वह अपने जख्मों को गिना-गिना कर वार करना चाहता है, बदला लेना चाहता है···

एक खंखारने की आवाज। बड़े मियां उठकर पाखाने की तरफ चले। गोरों ने उनके लिये पैर भी नहीं हटाये। बड़े मियां ने कहा, "साहब! जरा पैर हटाने की इनायत फरमायें।"

गोरा भुनभुना रहा है। साथी हंस रहा है, जैसे और बैठोगे इन लोगों में। मलका विक्टोरिया की-सी हंसी।

ठाकुर साहब ने एकाएक टोककर कहा—"ए मियां! इसमें खाने का सामान है।"

मौलाना का बड़ा हाथ रुक गया। पलटकर बोले—"तो आपने अपनी रेल समझी है? कहां से जाएं? उठाइये इसे।" लड़की ने घूंघट उठाकर देखा।

दिलीप को हंसी आ गई। गोरा आराम से आधी बर्थ पर लेटा है। दिलीप टांग फैलाये है। और सामने की सीट पर बैठे खचाखच लोग इस रेल को अपनी और अपने बाप की जायदाद कहकर लड़ रहे हैं।

मन मे आया, ठाकुर और मियां को उठाकर कसकर दो-दो चांटे मारे। किन्तु यह नहीं हो सकता। इस फूट को रोकने को जो होगा वह कानून के खिलाफ होगा जैसा मजदूर को पेटभर खाने के लिये हड़ताल करना, हिन्दुस्तानियों को आजादी का मखौल करना···

ठाकुर साहब ने उठकर चादर में बंधी बड़ी थाली को उठा लिया। मियां साहब पाखाने में घुस गये। जब वह लौट आये, ठाकुर साहब ने थाली को वहां रख दिया और अपनी जगह पर आकर बैठ गये।

पढ़ते-पढ़ते थक कर दिलीप ने किताब बन्द कर दी। एक गोरा ऊंघ रहा है। दूसरे की मुद्रा से लग रहा है कि वह दिलीप से कुछ पूछना चाहता है किन्तु दिलीप का मुंह कठोर है जैसे स्वयं उसका, जिस पर गर्व है, घृणा है, तिरस्कार है, जैसे वह एक बड़ी हड्डी को काटकर कांच की आंखें गढ़ कर बनाया गया हो।

गोरा उठा। उसका बक्स सबसे नीचे दबा पड़ा था। गोरे ने बायें हाथ से खाने के थाल को उठाकर फर्श पर रख दिया। दायें हाथ से बक्स सरका कर अपना बक्स मुक्त कर दिया। कुछ सामान निकाल कर यूरोपियन पाखाने में हाथ-मुंह धोने चला गया।

दिलीप ने मुस्कराकर कहा—"ठाकुर साहब! यह क्या विलायत का कोई

ठाकुर है ?"

मौलाना ठठाकर हंसे। कोई उत्तर नहीं। दूसरे गोरे की नींद टूट गई। और ठाकुर साहब ऐसे बैठे थे जैसे अब कुछ और कहते ही दांत किचकिचा कर टूट पड़ेंगे।

सांझ की धुंध आकाश में उतर कर खिड़कियों की राह रेल में हवा के फर्राटे पर इधर से आकर उधर निकल जाती थी। बाहर आकाश के कंधों पर खूनी रंग का कपड़ा झलक रहा था जैसे बहुत दूर एक लाल झंडा है, जो दुनिया की छोर पर खड़ा होकर आकाश और पृथ्वी दोनों को चुनौती दे रहा है। दिलीप मुस्कुराया। उस सन्नाटे में जिंदगी पनाह मांग रही है, जैसे आसमान नहीं, हमें सिर पर एक साया चाहिये, चाहे आसमान में खुद खुदा ही क्यों न हो। गाड़ी रुक गई। दिलीप स्टेशन पर उतर कर घूमने लगा। तीसरे दर्जे में भयानक भीड़ थी ही, एक दूसरी भीड़ ठेलमठेल कर रही थी। दिलीप देखता रहा।

काश, दिलीप की जगह मौत के घाट उतारी गई मेरी एन्तोनेत होती तो सोचती जैसे वेस्टील के दरवाजे पर प्रजा लहरों की तरह टकरा रही हो, मगर सम्राट की कृपा है कि उन्हें रहम की सजा दी गई है कि भटको। लेकिन दिलीप को लगा जैसे कुत्ते पकड़ने की गाड़ी देखकर कुत्ते गिरफ्तार होने स्वयं टूट रहे हों और अन्दर वाले दमतोड़ कर उन पर भूंक रहे हों कि मरने का अधिकार हमीं को है, हमीं को है। पतले-दुबले एक बूढ़े मुसलमान ने तड़क कर कहा—"आया हिन्दू-मुसलमान का बच्चा। और वह बगल के डिब्बों में दो-दो एक-एक बैठे हैं तेरे बाप हैं। उन पर जाकर कानून चलाये तो देखें ?" फिर जोर से कहा—"आने दे बे उन्हें ? बेचारे।"

दरवाजा नहीं खुला। उसका खुलना असम्भव था, क्योंकि उसके पीछे सामान जो इंसान की बपौती का एक साप सा है, जिस पर कोई हाथ रखे तो इंसान भी सांप की तरह जहर उगलता है। लोग खिड़कियों में से भीतर कूदने लगे, जैसे दोजख में घुसने को कोई राह चाहिये।

दिलीप अपने डिब्बे में लौट आया। तीसरे दर्जे के डंडे पकड़े कुछ लोग लटक गये थे। मौलाना कह रहे थे—"अबे दूसरा दर्जा है···रुक जायेगी। अठगुने दाम देने की हैसियत है तेरी···यह गद्दे···"

अब गाड़ी आगरा छावनी पर रुक गई। बंगाली बाबू ने उसी धीमे लहजे से पूछा—"गाड़ी कितनी देर ठहरेगी ?"

"एक घंटा ?" पीछे खड़े हुए ठाकुर साहब ने पूछा।

एक मरियल जवान ने पतली आवाज में कहा—"जी हां।"

शायद प्लेटफार्म पर चलते-चलते किसीने मुड़कर देखा कि जिसकी आवाज इतनी सुरीली है वह न जाने कैसा होगा, और शायद यह सोचते हुए बढ़ गया कि रेडियो कितनी नायाब चीज है।

ठाकुर साहब ने ताना मारते हुए कहा—"बला से आपकी।"

वे उतरने का इंतजाम कर रहे थे। घूंघट लपेट पर अपनी उंगलियों की 'बी' में

से देखती, कभी इससे टकराती, कभी उससे, लड़की भी खड़ी हो गई। दिलीप को लगा वह एक हाथी का बच्चा था जिसे पहली बार सिकन्दर से लड़ने भेज दिया गया था। लल्लू ने उठकर अंगड़ाई ली जैसे बिस्तर छोड़ रहा हो।

देखते-देखते सारा डिब्बा खाली होने लगा। गोरे उतर गये। एक तरफ सिर्फ दो औरतें बच रहीं। बुढ़िया ने दिलीप से कहा—"बेटा ? तुम कहां जाओगे ?"

"जी, मैं बस अगले स्टेशन पर उतर जाऊंगा।"

"तब फिर ?" अधेड़ औरत ने न जाने किससे सवाल किया।

"कहां जायेंगी आप ?"

"दिल्ली जायेंगे बेटा ! अब तो इस गाड़ी में इन गोरों के सिवा कोई बचा ही नहीं। कहां गये हैं जाने ? मरे सांझ तो इनके शराब पीने की बेला है ?"

औरत के चेहरे पर एक सहमी हुई छाया थी—जैसे अब ?

दिलीप ने समझा। कुछ कहा नहीं। डिब्बे के दरवाजे पर खड़ा होकर बाहर देखने लगा। औरतें चुप हो गईं।

बाहर अपने-अपने डिब्बों से निकल कर गोरे सिपाही चाय पी रहे थे। उन्हें फौजी होने के कारण चाय मुफ्त मिल गई थी। और वह हंस रहे थे; क्योंकि कुछ छोटे-छोटे लड़के हाथ में बुरुश लिये उनके जूतों को मल-मलकर कह रहे थे—साब बख्शीश, साब बख्शीश !

कैसा अजब मजाक था। यह तो अंग्रेजों ने तब भी न किया होगा जब वे रोमनों के गुलाम थे, क्योंकि तब वह जंगली थे।

एक गोरे ने छोटे से लड़के को उठा लिया और हवा में दो-चार बार घुमा दिया। गोरों की आदत पड़ गई है। हर शहर में उन्होंने यही देखा है। यहां हिन्दुस्तानी काम करके भी अपने को वेतन का, मजदूरी का हकदार नहीं समझता। जो मांगता है, वही—साब बख्शीश, साब बख्शीश···

और वे गिलबिले लड़के, जिन्हें देखकर यही लगता है कि इनके देश में सदा ही अकाल होगा। यह एक पेट है। इंसान सिर्फ पेट है। पेट की लाश पर अरस्तू है। अरस्तू की लाश पर लोग कहते हैं खुदा है, पर उसे आज तक किसीने नहीं देखा। दिलीप का हृदय विक्षुब्ध है।

स्वयं गोरों का हृदय मनुष्य के इस अपमान से क्षुब्ध है। यही है क्या उनकी सल्तनत की शान ? क्या योरोप के लोगों ने हिटलरी शहतीरों के नीचे दबकर यही नहीं किया ? और वे लड़के से दिलीप की उम्र के गोरे। वह क्या देख रहे हैं ? उनकी आंखों में आज राष्ट्र का नाम लेकर धर्म अपनी दुहाई क्यों नहीं देता ? क्यों वे सफेद रंग के अभिमानी आज नफरत से उन लड़कों में ठोकर मार देते जैसे उनके बाप-दादों ने उसे ईश्वरदत्त अधिकार समझकर आज तक किया है ? वे अपने पैरों को हटाकर हटा लेते हैं। आज रईस को यह सोच कर झेंप लग रही है कि ऐश का नाम देकर उसने अपने वैभव को दिखाने के लिए जिस औरत से खेल किया है वह सिर्फ एक वेश्या है।

एक लड़के ने कहा—"बाबू, कुछ दे दो। दो दिन का भूखा हूं।"

दिलीप ने चौंक कर देखा। वही लड़का जो अभी गोरे के हाथों पर था, सामने दयनीय सूरत बना कर खड़ा था और यह भी इंसान का बच्चा है जो परदेशी को हंसा-रिझा कर उससे बख्शीश मांगता था—पेट के लिए। और अपने देश वाले के सामने रोकर भीख मांगता है—अपने देश के नाम पर, पैसे वाले को उसके पैसों की अभिशप्त गुलामी की याद दिलाकर—पेट के लिए।

कहां है ईमान? कहां है कोई भी आदर्श? मन में आता है, उससे पूछे—पर-देसियों से भीख मांग कर क्यों देश के नाम पर थुकवाता है। मन में आया दिलीप पांच रुपये का नोट उठाकर फेंक दे—जा मत मांग। ऐसे गोरे देखें, और समझें कि भारत में कितना विक्षोभ है···मगर गरीबी नहीं मिटेगी उससे, लड़का भिखारी ही रहेगा, और यह विक्षोभ केवल उनका रहेगा, जिनके पास पांच रुपये होंगे। एकन्नी दे दी, और दिलीप ने देखा—लड़का फिर उन्हीं गोरों के पास खड़ा था।

चीटीं वहीं जायगी जहां गुड़ है। पानी वहीं गिरेगा जहां गड्ढा है। आंखें वही अटकेंगी जहां एक सुन्दर मुख होगा। भीख के हजार मुंह हैं। उनमें हजारों जहर के टुकड़े हैं जो मनुष्य की सत्ता का एकमात्र संबल—उसका सम्मान डसकर मूर्छित कर देते हैं।

दिलीप की खुली आंख को देखकर वह मुंह फेर कर खड़ा हो गया। जैसे उसे कोई मतलब नही। वह क्या कोई भीख मांग रहा है।

दो दिन का भूखा बच्चा है। झूठ ही सही, मगर जिसकी जिन्दगी की हवस ही भूखी है वह क्या भीख मांग कर पाप करता है? रुपये वाले पाप करके भगवान् से प्रार्थना करते हैं। दया की भीख मांगते हैं। मगर वह स्मान से भीख मांगता है, पेट के लिए। पेट भरना तो कोई पाप नहीं? फिर यह कैसा बहाना? कौन-सा आत्मसम्मान इस लड़के में बाकी है जो अब भी मुंह फेरने का साहस इसमें शेष है? इतना बड़ा झूठ बोलकर भी आज इस तनिक से झूठ पर इतनी हिचकिचाहट? क्योंकि दिलीप देख रहा है। व्याकुल होकर दिलीप ने आंखें फेर लीं। मैं जब तुझे रोटी नहीं दे सकता तो क्या तुझे किसी भी तरह खाते हुए भी नही देख सकता? काश तेरा बाप एक पढ़ा-लिखा धनी होता और फिर देखता कि तू दर-दर लोगों के जूते साफ करके अपने पेट की आग नही बुझा रहा है दीवाने, क्योंकि उसे भी सिखाया जाता कि 'मनुष्य जन्म चौरासी लाख योनियों में मिलता है। यह भी तेरे पिछले जन्मों का पुण्य ही होगा और तू भी पशु की तरह फिर एक गुलाम होकर मर जाता।'

इसी समय उसका ध्यान टूटा। एक अधेड़ उम्र की लम्बी मेम ने आकर खिड़की पर बैठी बुढ़िया से कहा—"आप दिल्ली जायेगा?"

"जगह है?" मेम ने नम्रता से पूछा।

"आइये, आइये" और फिर अपने साथ की जवान औरत की तरफ देखा। जैसे चलो अंग्रेज है तो क्या, है तो औरत? उस सांत्वना के आनन्द में मेम की बच्ची उछल-कर भीतर घुस आई। मेम ने भी भीतर प्रवेश किया। बैरा ने सामान रख दिया और

बगल के नौकरों के डिब्बे में चला गया। मेम ने अपनी सिगरेट जला ली।

बुढ़िया उसी की ओर दांत खिलाये बैठी रही। अधेड़ औरत बाहर देखने लगी। कुछ देर डिब्बे में सन्नाटा रहा। तीनों बच्चे इस समय आपस में एक दूसरे को देख रहे थे। दोनों हिन्दू बच्चे अंग्रेजी नहीं जानते, मेम की बच्ची हिन्दी जानती। अभी उन्हें मां की बोली के अतिरिक्त और कोई बोली जानने की जरूरत भी क्या है? कहां हैं उनके लिए देश? इस समय तो वे सारे संसार में एक हैं। कैसी भी संस्कृति हो, वे एक-दूसरे के खेलों से घृणा नहीं कर सकते।

बच्चों ने शोर मचाया—"दादी! दालमोठ, पूरी।"

दादी ने कहा—"अरे रात हो चली, खा लो, फिर सो जाना।"

बच्चे पूरी और मिठाई खाने लगे। उन्होंने मेम की बच्ची से पूछा भी नहीं।

मेम की बच्ची थोड़ी देर अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से देखती रही, फिर जैसे रहा नहीं गया। कहा—"मम्मी!"

मेम ने मुड़कर देखा। पूछा—"क्या है?"

अंग्रेजी ही में बच्ची ने उत्तर दिया—"भूख लगी है।"

मेम ने स्नेह से देखा। फिर मुस्करा दी।

और दिलीप ने देखा, मेम की वह खूबसूरत बच्ची अखबार के टुकड़े में से निकाल कर डबल रोटी के मक्खन लगे टुकड़े खाने लगी।

दिलीप का मन हर्ष से कांप रहा है···

यहां भूख का मतलब रोटी है। भीख नहीं। यहां घृणा साम्राज्य में वह मेम एक विजयिनी के रूप में बैठी है, जिसने अपने अहंकार के दानव को गला घोंटकर मार डाला है, यहां बच्चे न गुलाम हैं न शासक···

मेम की यह बच्ची शाहजादी एलिजाबेथ न सही, किन्तु क्या इन्सानियत की पहली मंजिल तय नहीं कर गई। कब आयेगा वह दिन जब आदमी गुलामी के कौर निगलकर उगलने का कठोर परिहास छोड़ देगा।

दोनों गोरे लौट आये। बच्ची ने एक की ओर मुस्करा कर देखा। गोरे के मुंह पर हंसी नाच गई। वह प्रयत्न करके नम्र होना चाहता है।

किन्तु मेम ने उसे एक नीरस शुष्क उत्तर दिया। वह उसकी ओर कोई दिलचस्पी नहीं लेना चाहती। और गोरा फिर भी नम्र है। स्त्री की यह अहम्मन्यता अब उसे स्वीकार है। क्षण भर पहले उसे यह असंभव था क्योंकि शायद तब यहां सिर्फ गाय, भैंस और बकरियों का जमघट था। उन दो बच्चों की सरलता पर जो व्यक्ति स्याही की दवात बना बन्द सा बैठा था, इस बच्ची की एक मुस्कान पर वह जाना चाहता है—कठोर, जो घर से दूर है, जिसका जीवन फौज की एक बन्दूक मात्र है···और वह इन्सानियत और हैवानियत के गचके खा रहा है, जिसके दंभों की बैलगाड़ी बहुत धीरे चल रही है···सरक रही है···

दिलीप का हृदय ऊब रहा है।

बच्चे आपस में खेल रहे हैं, ऊधम कर रहे हैं, किलकारियां भर रहे हैं, साहब की बच्ची के साथ, जैसे वे दोनों बराबर हैं, उनमें कोई फर्क नहीं, क्योंकि आज दोनों के कोई स्वार्थ नहीं···

सुना, प्लेटफार्म पर सेठ अपने साथी से कह रहा है—"देखिये तो, क्या जमाना है। आज मजदूरों में मिठाई बंटवाई कि चलो, इनका भला हो, मगर वे समझे वह कोई हमारी बिल्कुल नई चाल है?"

एक झटका लगा। गाड़ी फिर चल पड़ी और ऐसे ही यह रुकती-गिरती चलती ही चली जायगी। लेकिन दिलीप के दिल में ख्याल आता है कि वह मिठाई मिठाई नहीं है, वह इंसान के रोटी मांगने पर उसे आस्मान की ओर दिखाकर उसके ईमान के सांप जिन्दा करना है, उसकी इंसानियत की नींवें खोदकर उनमें लुटी हुई अस्मत की हड्डियां बिखेरना है कि फिर जो मीनार खड़ी हो वह कभी न गिरे···नहीं ही गिरे···

किन्तु बच्चे खेल रहे हैं और वे हंस-हंस कर ही उसे गिरा देना चाहते हैं···उसका नामोनिशान मिटा देना चाहते हैं।

['47 से पूर्व]

लहू और लोहा

आस्मान में रात का घना अंधियारा अब हल्का होकर धीरे-धीरे आते उजाले में घुलने लगा था। सुबह की ठंडी हवा भी इस घिचर-पिचर में कुछ नम-सी, कुछ-कुछ ठंडी-सी देह में लग रही थी। आस्मान का आखिरी तारा भी अब चलने लगा था।

चारों ओर निस्तब्धता छा रही थी। कभी-कभी कोई अपने बिस्तर पर से खांस उठता था, और फिर झिल्ली जैसा सन्नाटा हवा पर तनने लगता था।

मजदूर बस्ती में लोग सो रहे थे। वे छोटे-छोटे घर, वह कोठरियों की बेबस जिन्दगी, इस समय आराम की आखिरी सांसें खींच रही थीं—जिसके बाद, जागते ही, परेशानियों का झोंका लगनेवाला था।

कुछ जो जाग गए थे उनमें कटोरी भी थी, जिसको जल्दी उठ जाने की आदत थी। कुछ आदत, कुछ खांसी का रोग जिससे फेफड़े उसे मजबूर करते थे कि वह उठे। कुदरत ने आराम उसकी जिन्दगी से छीन-सा लिया था। वह खांसती थी, कफ थूकती थी।

वह बूढ़ी हो चली थी, लेकिन आंखों में एक तीक्ष्ण चमक थी। प्रेमलता तथा अनेक मजदूरों में काम करने वाले बाबुओं को मजदूर क्वार्टरों में छिपाने में उसने बड़ा हिस्सा लिया था। वे नेता छिपकर ही रह सकते थे, क्योंकि अन्यथा उन्हें बिना वारंट गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिया जाता।

आंखों के चारों ओर गड्ढे पड़ गए थे, जिनमें फंदा डाले बहुत-सी झुर्रियां लटकी हुई थी। लेकिन उसका माथा कुछ चौड़ा था जिससे कभी-कभी उसे देखकर भ्रम हो जाता कि वह कोई मर्द है। उसकी मोटी आवाज जिसमें एक तीखापन था, चुभीली-सी सुनाई देती और फिर हवा में गूंज छोड़ जाती। वह चार बच्चों की मां थी।

एक बार जब बाबुओं की मीटिंग हुई थी, उसमें उसे भी बुलाया गया था। और भी कई मजदूरों के चुने हुए आदमी गए थे। वहां उनसे कहा गया था कि वे अपनी शिकायतें पैदा करें, ताकि लोग स्वयं उन्हें सुनें। वे बताएं कि शांति के नाम पर उन्हें कैसे ठगा जा रहा है।

उस मीटिंग में उसने 'माइक' पर भाषण दिया था, "प्यारे भाइयो और बहिनो, हमारी तकलीफ बहुत बड़ी तकलीफ है जी। सो भाइयो और बहिनो, सुनो और हमारी बिथा को समझो। अगर हम झूठ-मूठ कहते हैं तो आप फैसला ना करना जी। हम गरीब

आदमी हैं, रोटी की बात करते हैं···

एक अधमैली साड़ी और हरा सस्ता खुरदुरा दुशाला-सा उसका बदन ढंके थे, माथा उठ गया था, हाथ की कांच की चूड़ियां बज उठी थीं।

वह कह रही थी—

"हम तनखा की बात करते हैं, तो हमारी शिकायतों पर मालिक लोग गुस्सा होते हैं। और तुम मोटे होते हो तो क्या हमारे बच्चों को भूखा मरना पड़ेगा···"

निहायत साफ बात थी। कोई बड़ा शब्द नहीं आया। न्याय और नीति को नीचे खींचकर कचहरी में लाया गया था।

लेकिन एकाएक वह चौंक उठी। भारी-भारी बूटों की आवाज आ रही थी। उसने देखा और कांप गई।

फिर प्रेमलता के शब्द कानों में गूंजे, "जब तुम्हारा संगठन ये लोग झूठ बोलकर नहीं तोड़ सकते, तब फौजें भेजकर तुम्हारी हिम्मत तोड़ते हैं। वे इस निजाम को तलवार के बल पर कायम रखते हैं।"

और फिर चारों ओर से बस्ती को सिपाहियों ने घेर लिया था। प्रेमलता की आवाज कानों में गूंज रही थी। पहले कटोरी इसे नहीं समझी थी, पर आज समझ में आ गया है—साफ समझ में आ रहा है।

मिल का भोंपू बजकर शान्त हो चुका था। कोई भी काम पर नहीं गया। वह लाइन में इधर-उधर देखने लगी।

एक जमाने में यहां आदमी चुपचाप घिसा जाता था और वह यह भी नहीं जानता था कि यह उसके ऊपर होता हुआ अत्याचार था, क्योंकि इस दुनिया में यह अत्याचार रोजमर्रा का हिसाब हो गया था। नीति और न्याय की कोठी इसी बेईमानी पर कायम की गई थी।

कटोरी ने देखा और समझा। अभी कुछ दिन पहले सात-आठ सिपाहियों को मजदूरों ने भगा दिया था, क्योंकि वे किसी मजदूर नेता को गिरफ्तार करने के लिए तलाश करने आए थे। जब वह नहीं मिला तो सिपाही खिसियाकर गालियां देने लगे।

कुछ देर तो सुनते रहे, किंतु जब सिपाहियों का हौसला सीमा पार करने लगा तो उन्होंने उनको पकड़ लिया और धक्का देकर लाइन के बाहर कर दिया।

कटोरी की समझ में उजाला छाने लगा। यह हड़ताल का जवाब था। पहले मजदूरों में भीतरी जासूस पैदा होते थे, पैसा पाकर भाइयों के सर तोड़ते थे, सभाओं में ईंट फेंकते थे, अब उन सबकी पोल खुल गई थी और जान-बूझकर फूट डालनेवाले सबकी घृणा के पात्र बन गए थे।

"पुलिस न आती तो मालिक क्या करते?" प्रेमलता ने ठीक कहा था, "हुकूमत उनकी है, फौज उनकी है, पुलिस उनकी है···"

कटोरी का हृदय उस कीड़े की तरह छटपटाने लगा जो उड़ते-उड़ते किसी चीज से टकरा कर उल्टा गिर जाता है और सीधा होने के लिए जी-तोड़ कोशिश करता है।

अब न कोई अन्दर से बाहर जा सकता था, न कोई बाहर से भीतर आ सकता था। चारों तरफ सिपाही ऐसे खड़े थे जैसे जानवरों को घेरकर कटीले तार लगा दिए गए हों—जैसे वे गाय या भेड़ें हों, जिनके खो जाने का डर हो।

सिपाही मजूरों में से उन लोगों को चुन कर ले जाना चाहते थे जिनमें इतनी अक्ल थी कि वे लुटेरे की असली शक्ल की पहचान कर सकें। उन्हें मिटा देना ही ठीक था।

मजदूरों में जाग पड़ गई। वे घरों से निकल-निकल कर बाहर आने लगे। कुछ स्त्रियां चीखने-चिल्लाने लगीं। पर कुछ ही देर में वह आवाज सिसकियों में बदल गयी। कैसे भी रहते थे, भूखे-नंगे, पर जिंदा तो थे। आज वह हक भी छीना जा रहा है क्योंकि वे अपने आपको इंसान बनाना चाहते हैं।

कुछ लोग बीच में इकट्ठा हो गये। वे सहमे-सहमे-से आपस में फुसफुसाते हुए बातें करने लगे। रोज ही सिपाही आते हैं। कहीं न कहीं रोज तलाशी होती है, रोज ही तकरार होती है। दिन-रात मुसीबत लगी रहती है।

रामभरोसे अधेड़ आदमी था। उसके बदन पर इस समय एक कुर्ता था। पाँव नंगे थे। सिर पर अंगोछा लपेटा हुआ था। सुदृढ़ देह थी। उसको देख कर लगता था कि वह एक महत्वपूर्ण आदमी है जो आन के लिये मर सकता है।

वह क्षण भर घूरता रहा। फिर उसके होंठ उसकी मूंछों में कांपने लगे जैसे जिसकी आशा थी वही होकर रहेगा। उसने धीरे से पास खड़े सुक्खन से कहा, "डराने आये हैं।"

सुक्खन समझा। उसने आंखों की तरेर से उसकी बात को स्वीकार किया।

धूप की पहली किरणों में बंदूकों की नलियां चमकने लगी थी। अब सिपाही करीब आ रहे थे। उनकी बदूकों के मुह जैसे कोई कातिल आंख थी जो घूर रही थी। मौत का-सा भीषण भय अब उनकी चमक से आंखों में उतरने लगा था। भारी बूट जमीन पर गूंज रहे थे।

रामभरोसे की चुनौती भरी आंखों में गुस्से की झलक थी। सुक्खन ने देखा, उसका सीना विक्षोभ से फूल कर दुगुना हो गया है।

निकट आकर सिपाही रुक गये।

कठोर चेहरे का एक दरोगा आगे बढ़ा। उसकी तनी हुई मूंछों ने उसके होंठों पर एक घनापन ऐसे छा दिया था कि उसके भीतर का मनुष्य जैसे खो गया हो। वह हट्टा-कट्टा आदमी था। सिर पर चमकता सुनहला झब्बा लटक रहा था और उस पगड़ी में से ऐसे दिखता था जैसे लाल चिलम में से अंगारों की झड़ी लग गयी हो। दरोगा निकट आ गया और सुक्खन को घूरने लगा। उस दृष्टि की शक्ति से शहर के बहुत से लोग कांप उठते थे।

सुक्खन निर्भय खड़ा रहा। उसने उसे ऐसे देखा जैसे वह एक खूनी परिन्दे को

देख रहा हो। उसे विश्वास था। वे लोग जो यहां छिपे हुए थे, भाग चुके थे।

उसे अब भय नहीं था। केवल प्रेमलता शेष थी। पर क्या कर लेंगे यह लोग। देख-दाख कर चले जायेंगे। कुछ नहीं मिलेगा इन्हें।

दरोगा उस दृष्टि से चिढ़ गया। सुक्खन ने देखा—दरोगा के हाथ में एक छपा हुआ पर्चा जिसे उसने खोल कर पढ़ा, "तनखा में कटौती न की जाय। पिछली हड़ताल में जो मजदूर गिरफ्तार किये गए थे, उन सबको काम पर रखा जाय। रूई अच्छी दी जाय। हमारे नेताओं को जेल से रिहा किया जाय···"

पढ़ते-पढ़ते वह हंस उठा। उस हँसी में घृणा थी, अपमान था और सबके ऊपर एक तिक्त व्यंग्य था जैसे तुम और यह हौसला ?

उसने गंभीर स्वर में पूछा, "इसीलिए हड़ताल की गयी है ? पैदावार कम की गई है ?"

सुक्खन के होंठों पर मुस्कराहट छा गई। उसने कहना चाहा, 'आपको कम तनखा मिलती है। आप हमसे पूरी वसूल करके अपना काम चलाते हैं, हमारे पास भूख और गुलामी के सिवा है ही क्या ?'

सीखे हुए मजदूर निडर थे। लेकिन कुछ ऐसे भी थे जो मन ही मन कांप रहे थे। उनके दिलों में दहशत छाने लगी थी। सदा के अत्याचारी दुश्मनों को देखकर उनके दिल पर सांप लोटने लगा था।

चारों तरफ़ पुलिस के सैकड़ों जवान खड़े थे। उनके हाथों में डंडे, लाठी, बन्दूकें, चमक रहे थे—इंसान का भेजा फाड़ देने वाले डंडे !

बूढ़े और बुढ़ियों ने देखा और डर से थर्रा उठीं। बच्चे फटी आंखों से देख रहे थे। उनके दिल में दहशत का भूत अब चिल्लाने लगा था, लेकिन बीच में खड़े मजदूर अभी भी डटे खड़े थे।

हीरादेई ने बुड़बुड़ाकर कहा, "मैं तो पहले ही कहती थी कि वे बड़े आदमी हैं। उनसे हम लड़कर नहीं जीत सकते। मैया-मैया, बाप-बाप करके ही जो मिल जाए, वही हमारे भाग का सही। पर तुम तो लड़ के लेनेवाले हो। कही ऐसे कुछ होता है···"

वह अपने बच्चे को छाती से चिपकाकर भय से कांप उठी। उसकी आंखों में डर हुमक रहा था।

किंतु मजीद ने उसे घुड़का, "चुप रह। डरती है। जान ही तो लेंगे। प्रेमलता को क्या कोई कमी थी जो घर छोड़कर इस गंदगी में हमारे लिए मरती है ?"

बात ठोस थी। हीरादेई चुप हो गई। मजीद आगे बढ़कर भीड़ में मिल गया। हीरादेई का कलेजा मुंह को आने लगा, "यह नासपीटे पुलिस वाले ! यह क्या किसी को देखते हैं ? इनके भीतर क्या मानुस का हिया होता है ? जिसको देखा उसी पर टूट पड़े !"

तभी दरोगा ने कड़ककर कहा, "कहां है वह लड़की—बोलो। एक-एक का घर खुदवा दूंगा। उसे आज नहीं भागने दूंगा। देखते हो, मेरे साथ कितने आदमी हैं ?

कमीने, बदमाश !"

यह कड़क निष्फल हो गई । तपिश बुझ गई ।

दरोगा ने एक सिपाही को इशारा किया ।

सब खामोश खड़े रहे, जैसे उन्हें कोई मतलब नहीं । वे किसी प्रकार की सहायता नहीं देना चाहते । जवान-जवान मजदूरों के चेहरों पर प्रतिवाद झलक रहा था, जैसे कोई सहयोग नहीं मिलेगा ।

सिपाही ने मुन्नूलाल की गर्दन पकड़कर धक्का दिया और बोला, "बता सूहर, बता हरामजादे···"

पर मुन्नूलाल चुप रहा । सिपाही ने उसके मुंह पर इतने डंडे मारे कि वह खून थूकने लगा । दांत टूट गया । मजदूर खूनी आंखों से देखते रहे । उनकी आंख में एक दृढ़ता थी । वे घूर रहे थे—जैसे अगर इंमान को इंमान समझना तुम्हें नही आता, तो वे सिखा सकते हैं ।

दरोगा सहम गया । उसने चिल्लाकर कहा, "चार्ज ! लाठीचार्ज !"

लाठी चार्ज होने लगा । कुछ देर मजदूर अकड़कर खड़े रहे, मगर उनके सैकड़ों लाठियों के सामने घुटने लड़खड़ा गए । औरतों पर लाठियां चलने लगीं, हवा में खून पुकारने लगा, बच्चे सहमे हुए से चिल्लाने लगे, किंतु नादिरशाही हाथ उठकर नीचे नही झुका । कुछ मजदूर भाग-भागकर अपने घरों में घुसने लगे । उनको भागते हुए देखकर दरोगा गरज उठा, "पीछा करो ।"

सिपाही लाठी उठाकर पीछे दौड़ने लगे । उन्होंने अपनी बंदूकों के कुंदे से मारकर कई लोगों का सिर फाड़ दिया । उनकी कराहों से बस्ती गूंजने लगी ।

पुलिस की लाठियों और जूतों की आम रियायत बढ़ती जा रही थी । जो औरत सामने आ गई, उन्होंने उसे ठोकर मारकर सामने से हटा दिया और मर्दों को पकड़-पकड़कर, उनके सिरों पर लाठी मारकर उनकी शक्ति क्षीण करने के लिए भयानक प्रहार करने लगे ।

कटोरी कराह उठी । चोट खाकर वह नीचे गिर गई थी । सिर से खून बह रहा है । वह कहां गिरी, कुछ याद नहीं रहा ।

वह कुछ संभलकर सिर पकड़ रही थी, तभी सामने देखा, एक लड़की झटके से गिरी । सिपाही ने बूट से उसकी छाती को कुचल दिया । लड़की के मुंह से एक घर-घराती आवाज निकली ।

रामभरोसे के सिर से भी खून गिर रहा था । वह खड़ा था, नारे लगा रहा था । वह डरा नहीं था । सब गिर जाएंगे वह नहीं गिरेगा । अगर वह मुर्दा भी हो जाएगा तब भी जालिम उसे जिंदा समझकर उस पर संगीन चलाता रहेगा ।

फिर पुलिस कोठरियों की तलाशी लेने लगी । बेतरतीबी से सामान उठा-उठाकर बाहर फेंका जाने लगा । जो मजदूर रोकता था, उसे वे कठोर चेहरे चिल्लाकर घूरते, और डंडे मारकर बाहर धकेल देते । औरतें निकल-निकलकर बाहर भागतीं—

जैसे घर में कोई शेर घुस आया हो।

दरोगा दूर खड़ा सिगरेट पी रहा था—निश्चिंत, निर्भय…

कटोरी नीचे का होंठ दांतों से भींचकर देख रही थी। सुक्खन की बन्द कोठरी का ताला तोड़ा जाने लगा। सुक्खन कहीं गिर पड़ा है। मेट उस कोठरी के आगे खड़ा-खड़ा बातें कर रहा है। ताला टूट गया। सिपाही भीतर घुस गये।

दो सिपाहियों ने प्रेमलता को खींचकर बाहर निकाला। दरोगा तेजी से उधर चल पड़ा।

प्रेमलता ने चिल्लाकर कहा, "कोई परवाह नहीं। काम न रोकना। अगर जिंदा रही तो फिर आऊंगी। इन्कलाब…"

सहमी गई हुई आवाज ने जवाब दिया, "जिंदाबाद!"

कटोरी उठी। उसने आंखें फाड़कर चारों ओर देखा। अब चारों तरफ आदमी भाग नहीं रहे हैं। कई घंटों के बाद अब कुछ शांति छाई थी। अब बड़े-बड़े जूतों की वह डरावनी आवाज गूंजनी बन्द हो गई है। अब उन खौफनाक हथियारों की खड़र-खड़र सुनाई नहीं देती।

अब वह पुलिस की भीड़ चली गई थी। वे जो बगावत के यानी अपनी रोटी के लिये उठने वालों के नेता मजदूर थे, उन्हें पुलिस गिरफ्तार करके ले गई थी, ताकि उन्हें जेलों में डालकर सताया जाये, उनके घरवाले भूखे मरें और वे माफी मांग-मांगकर कुत्तों की तरह छूट कर लौट आयें।

उनमें मुन्नूलाल, रामभरोसे, मजीद, सुक्खन और भी न जाने कौन-कौन थे। उनको कहा जाये कि पेट के लिये जिंदा रहने वाले कीड़ो, अगर जिंदा रहना चाहते हो तो हमारे बैलों की तरह कोल्हू में पिलते जाओ, वर्ना तुम्हें गोली मार दी जायेगी।

तभी कटोरी चली। सब लोग डरे हुए देख रहे हैं! सिरों से खून बह रहा है जैसे बगावत एक खून का जोश है, जिसे लाठियों और बन्दूकों से मारकर बाहर फेंक दिया जा सकता है, जैसे खून कम कर देने पर इंसान जानवर की तरह गुलामी करता रहेगा।

हीरादेई खामोश बैठी थी। उसकी पलकें स्थिर थी जैसे वह अपनी सारी चेतना खो चुकी हो। उसकी आंखें आसमान की तरह सूनी थीं, उनमें ममता न थी, न किसी अतीत की सुलगन। कुछ नहीं। केवल बटन-सी आंखें।

उसके सामने उसका बच्चा था। वही दुधमुंहा बच्चा—खून से लथपथ। वह रोना चाहती थी, पर जल्लाद की सिर पर लटकती तलवार से उसे दहशत के रस्सों से बांध रखा है, जिसके बीच से मां की ममता कभी आह बनकर हलक से निकल जाती है, बगावत कर बैठती है।

मौत की भयानकता उस घायल जिंदगी पर पहरा दे रही थी। अब वह बच्चा नहीं रहा, क्योंकि उसके बड़े होने में खतरा था। वह भी अपने बाप की तरह लड़ता और…

उसी समय सबने देखा—सफेद खद्दर की टोपियां लगाये कुछ नौजवान तिरंगा झंडा लेकर आ पहुंचे और ऐलान करने लगे, "भाइयो, हमें तुम पर हुए अत्याचार से सख्त नफरत है, लेकिन जब बच्चा बुरी सोहबत में पड़ जाता है तब उसे सुधारना अपना फर्ज होता है। अगर आप हमसे कहते तो सरकार आपकी मदद करती।"

कटोरी के होंठ घृणा से कांप उठे। यह लोग वही थे जो बड़े-बड़े सेठों की मोटरों में घूमते थे। कुत्ते—गुलाम—फूट डालकर मिठाई खाने वाले!

उसके मन में आया कि वह चिल्ला-चिल्लाकर दुनिया को सुना दे कि यही वे लोग हैं जो उसके दांतों में से रोटी छीनकर ले जाने वाले हैं। हमें नहीं चाहिए इनकी हमदर्दी।

किन्तु ये सब न कह कटोरी ने पूछा, "आप कहां रहते हैं?"

यह एक निरर्थक प्रश्न था। उसका मन अपने आप उचाट खा रहा था। वह बहुत कुछ कहना चाहती थी। उसके कानों में प्रेमलता के शब्द गूंज रहे थे। ये लोग उसे बदनाम करते थे।

मजदूर डर से कांप रहे थे, औरतें अभी तक सिसक रही थीं। एकाएक कटोरी हीरादेई के बच्चे को उठाकर कह उठी, "लो, यह ले जाओ। मेरा बेटा तुमने मार डाला है···।"

उसकी फटी आंखों में एक पागलपन-सा छा गया था। स्वर दृढ़ था जैसे सब डर जायें पर वह नहीं झुकेगी।

"तुमने आकर कत्लेआम किया है तो ले जाओ, इस बेगुनाह की लाश को, जिसको देख-देखकर तुम अपने बंगलों में डरते रहो, क्योंकि सबके दिन एक-से नहीं रहते। वह वक्त आने वाला है जब तुम्हें इस खून का जवाब देना होगा। जब खून लोहे में लगता है तब वह जुल्म बनता है, पर जब लोहा खून में उतरता है; उस समय वह लोहा बनने लगता है—वही पानी जैसा खून लोहा बन जाता है।"

['हंस', जून '48]

ईमान की फसल

घर को पुलिस ने घेर लिया। लम्बी-लम्बी तनी हुई मूंछों वाले दीवान ने बढ़कर कहा—"आप ही हैं रामनरायन ?"

दुबले-पतले आदमी ने धीरे से कहा—"हां, मैं ही हूं।" कुछ सिपाही भीतर घुस गये थे। कुछ बातें हो रही थीं।

पड़ोस के कुछ लोग दरवाजे पर इकट्ठे हो गये थे। उनमें एक उत्सुकता थी। किसी ने पूछा भी—"क्या बात है ?"

मोटे वाले सफेदपोश सर्दार ने आगे बढ़कर पूछा—"क्यूं जी ! की गल्ल है ?"

बात साफ थी। किसी को उत्तर देने की जरूरत नहीं थी। रामनरायन को गिरफ्तार किया जा रहा था। रामनरायन खामोश था। उसकी दुबली-पतली मरियल सी बहू मालती दरवाजे से सटकर खड़ी हुई थी। वह पर्दा नहीं करती। पुलिस के दरोगा ने उसे तिरछी नजरों से देखा। उसने हमदर्दी से रामनरायन से पूछा—"आपके घर में और कोई नहीं है ?"

रामनरायन ने पलटकर कहा—"आपका मतलब ?" दरोगा ने नीचे का होंठ काट लिया। मालती ने कुछ नहीं कहा। वह चुपचाप देखती रही। अधेड़ उम्र के पंडित रेवतीशरण ने बढ़कर कहा—"और कौन होगा ? दो भाई थे। एक गांधीजी के पहले नमक आंदोलन में घोड़ों से कुचलकर मार दिया गया था। दूसरा सन् 42 में गोली से मार दिया गया।"

चारों तरफ सन्नाटा छा गया। पंडित ने अपनी सुरक्षा के लिए कहा—"तब अंग्रेजों का राज था; विदेशी राज था । रामनरायन छोटा था। अब ये बड़ा हो गया है।"

"घर का घर···" सर्दार ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा। सबकी आंखों में एक उदास छाया डोल गई। कुछ-कुछ अंधेरा-सा, कुछ-कुछ विषाक्त-सा।

उसके बाद कुछ हलचल सी हुई। रामनरायन आगे बढ़ा। वह सफेद कुर्ता; एक उससे कम उजली धोती; सिर पर सफेद टोपी; पैरों में पुरानी चप्पल पहने, जाकर पुलिस की बड़ी मोटर में बैठ गया। मालती ने दोनों हाथ जोड़कर उठा दिए। रामनरायन मुस्कराया।

गाड़ी चल पड़ी। वह देखता रहा। मालती खड़ी देख रही थी। 'नहीं, वह कभी नहीं डरेगी,' उसने एक लम्बी सांस खीचकर मन ही मन कहा। वह क्यों डरेगी? सिपाही उसे घूर रहा था। वह काफी पुराना लगता था। किन्तु रामनरायन में उसकी कुछ कहने की इच्छा नहीं हुई। सड़क पर भीड़ कम होती जा रही थी। बड़ी-बड़ी मोटरें सर्राती हुई बगल से निकल रही थीं। रामनरायन ने पहचाना। लाला श्यामप्रसाद थे। उनकी बड़ी-बड़ी मूंछें अब भी उनके ऊपरी होंठों को ढककर पड़ी थीं। वह अब खद्दर की धोती, कुर्ता और टोपी पहनते थे। वह शहर के अव्वल नम्बर के ब्लैक मार्केट करने वाले वीर थे। पहले पुलिस वालों की तनख्वाहें बांध रखी थीं। अब कांग्रेस वालों के भी चंदे बांध रखे हैं। मगर अब वे देश के लाभ में दिन दूने रात चौगुने मोटे हो जाते रहे हैं। रामनरायन को झुंझलाहट हुई। इस बात को बार-बार कहने से क्या फायदा, कौन इसे नहीं जानता? सबका हृदय-परिवर्तन हो गया है। सबके दिल में अब अचानक अच्छाइयां आ गई हैं। बहुत थोड़े लोग हैं। जो असलियत जानते हैं जो जानते हैं वह सदा बेवकूफ करार दिये जाते हैं।

वह हंसा। उसकी हंसी को देखकर सिपाही चौंक उठा। उसने अपनी बगल में बैठे दीवान की ओर घूरकर देखा, वह अपनी खाकी वर्दी में ऐसा लगता था जैसे पुराने जमाने का कोई आदमी फिर से चिकना-चुपड़ा बनाकर बिठा दिया गया हो। वह देखने में कोई पुरबिया मालूम देता था।

रास्ते में देखा। मूछें बढ़ाये, सिर पर पंजाबी साफा बांधे एक साहब छड़ी हिलाते हुए चले आ रहे थे। रामनरायन ने उन्हें देखकर कुछ जोर से खांसा। सज्जन ने देखा, मोटर आगे बढ़ गई। वह व्यक्ति आजकल एक मुजरिम था।

खुले आम चला जा रहा है। रामनरायन फिर मन ही मन हंसा। पुलिस ने उसका वारंट निकाल रखा है। लगता है अब पुलिस के तरीके सब अच्छे हो गये हैं। जनता की तकलीफ कोई तकलीफ नहीं होती है।

गाड़ी और आगे बढ़ी। तेल मिल के मालिक का घर अपनी भव्य अट्टालिका के कारण नगर प्रसिद्ध था। रामनरायन अक्सर सोचता, वह दिन कैसा होगा जब इस बोदे बेवकूफ को यहां से निकाल दिया जायेगा और मजदूर इस बड़े मकान में कमरे बांट कर रहा करेगा और वह शख्स तब बेकार हो जाएगा क्योंकि इसमें मेहनत करके खाने की आदत नहीं रही है।

पर व्यर्थ की चिंता अपने आप दूर होने लगी थी। जैसे-जैसे जेल करीब आने लगा उसे एक प्रकार का विक्षोभ होने लगा। उसे जनता की रक्षा के नाम पर गिरफ्तार किया गया है। मुकदमा भी नहीं चलाया जायेगा। और अब दृश्य बदल गया। 'मालती क्या कर रही होगी?'

खिची हुई भौं, जो नाक के ऊपर आकर मिल गई थी, कुछ चपटी सी नाक। सुते हुए बाल। पहले आई थी तब चेहरे पर एक ताजगी थी। वह वक्त ने धो दी। जैसे गरीबी में वह ताजगी चेहरे पर एक कालिख जैसी होती है।

रामनरायन को याद आने लगा। गाड़ी आगे बढ़ रही थी। पर उसका दिमाग पीछे की ओर भागने लगा। एक-एक करके अनेक वर्ष लुढ़क चले। उसका मन उत्तेजित हो उठा। और उसे याद आया···

कुछ लोग कहते हैं और कुछ-कुछ उसे भी याद है? बहुत दिन पहले। तब शायद वह छः या सात साल का था। पढ़ता था प्राइमरी स्कूल में। सुबह बोरका-पट्टी लेकर स्कूल जाता। तब बहुत छोटा था वह।

एक दिन घर आते ही देखा। मुहल्ले में हलचल मच गई थी। लोग इधर-उधर टोल के टोल बनाये घूम रहे थे। सबके चेहरों पर बेबसी का क्रोध था।

जब लाश द्वार पर लाई गई मां फूट-फूट कर रो उठी थी। वह रामनरायन का सबसे बड़ा भाई था। कुछ दिन से घर में लड़ाई सी रहने लगी थी। मां अक्सर रोया ही करती जैसे उसे किसी भयानकता की निकट भविष्य में आशा हो गई थी। जब रामनरायन उसके निकट जाता वह अत्यन्त स्नेह से उसे अपनी गोद में खींच लेती जैसे वह उस भय का प्रतिरोध करना चाहती थी।

शहर में करफ्यू लग गया था। कहा जाता था मजदूरों में गुस्सा भड़क रहा था। बाबू लोग कुछ चौंके हुए से थे।

जहां रामनरायन रहता है उसके सामने ही अब एक बड़ा मकान बन गया है। लेकिन एक जमाने में यहां एक खंडहर था। वहां एक विद्यार्थी रहता था। वह कालिज में पढ़ता था। और तो अब कुछ याद नहीं। उस खंडहर में ही वह रहता था। उसकी एक बूढ़ी मां। वह चले थे।

और अन्त में एक दिन मालती आई। रामनरायन का ब्याह हुआ। घर की मालकिन आ गई। वह स्वयं जाकर अपने जेठ को बुला कर लाई। मां ने आसीस दिया। चाचा की आंखों में पानी भर आया। उन्होंने कहा—"भाभी, आज कायदे से घर में तीन बहुएं होतीं। उन्होंने आंखें पोंछ लीं।

बी० ए० का आखिरी साल था। चाचा की हालत पहले से भी ज्यादा खराब थी। वह कभी मां की चिन्ता में रहता, कभी चाचा की चिन्ता में परेशान रहता।

किन्तु मां की हालत दिन पर दिन खराब होती जा रही थी। रामनरायन रोज दवाई लाता है। मालती पिलाती।

और एक दिन सब तरफ हलचल मच गई। दुकानें फटाफट बन्द होने लगीं। देश के बड़े-बड़े नेता पकड़ लिए गए थे। सबके हृदय में क्रोध उफन रहा था। मानो आज साम्राज्य के भयानक दांतों की चुभन से व्याकुल होकर भारत उन दांतों को सदा के लिए तोड़ देना चाहता था। बाजार की ओर लौटकर रामनरायन ने देखा, घर के सामने भीड़ लगी थी। कारण समझ में नहीं आया। फिर भी सब उत्तेजित थे। हृदय धुक-धुक करने लगा।

किसी ने उसे देखकर चिल्लाकर कहा—"आ गया रामनरायन? ले तेरा दूसरा भाई भी आज शहीद हो गया।"

और रामनरायन को चक्कर सा आया। किसी ने पकड़ लिया। बेहोश सा लौटा। उसने सुना—"अरे बेटा! तू तो सुनकर ही लोट गया, मां की छाती देख, अभी तक नहीं फटी।"

जैसे पथराई हुई मां को सुलाने को ही कहा गया था।

जयजयकार से आकाश गूज रहा था। शहीद हो गये थे। मझले भैया शहीद हो गए थे।

शहीद! कितना सुन्दर! कितना भयानक! कितना क्रूर! वह रोने लगा था। मंझले भैया! गोली लगी थी। वीर आगे था।

"मत कहो पांडे जी? क्यों रुलाते हो?" किसी बूढ़े ने कहा, "रोने के सिवा अब रहा ही क्या है? अब तो करने के काम करो!"

फिर एक निस्तब्धता छा गई। जैसे उबलते चावलों की छटपटाहट की आवाज। मालती की आंखें सूख गई थी। रामनरायन ने देखा। उनमें एक भयानकता थी। वह रो नहीं रही थी। रामनरायन ने कहा—"मालती···" वह फफक उठा था। पर मालती खड़ी-खड़ी देख रही थी। जैसे घर जल रहा था। हठात् एक नया कोलाहल मच उठा।

मां का हृदय अपनी धड़कन बंद कर चुका था। अबकी बार सबका कांपता हृदय भीतर ही भीतर जलने लगा।

"गई?" किसी ने पूछा, "चलो अच्छा हुआ उनमे जीवन की मर्यादा थी। तभी तो हमारी तरह वे जिन्दे में नही मर गए थे।"

चाचा की मूछें आंसुओं से भीग गई थी। अब वे चुपचाप नीम के पेड़ के नीचे बैठे है। लोग दोनों अर्थियां बांध रहे है। शायद अब यह लाशें उनकी अपनी हो चुकी हैं।

घर उदास है। मुहल्ले में सब यही चर्चा कर रहे हैं।

"मां और बेटा संग-संग जा रहे है।"

"राम राम सत्त है।"

फिर जय-जयकार गूंज रहे हैं। इस घर से जुलूस ही जाते हैं।

रामनरायन सुन रहा है।

घर सूना हो गया। मालती ने वह खाट खुलवा दी। जेठ की तस्वीर को साफ करके बड़े भैया की बगल में लगा दिया।

चाचा सचमुच जर्जर हो गए थे। और एक दिन इसी तरह वे भी चले गये। मालती रोई। यानी तकलीफ कम हुई थी।

अब घर खाली हो गया। चाचा और अम्मा की तसवीर कहीं नही है। मालती उन दोनों की याद करती और दोनों जेठों को देखकर कहती—"ऐसे जाने कितनों के घर खाली हो गए होंगे। अम्मा कहती थी, बड़े जेठ जी वीणा बहुत अच्छी बजाते थे।'

रामनरायन चुपचाप सुनता।

और तब से रामनरायन और मालती अकेले रहते। रामनरायन किसी दफ्तर में

नौकर हो गया। और उस दिन मालती अचानक ही कहीं से दिये जलाने को उधार तेल लाई। 15 अगस्त थी। देश में लहर दौड़ गई। रामनरायन ने तिरंगा झंडा द्वार पर टांग दिया। मालती ने देखा, सामने के चोरबाजारी सेठ के घर का झंडा बड़ा था। उसने अपना झंडा उतार दिया। कहा—'हमारे घर में दीपक जलता है। हमें किस बात का डर है।'

दफ्तर से लौटकर जब वह आता, पूछता—'तुमने पढ़ा ?'

मालती कहती—'पढ़ा, तुम्हारी कोई पूछ नहीं होगी।'

'हां !' रामनरायन हंस कर कहता, 'हम मजदूरों का राज चाहते हैं।'

'तुम खुद भी कुछ और हो ?' मालती हंसती।

'हां, मैं क्लर्क हूं।'

फिर वे दोनों हंसते।

रामनरायन ने कहा—'हमारी तलाशी हो सकती है।'

मालती ने कुछ नहीं कहा। उसने दोनों तस्वीरों को देखा। 'देश के लिये,' वह मुस्कराई।

'दो हो चुके हैं।' रामनरायन ने कहा, 'बस हम तुम अभी बाकी हैं।'

'दो हो चुके हैं।' रामनरायन की आवाज भाइयों की तस्वीरों पर गूंजने लगी। मालती मुस्कराई जैसे उसे आदत पड़ गई थी।

और आज रामनरायन जेल जा रहा था। क्योंकि उससे जनता की शांति को खतरा था। क्योंकि जनता भूखी थी और वह कहता था कि इस आजादी में जनता भूखी है……

गाड़ी रुक गई। उसे उतारा गया। अन्दर जाने के पहले कुछ जरूरी लिखा-पढ़ी हो रही थी। उसी समय एक अधेड़ सिपाही ने उसे देखा। वह चौंक उठा। फिर कुछ दूर पर खड़े होकर घूरता रहा। फिर सिपाहियों के साथ जाकर बैठ रहा।

उसने सुना, सिपाही आपस में बातें कर रहे थे—

"यह सरकार तो हमारी दुश्मन है। तुम तो जवान हो। बस तुम्हें ही रखा जाएगा। हमें तो तंग कर-करके निकाला जायेगा।"

"कौन निकालेगा हम पुरानों को। सालों का काम कौन चलायेगा ? यह लोग दूकानों पर डंडी मारते हैं। लाठी चला देंगे। वकील की बहस से राज नहीं चलता।"

"हम तो यह जानते हैं।" किसी ने कहा—"ठाकुर हैं। कै तो लट्ठ रखेंगे, नहीं तो हल चलायेंगे। और ज्यादा ची-चपाट की तो बेटा हम डाकू बन सकते हैं।"

वे सब हंसे।

फिर किसी ने कहा—"हुकूमत बदल गई। हम भी बदल गये। हां हमने तुम्हें मारा था। पर तब उनका राज था। हम तो मालिक के गुलाम हैं। तुम कहो हम आज सिर फोड़ दें। पर तुम कहो; तुम जो कहते थे वह आज कहां हो रहा है।"

"चुप-चुप।" किसी ने कहा—"इसी से तो वह लौंडा गिरफ्तार कर लिया गया

है। वर्ना क्या उसके दो भाई पहले कांग्रेस में शहीद नहीं हो चुके ?"

तुरन्त सबका हृदय-परिवर्तन हो गया।

और रामनरायन जब सब लिखा-पढ़ी होने पर जेल के भीतर घुसा तो उसे लगा, शायद वे दोनों भाई कुचले हुए थे। लेकिन तीसरी बार पूरी बात निकली थी। दमनचक्र की दांय में अब असली दाना निकलेगा। उधर मालती, इधर रामनरायन······

अपनी बी० ए० पास कल्पना पर वह झुंझला उठा। किसी ने कड़क कर कहा—"इधर से जाओ···इधर से।"

वह अपमान का घूंट पीकर उधर से ही चलने लगा। सामने देखा। पांच-छः जान-पहचान के साथी बैठे हैं। उसे लगा, पूरी फसल थी।

मालती बैठी होगी। रामनरायन ने सोचा, लेकिन उसे तो अब आदत पड़ जायेगी···भूख ही उसकी जिन्दगी होगी, भूख ही मौत······

पर वह रोयेगी नहीं। काश वह भी अपनी एक तस्वीर छोड़ आता।

['आदर्श', जून '48]

नया समाज

शहर से चार मील दूर के उस छोटे-से गांव की शांति, या नीरवता, अब टूट गई थी। पिछली लड़ाई के पहले केवल रेल की घड़घड़ाहट सुनाई देती थी या फिर बड़ी सड़क पर कभी-कभी साहब लोगों की शिकार पर जाती हुई रंगीन औरतों से लदी बड़ी-बड़ी मोटरें; वरना उधर तालाब के किनारे के सेंठे के जंगल में हवा भरकर गूंजा करती थी, जिनमें कभी-कभी बनैले सूअर थुथने फुफकारते घूमा करते थे। पर अब वही कारखाना भन-भन करके शोर करता है। उसका धुआं चिमनियों से उड़ता और फिर झुककर गांव की ओर भागने लगता—जैसे वह इन्सान से दूर नहीं जाना चाहता हो—और छप्परों पर लोटकर वह फिर ऊपर उठने लगता। पर किसीको भी यह सब देखने की फुर्सत नहीं थी। लड़ाई के बाद भी गजब की महंगी थी। तिसपर अब मजदूर नौकरियों से निकाले जा रहे थे—छंटनी हो रही थी।

रेल के डिब्बे उधर ही सरका दिए जाते थे। और बच्चे उन मालगाड़ियों के डिब्बों में खेला करते। उनके इर्द-गिर्द ही पहाड़ियों की गूंजती हुई आवाज उठती और फिर रेल की पटरियों के दोनों तरफ इकट्ठा किये गए जले कोयले के ढेरों के पीछे भागते हुए बच्चे अपनी-अपनी जगह से निकल भागने लगते। किनारे ही मजदूरों के लिए क्वार्टर बन गए थे। अक्सर तो मजदूर गांव का था, पर इधर से जो शहर आ पहुंचा था, उसके लिये यह घर बनाना जरूरी हो गया था। वहां अक्सर पुलिस के सिपाही दिखाई देते। उनकी आंखों में एक खौफ की निशानी होती थी।

पर मास्टर साहब के लिए यह बातें दूर की थीं। जिन्दगी का पत्थर बड़ा मजबूत था। उसपर किसी तरह अब सतत रस्सी के घिसने से कुछ गड़ढा-सा पड़ना शुरू हुआ था। मास्टर साहब कुछ-कुछ खिचड़ी बालों से, जिनकी टोपी के अन्दर न सिर्फ चुटिया, बल्कि एक अधकचरी बुजुर्गी भी छिपी रहती थी, अपनी उम्र से अधिक दिखाई देते। घुटनों तक ऊंची धोती पहनते। पांव में बूट। और अक्सर टखनों तक धूल चढ़ी रहती। जब वे जूता उतारते, पांव धूल से जूतों में अक्षत रहता हुआ भी पसीज उठता और पांव पर जूते का नक्शा हू-ब-हू उतर आता। चेहरे पर ऊपर के दांत जरा उठे हुए थे। वैसे उनकी मूंछें काफी हद तक इस बात को छिपा लेती थीं।

कभी-कभी उन्हें कुछ बाबू लड़के मिलते। मास्टर साहब उनमें से कुछ को

पहचानते थे। कुछ उन्हें अपने निकट समझते थे। एक लड़का साइकिल पर आकर अखबार देता। जब मास्टर साहब उस अखबार को पढ़ते, तो उन्हें लगता कि दुनिया में, भारत में, गरीबों पर कितना अत्याचार हो रहा था, जो बड़े-बड़े अखबारों में कहीं भी नहीं छपता था। एक ने तो गांव वालों की तरह सामने से बिल्कुल सींक रखवा ली थी। वह अंग्रेजी पढ़ा-लिखा लड़का था। मास्टर साहब ने उसे जब देखा, तो वे उसे आसानी से पहचान भी नहीं सके। उन्होंने उससे परिचय के कारण बात भी नहीं की। तब पता चला कि वह आजकल किसानों में काम करता है। पुलिस उसके पीछे पड़ी हुई है।

मास्टर साहब को कुछ भीतरी भय-सा हुआ। उन्हें लगा, वे स्वयं क्रान्तिकारी थे, क्योंकि वे ऐसे व्यक्ति के पास खड़े थे, जिसका शायद वारंट होगा। लेकिन सत्य यह था कि वारंट गिरफ्तारी के बाद फौरन कटता था, क्योंकि पुलिस पहले ही से मैजिस्ट्रेट के दस्तखत कराके फार्म अपने पास रख लेती थी।

धीरे-धीरे हलचल बढ़ती जा रही थी। वह अमन टूट गया था। जमींदारों में एक बौखलाहट पैदा हो गई थी। जब मास्टर साहब को कुछ भी नहीं सूझता वे अपनी छोटी बच्ची कमला को गोद में उठा लेते और मंदिर की ओर चल पड़ते। वहां कीर्तन में घंटा डेढ़ घंटा बिताकर जब वे लौटते, मन फिर भारी हो जाता।

स्कूल में वे देखते थे कि ग्राम-विकास पर विचार करने एक बड़ी मोटर में बैठकर कुछ खद्दरपोश आते थे। एक उनमें से आंखों पर चश्मा लगाते थे, सांवला-सा रंग था और दोहरा बदन। दूसरे की मूंछें ऐसी थीं, जैसे बच्चा जांघें चौड़ाकर बैठ गया हो। दोनों ही बड़ी मोटर में बैठकर लौट जाते। सुना जाता था कि उन्होंने अत्यन्त दरिद्रता से रहना स्वीकार किया था। वे लोग सिर्फ आठ सौ रुपया महीना तनख्वाह पाएंगे। मास्टर साहब अपने ऊपर ही झुंझला उठते।

नई जिन्दगी की लहरें-सी आती। वे मजदूरों के जुलूस को देखते, जो उमड़ता चला आता था। वे तरह-तरह के नारे लगाते। उनको देखकर पुलिस वाले भी मन-ही-मन सिहर उठते, क्योंकि उन मजदूरों की मांग में ईमान की पुकार होती। वे सीधी बातें चाहते थे, वे बातें जिनका पेट से सौदा होता था।

शहर के पास ही होने से गांव में रोज नई-नई खबरें चल पहुंचती। ज्यादातर दूधवालों के मुंह, जो साइकिलों पर टंकी बांधकर पहर रात रहे चल पड़ते और सांझ को लौट आते। वे तरह-तरह की खबरें सुनाते। अखबार लाते। मास्टर साहब जब सांझ के समय किसी डगर पर निकलते, तो किसान उन्हें रोककर पूछते कि क्या जमींदारी जा रही है, या यह भी कोई नया खेल है? क्या अब सबको पढ़ना पड़ेगा? क्या परती धरती मिलेगी? गांव में चलते-फिरते अस्पताल और नुमायशें आया करेंगी? और इन सवालों से लेकर, तकावी, बीज के मामलों से होते हुए वे पूछते कि अगर कांग्रेस जमींदारी छीन रही है, तो जमींदार क्यों उसमें जा रहे हैं, अंगरेजी राज में तो वे अलग रहते थे। पुलिस उन्हीं का साथ क्यों देती है? मास्टर साहब जवाब देते और दिल में महसूस करते कि शहर का कितना अजीब असर होता है। जब कभी वे अपनी ससुराल जाते, तो वहां

किसान यह सब सवाल नहीं पूछते थे। शहर और फिर पास ही खुले हुए इस कारखाने से, जिसमें गांव के अनेक नौजवान काम करने जाते थे, अजीब-सी चेतना फैलती जा रही थी। और थे वे बाबू, जिनके पीछे हर मिनट पुलिस लगी रहती थी। किसानों से कुछ नौजवान पूछते—"मास्टर साहब, ये बाबू वही तो कहते हैं, जो पहले कांग्रेस वाले कहते थे।" मास्टर साहब क्या कहते ?

और घर आते ही वही उदासी। मास्टर साहब को एक विचित्र-सी थकान महसूस होती। वे अखबार पढ़ते हैं। फिर क्यों उनमें इतनी हिम्मत नहीं है कि किसानों को असली बात समझा दें। गरीब गरीब है, अमीर अमीर। और तभी पत्नी और तीनों बच्चे-बच्चियां पास आ जाते। जिन्दगी फिर लम्बी छाया की तरह बढ़ने लगती।

2

और उसके बाद दबाव बढ़ने लगा। हर बार छप्पर की मरम्मत को अगली बरसात के लिए छोड़ दिया जाए, तो वह कब तक पानी रोक सकता है ? डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के स्कूलों के मास्टरों ने जिले-भर में हड़ताल कर दी। उनके हिचकते हुए दिलों ने बड़ी हिम्मत के साथ बहुत पसोपेश के बाद यह तय किया कि बिना हड़ताल के अब कोई नतीजा नहीं निकलेगा। बेंत भी बिना भीगे नहीं फूलता। बांस की पोल में पानी डालने से वह कभी टिकता नहीं, दूसरी तरफ से बह जाता है। जगह-जगह जुलूस निकाले गए। जिले-भर के मास्टर आकर बड़े शहर में इकट्ठे हुए।

उनके जुलूसों के साथ सी० आई० डी० वाले चलते। पुलिस के सिपाही चलते। मास्टर कैसा भी देहाती और गरीब क्यों न हो, लेकिन उसमें एक बाबूपन होता है। शहर में बड़ी-बड़ी लारियों में फौजों को इधर से उधर जाते देखते। मास्टर लोग कांपते हृदय से देखकर अनुभव करते, जैसे ये सब उनके अपने लोग नहीं है। मगर फिर विचार आता कि वह सब लोग भी तो गरीब ही है। इन्हें ही ऐसा क्या मिल जाता है ? इनकी परिस्थिति में क्या उतनी ही भयानक मजबूरी नहीं है ? फिर उनसे अलगाव क्यों लगता है ?

जब उनका जुलूस शहर में से गुजरा, तो पुराने बुजुर्गों के मुंह झुके हुए थे। उन्हें जैसे यह काम अच्छा नहीं लगता था कि पढ़े-लिखे लोग हाथ में बड़े-बड़े पोस्टर लिए इधर-उधर घूमा करें। नारे लगाते फिरें। और वह भी किसलिए ? कि हम भूखे है ! महंगाई बहुत भयानक है ! नई सरकार बनी है, हमें खाने को क्यों नहीं मिलता ? थे, गरीब थे। पर आज तक सिर नहीं झुकाया था। आज तक उनकी हर जगह इज्जत हुई है। किसानों, मजदूरों और पटवारियों ने सदा पहले राम-राम की है। गांव के जमींदार, डाक्टर, तहसीलदार, सब उन्हें कुर्सी देकर बिठाते थे। वे कहीं नीचे तबके के लोगों में नहीं गिने गए। उनके पढ़ाये हुओं में कितनों ही को अच्छी जगहें भी मिल चुकी हैं। कचहरी के पचासों मुंशी उनकी शागिर्दी से निकले हैं।

नये मास्टर कहते हैं, यह सिर झुकाना नहीं है, यह सचाई की पुकार है। जब

मंत्रियों की तनख्वाह सरकार बनते ही इतनी जल्दी तय हो गई, तो उन्हीं को क्यों भुलाया जा रहा है ? क्या वे काम नहीं करते ? दुनिया आगे बढ़ी जा रही है। मजदूर, किसान, सब अपने लिए संगठन करते हैं। वे स्वयं क्यों न करें। वे तो बेचारे बेपढ़े-लिखे हैं; हमें तो यह कठिनाई भी नहीं।

आखिर 'इन्स्पेक्टर आफ एज्युकेशन' के दफ्तर पर जाकर सब इकट्ठा हुए। दिन-भर बाहर बैठे रहे। एक 'डेप्यूटेशन' जाकर मिला। सब शिकायतें नोट कर ली गई और जल्दी ही उन पर ध्यान देने का आश्वासन भी दिया गया। पर यह भी कहा गया कि अचानक ही 15 अगस्त के बाद यह भूख इतनी तेज कैसे हो गई ? अंगरेजी जमाने के अफसर थे। उनके '15 अगस्त' का मतलब था कि जो जैसा है, वैसा ही बना रहे। पर शहर के बाबुओं में एक हमदर्दी थी। वे कहते जरूर, क्या इनके पेट नहीं है ? सारे गावों और बच्चों का दारोमदार इन पर ही है। नये हिन्दुस्तान की फसल के किसान यही तो हैं। इन्हें क्यों छोड़ा जाए ?

दूसरे दिन शहर के दैनिक पत्र में निकला—मास्टरों को शांति से काम लेना चाहिए। उन्हें किसान-मजदूरों-सा यह हुल्लड़ अच्छा नहीं लगता। फिर साथ ही आश्वासन दिया गया था, उनके दुख-दर्द के साथ सहानुभूति दिखाई गई थी। मतलब यह था कि थर्ड क्लास का टिकट स्टेशन पर दे दिया गया था। डिब्बे में खचाखच भीड़ है, इसलिए सरकार जिम्मेदार नहीं ! लेकिन घबराओ नहीं, हरी झंडी से चिढ़ो मत। कल फिर रेल आय, तब अपनी किस्मत आजमाना। और मास्टर लोग वह गीत गाते हुए फिर चल पड़े, जो स्काउटों के लिए 'धीरज का मंत्र' बनाकर गाया गया था। इसी मंत्र को उन्होंने आज तक गाया था, इसीको उनके बाप-दादों ने गाया था। मानो यह एक रेल की ढली-ढलाई पटरी थी, जिसपर बड़े-बड़े डिब्बे भागते हैं। पैदल इस पर नहीं जा सकता। इसके दोनों तरफ कंकड़-मिट्टी पड़ी है। कहा जाओगे ? कहीं रास्ता नहीं है।

मास्टर साहब लौट आये। गांव खामोश पड़ा था। कुछ लोगों ने आकर पूछा भी, मगर मजबूरी में सिर हिलाकर चुपचाप चले गए। बोहरा तो जो ब्याज लेगा, वह लेगा ही। इसमें रोने-धोने की क्या गुंजाइश ? शाम की धूल उड़ने लगी। बैलों की पीठ पर हाथ रखे, पीछे-पीछे बातें करते, नंगे बदन, ऊंची धोती पहने किसान घरों की ओर चल पड़े। ओवरी में खड़ी घूंघट में से उनकी पत्नी उनकी राह देख रही थी। वे खाट पर जाकर बैठ गए। मौन। किन्तु कुसुम की आंखों ने आंसू की डबडबाहट से कांपती पलकों में जिन्दगी का पानी भींचकर पूछ ही लिया—"क्या हुआ ?"

मास्टर साहब का मन किया कि कह दें, वे हारकर आ गए थे। पर उन्होंने कहा—"भगवान कुछ-न-कुछ तो करेगा ही।"

कुसुम सब-कुछ समझ गई। उसने उनकी टोपी और जूता उठा लिया और भीतर टांगने चली। मास्टर साहब का सिर झुक गया। उन्होंने देखा, वही चक्र, वही परम्परा। "पानी देना शांति की मां"—उन्होंने धीरे से कहा और खाट पर लेट गए। उन्हें लगा कि वे काफी थक गए थे।

3

हड़ताल टूट गई। आखिर कब तक जोश चलता ? हड़ताल एक बीमारी है। पहले लगता है, शरीर में बल आ गया है, पर आदमी ज्यादा दिन निकलते जाने के साथ कमजोर होता जाता है। हड़ताल तोड़ने की दो तरकीबें हैं, या तो संगठन तोड़ो या लंबी खींच दो। अब हड़ताल के दिनों की तनख्वाह कटेगी या नहीं ? सबके दिमाग में आया हुआ प्रश्न सुनकर मास्टर साहब चौंक उठें। जिन्दगी में बगावत के पहल से भी भयंकर है बगावत की हार का पहलू, जो उतना ही आवश्यक है, जितना जीत का दृढ़ विश्वास। 'कोई भी लहर'— मास्टर साहब ने मन-ही-मन कहा—'पहली चपेट में चट्टान को तोड़ नहीं सकती। पर यह आदर्शवाद था। पुराने जमाने में गुरु जंगलों में रहते थे। आजकल उनमें त्याग की भावना नहीं है। पहले गुरुओं को त्याग करने की सामर्थ्य थी, क्योंकि उन्हें तब बहुत मिलता था।'

उन्होंने बच्ची के सिर पर स्नेह से हाथ फेरा। छोटी-सी वह कमला। मां ने नई डिज़ाइन की जम्फर फ्राक सी दी है। गांव की अन्य बच्चियां कुर्त्ती पहनती हैं, या महेरी खा-खाकर तूंबी-जैसा पेट लिये नंगी फिरती हैं। कमला धूल में लथपथ थी।

गांव के छोटे पुस्तकालय में जाकर मास्टर साहब ने एक साप्ताहिक पत्र उठा लिया। उसमें उन्होंने एक लेख का शीर्षक पढ़ा—'रूस में शिक्षा' ! पढ़कर समझे, रूस में सिर्फ या तो मजाक होते हैं, या सिर्फ झूठी खबरें फैलाई जाती हैं। वहां मास्टर मस्त रहता है, खाता है, पीता है, तब काम भी डटकर करता है। कुछ भी समझ में नहीं आया। वे उठ खड़े हुए।

चलते-चलते उनका मन कचोट उठा। क्यों ? क्या वे सदैव ऐसे ही गरीब रहेंगे ? उन्हें प्रश्न का उत्तर नहीं मिला। सामने देखा, जान-पहचान के लोग उन्हें राम-राम पांलागन कहते हुए चले जा रहे हैं। मास्टर साहब मशीन की तरह रहे। उनको आज ऐसा लगा, मानो वे सबसे कमजोर थे, सबसे हीन थे। या तो सिर न उठाय, या उठाय तो फिर झुकाय नहीं।

कचहरी के अमलों में मुंशीजी दबदबे के आदमी थे। उन्होंने मिलते ही कहा—"मास्टर साहब, अब तो आप भी क्रान्तिकारी हो गये !"

मुंशीजी की बात से लगा, जैसे उसमें अपमान का कसैलापन था। मास्टर साहब का मन किया कि चुपचाप हंसकर टाल दें। पर सहा नहीं गया। उन्होंने कहा—"क्या करें मुंशीजी, जनमभर इसी तरह गुजार दी। बहुत लड़कों पर सख्ती की, तो क्या मिल गया ! जिनके लड़के हमारे यहां पढ़ते हैं, उन्हींके पास कौन दौलत है ?"

"क्या बात कहते हैं, मास्टर साहब !" मुंशीजी ने मूंछों में से कहा—"गहना गढ़ाते हैं, कर्ज चुका दिया, रोज मुकदमा लड़ने आते हैं। अरे साहब, किसानों को ही तो मिलता है, और क्या हम पाते हैं ?"

"आपको क्या कमी है, मुंशीजी ? अब आप तो सफेद गांधी टोपी लगाने लगे

हैं। हमारे पास तो जो थी, वह पुरानी और मैली हो चली। हां, गांव वाले खाते हैं। पर कितने दिनों की बहार है? खैर, हमें औरों से क्या? पेशा ही ऐसा है, जिसमें चाहें तो भी दूसरों से नहीं ले सकते। आपको भगवान ने ओहदा दिया है, ऊंची जगह दी है, दस आदमियों का काम आपसे निकलता है। क्यों न हो? आखिर अफसर अफसर है। और हम क्या हैं? हम तो धोबी के कुत्ते हैं—न घर के न घाट के।"

उनके स्वर में कड़वापन था। तभी मुंशीजी ने ताना मारते हुए मुस्कराकर कहा—"तो फिर आप भी उन्हींमें मिल गये?"

मास्टर साहब ने मुश्किल से खून का घूंट पी लिया। संभलकर बोले—"मिले नहीं, तो क्या करें? आप लोगों की ओर जब तक बढ़े, तब ही क्या मिला? तो फिर उन्हींमें क्यों न जा मिलें, जिनकी हैसियत असल में अपनी-जैसी ही है? भाई, हमसे किसी का काम निकलता होता, तो आंख के अंधे और गांठ के पूरे, हमारी अंटी में भी कुछ भर ही जाते। पर अपनी झोली तो जब पलटी, दिन-भर की जमा हुई धूल ही बाहर गिरी। मरता क्या न करता!"

मास्टर साहब कहते तो कह गये फिर लगा, मानो हृदय हल्का हो गया है। सचमुच वे किसको पढ़ाते थे? उन्हीं गरीब किसानों, आधे किसान, आधे मजूर और गांव के नीचे तबके के लोगों को जिनमें जिंदगी की कशिश ही बिखर गई है। फिर वे उनसे दूर कहां हैं? क्यों वे अपने को गांव के बड़े लोगों में समझते रहें? इस झूठे सम्मान से उन्हें क्या मिलता है? क्यों वे इतने मूर्ख थे कि लोग उन्हें छल रहे थे और वे इसमें अपना गौरव समझते थे?

4

उत्साह से मास्टर साहब ने पाठशाला खोली। स्वयं ही जहां-जहां धूल जम गई थी, कपड़े से साफ की। आज उन्होंने इस बात का भी इंतजार नहीं किया कि लड़के आयें और वे उन्हें हुक्म दें। जब सबकी जिंदगी तबाह है, और बड़े होकर इन लड़कों को भी तबाही के कोल्हू में बैल की तरह पिसना है, तब उन्हें बचपन में जो दो दिन का सुख मिलता है, उसे भी वे उनसे क्यों छीन लें!

धीरे-धीरे वक्त पर घण्टी बजने लगी। एक रेल की पटरी का टुकड़ा लोहे की एक बड़ी कील से बजा दिया जाता था। कुछ देर बच्चे बाहर शोर करते रहे। मास्टर साहब सुनते रहे। फिर बच्चे आकर बैठ गये। उन्होंने देखा, सब छोटे-छोटे, सबके मुंह पर एक निर्मल छाया। लेकिन आंखों में चमक नहीं दिखाई देती। शहर के लड़कों की शरारत में हुड़दंग होता है, वह इनमें नहीं दिखता। उन्होंने हाजिरी ली। एक-एक नाम पढ़ा। उत्तर में 'हाजिर साब' सुनते गये। जो नहीं आये थे, उनकी गैरहाजिरी लगाकर उन्होंने रजिस्टर बंद कर दिया। फिर वे धीरे से उठे। कक्षा में चुपचाप बैठे लड़के रोज की तरह सहमे हुए बैठे थे। मास्टर साहब ने धीरे-धीरे कहना शुरू किया—"आज बहुत दिन बाद स्कूल खुला है। इम्तहान बहुत दूर नहीं है। तुम्हारी पढ़ाई में हर्ज हुआ है।

अब खूब मन लगाकर पढ़ो। पढ़ने को अपने ऊपर लगान मत समझो। पढ़ने से अक्ल आती है। देखो, तुम्हारे यहां अब कम्पोस्ट खाद बन रहा है या नहीं?"

"जी हां!"—सबने कहा—"कहते हैं, बड़ी अच्छी चीज है।"

"हां बेटा, बहुत अच्छी चीज है। लेकिन यह काम पढ़े-लिखे लोग जानते हैं। उनसे जरूर सीखो।"

उन्होंने देखा, बच्चों को लग रहा था, जैसे आज कोई नई बात हो गई है। उन्होंने एक-दूसरे की ओर विस्मय से देखा। फिर कुछ ऐसा लगा, जैसे वे कुछ पूछना चाहते थे। पर किसी में भी साहस नहीं हुआ।

मास्टर साहब ने फिर कहा—"तुम लोग कम्पोस्ट बनाने में मदद देते हो न?"

"देते हैं,"—लड़कों ने फिर कहा—"कहते हैं फसल बहुत अच्छी होती है उससे?"

मास्टर साहब को सुख हुआ। लेकिन उन्होंने सोचा, क्या केवल कम्पोस्ट खाद से ही जिंदगी की खेती भी सुधर सकती है? यह जो मनुष्य, जमींदार, गांवों में ऊसर पड़े हैं, इन्हें कब जीता जायगा, कब यह परती भी किसानों के हल से जुतेगी? काश, ये लोग भी काम करते! आज वह चिड़चिड़ापन न जाने कहां चला गया था। आज उन्हें वे बच्चे सिर-दर्द नहीं मालूम देते थे। कल तक वे बात-बात पर कहते थे—"क्यों तुम मेरा खून सुखाने को पैदा हो गये हो, कमबख्तो!" लड़के उनसे डरते थे। अकेले में गालियां देते थे। उनकी नीरसता से लड़कों की रूह कांपती थी। आज वह सब कुछ नहीं। आज वह अविश्वास धीरे-धीरे मिट रहा है।

इसी समय द्वार पर तीन लड़के दिखाई दिये। उनके चेहरे डर के मारे पीले पड़ गये थे। वे समझ रहे थे कि जाते ही डांट लगेगी या कान मले जायेंगे। पर कुछ नहीं हुआ। मास्टर ने उनकी ओर ऐसे देखा, जैसे अलाव की आग अपने आप में भयानक होते हुए भी राह चलते को ठंड में हाथ सेंकने को अपनी ओर आकर्षित करती है। मास्टर साहब ने सिर उठाकर इशारा किया। तीनों भीतर घुस आये। आज इन लड़कों की देरी से भी उन्हें गुस्सा नहीं आया। मास्टर साहब को अपनी ओर आता देखकर उनका दिल भीतर-भीतर बैठने लगा। लेकिन मास्टर साहब की आंखों में यद्यपि नानी की आंखों वाला दुलार न था; वह लाड़ न था, जो बिगाड़ता है; फिर भी पिता या काकावाला अपनापन था, जो शासन करके भी राह पर चलाना चाहता है। लड़के कुछ सकते की-सी हालत में खड़े रहे। दर्जे के बाकी लड़के चुपचाप आने वाली विपत्ति की आशा कर रहे थे।

"कहां गया था रे?" मास्टर साहब ने उनमें से एक लड़के से पूछा।

हलवाई के नौकर के लड़के ने कहा—"सहर गया था, मास्टर जी।" उसकी आवाज कांप रही थी। उसे मार खाने का डर लग रहा था।

"क्यों गया था?"—उन्होंने फिर पूछा।

"मेरा बाप सहर ले गया था।"

"बाप नहीं, बेवकूफ"—मास्टर साहब ने कहा—"दादा, काका या पिता कहो, समझे? खुद अपने बाप को बाप नहीं कहा करते।"

लड़के ने फिर कहा—"दादा की मीटिंग थी, सब हलवाइयों के नौकरों की। छुट्टी के दिन मिलने की राय हुई थी। मैं पढ़ा-लिखा था, इसीलिए ले गए थे।"

मास्टर साहब मुस्करा दिए। पढ़ा-लिखा उस्ताद खड़ा था सामने और तभी दूसरे लड़के ने मुंह लटकाकर कहा—"काका का पता नहीं है। पुलिस ने घर आकर तलाशी ली थी। पूछते थे, कहां भाग गया है? मजदूरी करता है कि नेता बनने चला है? हड़ताल करना चाहता था..."

लंबी कहानी थी। मास्टर साहब ने काटकर कहा—"फिर?"

"पता नहीं, कहीं पुलिस से छिप गए हैं। जाने क्या होगा?"

इसके स्वर में दहशत थी। उसने अंत में कहा—"उन्हीं को ढूंढने गया था मैं। अम्मा ने भेजा था।"

"अम्मा से कहना।"—मास्टर साहब ने कहा—"डरें नहीं।"

और वे हठात् चुप हो गए। तीसरा कुछ कहना चाहता था। उसके होंठ फड़क रहे थे। पर मास्टर साहब उसे भूल गये थे। उनके दिमाग में कुछ और था। वह लड़का चुप ही रहा। मास्टर साहब ने कहा—"अच्छा बेटो, बैठ जाओ।"

फिर उन्होंने लड़कों के मुखों की ओर देखा। उन्होंने अनुभव किया कि सबके मुख पर एक अपूर्व विस्मय था। मास्टर साहब को बहुत अच्छा लगा। आज सब लड़के उनकी ओर स्नेह से देख रहे थे—जैसे वे पहले की तरह आज उनसे डरते नहीं। जैसे मास्टर किसी बाहरी लादी गई मशीन का औजार नहीं, वरन् वह उनके अपने खेतों की फसल की तरह ही अपना है। मास्टर साहब ने यह सब जल्दी-जल्दी सोच डाला। लड़के केवल उनके परिवर्तन को कुछ-कुछ महसूस कर रहे थे। वे सब बैठ गये। उन्होंने मास्टर साहब के मुंह पर एक चमक देखी, पर साथ ही एक उदासी भी देखी। मास्टर साहब को लग रहा था कि उन लोगों की गिरफ्तारी हो सकती है। फिर उनका बोझ, उनकी जिन्दगी की जिम्मेदारी फिर मास्टर साहब पर आ पड़ेगी। और इस विचार ने उन्हें यह चेतना दी कि उनमें कुछ शक्ति थी। वे कुछ जिंदे थे। वे कम-से-कम खुलेआम न सही, चुपचाप तो उन लड़कों को बता सकेंगे कि उनके बड़े क्यों गिरफ्तार होंगे। उन्होंने कहा—"खूब मन लगाकर पढ़ो। पढ़ने से जिन्दगी संभलती है। इसे बाहरी बोझ न समझो।"

तभी तीसरे लड़के ने उठकर कहा—"जरूर पढ़ूंगा, मास्टर साहब।"

मास्टर चौंक उठे। लड़का कहता गया—"चाचा को गिरफ्तार कर लिया है! आप तो उन बाबू को पहचानते हैं—वे, जिनका रंग गोरा है। वे और चाचा दोनों पकड़ लिए गए। मैं कल इतवार को जानेवाला था, पर आज मुलाकात हुई। जेल के नौकरों ने कहा था—आज कपड़े दे जाना। सो हम गये। बाबू को तो 'बी' क्लास मिला है! वे बी० ए० पास थे न, तो उन्हें तो कुछ आराम हो जायगा। पर हमारे चाचा को पहले तो

मामूली कैदी की तरह रखा गया। तब बाबू ने उनके साथ भूख-हड़ताल की। अब उनको 'सी' क्लास मिल गया है। जेल की रोटी में मास्टर साहब, रेत बहुत होती है, सो खाते में किसकिसाती है। कहते हैं—'तू किसान था। वहीं कौन अच्छा खाता था ? यहां तो मुफ्त की तोड़ेगा बैठा-बैठा !' अगर मैं पढ़कर बी० ए० पास हो जाऊंगा, तो फिर मुझे भी 'बी' क्लास में रखा जायगा; ···क्यों, मास्टर साहब ?"

मास्टर साहब ने सब कुछ सुना। उन्हें लगा जैसे जमीन फट जायगी। लड़के की निर्मल आंखें अपने प्रश्न का उत्तर चाहती थीं।

('नया समाज', जुलाई '48)

इन्सान पैदा हुआ

घर की हाय-हाय बनी रही। इधर बहिन के सिर का दर्द अपनी हदें पार कर रहा है, उधर खालाजान की चखचख का कोई अन्त नहीं। खुदा जाने बुढ़ियों के दिमाग को क्यों रेत देता है जो उसमें ऐसी चिकनाहट छा जाती है कि उस पर कोई बात ही नहीं चढ़ती।

चचा मियां दाढ़ी पर हाथ फिराते। वह दाढ़ी परंपरा के इतिहास सी आगे लटका करती जिसके बाल करीने से कढ़े होते। सिर पर कसी टोपी लगाते और जब अपने भारी चेहरे को उठाकर आंखें गड़ा देते तब लगता, वे उस चीज को नजरों से खींच लेंगे।

पड़ोस के खान बहादुर जो कल तक कट्टर मुसलिम लीगी थे, जिनके असर से कितने ही मुसलमान जिहाद करने को तैयार थे, वे आज नई सरकार के निहायत वफादार बने और अपने द्वार पर बहुत बड़ा तिरंगा लटकाए कांग्रेस वालों के पीछे-पीछे लगे डोलते थे। उनकी गाड़ियां आज देश के काम आ रही थीं। 15 अगस्त की आधी रात को अचानक ऐसा हृदय-परिवर्तन हुआ कि भौं का तनाव होंठों पर मुस्कराहट बनकर छा गया।

हर तरह से कोशिश करके भी मोहसिन का हृदय उन पर अविश्वास ही करता, वह उन्हें केवल तोताचश्म समझता। खान बहादुर हुकूमत के वफादार थे। वे अगर यहां जापानी राज हो जाता तो उसके सामने भी सिर झुका देते। मोहसिन का जी उचाट खाने लगता। सिद्धांतों के पीछे चला जाये या पुलिस और फौज के जोर के पीछे। राज्य क्या है? उनकी तो बपौती निस्संदेह नहीं है जो गद्दियों पर बैठे रहते हैं।

वह सोचता। फिर चुस्त मोहरी का पाजामा तथा लम्बा कुर्त्ता और जवाहर वास्कट पहनकर जब वह अपनी नई डिजाइन की चप्पलों में पांव घुसाता, तब वह यदि अच्छा नहीं लगता तो उसे बुरा भी कोई नहीं कह सकता था। घर की जिंदगी और थी, बाहर की और। एक में उस डाक्टर की परेशानी थी जिसे घरवालों का इलाज कराना पड़ता, दूसरी में बाहरवालों को चाहे जो दवा बता दी।

मुहल्ले के इतने आदमी पाकिस्तान चले गए थे। उन घरों में कमरे भी खाली नहीं रहे थे। कई में तो हिन्दू मुहल्लों से भागे हुए मुसलमान आ टिके थे, और कई में पंजाबी और सिंधी शरणार्थी आ घुसे थे, जिनको देखकर दूर से पहचानना कठिन था

कि वे हिंदू हैं या मुसलमान क्योंकि उनका रहन-सहन हिंदुओं से काफी भिन्न हो चुका था।

और फिर दंगे, मुसलमानों की गरीबी, कट्टरता, बेवकूफी, हुकूमत करने का अहंकार जो हिंदुओं की छुआछूत, अंग्रेजों के प्यादे की राह से घड़े के बाहर तक उफन आया था, सबकुछ एक-एक करके मोहसिन की आंखों से गुजर गया था। एक दिन वह था जब वह शायरी में लगा रहता था। हुस्न के रंगीन स्वप्नों में ऐसे झूलता था जैसे किसी परी के मुलायम शरीर पर उसकी हथेली।

और चचा मियां तभी दाढ़ी पर हाथ फेरकर कहते—"बेटे, जमाना था···"

मोहसिन देखता। मनुष्य की आत्मा किसी अचेतन में आहत-सी तड़प रही है। क्या याद दिलाना चाहते हैं चचा मियां? ताजमहल या किला, अकबर या ईरान? क्या इनमें से किसी की भी याद से आज कोई फायदा है? किंतु अपनी संस्कृति का मोह उसके मन को चारों ओर से बांधकर कसने लगा। शाही हरम की स्त्रियां उसकी आंखों के सामने से गुजरतीं या फिर वह धूल उड़ाती भयानक फौजों की ललकारें सुनता और कांप उठता। भाग्य का चक्र कितना भयानक है? लेकिन क्या वह साम्राज्य आज तक के साम्राज्यों से कुछ अच्छा था···।

और वह दुःख भरी कहानी मुहल्ले के उन पुराने पर्दा वाले घरों में अब घुमने से इनकार करने लगती, क्योंकि वहां अब वह सब नहीं रहा था। अब वहां एक खौफ छाया हुआ था और अपने कसूरों की छाया में वह सब बहुत भयानक दिखाई देता था। उसके गौरव को नष्ट हुए डेढ़ सौ साल हो चुके थे, लेकिन अंग्रेजों ने उनकी चकमक और झिलमिल फैलाये रखी, उन्हें कुल्हाड़ी की बेंट की जगह, लगाकर जड़ें काट देने की कोशिश की। आज तभी अविश्वास और भय, मुफलिसी और मायूसी चारों तरफ से काटने को दौड़ती है।

उस वक्त बूढ़े फकीर की सदा घहरती और फिर संसार की क्षणभंगुरता की याद दिलाते हुई कांपने लगती थी। वह अन्धा फकीर अल्लाह के नाम पर दर-दर हाथ पसारता हुआ अपनी जिंदगी की कीमत गा-गाकर उगाहता और फिर किसी गलीज दूकान की छाया में बैठकर मांगी हुई दो रोटियां खाता और वहीं कुत्ते की बगल में सो जाता। पास में जौ-चने की रोटी खानेवाले हिंदू-मुसलमान पल्लेदार बैठे रहते और कोई लड़का अपनी डलिया में ही सांप की तरह गोल होकर सो रहता।

2

पुरखों की जिन्दगी में कितनी भी आन और शान रही हो, अब उसका अभिमान भी नहीं रहा। मोहसिन एक कारखाने में नौकर था और अपनी सारी तनख्वाह जब घर ले आकर दे देता, तो चचा और उसकी आमदनी मिलकर किसी तरह महंगाई की बाढ़ रोकने को मेड़ लगाती, जिससे घर के ये निरीह पौधों से प्राणी मौत के पानी में गोते खाने से बचे रहते।

शाम को जब हमीद होटल में बैठता और खान बहादुर के द्वार पर भिखारियों का जमघट लगता तब मोहसिन का मन भारी हो जाता, गंदे, मैले-कुचैले, अर्धनग्न भिखारी कुत्तों की तरह आंखें उठाये खड़े रहते और वैसे वे सभी मुसलमान थे।

बगदाद की वह कहानी याद आने लगती जिसमें ऐसे ही एक हसीन औरत के पीछे पागल एक सुन्दर युवक बैठा-बैठा गाता था और एक दिन वह बढ़ते-बढ़ते वजीर बन गया और उस लड़की को उसने बुलवा भेजा, जिसपर लड़की ने उसमें घमंड की बू देख खुदकुशी कर ली।

पर वह सब अब कहां। भिखारी शोर मचा रहे हैं। खान बहादुर का इस मामले में दबदबा था। सब जानते थे। खैरात में, ताजियों में, रोजे-नमाज मे इस कदर पाबन्द थे कि लोग उन्हें धर्म की साक्षात मूर्ति समझते।

चाय की चाईयत का मजा लेते वक्त किसी ने पीछे से कंधे पर हाथ रखकर धीरे से दबाया।

मोहसिन चौंक उठा। पलटकर देखा तो आसानी से पहचान नहीं सका। मैले कपड़े, घुटनों पर कुब्बड़ निकला पाजामा, दाढ़ी कुछ-कुछ बढ़ी हुई और चेहरे पर एक अपरिचित का भाव। किंतु गौर से देखने पर वह मुस्कराता मुंह पहचान लेना कठिन नहीं लगा।

"अरे तुम ?" उसने चौंककर पूछा।

"हां," उसने धीरे से कहा, 'पुलिस मेरा पीछा कर रही है।"

मोहसिन अवाक्-सा देखता रहा। यह क्या हुआ ? और हजरत खुले आम कंधे पर हाथ रखे खड़े हैं। आजिज आये भाई इस दोस्ती से कि आप तो माशा-अल्लाह चक्की पीसेंगे ही, यारों मे भी पिसवा के मानेंगे। पर इतना साहस नहीं हुआ कि उसका हाथ झटक दे और उससे पूछे कि तुम कौन हो ? क्या चाहते हो ?

मोहसिन कांप उठा, अगर किसी ने उसके साथ उसे देख लिया तो ? सीधे जेल में वैसे ही पहुंचा दिए जायेंगे जैसे बेटिकट का लिफाफा मुर्दा डाकघर में।

"चाय पी लो," आगंतुक ने कहा—"जल्दी करो। मेरे साथ जरा इधर निकल चलो, तुमसे कुछ बातें करनी है। यहां ठीक नही है।"

रेडियो का बजाना फायदेमन्द साबित हुआ क्योंकि आवाज उससे फैली नहीं, नुकीली सींक की तरह कानों में पर्दा फाड़ती हुई भीतर घुस गई। मोहसिन पर एक आवेश-सा छा गया। उसने जल्दी-जल्दी चाय पीकर पैसे चुकाये और उसकी ओर बढ़ आया, किंतु उस समय वह उसे नहीं दिखा, बाहर आकर एक आराम की सांस ली और पानवाले के यहां से लेकर एक सिगरेट सुलगाई, तभी वह व्यक्ति फिर अंधेरे में से निकल कर सामने आ गया। मोहसिन की आत्मा ने अबकी बार उसे निर्विकार रहकर स्वीकार कर लिया।

अब वे चलने लगे। आगंतुक कहता रहा, "वह छिपा हुआ है, मजदूर बस्ती में अब उसके लिए कुछ दिन रहना कठिन है, क्योंकि मजदूरों पर भयानक दमन किया जा

रहा है। औरतों और बच्चों को पुलिस पीटती है कि उन राजनीतिक कार्यकर्ताओं का पता बताये तो पूंजीवादी संस्था के विरुद्ध हैं।

राह में हिंदू बाजार पड़ा, निकल गया। वह कहता रहा, "जब कोई नहीं बताता तो हवा में गोली चलाकर दहशत पैदा करते हैं।" मोहसिन सुनता रहा, खामोश। क्या यह ठीक था?

तवायफों का बाजार आया, गुजर गया, वह कहता ही रहा, "औरतों की बेइज्जती करते हैं, जबर्दस्ती मजदूरों को पूंजीवादी स्वार्थों की रक्षक राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन में भर्ती किया जा रहा है···।"

और जब वे उस छोटे से ढाबे के सामने पहुंचे वह आदमी कह उठा, "कुछ पैसे हों तो, मेरे लिए कुछ रोटियां ले लो। मैं अंधेरे में हो जाता हूं।"

मोहसिन ने देखा, वह चेहरे से भूखा लगता था। ढाबे के सामने कुछ लोग पहले से मौजूद थे। वह कहीं जा खड़ा हुआ। सामने पंजाबी रोटियां गिन-गिनकर बेच रहा था।

मोहसिन के कंधे पर एक मोटा हाथ टिक गया। उसने मुड़कर देखा तो एक नितांत अपरिचित व्यक्ति को पाया। मोहसिन ने तीव्र स्वर में कहा—"ऐ भाईजान, आपका कंधा वह है, यह तो एक गरीब का है।"

किंतु वह नया आदमी तनिक भी विचलित नहीं हुआ। न उसने हाथ ही हटाया। वह केवल व्यंग्य से मुस्कराया। उसकी बेपानी की आंखें चमकने लगीं। मोहसिन को गुस्सा सा आने लगा। किंतु तभी उसने देखा कि उसकी दोनों ओर से लाल पगड़ी वाले सिपाही आ खड़े हुए थे। दूकान पर बहुत से लोग चौंककर उसे घूर रहे थे।

एक व्यक्ति ने बढ़कर पूछा भी—"क्या बात है, दरोगा जी।"

किंतु वह व्यक्ति कुछ नहीं बोला। एक सिपाही ने धीरे से मोहसिन से कहा—"आपको कोतवाली चलना होगा।"

कोतवाली? मैं?" मोहसिन ने चौंक कर कहा—"वजह? मतलब? आपका मकसद?"

किंतु सारे प्रश्न व्यर्थ हो गये। अपरिचित व्यक्ति आगे-आगे चलने लगा था। पीछे से सिपाही घेरे खड़ थे। मोहसिन बाजार में सबकी आंखों का तारा बना सिर झुकाए बढ़ा चला।

3

कोतवाल के सामने बैठे हुए मोहसिन के चेहरे पर एक अद्भुत दृढ़ता थी। वह फोन करके कुछ तलाश कर रहा था।

सड़क का शोर भीतर आ रहा था। शायद सिनेमा का शो समाप्त हो गया है। तभी इतना कोलाहल सुनाई दे रहा है। बाहर सिपाही संगीन लिए पहरा दे रहे हैं, दो-चार घुड़सवार भी घूम रहे हैं, जिनके सीने निकले हुए हैं और चेहरे पर एक बर्बरता है

जो दिल में दहशत बढ़ाती है जैसे यह लोग मनुष्य नहीं हैं, नितांत लोहे के हैं, या पशु हैं; जो आसानी से हत्या कर सकते हैं।

और अन्त में कोतवाल ने कहा—"आप जा सकते हैं।"

उस छोटे से वाक्य में जो आज्ञा का भाव था वह मोहसिन को अच्छा नहीं लगा। जब मोहसिन बाहर निकला उसका मन यदि एक ओर भीतर ही भीतर प्रसन्न था कि जान बची लाखों पाए, दूसरी ओर उसे भयानक विक्षोभ था कि वह नितांत निरीह था, उसका कोई महत्व नहीं था।

छोटी गली पार करते ही मोहसिन ने देखा, नीलचंद अंधेरे में से फिर निकल आया।

"अमां क्या इरादे हैं ?" मोहसिन ने घबराकर पूछा। "अभी-अभी छूटकर आ रहा हूं।"

"क्यों क्या, बात क्या हुई ?" नीलचंद ने अपने सिर पर सफेद खादी की टोपी लगाते हुए कहा। इस परिवर्तन पर मोहसिन को आनन्द हुआ। स्वाभाविक ही वह हंसा। वह सुनाने लगा—"पकड़ा था कि तुम नीलचंद हो। इन्सपेक्टर ने पूछा—'आप नीलचंद हैं ?' मैंने कहा—'आप वेवकूफ हैं।' उसने मुझसे तीन बार पूछा, मैंने तीनों बार यही जवाब दिया। तब मुझे कोतवाल के सामने पेश किया गया।"

"फिर क्या हुआ ?" नीलचंद ने उत्सुकता से पूछा—जैसे वह किसी फौज का कमाण्डर था।

"फिर पूछ-पाछकर छोड़ दिया," मोहसिन ने कहा।

नीलचद की तीखी आवाज सुनाई दी, "हम लोगों की अगर किसी से शक्ल भी मिलती है, कपड़े भी मिलते हैं तो उसे पुलिस तंग करती है। पर वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ वाले जो छोड़े जा रहे हैं उन्हें वक्त दिया जा रहा है और वे अपने क्लब बनाकर फिर वही जहरीला प्रचार कर रहे हैं। वह सब लोग कांग्रेस के सेवादल और जाने क्या-क्या हैं, उनमें घुसने की कोशिश कर रहे हैं। गांधीजी की हत्या के बाद फिर भी इनका दमन नहीं हुआ। उन पर प्रजातन्त्र लागू है।"

"तो क्या हम फिर खतरे में हैं ?" मोहसिन ने घबराकर पूछा।

"पूंजीपति की दुरंगी चाल है। रुपये की मार दुधारी होती है बाबू। जैसे-जैसे वर्ग-संघर्ष बढ़ता है, पूंजीपति घबराता है। उसके पास जनता के आंदोलन को पीछे ठेलने के लिए दंगे से बढ़कर कुछ नहीं। लेकिन अबकी बार शायद यह नहीं..."

और नीलचंद उसे छोड़कर भाग गया था। मोहसिन ने चौंक कर देखा, वह बिना वाक्य पूरा किए ही अंधकार में खो गया था। कारण कुछ भी समझ में न आया। यह भी कोई जिंदगी है। ऐसे भागा-भागा फिरता है जैसे कोई पागल कुत्ता हो।

वह अंधेरे में आगे बढ़ने लगा। छोटी गली में से दायें, बायें अनेक गलियां निकल गई हैं। इन दमघोट गलियों में दरवाजों पर टाट पड़े रहते हैं। अन्दर गलीज बदबू उड़ती है। यहां भी इंसान रहते हैं, घिसे-से, पिसे हुए। अपनी मजबूरियों में ही अपनी

खुशी हासिल करने की चेष्टा होती है।

जिंदगी। कोई जेब काटने को फन कहता है, कोई औरत को बेइज्जत करने में मर्दानगी समझता है। और वे प्यासी औरतें जो बुर्कों में चूहे की तरह ढांप कर पाली गई हैं, अंधेरे में मौका लगते ही फुफकारती हुई निकलती हैं और जवानी का ज्वार आवारों के सीनों पर खोने लगती हैं, जैसे साबुन के बुलबुले...।

दिल दब गया है। कितने आदमी छोटी-छोटी खाटों पर मैले-मैले कपड़े बिछाए दिन भर की मेहनत से चूर सो रहे हैं। मकान के छज्जे पर, सड़क के पक्के पत्थरों पर, मुंडेरों पर, लावारिस से इतने करीब, जहां एक-दूसरे की लंबी-लंबी सांस तीसरा आदमी सुन सकता है, डोलियां खींचना, यही इनका पेशा है। मोहसिन का मन उदास हो रहा है। कहां है चैन ? क्यों है आदमी को इतना दुःख। किस तरह यह स्वीकार किया जाय कि यह हंसते हैं, क्योंकि उन्हें जीवन में सुख मिला है।

चारों तरफ अंधेरा है और एक हल्की आवाज आ रही है—"अभी नहीं, अभी सड़क चल रही है, कोई देख लेगा...।"

"अरी सड़क तो रात भर चला करेगी। जिंदगी गुजर जायेगी।"

4

जिस वक्त वह घर पहुंचा चचा मियां बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे।

चारपाई पर, उनके बैठने में, जो एक शाही ठाठ था, वह आजकल दिखाई देना जरा कठिन काम था। मोहसिन को देखकर चचा-मियां कुछ फड़के। किताब के पन्ने जल्दी-जल्दी पलटने की सी आवाज हुई। मोहसिन ने देखा, चचा मियां मन ही मन हंस रहे थे जो कुछ सीमा तक यहां तन-मन का एकाकार होता-सा लग रहा था। वे आवेश में मोहसिन से कहने लगे—"बताओ भी, अरे भाई तुमने सुना, अंधी पीसे कूकर खाय। आदमी यहां एक रुपये को खरीदता है, दस कदम चलकर दो को बेच देता है। क्या समझे, तुम तो पढ़े-लिखे आदमी हो, कुछ बताओ, क्या खबर है ? अब तो लगता है कि चांद जमीन पर उतर आयेगा।"

मोहसिन हंसा। चचा मियां की एक बात एक इक्के का टट्टू है। चाहे जिधर भी चल दे। कभी अड़ गया तो फिर अड़ा ही रह गया। ऐसी बात करते हैं जिसका कोई सिर नहीं, पैर नहीं और अगर उनकी बात पर ध्यान न दिया जाय जो फौरन खफा हो जाते हैं।

"सो तो है ही।" मोहसिन ने कहा और उड़ती नजरों से चचा मियां को देखा। फिर नीलचंद की बातें याद आने लगीं। बात की बात में कह गया—"फिर दंगे की अफवाहें सुनाई दे रही हैं।"

"लाहौलविला कूवत," चचा मियां ने कहा—"यार तुम्हें ख्वाब में भी छीछड़े नजर आने लगे हैं ?" उन्हें विश्वास नहीं हुआ। कल्पना ही इतनी भयानक थी कि सोचते ही रूह कांपती थी।

"क्यों ?" चचा मियां ने कहा—"अबके किसके सिर पर भूत उतरा है।" उस आवाज में एक दहशत थी। मोहसिन ने सुना और वह स्वयं कांप उठा। उसका मन भारी हो गया। उसने कहा—"तब पाकिस्तान की रट थी। अब मिल गया है तो खाऊ लोगों की बन बैठी है। यहां वाले भाग कर लौट रहे हैं, और हाय-हाय मच रही है। वहां भुलावा देने को मजहब की आड़ ली जा रही है, वही यहां हो रहा है।"

चचा मियां का मुंह खुला का खुला रह गया। लड़का क्या कह रहा है ? और मोहसिन जब पलंग पर जाकर लेटा तरह-तरह के ख्याल आने लगे। सुबह फिर हड़ताल में जाना है। अच्छी परेशानी है। वह अगर मजदूरों से मिलता है तो कल ही नौकरी से निकाला जाना है और खिलाफ वह जाना नहीं चाहता। पर रोटी का भी तो सवाल है। न जायगा तो कल ही दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दिया जाएगा।

हड़ताल जोरों पर है। हिन्दू और मुसलमान का मजदूरों में फर्क क्यों मिट रहा है ? मुसलमान मजदूरों ने पूछा कि अगर तुम मुसलमान हो तो हमारी तनख्वाह में कटौनी क्यों करते हो ? उस वक्त इस्लाम कहां चला जाता है जब हिन्दू पुलिस को बुलाकर अपने माल की बंदूकों से हिफाजत करवाते हो ?

वह सोचते-सोचते सो गया क्योंकि पड़ोस मे कहीं ग्रामोफोन बज रहा था। जवानी के उबलते गत और फिर गली की बातचीत, सबने दिमाग मे एक ही कीड़ा पैदा किया जो काफी शैतान था। उसके पंजे उसके सिर में गड़ने लगे। आधे नंगे सी शरीर की अतृप्ति स्वप्न बनकर उपचेतन पर खेलने लगी।

5

सुबह उठकर उसने बिस्तर पर ही बैठे-बैठे एक बीड़ी सुलगाई और मन ही मन हंसा। क्या वक्त है ? अलस्सुबह हजरत बीड़ी पी रहे हैं। यह काम वह लोग करते हैं जिन्हें वह पहले नीचे तबके का कहा करता था। प्रभात की शीतल वायु चल रही थी। सुखद, शांत। हरियाली दूर तक नहीं दिखाई देती। सामने हां टीन दिखाई दे रही है फिर घर-घर-घर बहुत से घर…

अचानक रोने का स्वर दिखाई दिया। बहिन और खाला की आवाज थी। वह चौंक कर सुनने लगा। हां, यह उसीके घर मे था। उसका हृदय धड़क उठा। दौड़कर नीचे आया। देखा, काटो तो लहू नहीं। यह क्या ? उसने अचरज से चारों ओर देखा। किन्तु कहीं भी सांत्वना नहीं मिली।

चचा मियां सिर पकड़े बैठे थे जैसे उनके खान्दान की पुरानी इज्जत धूल में मिल गई थी।

"आप ही का नाम मोहसिन है ?" एक व्यक्ति ने पूछा।

"जी हां," मोहसिन ने अचकचा कर जवाब दिया, "कहिये ! मुझसे कोई काम है ?"

पुलिस तलाशी लेने लगी।

"मैं आपको बता सकता हूं।" उसी व्यक्ति ने कहा—"आपके बारे में कहा गया है कि आप मजदूरों में पर्चे बांटते हैं, हथियार रखते हैं, क्योंकि लीगी हैं ?"

"लाहौलविला कूवत," मोहसिन ने तेज होकर कहा —"यह किस बेवकूफ ने उड़ा दिया ?"

बहिन ने झांककर देखा कि तमंचे की तरह एक सिपाही की आंख न मुड़कर आनन-फानन ही निशाना लगाकर गोली दाग दी। मुंह अंदर छिप गया।

मोहसिन ने सिपाही की गर्दन पकड़ ली और फूत्कार किया—"कमीने !"

पुलिस वाला घबरा गया। उसने गर्दन छुड़ाकर कहा—"क्या है ? सरकारी काम में दखल डालते हो ? जानते नहीं हम कौन हैं ?"

जब वे चले गये, चचा खोंखियाने लगे, "वाह मियां वाह ! तुमने रही-सही कसर पूरी कर दी। जो सात पुश्तों से न हुआ था, वह आज तुम्हारे निजाम में पूरा हुआ। पर मैं एक बात पूछना चाहता हूं। कहां के हथियार और कहां की लीग ? करनेवाले तो बेदाग छूटे हुए हैं ? भला मिया खानबहादुर के यहां कोई नहीं जाता ? उनके यहा तो अब भी दर्जनों बल्लम रखे हैं···।"

और मोहसिन को लगा, चचा का हृदय फट रहा है। बेबसी में वे कभी-कभी कराह से उठते और अपने गौरव को ठोकर पर ठोकर खाते देखकर वह चिल्लाए—"मियां, लीग-फीग तो बहाना है, समझे ? खबरदार जो आयंदा उन पर्चे वालों से रस्म बढ़ाई, मैं नहीं रहूंगा यहां। समझे ?" अब वह बहुत ज्यादा समझाने पर उतर आये थे, मोहसिन को लगा, मेहतर बिरहमन के सामने सिर उठाये थे, मजदूर सरमायेदार के सामने सिर उठा रहे थे, किसान जमींदार से बगावत कर रहा था, हिन्दू मुसलमान का ख्वाब तोड़ रहे थे, मुसलमान हिन्दू साम्राज्य को फोड़ रहे थे, लेकिन साहब लोग 'सबका भला' मनाना चाहते थे, वह मरकर भूत की तरह रहना चाहते थे, ताकि घरवाले घर का धन न निकाल सकें, उस भूत को खून की कुर्बानी देते रहें।

हुकूमत खत्म हो रही है। चारों तरफ हलचल मच रही है। कान फटे जा रहे हैं···।

और मजहब का जहर फैलता जाता है, संकुचित होता है यह आग है, जो कभी लपकती है कभी राख में दब जाती है···।

यह फर्क उनके हैं जिन्हें इनसे फायदे हैं; यह फर्क उनमें सिर्फ जहालत बनकर पलते हैं, जिन्हें इनसे नुकसान है···

मोहसिन के सिर में दर्द सा होने लगा। भावों की कड़वाहट और निराशा उसके मस्तिष्क पर बिच्छू की तरह डंक मारने लगी, वह उनके जहर से तिलमिलाने लगा।

यह हड़ताल तोड़ने के तरीके हैं और फिर नीलचंद की बातें कानों में चुभने लगीं, एक हामला औरत का हमल गिर गया, लाठी चार्ज मामूली न था···अफवाह थी कि पुलिस वालों ने एक मजदूरनी से जिना किया था। पता नहीं कहां तक ठीक था

लेकिन डराया जरूर गया था···कल हर जगह होगा···।

उसे लगा कि वह दलदल में फंस गया था। कहीं जाने का रास्ता नहीं था। तब उसे लगा कि वह अधिकारहीन व्यक्ति था। उसके पास अपनी मेहनत के सिवाय और कुछ न था। वह सब कुछ हारा हुआ था, गरीब। उसे लगा, आज एक इन्सान पैदा हुआ था···जो सिर्फ इन्सान था···।

['जनवाणी', जुलाई, '48]

कठपुतले

शहर के राजा कलक्टर के बंगले पर पहुंचकर उन्होंने देखा कि उस विशाल मैदान और हरियाली के बीचोबीच जो अट्टालिका खड़ी है उसी में समस्त नगर की सूइयों का केन्द्र है। ये जो टिक-टिक करके घड़ी चल रही है, यहीं से उसको गति मिलती है। इस घड़ी को ऊपर से आकर कोई चाबी देता है। बहुत दिन चलकर जब यह घड़ी रुकने लगी तब इसमें तेल डाल दिया गया है और यह फिर उसी भांति चल पड़ी है।

उन दिनों जेल में कुछ लोग हड़ताल कर रहे थे। मामला यह था कि एक मजदूर और एक किसान को राजनीतिक बन्दी नहीं समझा गया था। मजदूर के ऊपर इल्जाम था कि उसने मालिक को लूटने की कोशिश की थी। किसान पर इल्जाम था कि उसने जमींदार के खिलाफ रैयत को भड़काया था। और न्याय में यह दोनों काम जुर्म थे। यह राजनीतिक कार्य नहीं थे, लिहाजा उन्हें साधारण कैदियों की भांति रखा गया था।

जब ये चारों बंगले के द्वार पर पहुंचे, उन्होंने देखा, अनेक आदमी कुर्सियों पर बैठे इन्तजार कर रहे थे। वे भी जाकर बैठ गए। वे लेखक थे। उनके पास न ओहदा था, न कोई और तमगा। वे उन आदमियों में थे जिन्हें अभी देश में ज्यादा कीमती नहीं समझा जाता।

पहले नुकीली सफेद टोपी लगानेवाले लोग बुलाये गये। उनका काम उनके देखते ही जल्दी-जल्दी समाप्त हो गया। वे प्रायः दूकानदार और व्यापारी लोग थे। उनके ऊपर से नीचे तक खद्दर के कपड़े झकाझक थे। वे लोग बिजली के गर्व से चलते थे, हंसते थे, और बोलते वक्त उनकी गर्दन कुछ और टेढ़ी हो जाती थी। आजाद सभी हो गए थे, पर पहले जैसे ही मजबूर और परेशान थे, लेकिन ये लोग अब बड़ी चमकीली मोटरों पर सर्र से निकल जाते थे।

"श्श्," एक आवाज हुई।

चपरासी ने आकर एक सफेद टोपी वाले के सामने सर झुकाया। वह एक मोटा आदमी था, गोरा और उसकी आंखें नीचे नहीं देखती थीं। सुभाष मात्र लेखक था। उसने देखा, चपरासी और नम्र हो गया था। उस गोरे आदमी ने कहा—"कलक्टर साहब हैं ?"

"जी हां," चपरासी ने कहा। जैसे वह नये मालिक को पहचानता था। उसने

दुम हिलायी और टांगों में उसे दाब कर कूं-कूं की।

"बोल दो जाकर, हम मिनिस्टर साहब का खत लेकर आए हैं।"

"जी हुजूर।"

चपरासी भीतर गया। तुरंत लौटकर आया और बोला—"चलिए हुजूर! सरकार आपका इन्तजार कर रहे हैं।"

गोरा और मोटा आदमी बिना इधर-उधर देखे हुए भीतर चला गया। सुभाष उधर ही देख रहा था। तभी उसने चपरासी की आवाज सुनी—"ठहरिए। आपका नम्बर आएगा तब आप जायेंगे या यों ही। यह कोई बाजार है?"

सुनने वाला एक मामूली आदमी था। उसने झेंप कर दांत निकाल लिए। चेहरे पर कुछ क्रोध सा था, वह आंखों की लाचारी में चाक हो चुका था। उसने इधर-उधर देखा, जैसे वह जानना चाहता था कि किसीकी आंखों ने तो बेइज्जती नहीं देखी, जैसे साइकल से गिरने वाला अपनी चोट बाद में देखता है, उसकी निगाह तलाश करती है किसीने देखा तो नहीं?

उसके पास बैठा आदमी उठ खड़ा हुआ। उसने चपरासी से कहा—"सुनना जरा।"

चपरासी उसकी बात सुनने को जैसे लालायित ही था। उठ कर उसके साथ चला गया। उसकी जगह अब दूसरा चपरासी बैठा ही था। कुछ ही देर में वह चपरासी उसी आदमी के साथ लौटा और कह रहा था—"बस जरा हुजूर को एक मिनट की फुर्सत तो मिले···"

मोटा और गोरा आदमी बाहर निकल आया। चपरासियों ने उसे सलाम किया। उसे शायद मालूम भी नहीं हुआ। अंदाज शायद हो गया कि वह जिधर से निकला है उधर कुछ लोग झुक गए हैं।

चारों लेखक उठ खड़े हुए। उनके चेहरों पर कुछ खतरनाक-सी चीज थी। चपरासी उसे पहचानते थे क्योंकि पहले कांग्रेस वालों के चेहरों पर यही चीज होती थी जब वे साहब कलक्टर बहादुर से मिलने आया करते थे।

सुभाष ने कहा—"काफी देर हो गई।"

इसी समय चपरासी ने कहा—"आइए, आप लोग आइए···।"

चारों जिस कमरे में घुसे वह एक साधारण दफ्तर था। उसमें गांधी जी का एक कलैण्डर टंगा था और सामने एक कुर्सी पर एक अधेड़ आयु का सांवला-सा आदमी बैठा था, जिसके चेहरे पर कोई खास भाव नहीं था। वही इस शहर का कलक्टर था। तबादलों का जो चक्र घूमता है, वह रुक कर। यह व्यक्ति उसी लपेट में आ गया था, कल यह कहीं और था, परसों कहीं और होगा। उसने दायां हाथ उठाकर अंग्रेजी में कहा—"बैठिए।"

चारों बैठ गए।

"तो आप लोग राजनीतिक बंदियों के बारे में मिलने आए हैं?" उसने झुक

कर कहा।

"जी हां," कहानी लेखक खास्तगीर ने उत्तर दिया।

अब जो बातें हुईं उनमें नाम देने की आवश्यकता नहीं। चारों लेखक एक हैं। उनकी राय एक है। मांग एक है। अब दो बातें करने वाले है। लेखक और कलक्टर।

"तो," कलक्टर ने कहा—"मैं आपका मतलब समझा नहीं। राजनीतिक बन्दी? आप किसके बारे में कह रहे हैं?"

"एक किसान और एक मजदूर को गिरफ्तार किया है। किसान पर बगावत और मजदूर पर लूट का जुर्म लगाया गया है। उन्हें राजनीतिक बन्दी नहीं माना गया। उनके साथ जेल में अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता। उन्हें तकलीफ दी जा रही है। एक मुस्लिम सम्पादक जो हिंदू-मुस्लिम एकता का पुराना प्रचारक है उसे आपने मुस्लिम लीगी कह कर गिरफ्तार कर लिया है। किसी पर भी मुकदमे नहीं चलाए हैं। उनके घरों की हालत बहुत खराब हो गई है। कोई कमाने वाला नहीं है। जुर्म साबित कीजिए या छोड़ दीजिए? उनकी भूख हड़ताल टूटनी चाहिए?"

खास्तगीर एक सांस में कहता चला गया। लेकिन उसका स्वर संयत था, उसमें तनिक भी आवेश न था। वह जैसे एक पैना चाकू था जो फल पर से छिलका उतारता चला जा रहा था। उसका हाथ जैसे कहीं भी नहीं कांपा।

सुभाष कलक्टर के मुख को गौर से देख रहा था। उसके मुख पर कोई विकार नहीं था, परिवर्तन नहीं था। उसने दोनों हाथ फैलाकर कहा—"मैं उस कानून को मानता हूं जो मेरे सामने है। उन्हें बदल दीजिए, मैं बदल जाऊंगा। पुलिस संदेह पर गिरफ्तार कर सकती है। मुकदमा चलाने की कोई अवधि नियत नहीं है। भूख हड़ताल की इजाजत न दी गई थी, न हमें उससे कुछ मतलब है।"

एक तलवार उठी थी, दूसरी उसके सामने आकर अड़ गई थी?

खास्तगीर ने घूरा और कहा—"इसीको आप आजादी कहते हैं? चाहे जिसको जेल में बिना सबूत डाल कर आप जनता के नागरिक अधिकारों पर हाथ डाल रहे हैं। यह कांग्रेस का राज है···"

कलक्टर हंसा, उसने कहा—"मेरे दोस्त! अंग्रेज हो या कांग्रेस। शासन शासन है। और जब तक दुनिया में शासन रहेगा तब तक यही होता रहेगा। तुम सब कुछ कह सकते हो जैसे कल कांग्रेस कहती थी। मगर जिम्मेदारी बहुत बड़ी चीज है। कुर्सी पर बैठ कर जो उत्तरदायित्व अनुभव होता है वह तुम कैसे समझ सकते हो?"

बात करना बेकार हो चुका था। सुभाष चिढ़ गया। उसने कहा—"और राजनीति किसे कहते हैं?"

"उसको समझना मेरा काम नहीं है।" कलक्टर ने बात समाप्त कर दी।

लेखकों ने एक-दूसरे की ओर देखा और सब कुर्सियां खिसकाकर उठ खड़े हुए। उस नितान्त हृदयहीन व्यवहार से वे विक्षुब्ध थे। अफसोस यह था कि उन्होंने ऐसी जगह की खोज की थी, जहां सिर्फ घड़ी के चक्रों के दांत थे, जो एक-दूसरे को ठेल कर गति पैदा

करते थे। वे लौट कर प्रस्ताव और परचा लिखने लगे।

धीरे-धीरे खबर फैलने लगी। दैनिक पत्रों में अधिकारियों की कहानी छपी। दूसरे दिन सम्पादक को डांट लगाई गई है कि तुम देश के विरुद्ध जा रहे हो। सम्पादक चतुर आदमी था। उसने दूसरे ही दिन गालियां छाप दीं और तीसरे दिन फिर तारीफ छाप दी। अधिकारी क्रुद्ध हुए; पर तब तक शहर में काफी लोगों पर राज खुल चुका था। विद्यार्थी शहर में प्रचार कर रहे थे! लोगों की समझ में नहीं आ रहा था। कुछ ने राय दी कि एक सभा बुलाई जाय। मालूम हुआ, नगर में दफा 144 लगी है, सभा नहीं हो सकती। पर्चे नहीं छप सकते। कल जो लड़के दीवारों पर इश्तहार चिपका रहे थे, उनमें से एक गिरफ्तार कर लिया गया था। और जेल में बन्दियों को भूख हड़ताल करते हुए 22 दिन हो चुके थे। सवाद आया था कि जबरदस्ती नाक में नलियां डालकर दूध पिलाया जाता था। न्याय की वेदी पर, ब्लैकमार्केट की वेदी पर, जेल में सत्य और न्याय के पहरुए, तिल-तिल कर घुल रहे थे, रह-रह कर मिट रहे थे, लेकिन उनके होंठों की मुस्कराहट जेल से बाहर दिखाई दे रही थी जैसे पानी में पत्थर गिरने से लहरियां फैलती चली जाती है। उनकी आंखों का निश्चय जो मौत को चुनौती दे रहा था, जो आती हुई मौत की आवाज सुन रहा था, जो मौत के कसते हुए पंजों से लड़ रहा था, जो कभी ऐंठन, कभी खून के थूक, कभी आंखों के नीचे छाए अंधेरे में घुमड़ रहा था, बाहर सब तक आता था। और निश्चय एक विश्वास था कि एक दिन यह घूर कर देखने वाले, यह होंठ काटने वाले, यह सफेद और खाकी कपड़े पहन कर चिल्ला-चिल्ला कर डांटने वाले, काले दिलों के पाप को खद्दर में छिपाकर शरीफ बनने वाले, उस लहराती हुई लौह की मुस्कराहट से कट जायंगे क्योंकि वह इन्सान की, दुख और दर्द झेले मनुष्य की मुस्कराहट ठोस है, उसके किनारे सत्य ने पैने कर दिए हैं।

× × ×

सुभाष ने हंसकर कहा "लो भाई, मुस्लिम लीगी संपादक तो छूट गया।"

"छूट गया?" खास्तगीर ने चौंक कर पूछा, "कैसे?" "हैबियस कार्पस (अर्थात् व्यक्तिगत स्वतन्त्रता) की अर्जी दी थी सो हाईकोर्ट ने फैसला दिया है। लो देखो, जरा अखबार देखो!"

खास्तगीर अखबार पढ़ने लगा। पढ़ कर उसने संतोष से कहा—"वाह! कहां है; कलक्टर का काम गैरकानूनी था। वाह! वाह!"

खास्तगीर का स्वर उठ गया। उसने फिर झुककर आंखें चमकाकर कहा—अब कलक्टर को सजा मिलनी चाहिए।"

सुभाष हंसा। इसी समय किसीने दरवाजे पर आवाज दी।

"कौन है? भीतर आ जाओ," सुभाष पुकार उठा।

भीतर आनेवाला एक सूखा-साखा नौजवान था। उसकी पलकों पर धूल जमी थी। वह आकर धम से कुर्सी पर बैठ गया।

"तुम!" दोनों लेखक उसे देख चौंक उठे। "तुम? जेल से बाहर? कब

छूटे ? कैसे ?"

इस नये आनेवाले व्यक्ति के चेहरे पर मुस्कराहट खेल गई। उसने कहा—"जादू, जादू हो गया !

"जादू !" खास्तगीर ने अचरज से पूछा—"मक्खी बनकर निकल आये ?"

"अरे नहीं यार, मुकद्दमा हो गया। हम छूट गये।"

"यह कैसे ?" सुभाष ने कहा। "कुछ बताओ भी तो ?"

"बताता हूं, बताता हूं," उसने रुककर कहा, "भाई जरा भूख हड़ताल करने से जो ज्यादा ताकत आ गई है न, तो जल्दी नहीं बोल पाता।"

सुभाष और खास्तगीर ने उसे सहानुभूति से देखा। उसके चेहरे पर थकान व्यक्त थी, जैसे कई दिन से वह सोया नहीं था। कुछ देर वे सब खामोश रहे। फिर कहना शुरू किया : "मेरा मुकद्दमा जेल में ही किया गया। एक मैजिस्ट्रेट, तहसीलदार, दरोगा तथा अमले साथ आये। मुझ पर जुर्म सुनाये गये। कहा गया कि तुमने रैयत को भड़काया। मैंने कहा : "मैंने क्या किया ?"

" 'तुमने भाषण दिया और गर्म भाषण दिया', दरोगा ने कहा।

" 'दिया ?' मैजिस्ट्रेट ने पूछा।

" 'दिया और फिर दूंगा। लेकिन मैंने गर्म भाषण में क्या कहा ? मैजिस्ट्रेट साहब के पास नकल है ?'

" मैजिस्ट्रेट ने तहसीलदार की ओर देखा। तहसीलदार ने कहा : 'चूंकि मैंने नहीं, बल्कि दरोगा जी ने गिरफ्तार किया था, आप ही से पूछिये।'

" 'जी हां हुंजूर', दरोगा जी ने कहा—'मुजरिम ने कहा था कि महंगाई बहुत ज्यादा है, सरकार सेठों का फायदा करती है, किसानों पर जमींदार अभी तक बैठे-बैठे उनकी खाल उधेड़ रहे हैं, परती धरती और चरागाहों पर कब्जा कर रहे हैं, सरकार की पुलिस और उन्हीं की मदद करती है।'

" 'बस ?' मैजिस्ट्रेट ने पूछा—'और कुछ ?'

" 'और हुजूर,' दरोगा ने कहा—'सरकारी अफसरों के बारे में यह गालियां देते थे, जिससे सरकार की बदनामी होती थी।'

" 'क्या मतलब ?' मैजिस्ट्रेट ने कहा—और फिर मुझसे पूछा—'क्या यह ठीक है ?'

"मैंने कहा—'जी हां, बिल्कुल ठीक है। लेकिन मैं सुनना चाहता हूं कि मैंने क्या कहा ?'

" 'हां, दरोगा जी, इन्होंने क्या कहा ?' मैजिस्ट्रेट ने फिर पूछा।

" दरोगा कुछ परेशान-सा दिखाई दिया। माथे को उंगली से दबा फिर रुककर कहा—'अब हुजूर मुझे इतना तो याद नहीं रहा।'

" 'लेकिन मुझको याद है,' मैंने टोका—'मुझे सब याद है। मेरी इस दरोगा से पुरानी तनातनी है। मैं इनके बारे में पहले भी दो बार शिकायत कर चुका हूं कि यह

रिश्वत बहुत लेते हैं। बताइये, मैंने कहा था कि यह अंगरेजी जमाने के गुलाम तबियत सरकारी नौकर, पुलिस, जिनका दिल अब भी नहीं बदला है, कैसे काम ठीक चला सकते हैं ? इन्हीं दरोगा जी का आज बीस हजार रुपया बैंक में जमा है, इनके पास कहां से आया ? क्या मिलती है इनको तनख्वाह ? कोई पैसेवाले घराने के आदमी भी नहीं। फकत। मैंने बस इतना ही कहा था ? पूछ लीजिये।'

"मैजिस्ट्रेट के होंठों पर कुछ झेंप-भरी मुस्कराहट थी। उसने मुंह फिराकर जैसे रूमाल से अपने माथे का पसीना पोंछा। दरोगा मुझे घूर रहा था जैसे कच्चा चबा जायेगा। मोटे तहसीलदार साहब इस समय जैसे चिन्ता में डूब गये थे और दीवान जी तथा सिपाही बुत बने खड़े थे। कठोर, हृदयहीन, नीरव।

"मैंने फिर कहा—'मैं आपके न्याय पर विश्वास नहीं करता। आप अगर आदमी को बेबात जेल में डाल सकते हैं तो मैं आप पर यकीन कैसे कर सकता हूं। आजादी मिली है, लेकिन वह सिर्फ वह चोरबाजारी करने के लिए मिली है। हमको नहीं मिली, जो खेतों में काम करते है। दरोगा जी को मिली है जो अब तिरंगा ओढ़कर रिश्वत लेते हैं।"

वह थककर रुक गया था। खास्तगीर की आंखें गौर से सुनने के कारण बंदी हो गई थीं। कमरे में एक भभक-सी घुमड़ रही थी। सुभाष उठकर खड़ा हो गया था। वह हाथ में पेंसिल उठाकर कुछ सोच रहा थ। बाहर धूप छिप गई थी। शायद वह बंजारा बादल का टुकड़ा अब उस धूप के नीचे भुन रहा था। इस बादल का बरसना जरूरी है। यह दुनिया की गर्मी मिटाने के लिए है। सूरज सोखकर जला देना चाहता है, हवा ठोकर मारकर इधर बहा देती है। लेकिन एक दिन जब ये बूंदें इकट्ठा हो जायेंगी तब यह बादल घड़घड़ाकर बरस जायेंगे और धरती फिर हरियाली से लहलहा उठेगी।

"फिर ?" खास्तगीर ने पूछा।

"फिर ? उन्होंने मुझे छोड़ दिया। वे मेरे जुर्म को साबित नहीं कर सके।"

"दरोगा का क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं। होता क्या," उसके स्वर में एक आक्रोश था। वह फिर कुर्सी से पीठ लगाकर बैठ गया। पांव उठाकर मेज पर रख लिये।

खास्तगीर हंसा ! उसने कहा—"एक राजा था जिसने एक आदमी को फांसी की सजा दी थी। पर फंदा उस आदमी के गले के लिए ढीला था। तो उसने कहा था—यह फंदा जिसके ठीक आये उसी के डाल दो। तुम तो उससे निकल आये ?"

"मेरी गर्दन," उसने कहा—"दुबली है ! जिनकी गर्दनें मोटी हो गई हैं वे ही उसमें आयेंगी।"

"यही हुआ था," खास्तगीर ने कहा—"राजा को ही आखिर चढ़ना पड़ा। फंदा उसीके ठीक था।"

वे लोग फिर खामोश हो गये। वह फिर कहने लगा—"जो जेल में भूख हड़ताल कर रहे हैं वे भूखे नहीं हैं। माना कि अखबार उनकी खबरों को बड़े-बड़े हरूफों में नहीं छापते जैसे वे छाप देते हैं कि फलाने सेठ ने आज कौन-सी मोटर खरीदी, माना कि उनकी

आवाज अभी बुलंद नहीं है, लेकिन वह फैल रही है···और वह दिन दूर नहीं है जब वह सबको सुनाई देगी, सबके भीतर बोलने लगेगी। धीरे-धीरे शरीर घुल रहा है। चौथे दिन के बाद से भूख की तेज बर्छी की-सी मार नहीं रहती, हाथ-पांव, शरीर में दर्द होता है, आंखों के सामने सब कुछ घूमता हुआ लगता है, पर फिर मन जीत लेता है। यह सच है कि मन अकेला ही काफी नहीं है, शरीर गिजा चाहता है। हमें भावुक होने की जरूरत नहीं है···फिर भी वे मनुष्य हैं, वे जीते हैं और मरते हैं क्योंकि उनके विश्वास मनुष्य के सुख-दुख पर आश्रित हैं, वे बुद्धि से काम लेते हैं···"

उसकी आवाज कमरे में गूंजकर हृदय में उतरती थी और फिर खिड़की से निकल-निकल हवा पर भाग रही थी। सुभाष और खास्तगीर सुन रहे थे। उस दिन कलक्टर बोल रहा था। उसके मुख पर एक चंचल और कुटिल मुस्कराहट थी जो सबकुछ छीनकर अपने पास रख लेना चाहती थी; आज यह एक किसान कार्यकर्त्ता बोल रहा था। इसके मुख पर एक दृढ़ विश्वास था, या प्रकट और सीधी-सीधी वेदना थी जो सब कुछ उनको बांट देना चाहती थी जो दुखी थे, लुटे हुए थे, पिसे हुए थे···

सुभाष ने देखा, यह मनुष्य था। और वह जो उस दिन कुर्सी पर बैठा था वह एक कठपुतला था, उसके जैसे अनेक थे···नाच रहे थे···ताक धिना धिन···

[लगभग '48]